श्रीवरदराजप्रणीता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

(पाणिनीय-व्याकरण-प्रवेशिका)

उपेन्द्रविवृतिसहिता, सूत्राणां भाषानुवादेन प्रश्नपत्रसंग्रहेण च युता
परमोपयोगिपरिशिष्टविशिष्टा च।

विवृतिकारः
पण्डित श्रीविश्वनाथशास्त्री प्रभाकरः
प्रिंसिपल श्रीसरस्वती संस्कृत कॉलेज, खन्ना, पंजाब

परिशिष्टकारः
कविकान्तः श्रीनिगमानन्दशास्त्री

सूत्रभाषानुवादकारः
श्रीलक्ष्मीनारायणशास्त्री

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स
प्राइवेट लिमिटेड • दिल्ली

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व...
भ...
रूप से
में ही

चौदह संस्करण बिक चुके हैं।
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८३, १९८९, १९९६

© मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड
सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्य प्राप्ति-स्थान :
मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
८ केमेक स्ट्रीट, कलकत्ता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य : रु० ३८

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

(सप्तम संस्करणे)

संस्कृत गौरव

विश्वभर की समस्त प्राचीन भाषाओं में संस्कृत का सर्वप्रथम और उच्च स्थान । विश्व-साहित्य की पहली पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषा का देदीप्यमान रत्न है, रतीय संस्कृति का रहस्य इसी भाषा में निहित है। संस्कृत का अध्ययन किये बिना रतीय संस्कृति का पूर्ण ज्ञान कभी सम्भव नहीं है। संस्कृत भाषा का साहित्य नेकों अमूल्य ग्रन्थरत्नों का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी चीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाह रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है। अति प्राचीन होने पर भी इस भाषा सर्जन-शक्ति कुण्ठित नहीं हुई, इसका धातुपाठ नित्य नये शब्दों के गढ़ने में मर्थ रहा है।

अनेकों प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की यह जननी है। आज भी भारत की मस्त भाषाएँ इसी वात्सल्यमयी जननी के स्तन्यामृत से पुष्टि पा रही हैं। पाश्चात्य द्वान् इसके अतिशय समृद्ध एवं विपुल साहित्य को देखकर आश्चर्य-चकित रह ये हैं। उन लोगों ने वैज्ञानिक ढंग से इसका अध्ययन किया और गम्भीर गवेषणाएँ ी हैं—एवं साथ में विश्व की दूसरी प्राचीन-भाषाओं का मन्थन करके वे यदि भाषा-विज्ञान' ऐसे अपूर्व शास्त्र का आविष्कार कर सके हैं तो इसका श्रेय संस्कृत-ाषा के ही गम्भीर अध्ययन को है। समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़नेवाली कड़ी दि कोई भाषा है तो वह संस्कृत ही है। "हजारों वर्ष विक्रम-पूर्व से लेकर ईसवी बारहवीं शताब्दी तक यह भारत की सर्व साधारण बोल-चाल की भाषा (राष्ट्र-भाषा) रही है।" इसमें अनेकों प्रबल प्रमाण दिये जा सकते हैं। आज भी गम्भीर रूप से विचार किया जाय तो स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा होने के समस्त गुण संस्कृत में ही विद्यमान हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाणिनीय व्याकरण

किसी भी भाषा की सुरक्षा एवं उसके मौलिक ज्ञान के लिए व्याकरण की परम आवश्यकता होती है। बिना व्याकरण के भाषा प्रायः विशृङ्खल और अपूर्ण रहती है। सर्वप्रथम इस चीज को देवों ने अनुभव किया और अपनी भाषा को व्याकृत करने के लिए देवराज इन्द्र से प्रार्थना की, तब इन्द्र ने वाणी को व्याकृत किया जैसा कि तैत्तिरीय-संहिता में लिखा है—

"वाग् वै पराच्यव्याकृताऽवदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्—इमां, नो वाचं व्याकुर्विति।"''''तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्" (तै. सं. ६।४।७)

बस, यहीं से व्याकरण की परम्परा का आरम्भ होता है, तात्पर्यतः संस्कृत भाषा के व्याकरण का निर्माण बहुत प्राचीन काल में आरम्भ हो गया था, अनेक आचार्यों ने व्याकरण की रचना की, (महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन नाम के दस व्याकरण-प्रवक्ता पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है) किन्तु अन्त में यह संस्कृत व्याकरण परिवर्धित-परिमार्जित होता हुआ पाणिनीय-शब्दानुशासन के रूप में प्रकट हुआ। पाणिनीय-व्याकरण विश्व के समस्त व्याकरणों में श्रेष्ठ, सर्वाङ्गपूर्ण एवं वैज्ञानिक शैली से लिखा गया माना जाता है। इसे देखकर पाश्चात्य विद्वानों के आश्चर्य-चकित हृदय से निकले उद्‌गारों को पढ़कर इसकी महत्ता और गौरव विशेष रूप से समझ में आता है—

(१) "पाणिनीय व्याकरण मानवीय मस्तिष्क की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक है" (लेनिन ग्राड के प्रोफेसर टी० शेरवात्सकी)।

(२) "पाणिनीय व्याकरण की शैली अतिशय-प्रतिभापूर्ण है और इसके नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गये हैं" (कोल ब्रुक)।

(३) "संसार के व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण सर्वशिरोमणि है''''''यह मानवीय मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है" (सर W. W. हण्टर)

(४) "पाणिनीय व्याकरण उस मानव-मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी दूसरे देश ने आजतक सामने नहीं रखा" (प्रो० मोनियर विलियम्स)।

पाणिनीय व्याकरण की मूलभूत पुस्तक है 'अष्टाध्यायी' इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं प्रत्येक पाद में ३८ से २२० तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर लगभग ३९५५ सूत्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

 गोविन्द प्रसाद उपाध्याय बाँस्कोटा

हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्त्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर भगवान् पतञ्जलि का विशद विवरणात्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में पाणिनीय व्याकरण कहलाता है और सूत्रकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतञ्जलि तीनों व्याकरण के त्रिमुनि कहलाते हैं।

भगवान् पाणिनि का परिचय और समय

"त्रिकाण्ड शेष" कोष में पाणिनि के छह नाम पाये जाते हैं—पाणिनि, आहिक, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, पाणिन और शालातुरीय। इनमें पाणिन और पाणिनि दोनों गोत्र-व्यपदेशज नाम हैं। "आहिक" पाणिनि का मूल नाम प्रतीत होता है किन्तु प्रसिद्धि सर्वत्र गोत्र नाम (पाणिनि) से ही हुई। महाभाष्यकार पतञ्जलि भी स्थान-स्थान पर इसी नाम से स्मरण करते हैं—

"कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्"। सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः"। **'दाक्षीपुत्र'** नाम मातृनामज है और शालङ्किनाम पितृनामज है जिससे यह समझा जाता है कि पाणिनि के पिता का नाम 'शलङ्कु' या शलङ्क था। 'शालातुरीय' नाम अभिजनहेतुक है।

इस छोटी सी नामावलि से यह निष्कर्ष निकलता है कि पाणिनि का गोत्र-प्रवर्त्तक मूल पुरुष कोई पाणिन् अथवा पणिन् नाम का व्यक्ति था। पिताका गोत्रनाम पाणिन् और मूल नाम शलङ्कु या शलङ्क था। माता का नाम दाक्षी था और वह दक्ष-कुल में उत्पन्न हुई थी। आहिक पाणिनि का मूल नाम था और पाणिनि का अभिजन (पिता-पितामहादि परम्परागत निवासस्थान) 'शलातुर' ग्राम था। इसी अभिप्राय से "गणरत्नमहोदधि" ग्रन्थ में शालातुरीय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—**"शलातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयस्तत्र भवान् पाणिनिः"** इससे स्पष्ट है कि शलातुर ग्राम पाणिनि के पूर्वजों का निवासस्थान है और पाणिनि का जन्मस्थान भी वही है। बाद में पाणिनि किसी अन्य स्थान में रहे हों यह बात दूसरी है।

यह शलातुर ग्राम रावलपिण्डी से आगे पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में (जो अब पाकिस्तान में है) 'अटक' स्टेशन से १५ मील की दूरी पर स्थित ओहिन्द (उत्खण्ड या उद्भाण्ड) ग्राम से साढ़े तीन मील पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान है और आजकल 'लाहुर' नाम से प्रसिद्ध है। (शलातुर शब्द ही बदला हुआ सलातुर=हलाथुर=हलाहुर=लाहुर बन गया है—ऐसा गवेषकों का मत है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुछ लोग बृहत्कथा के आधार पर पाणिनि की शिक्षा पाटलिपुत्र में हुई मानते हैं और कात्यायन को पाणिनि का सहाध्यायी मानते हैं, किन्तु ये दोनों ही बातें सर्वथा असंगत प्रतीत होती है। उस जमाने में शलातुर=लाहुर से उठकर एक बालक पढ़ने के लिए सैकड़ों कोस की दूरी पर स्थित पाटलिपुत्र=पटनानगर में जाय—यह बात सम्भव नहीं जान पड़ती, विशेषतः तब जब कि समीप में ही 'तक्ष-शिला' जैसा विशाल विश्वविद्यालय रहा हो और वही प्रदेश उस समय विद्याकेन्द्र भी रहा हो। ऐतिहासिकों का निश्चित मत है कि अवश्य ही पाणिनि की शिक्षा तक्ष-शिला में ही हुई थी, बादमें अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए अथवा अपने विचारों के प्रचार के अभिप्राय से वे अन्यत्र गये हों और पाटलिपुत्र में उनके प्रणीत शास्त्र की परीक्षा हुई हो, यह दूसरी बात है।

'आचार्य पाणिनि अत्यन्त सम्पन्न कुल के थे, उन्होंने अपने शब्दानुशासन को पढ़नेवालों के लिए भोजन आदि प्रबन्ध भी अपनी ओर से कर रखा था'। इस बातको युधिष्ठिर जी मीमांसक महाभाष्य के **'ओदनपाणिनीयाः'** उदाहरण से सिद्ध करते हैं। प्रतीत होता है कि भगवान् पाणिनि के कुलपतित्व में एक बहुत बड़ा आचार्यकुल अथवा विद्यापीठ रहा होगा, जिसमें हजारों विद्यार्थी अध्ययन करते होंगे, किन्तु महान् खेद का विषय है कि इतने बड़े विश्व-विख्यात उद्भट विद्वान् का जीवन वृत्तान्त प्रामाणिक रूप में कुछ भी उपलब्ध नहीं है। जो भी कुछ उपलब्ध है वह सब अनुमान और अनुश्रुतियों पर आधारित है। किंवदन्ती है, कि उनकी मृत्यु एक सिंह के द्वारा हुई—**"सिंहो व्याकरणस्य कर्त्तुरहरत्प्राणान् प्रियान् पाणिनेः।"** (पञ्चतन्त्र)।

समय

पाणिनि के समय के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण कुछ अनुमानों के आधार पर ही विचारक लोग निर्णय करते हैं। यह निर्णय भी सबका एक नहीं है। कुछ पाश्चात्य तथा तदनुयायी भारतीय विद्वान् पाणिनि का समय गौतम बुद्ध के बाद मानते हैं। **"कुमारः श्रमणादिभिः"** इस सूत्र में श्रमण शब्द को वे उद्धृत करते हैं और कहते हैं कि यह शब्द बुद्ध के बाद ही बौद्ध भिक्षुओं के लिए प्रयुक्त हुआ। वहीं से पाणिनि ने लिया जब कि बुद्ध का समय ईसवी पूर्व छठी शताब्दी है तो बौद्धमत-प्रचार के अनन्तर दो सौ वर्ष बाद अर्थात् ई० पू० चौथी शताब्दी पाणिनि का समय माना जा सकता है। दूसरा प्रमाण वे लोग यह देते हैं कि **"इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-यव-यवन-मातुलाचार्या**

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

णाम्भानुक्" इस पाणिनि सूत्र में यवन शब्द का ग्रहण है, उनका भाव यह है कि सिकन्दर के आक्रमण के बाद ही भारतीय लोग यवनों से परिचित हुए। सिकन्दर का आक्रमण ३२४ ई० पू० हुआ तो पाणिनि इससे बाद ही हुए होंगे।

किन्तु दूसरे गम्भीर विचारक इन युक्तियों को सर्वथा खोखली मानते हैं। क्योंकि श्रमण शब्द संन्यासी के अर्थ में गौतम बुद्ध से बहुत पहले "शतपथ ब्राह्मण" में प्रयुक्त हुआ है **'अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता लोका अलोका देवा अदेवाः श्रमणोऽश्रमणः तापसोऽतापसः'** इति। और संन्यास की प्रथा भी अर्वाचीन नहीं है, बुद्ध से बहुत पूर्व उपनिषदों में याज्ञवल्क्य का प्रव्रजन-प्रसङ्ग अति प्रसिद्ध है।

दूसरे—भारतीय लोग सिकन्दर के आक्रमण के बहुत पहले यवनों से परिचित थे। महाभारत में यवन सैनिकों के लड़ने का प्रसङ्ग है। भगवान् श्रीकृष्ण के साथ काल यवन का युद्ध तो अतिशय प्रसिद्ध ही है। युधिष्ठिर जी मीमांसक का यह मत है कि अति प्राचीन काल में यवन-जाति भारत के समीप ही बसती थी। बाद में ये लोग यूनान में जाकर बसे। इसके अतिरिक्त सिकन्दर से दो सौ वर्ष पहले ई० पू० ५२२ में हखमी वंशोत्पन्न यवन 'डेरीयस्' प्रथम ने भी भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त पर आक्रमण किया था। यह इतिहास तो प्रसिद्ध ही है।

महामहोपाध्याय शिवदत्त पाणिनि को नन्द के समानकालिक मानते हैं और नन्द को राजतरंगिणी और वाराही-संहिता के गणना के अनुसार २१५२ कलि-गताब्द में हुआ मानते हैं, किन्तु ऐतिहासिक लोग नन्द का प्रामाणिक समय २४५२ कलि-गताब्द अर्थात् ई० पू० सातवीं शताब्दी मानते हैं और इसीको पाणिनि का वास्तविक समय कहते हैं। किन्तु भण्डारकर और गोलस्टूकर ने पाणिनि का समय ५०० ईस्वी के कुछ पूर्व निश्चित किया है और श्री वासुदेवशरण अग्रवाल अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ई० पू० पाँचवीं सदी के मध्य को पाणिनि का समय मानते हैं। उनका कथन है कि "पाणिनि ने लगभग ४४०—४३० ई० पू० के बीच अपने ग्रन्थ की रचना करने के बाद पाटलीपुत्र की यात्रा की होगी, उस समय उनकी आयु लगभग ५० वर्ष की मानी जाए तो उनका जन्म ४८० ई० पू० के लगभग ठहरता है, 'अष्टाध्यायी' जैसे शास्त्र की रचना ४० वर्ष की आयु से ५० वर्ष की आयु तक सिद्ध होनी सम्भव है। उसके लिए आवश्यक बुद्धि-परिपाक, गम्भीर चिंतन, दीर्घकालीन सामग्री-संकलन एवं स्वानुभव के आधार पर मार्मिक विश्लेषण—ये सब बातें आयु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के इसी भाग में प्रायः सम्भव होती हैं। उनके जीवन-काल की अवधि लगभग ७० वर्ष मानने से पाणिनि का समय ४८०–४१० ई० पू० अनुमानित होता है।"

वार्तिककार कात्यायन

पाणिनि के सूत्रों पर अनेक वार्तिक पाठ लिखे गये, पर सबमें कात्यायन का वार्तिक पाठ ही प्रसिद्ध वार्त्तिक ग्रन्थ है। यह पाणिनीय व्याकरण का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना पाणिनीय व्याकरण अधूरा है। कात्यायन का यह वार्तिक पाठ स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध नहीं है। महाभाष्य में ही विशेषतः इन वार्त्तिकों की उपलब्धि होती है।

कात्यायन का दूसरा नाम 'वररुचि' है, कात्यायन उनका गोत्रज नाम है। कत-नामक गोत्र-प्रवर्त्तक मूलपुरुष के वंश में कात्यायन वररुचि का जन्म हुआ। यह बात कात्यायन नाम से सिद्ध हो जाती है और महाभाष्य के प्रथम आह्निक में **"यथा लौकिकवैदिकेषु"** इस वार्तिक पर "प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिकवैदिकेष्विति प्रयुञ्जते" इस पतञ्जलि-वचन से यह स्पष्ट है। आचार्य कात्यायन दाक्षिणात्य थे। ऐतिहासिकों का मत है कि कात्यायन का समय २५० ई० पू० है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि

पाणिनीय व्याकरण पर महाभाष्य एक अति विस्तृत व्याख्या है। व्याकरण जैसे दुरूह और शुष्क विषय को भी भगवान् पतञ्जलि ने ऐसी सरस-सरल प्राञ्जल भाषा में वर्णन किया है कि कोई भी सहृदय व्यक्ति इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। यह ग्रन्थ व्याकरण का सार-सर्वस्व है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने परिचय के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा किन्तु महाभाष्य में पतञ्जलि के दो नाम पाए जाते हैं—गोनर्दीय और गोणिकापुत्र। इससे यह स्पष्ट है कि वे 'गोनर्द' प्रदेश के रहने वाले थे और उनकी माता का नाम 'गोणिका' था। कुछ लोग गोनर्द प्रदेश काश्मीर में मानते हैं और कुछ लोग पूर्व में गोंडा प्रदेश को गोनर्द कहते हैं। पतञ्जलि को कई जगह शेषावतार, फणाभृत् आदि नामों से भी स्मरण किया गया है। प्रतीत होता है कि उनके ये नाम सहस्रमुखी प्रतिभा और सहस्रविध प्रवचन शैली के कारण पड़े हैं। महाभाष्य में एक उदाहरण है **"इह पुष्यमित्रं याजयामः"** इससे पतञ्जलि का राजा पुष्यमित्र के यज्ञ में ऋत्विक् होना सिद्ध होता है। पतञ्जलि के समय के सम्बन्ध में महाभाष्य में कुछ ऐसे संकेत मिल जाते हैं, जिनसे हम कुछ निश्चय कर सकते हैं—**"इह पुष्यमित्रं याजयामः"** इस उदाहरण के साथ ही दूसरा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण **"पुष्यमित्रो यजते"** यह भी सिद्ध करता है कि पतञ्जलि राजा पुष्यमित्र के समानकालिक थे। पुष्यमित्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों का निश्चित मत है कि यह समय ई० पू० दूसरी शताब्दि (ई० पू० १५०) है तो फिर महाभाष्यकार पतञ्जलि का समय ई० पू० १५० ही कहा जा सकता है। किन्तु महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि—इन तीनों के समय के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए लिखते हैं कि—"पाणिनि संस्कृत को भाषा नाम से पुकारते हैं। इससे सिद्ध होता है कि—पाणिनि के काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। कात्यायन के समय में अपभ्रंश-बहुल भाषा की प्रवृत्ति हो गई थी और महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय में तो अपभ्रंश भाषाओं की बहुत अधिक प्रवृत्ति हो गई थी। महाभाष्यकार स्वयं लिखते हैं कि—**"सन्त्येकैकस्य पदस्य बहवोऽपभ्रंशाः"** दूसरे, पाणिनि के समय में उनकी जन्मभूमि गान्धार तथा तत्सन्निहित पंचनद प्रदेश विद्या का केन्द्र था। पर कात्यायन और पतञ्जलि के समय में प्राच्य प्रदेश विद्याकेन्द्र हो गया था। यह परिवर्तन अल्पसमयसाध्य नहीं है। पूर्वोक्त भाषा सम्बन्धी महान् परिवर्तन भी खासे समय की अपेक्षा करता है। तीसरे, पाणिनि के सूत्रों पर कात्यायन से पहिले भी वार्त्तिक लिखे गये थे एवं कात्यायन के वार्त्तिकों पर भी पतञ्जलि से पहिले कई भाष्यग्रन्थ लिखे गये थे, ऐसा माना जाता है।

ऐसी स्थिति में आजकल के ऐतिहासिकों का यह मत विशेष रूप से विचारणीय हो जाता है कि पतञ्जलि ई० पू० १५० में, कात्यायन ई० पू० ३५० में और पाणिनि ई० पू० ४५० में या ५५० में हुए हैं।

क्योंकि इतने बड़े भाषा सम्बन्धी परिवर्तन और अनेक व्याख्या, वार्त्तिक, भाष्यादि का भिन्न-भिन्न प्रदेशों में निर्माण इतने कम समय के अन्तर में सम्भव नहीं प्रतीत होता, अतः मेरे (म० म० गि० ध० शर्मा के) विचार में पतञ्जलि यदि ई० पू० दूसरी शताब्दि में माने जाते हैं तो कात्यायन को ई० पू० सातवीं शताब्दी में और पाणिनि को ई० पू० बारहवीं शताब्दी में मानना युक्तिसङ्गत है।"

पूर्वतन अध्ययन-क्रम

पाणिनि व्याकरण के मूलग्रन्थ अष्टाध्यायी पर अनेकों वृत्तिग्रन्थ लिखे गये। वर्तमान में उपलब्ध सर्वोत्तम वृत्तिग्रन्थ है—जयादित्य और वामन की काशिकावृत्ति। यह वृत्ति ईसा की सातवीं शताब्दी में लिखी गई थी। कात्यायन का वार्त्तिक ग्रन्थ पृथक् उपलब्ध नहीं है, पतञ्जलि के महाभाष्य में ही समाविष्ट है। महाभाष्य पर अनेकों टीका-प्रटीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें कैयट का प्रदीप और प्रदीप पर नागेश

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के इसी भाग में प्रायः सम्भव होती हैं। उनके जीवन-काल की अवधि लगभग ७० वर्ष मानने से पाणिनि का समय ४८०—४१० ई० पू० अनुमानित होता है।"

वार्तिककार कात्यायन

पाणिनि के सूत्रों पर अनेक वार्तिक पाठ लिखे गये, पर सबमें कात्यायन का वार्तिक पाठ ही प्रसिद्ध वार्त्तिक ग्रन्थ है। यह पाणिनीय व्याकरण का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना पाणिनीय व्याकरण अधूरा है। कात्यायन का यह वार्तिक पाठ स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध नहीं है। महाभाष्य में ही विशेषतः इन वार्त्तिकों की उपलब्धि होती है।

कात्यायन का दूसरा नाम 'वररुचि' है, कात्यायन उनका गोत्रज नाम है। कत-नामक गोत्र-प्रवर्त्तक मूलपुरुष के वंश में कात्यायन वररुचि का जन्म हुआ। यह बात कात्यायन नाम से सिद्ध हो जाती है और महाभाष्य के प्रथम आह्निक में **"यथा लौकिकवैदिकेषु"** इस वार्तिक पर "प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिकवैदिकेष्विति प्रयुञ्जते" इस पतञ्जलि-वचन से यह स्पष्ट है। आचार्य कात्यायन दाक्षिणात्य थे। ऐतिहासिकों का मत है कि कात्यायन का समय २५० ई० पू० है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि

पाणिनीय व्याकरण पर महाभाष्य एक अति विस्तृत व्याख्या है। व्याकरण जैसे दुरूह और शुष्क विषय को भी भगवान् पतञ्जलि ने ऐसी सरस-सरल प्राञ्जल भाषा में वर्णन किया है कि कोई भी सहृदय व्यक्ति इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। यह ग्रन्थ व्याकरण का सार-सर्वस्व है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने परिचय के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा किन्तु महाभाष्य में पतञ्जलि के दो नाम पाए जाते हैं—गोनर्दीय और गोणिकापुत्र। इससे यह स्पष्ट है कि वे 'गोनर्द' प्रदेश के रहने वाले थे और उनकी माता का नाम 'गोणिका' था। कुछ लोग गोनर्द प्रदेश काश्मीर में मानते हैं और कुछ लोग पूर्व में गोंडा प्रदेश को गोनर्द कहते हैं। पतञ्जलि को कई जगह शेषावतार, फणाभृत् आदि नामों से भी स्मरण किया गया है। प्रतीत होता है कि उनके ये नाम सहस्रमुखी प्रतिभा और सहस्रविध प्रवचन शैली के कारण पड़े हैं। महाभाष्य में एक उदाहरण है **"इह पुष्यमित्रं याजयामः"** इससे पतञ्जलि का राजा पुष्यमित्र के यज्ञ में ऋत्विक् होना सिद्ध होता है। पतञ्जलि के समय के सम्बन्ध में महाभाष्य में कुछ ऐसे संकेत मिल जाते हैं, जिनसे हम कुछ निश्चय कर सकते हैं—**"इह पुष्यमित्रं याजयामः"** इस उदाहरण के साथ ही दूसरा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदाहरण **"पुष्यमित्रो यजते"** यह भी सिद्ध करता है कि पतञ्जलि राजा पुष्यमित्र के समानकालिक थे। पुष्यमित्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों का निश्चित मत है कि यह समय ई० पू० दूसरी शताब्दि (ई० पू० १५०) है तो फिर महाभाष्यकार पतञ्जलि का समय ई० पू० १५० ही कहा जा सकता है। किन्तु महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि—इन तीनों के समय के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए लिखते हैं कि—"पाणिनि संस्कृत को भाषा नाम से पुकारते हैं। इससे सिद्ध होता है कि—पाणिनि के काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। कात्यायन के समय में अपभ्रंश-बहुल भाषा की प्रवृत्ति हो गई थी और महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय में तो अपभ्रंश भाषाओं की बहुत अधिक प्रवृत्ति हो गई थी। महाभाष्यकार स्वयं लिखते हैं कि—**"सन्त्येकैकस्य पदस्य बहवोऽपभ्रंशाः"** दूसरे, पाणिनि के समय में उनकी जन्मभूमि गान्धार तथा तत्सन्निहित पंचनद प्रदेश विद्या का केन्द्र था। पर कात्यायन और पतञ्जलि के समय में प्राच्य प्रदेश विद्याकेन्द्र हो गया था। यह परिवर्तन अल्पसमयसाध्य नहीं है। पूर्वोक्त भाषा सम्बन्धी महान् परिवर्तन भी खासे समय की अपेक्षा करता है। तीसरे, पाणिनि के सूत्रों पर कात्यायन से पहिले भी वार्त्तिक लिखे गये थे एवं कात्यायन के वार्त्तिकों पर भी पतञ्जलि से पहिले कई भाष्यग्रन्थ लिखे गये थे, ऐसा माना जाता है।

ऐसी स्थिति में आजकल के ऐतिहासिकों का यह मत विशेष रूप से विचारणीय हो जाता है कि पतञ्जलि ई० पू० १५० में, कात्यायन ई० पू० ३५० में और पाणिनि ई० पू० ४५० में या ५५० में हुए हैं।

क्योंकि इतने बड़े भाषा सम्बन्धी परिवर्तन और अनेक व्याख्या, वार्त्तिक, भाष्यादि का भिन्न-भिन्न प्रदेशों में निर्माण इतने कम समय के अन्तर में सम्भव नहीं प्रतीत होता, अतः मेरे (म० म० गि० ध० शर्मा के) विचार में पतञ्जलि यदि ई० पू० दूसरी शताब्दि में माने जाते हैं तो कात्यायन को ई० पू० सातवीं शताब्दी में और पाणिनि को ई० पू० बारहवीं शताब्दी में मानना युक्तिसङ्गत है।"

पूर्वतन अध्ययन-क्रम

पाणिनि व्याकरण के मूलग्रन्थ अष्टाध्यायी पर अनेकों वृत्तिग्रन्थ लिखे गये। वर्तमान में उपलब्ध सर्वोत्तम वृत्तिग्रन्थ है—जयादित्य और वामन की काशिकावृत्ति। यह वृत्ति ईसा की सातवीं शताब्दी में लिखी गई थी। कात्यायन का वार्त्तिक ग्रन्थ पृथक् उपलब्ध नहीं है, पतञ्जलि के महाभाष्य में ही समाविष्ट है। महाभाष्य पर अनेकों टीका-प्रटीकाएं लिखी गई हैं। इनमें कैयट का प्रदीप और प्रदीप पर नागेश

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का उद्योत अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस प्रकार सब मिलाकर पाणिनि-व्याकरण ने एक विशाल रूप धारण कर लिया और इसका अध्ययन-अध्यापन-क्रम इस प्रकार चला कि पहले बच्चों को सम्पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करा दी जाती थी और बाद में वृत्ति ग्रन्थ के सहारे प्रयोग-साधन सिखाया जाता था। अनन्तर महाभाष्य पढ़ लेने पर व्याकरण का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया जाता था। बचपन में पूर्णतः अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर लेनेवालों के लिए यह अध्ययन-क्रम अत्यन्त उपयोगी और स्वल्प-काल फलदायक रहा।

प्रक्रिया-क्रम

किन्तु प्रौढ़ विद्यार्थी को इस अष्टाध्यायी-प्रणाली में कष्ट और गौरव अनुभव होने लगा। क्योंकि इसमें समस्त अष्टाध्यायी कण्ठाग्र कर लेने के बाद ही असली अध्ययन प्रारम्भ होता था और किसी प्रकरण का पृथक् अध्ययन भी दुष्कर था, कारण यह कि अष्टाध्यायी के प्रकरण प्रकिया-क्रम से नहीं हैं। समास द्वितीय अध्याय में हैं तो समासान्त प्रकरण पंचमाध्याय में है। इस प्रकार समस्त प्रकरण बिखरे पड़े हैं जिससे साधन-प्रक्रिया में गौरव और कष्ट अनुभव होना स्वाभाविक था। इसीलिए प्रक्रिया-क्रम से पठन-पाठन का विचार प्रारम्भ हुआ और पाणिनि-व्याकरण में प्रक्रिया प्रणाली का सुव्यवस्थित प्रथम ग्रन्थ प्रक्रिया-कौमुदी लिखा गया। इसके लेखक हैं— आचार्य श्रीरामचन्द्र। इनका समय ईसा की १५ वीं शताब्दी माना जाता है। किन्तु प्रक्रिया-कौमुदी में पाणिनि के समस्त सूत्रों का सन्निवेश नहीं हुआ। इसलिए यह ग्रन्थ पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रातिनिध्य न कर सका।

सिद्धान्त कौमुदी और श्रीभट्टोजि दीक्षित

इस कमी को पूरा करने के लिए श्रीभट्टोजि दीक्षित ने वैयाकरण-सिद्धान्तकौमुदी की रचना की। यह ग्रन्थ पाणिनीय व्याकरण का प्रक्रियानुसारी सर्वोत्तम प्रयास है। पाणिनि का एक भी सूत्र इसमें छूटने नहीं पाया। अध्ययन की सुविधा के लिए वैदिक और स्वर-प्रकरण पृथक् संग्रह कर दिये गये। यह ग्रन्थ इतना उपयोगी सिद्ध हुआ कि समस्त भारत में पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन इसी के द्वारा होने लगा। सिद्धान्त-कौमुदी पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गईं, जिनमें दीक्षितजी की अपनी प्रौढ़ मनोरमा, ज्ञानेन्द्र सरस्वती की तत्त्वबोधिनी, नागेश भट्ट का शब्देन्दुशेखर, वासुदेव वाजपेयी की बालमनोरमा अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्री भट्टोजि दीक्षित महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर भट्ट था, और गुरु थे पं० शेषकृष्ण। इनके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुत्र श्री भानुदीक्षित और पौत्र श्री हरिदीक्षित थे। डा० वेलवेलकर भट्टोजि दीक्षित का समय ईसवी सन् १६०० से १६५० के मध्य में मानते हैं।

लघुकौमुदी और मध्यकौमुदी

भट्टोजि दीक्षित के शिष्य श्री वरदराज ने पाणिनीय व्याकरण के प्रथम प्रवेशार्थी सुकुमारमति बालकों के सुखबोध के लिए सिद्धान्त कौमुदी का अत्यन्त सरल एवं लघुकाय संस्करण लघुकौमुदी के रूप में सम्पन्न किया। वस्तुतः यह छोटी-सी पुस्तक पणिनीय व्याकरणरूपी महाप्रासाद में प्रवेश पाने के लिए प्रथम सोपान रूप है। पुस्तक के आरम्भ में श्री वरदराज स्वयं लिखते हैं—**'पाणिनीय-प्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्'** पुनः अन्त में इसे और भी स्पष्ट करते हैं कि **'शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका, कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी'**।

और बाद में लघुकौमुदी द्वारा साधारण ज्ञान को प्राप्त हुए विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि के लिए श्री वरदराजने द्वितीय सोपान के रूप में मध्यकौमुदी का सम्पादन किया। कहते हैं अपने शिष्य की इस अनुपम कृति को देखकर गुरुवर भट्टोजि दीक्षित को संदेह हो गया था कि मध्यकौमुदी को पढ़ने के बाद मेरी सिद्धान्तकौमुदी को कौन पढ़ेगा। वास्तव में 'मध्यकौमुदी' सिद्धान्तकौमुदी का सार-सर्वस्व है।

लघुकौमुदी का प्रकरण-क्रम

मध्यकौमुदी के समान लघुकौमुदी का प्रकरण-विन्यास भी सिद्धान्तकौमुदी की अपेक्षा भिन्न है। संधि षड्लिङ्ग और अव्यय-प्रकरण के बाद स्त्रीप्रत्यय और कारक आदि प्रकरणों को पहले न रखकर तिङन्त प्रकरण को रखा गया है। बाद में कृदन्त, कारक, समास, तद्धित और सबके अन्त में स्त्रीप्रत्यय रखे गये हैं। यह प्रकरण-क्रम युक्तियुक्त भी है। सर्वप्रथम वाक्य में अर्थज्ञान के लिए पदच्छेद अपेक्षित होता है, इसलिए सन्धिप्रकरण पहिले रखना ठीक है। अनन्तर सुबन्त पद-ज्ञान के लिए षड्लिंग तथा अव्ययप्रकरण और तिङन्त पदज्ञान के लिए तिङन्तप्रकरण आना अत्यावश्यक है। क्योंकि स्त्रीप्रत्यय, कृत्तद्धितसमाससापेक्ष हैं अतः स्त्रीप्रत्ययों को सबके अन्त में रखना युक्तिसंगत है, और कारकों का समास से पूर्व रहना भी ठीक जँचता है, क्योंकि विभक्त्यर्थज्ञान पर ही समासप्रक्रिया निर्भर है।

तीनों का कलेवर

सिद्धान्तकौमुदी में अष्टाध्यायी के समस्त ३९५५ सूत्रों की विशद व्याख्या ऊहापोह एवं शास्त्रार्थ, पद्धति से की गई है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मध्यकौमुदी में पाणिनि के २३१५ सूत्रों की उदाहरण-प्रत्युदाहरण सहित सुन्दर एवं सरल व्याख्या की गयी है।

लघुकौमुदी संक्षेप की दृष्टि से अत्यन्त संक्षिप्त व्याकरण-पुस्तक है। इसमें पाणिनि के १२७२ सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या की गयी है।

आचार्य वरदराज और उनका समय

आचार्य वरदराज का परिचय बहुत संक्षिप्त रूप में मिलता है। ये दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय था और भट्टोजि इनके गुरु थे। मध्यकौमुदी के आरम्भ श्लोक में श्री वरदराज ने गुरुवर भट्टोजि दीक्षित को प्रणाम किया है।

"नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम्॥

वरदराज भट्टोजि दीक्षित के शिष्य होने से तत्समानकालिक थे। अतः समय के विषय में पृथक् विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यह तो मानना ही पड़ेगा कि सिद्धान्तकौमुदी निर्माण के २५ या ३० वर्ष बाद ही वरदराज ने लघुकौमुदी और मध्यकौमुदी का निर्माण किया होगा। सिद्धान्तकौमुदी क्रम से पढ़ने के बाद ही पढ़ते समय प्रक्रियाक्रम से प्रवृत्त हुए इस पणिनीय व्याकरण का प्रारम्भिक छात्रों के लिए लघुकाय और मध्यकाय संस्करण लघु और मध्य के रूप में लिखा गया होगा। ऐसी स्थिति में भट्टोजि दीक्षित का समय यदि १६०० से १६५० ईसवी के मध्य माना जाता है तो वरदराज द्वारा लघु और मध्य का निर्माणकाल भी इसी के निकट १०।१५ साल के अन्तर में माना जा सकता है।*

लघुकौमुदी की टीकाएँ

मध्यकौमुदी के समान लघुकौमुदी की भी अनेक प्राचीन एवं नवीन टीकाएँ तथा टिप्पण मिलते हैं जो विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में लिखे गये हैं। कुछ संस्कृत में तथा कुछ हिन्दी में भी हैं। किन्तु हमारी यह "उपेन्द्र-विवृति" नाम की व्याख्या न तो बहुत विस्तृत है न ही अति संक्षिप्त है। छात्रों के हित का पूरा ध्यान रखा गया है। सूत्रों का हिन्दी-अनुवाद भी साथ दे दिया गया गया है। उपेन्द्र विवृति सहित लघुकौमुदी का यह सप्तम संस्करण भेंट किया जा रहा है। पहले संस्करणों की अपेक्षा यह अत्यन्त परिमार्जित, संशोधित एवं परिवर्धित है। छात्रों की सुविधा के लिए विशिष्ट रूपों की

---

* भगवान् पाणिनि, कात्यायनमुनि, शेषावतार महामुनि पतञ्जलि, म० म० श्रीभट्टोजि दीक्षित एवं पण्डितप्रवर वरदराज के सम्बन्ध में विशेष परिचय के लिए देखिए मेरी मध्यकौमुदी की भूमिका।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिद्धि अब और अधिक बढ़ा दी गयी हैं। परीक्षा में पूछे जाने वाले लगभग सभी रूप इस विशिष्ट रूपसिद्धि के अन्तर्गत आ गये हैं। हिन्दी में लिखी गयी ऐतिहासिक भूमिका भी इस संस्करण की एक विशेषता है। अन्य विशेषताएँ तो पूर्व विदित हैं ही। जैसे ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेदों का चक्र, आभ्यन्तर-बाह्य प्रयत्न चित्र, सन्धि प्रकरण में मूल प्रयोगों के संधिविच्छेद के साथ तत्समान अन्य प्रयोगों का संधिविच्छेद पुरःसर प्रदर्शन, विशेष प्रयोगों का साधन प्रकार, खास खास-शब्दों का उच्चारण, सूत्र सम्बन्धी सुभाषितो का उल्लेख, अव्ययों का अर्थ, धातुओं के सकर्मकत्व-अकर्मकत्व का निर्णय, कर्त्ता कर्म आदि के उक्तत्वानुक्तत्व का विवेक, प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुष का विवेक चित्र, परस्मैपद-आत्मनेपद व्यवस्था का चित्र, समस्त धातुओं के अनुबन्धों के इत्करण का फल, खास-खास धातुओं के उच्चारण, धातुरूपों की सिद्धि, समस्त तद्धितीय सूत्रों के अर्थ एवं तत्र तत्र विशेष विषयों का विस्पष्ट विश्लेषण।

इसके अतिरिक्त बालकों के लिए परम उपयोगी परिशिष्ट दिया गया है जिसमें लिङ्ग-ज्ञान के लिए लघुलिङ्गानुशासन, व्याकरण, सूत्र, वार्त्तिक आदि के लक्षण भेदोदाहरण, व्याकरण का अनुबन्धचतुष्टय, सन्धिपञ्चत्व-प्रतिपादन, लेखोपयोगी नियम और चिह्न, अनुवाद में प्रायः आनेवाली अशुद्धियों का प्रदर्शन और संशोधन, अनुवाद में प्रयुक्त करने के लिए सोपसर्ग धातुओं के अर्थविशेष का प्रदर्शन, अर्थ सहित धातुपाठ और अर्थ के सहित लघुकौमुदीस्थ समस्त प्रयोग संग्रह सन्निविष्ट है।

अन्त में परीक्षा-शिक्षासूत्र, प्रश्नोत्तर निदर्शन और १८ साल के प्रश्नपत्र भी लगा दिये हैं जिससे परीक्षार्थी विद्यार्थी को परीक्षा में अपेक्षित समस्त सामग्री पुस्तक में उपलब्ध हो सकेगी एवं व्याकरण विषयक ज्ञान के लिए इतस्ततः भटकना नहीं पड़ेगा।

इन अन्तरङ्ग विशेषताओं के अतिरिक्त सूत्र और वृत्ति का पृथक् विन्यास, सुन्दर आकार-प्रकार स्पष्ट अक्षरों में मुद्रण और अपेक्षाकृत अल्प मूल्य में वितरण का भी पूरा ध्यान रखा गया है, इस पुस्तक की विशिष्ट उपयोगिता तो इसी से स्पष्ट है कि कुछ ही वर्षों में इसके छह संस्करण निकल चुके हैं और यह सातवाँ संस्करण अत्यन्त उज्ज्वल रूप में पाठकों की सेवा में समर्पित किया जा रहा है।

श्रीसरस्वती संस्कृत महाविद्यालय
खन्ना (लुध्याना) पंजाब
१७ श्रावण, वैक्रमाब्द २०१५, (१।८।१९५८)

भवदीय
विश्वनाथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

॥ ॐ ॥

उपेन्द्र-कुल-परिचयः

(अथ लघुसिद्धान्तकौमुद्या विवृतिरियं यन्नाम्ना **"उपेन्द्रविवृति"** रिति विहिता विश्रुता च, तस्यास्य श्रीमदुपेन्द्रनाथशास्त्रिणः परमविमले कुले समभूवन् अनेके लोक-विश्रुताः सुयोग्याः संस्कृतविद्वांसः, येषामादिमः श्री पं० केशवराममहाराजः समभूत् । तदादि श्रीमदुपेन्द्रशास्त्रिपर्यन्तं संक्षिप्तमितिवृत्तं मध्यकौमुद्यादौ "केशव-परिचय"—नाम्ना प्रदत्तम्, अत्रापि तद् उपेन्द्रकुलपरिचयनाम्ना प्रदीयते ।)

अस्ति पंचाम्बु-प्रान्तोत्तर-दिग्विभागस्थे 'होश्यारपुर'—मण्डले द्वाबाप्रान्तशिरोदेशे 'जेजों'—नामातिविश्रुता नगरी । तत्र च विद्यते परम-प्रसिद्धं सारस्वतजातीयं प्रभा-करोपाह्वमेकं पण्डितकुलम् । यत्कुलीनाश्चाद्यावधि विविधगुणमण्डिताः सुयोग्याः पण्डिताः समभूवन् विद्यन्ते च । एतत्कुलपूर्वपुरुषेषु महामनाः परम-भागवतः श्रीपण्डित-केशवराम-शर्मा प्रभाकर आदिमो विद्वान् बभूव । यो हि यवनानां नानाक्रूराऽऽक्रमण-कारणाद् विगता-चार-प्रचार-परिलुप्त-विद्यासंचारं पाणिनि-जन्मभुवमपि कालप्रभावेण पाणिनीय-व्याकरण-विज्ञान-रहितं सर्वथा विस्मृतपरमेशं पंचाम्बुदेशं पुनः प्रसूत-सदाचारं संलब्धविद्या-प्रचारं पाणिनीय-व्याकरण-विज्ञान-सहितं सदा संस्मर्यमाणपरमेशञ्च चकार । समुल्लिख्यते तस्य तत्कुलस्य चाऽयमल्पीयान् परिचयः ।

विद्यावारिधिर्महामनाः परमभागवतः पण्डितप्रवरः श्रीकेशवरामशर्मा प्रभाकरः

अष्टादश-शततमे (१८००) वैक्रमवत्सरे 'जेजों'—नगरनिकटवर्तिनि मदूदग्रामे बालकिरामशर्म्मणः पुण्यभवनं जन्मना मण्डयामास श्रीकेशवः । सोऽयं बाल एव आकृत्या प्रकृत्या च परमश्चारुः, वर्णेन गौरः, पीनांसो, दीर्घबाहुः, कमलदलविशाल-लोचनो दर्शकजन-मनमोहनः, सर्वजनहिताभिलाषी मितभाषी चासीत् । इदंकुलीनायाश्च भगवद्भक्ताया 'माई जीतो' देव्याः प्रसादा[illegible] तस्या एव सकाशात् प्राप्ता-शीराशिः, 'मदवाणी' ग्रामवास्तव्यस्य वैष्णवमहात्मनः **पं० श्री मथुरादासशर्म्मणोऽधि-**

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गत-प्राथमिकाक्षरशिक्षा-दीक्षः प्रवर्धमानविद्याधिगमाभिनिवेशो लब्धगुरुवरादेशः परित्यज्य सहजस्नेहं निजगेहं, विलय्य बन्धुजन-महामोह-बन्धनम् विगणय्य चाशेषान्मार्गक्लेशान् पदातिरेव विद्याप्रधानकेन्द्रभूतां श्रीवाराणसीं प्रतस्थे। तां च षड्विंशतिवर्षाण्यध्युष्य शब्देन्दुशेखरादिषु भैरव्यादिटीकाकर्तुः श्रीभैरवमिश्रस्य तातपादानां श्रद्धेयचरणानां श्रीमत्पण्डितभवदेवमिश्राणां सकाशात् समस्तशास्त्रजातमधिजग्मिवान्, विशेषतश्च पाणिनीयं व्याकरणम्। श्रूयते च किल मिश्रमहाभागानां स्वपुत्रेऽपि श्रीभैरवमिश्रे नासीत्तथा स्नेहो यथाऽऽसीत्तत्सहाध्यायिनि श्रीकेशवे।

श्रीगुरुचरणकृपया सम्प्राप्तसकलविद्यः श्रीकेशवरामः प्राक्तनसंस्कारपरम्परावशाद् भगवद्भक्तिप्रवणचेताः परमेशदयात आरम्भादेव लब्धभगवद्भक्तसंगः शिथिलितलौकिकव्यासंगो भगवति श्रीरामे परमभक्तिमान् समजायत। (एतस्य हि महामहिमशालिन आदर्शभगवद्भक्तस्य विदुषो वाराणसेयं विद्यार्थिजीवनं गृहीयं गार्हस्थ्य-जीवनञ्चाप्यलौकिकघटनाभिर्घटितं विद्यते। विस्तरभयान्नात्र ता लेखितुम्-उपक्रम्यन्ते)।

अथाऽनिच्छन्नपि षड्विंशतिवर्षानन्तरं श्रीगुर्वाज्ञानुरोधेन वाराणसीतो निजग्रामं समाजगाम। लघुतरेऽपि तस्मिन् ग्रामे जिज्ञासया समागतान् विद्यार्थिनोऽध्यापयितुं प्रारभत। शनैःशनैः प्रवर्धमाना सा विद्यार्थिसंख्या नवतिमस्पृशत्। सर्वोऽपि विद्यार्थिनां निवास भोजनादि-प्रबन्धस्तदाराध्यदेवस्य श्रीभगवतो रामस्य कृपयैव समसिद्ध्यत। अस्मिन् समये पञ्चाम्बुदेशे क्वचिदेवासीत्कश्चित्पण्डितः, सोऽपि सामान्यकर्मकाण्डग्रन्थान् शीघ्रबोधादीनेवाऽध्यापयति स्म, व्याकरणे च केवलं-सारस्वतस्य चन्द्रिकायाश्चैव क्वाचित्कं पठनपाठनमभूत्। पाणिनीय व्याकरणस्य तु क्वचित्कदापि नामैवाऽश्रूयत। श्रीपण्डितकेशवरामशर्मणैवाऽत्र पुनरभिनवप्रक्रियाक्रमेण सञ्जात-प्रचुर-योग्यताकं पाणिनीयं व्याकरणं प्रचारितं ब्राह्मणोचित आचारश्च संचारितः।

श्रीपण्डितकेशवराशर्म्मणोऽस्यां गृहीयपाठशालायां प्राप्तशिक्षा विद्यार्थिनो विश्वविख्याता राजाधिराज-वन्दिचरणा महापुरुषा विपश्चिदपश्चिमाः समपद्यन्त। एष चातीव प्रसिद्ध अभाणकस्तात्कालिक आसीत् "यदत्र पठिता विद्याऽवश्यं सफला भवति" इति, अत एव केचित्तु विद्यासाफल्य-लाभायैव किंचित् कालमत्रावश्यमधीयते स्म। प्राप्तकैवल्यानां महामहिम्नां पूज्यपादानां काशीस्थानां श्री १०८ विशुद्धानन्दसरस्वतीनां श्रद्धेयगुरवः श्री १००८ गौड़स्वामिमहाभागाः (येषां पूर्वाश्रमनाम 'भगवान्दास' इति जन्मभूमिश्च पटियाला-राज्यान्तर्गतं सनौर-नगरम्) यौवनारम्भे श्रीकेशवरामशर्मणां सकाशात् मदूदग्रामेऽध्ययनं कृतवन्तः (एतच्च काश्यां लहरी-प्रेसमुद्रिताद् विशुद्धचरितावलीग्रन्थात् सर्वमवगच्छामः) एतेनैव सम्बन्धेनैकदा पंचाशता पण्डितैः सह काँगड़ाप्रान्तवर्त्तिनीं सुकेत—(मण्डी) राज-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धानीं समागताः स्वामिपादाः श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वतीमहाभागास्ततः पर्यावर्तमाना जेजों-मदूदमार्गेण समाजग्मुः। जेजों नगरे च श्री पं० केशवरामशर्मणां प्रपौत्रं श्रीधूर्जटिशर्माणं, रामनारायणशर्माणं च संन्यासधर्मौचित्या शुभाशीर्वादादिभिः सम्भावयाम्बभूवुः।

तस्मिन् समये वाराणस्यां विख्याताः परमोदारचरिता जम्बूप्रदेशीया विद्वांसः श्री पं० काकारामशर्माणः, मूलत्राणदेशीया वैयाकरणधुरन्धराः श्री पं० विभवरामशर्माणश्चापि प्रथमतः श्री पं० केशवरामशर्मणामन्तेवासित्वमभजन्। एवं पञ्चाम्बुदेशेऽपि पं० केशवरामशर्मणां शिष्या योग्या विद्वांसः समभूवन्। यथा-पटियाला-राज्यान्तर्गत-चमारू-ग्रामवास्तव्याः पं० हरयशरायशर्माणः पटियालाराज्यपण्डिताः, तथा तद्देशीया एव श्रीमन्तो वरागारामशर्माणः पटियालराजपण्डिताः। जम्बूराजधानीराजपण्डिताः श्री पं० गोकुलचन्द्रशर्माणः। होश्यारपुर-नगरनिवासिनः श्री पण्डितव्रजलालशर्माणः (श्री पं० कन्हैयालालशर्मणां तातपादाः), पं० गोविन्दराम-सीतारामप्रभृतयश्च। तथा वृत्तिप्रभाकर विचारसागरादि-भाषावेदान्तग्रन्थलेखकाः श्रीनिश्चलदासमहात्मानोऽपि श्री पं० केशवरामशर्मणामेव सकाशात्प्रथमं पठितवन्तः (इदमपि विशुद्धचरितावलीतोऽवगम्यते)। किम्बहुना श्री पं० केशवरामशर्मणां शिष्यप्रशिष्यादिसम्प्रदायो यदि गण्येत सम्पूर्णमपि भारतं तद्व्याप्तमेवोपलभ्येत। उक्तं च स्वरचित-वृत्तरत्नाकरटीकायां श्री पंडितरामप्रपन्नशास्त्रिभिः—

श्रीजेजों मसदापुरीयविबुधः श्रीकेशवोऽभूदिदम्
यच्छिष्यादिपरम्परावृतमहीचक्रं सुविद्यगृहम्॥

किञ्च तात्कालिका राजानो महाराजाश्चापि श्री पं० केशवरामशर्मणां समुचितं सम्मानमकार्षुः पंचाम्बुकेशरी श्री महाराजो रणजीतसिंहो भूयसीं भूमिं निष्करीकृत्यानिच्छतेऽपि पण्डितवरायास्मै सबहुमानमयच्छत् या चाऽद्यापि तद्वंश्यानां स्थायिसम्पत्तिरूपेणावस्थीयते। सिक्खराज्यनेता सरदारदेवसिंहमिश्ररूपलाल-प्रभृतयोऽस्य पण्डितप्रवरस्याऽऽदर्शमहात्मनः सत्संगलाभं काले काले प्राप्नुवन्।

अथ नवतिवर्ष-परिमित-वयसि नवत्युत्तराष्टादश-शततमे (१८९०) वैक्रमवत्सरे मानव-लोकलीलां समाप्य साकेतलोकमध्याशिश्रयन् श्री पं० केशवरामशर्माणः।

पं० केशवरामशर्मणां पुत्रः श्री पं० रघुनाथशर्मा योग्यो विद्वान् नवयौवन एव लोकमिमं विहाय परलोकातिथिर्बभूव। पौत्रश्च पं० श्रीमकुन्दलालशर्मा धुरन्धरो विद्वान् विश्वविश्रुतो महात्मा परमभागवतो निजजीवनं श्रीभगवद्भक्त्यैव यापितवान्। अन्त्ये चायुषि सर्वथा मौनमापन्नो विद्वत्संन्यासेन शेषं समयं व्यतिगमयन् भगवन्तमेव भेजे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अस्यापि विद्वद्वरस्य जीवनं विविधालौकिकघटनापरिपूर्णं श्रूयते । (श्रीमत्पण्डितमुकुन्दलालतः समारभ्य पण्डितकुलमिदं मदूद्ग्रामं परित्यज्य जेंजोंनगरं निवासभुवं चकार)। श्रीपण्डितमुकुन्दलालपुत्राश्च श्रीरामचन्द्र-धूर्जटिरामनारायणशर्माणोऽपि योग्या विद्वांसः स्वपूर्वजवत् सुरसरस्वती–सेवातत्पराश्चाभूवन्, परम्परागतां तां गृहीयपाठशालां च समचालयन् । अनन्तरं चापि पण्डितकुलेऽस्मिन् योग्या विद्वांस एव समजायन्त, यथा—

पं० परमानन्दशर्मा धर्मशास्त्री कर्मकाण्डप्रकाण्डम्

श्री पं० रामचन्द्रशर्मतनूजन्मायं परमानन्दशर्मा वाराणस्यां पठितविद्यः सुयोग्यो विद्वान् धर्मशास्त्रपारङ्गतः कर्मकाण्डनिष्णातश्चाभूत् । सर्वमप्यायुर्गृहीयपाठशालायां तस्यां विद्यार्थिपाठने एवायापयत् । परम्परागता पाठशालेयमद्यापि कुलेऽस्मिन् एतद्देशीयान् विद्यार्थिनो निश्शुल्कविद्यादानेन सम्भावयन्ती विराजते ।

पं० श्रीरामप्रपन्नशास्त्री काव्य-व्याकरण-दर्शनतीर्थः

श्री पं० धूर्जटिशर्मणो ज्येष्ठतनयोऽयं विद्वान् जम्बुराजकीय-श्रीरघुनाथसंस्कृतमहाविद्यालये महाध्यापकः पञ्चाम्बुप्रान्तीयविद्वत्सु प्रधानगण्यतां प्रायात् । अयं च निरुक्ते प्रपन्नालोकाख्यं भाष्यं, वासुदेवविजये केशवीं नामातिसरलां टीकां, वृत्तरत्नाकरे रत्नसंग्रहाख्यां व्याख्यां विदग्धमुखमण्डने च कुञ्चिकाभिधां विवृतिं विरचय्य प्राकाशयत् येन च संस्कृतसाहित्यस्य भूयानुपकारः समपद्यत । पिङ्गलसूत्रभाष्यं वैयाकरणभूषणाविवृतिश्चैतत्सङ्कलिताऽमुद्रितैव विद्यते साम्प्रतमपि । हा हन्त ! १९९४ वैक्रमपौषे शुक्लतृतीयायामयं सुयोग्यो विद्वान् वियोगकातरान् बन्धून् विहाय वैकुण्ठलोकमारुक्षत् । अद्यत्वे चैतादृशानामाचारसम्पन्नानां योग्यविदुषां प्रायोऽभाव एव । विद्वत्समाजे सञ्जातां त्रुटिमिमां सद्य एव पूरयतु भक्तवत्सलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रः ।

वेदान्तसार्वभौमस्तार्किकचक्रचूडामणिरादर्शमहात्मा भगवद्भक्तः श्री पं० श्रीनीलकण्ठशास्त्री

१९३८ वैक्रमवत्सरे शिवरात्र्यां लब्धजन्मायं श्री पं० रामनारायणशर्मणो ज्येष्ठपुत्रो वाराणसीं चतुर्दशवर्षाण्यध्युष्य स्वमातामहात् श्रीपण्डित-मोहकमचन्द्रशर्मणः सकाशाद् व्याकरणं काव्यानि च, प्रथितमहिम्नां नैयायिकप्रवराणां श्रीमत्पण्डितसीतारामशास्त्रिणां सकाशात् सम्पूर्णन्यायशास्त्रं, तथा महामहोपाध्यायानां श्रीमत्पण्डितनकच्छेदराम—(उमापति) शर्मणां षट्शास्त्रिणां सकाशात् वेदान्तान् योगं साङ्ख्यं चाधीतवान् । स्वभावत एवायं लौकिकप्रवृत्तिरहितो भगवद्भक्त्येकनिष्ठो जयपुरराज्यान्तर्गत–"रामगढ़" (सीकर) स्थाने स्वजीवनं श्रीभगवद्भजन एवायापयत् । तत्रत्यान् कांश्चिद् योग्यान् विदुषो न्यायशास्त्रमपि स्वान्तेवासिनोऽपाठयत् । तेषां च भरणमपि लौकिकं योगक्षेमं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भगवत्प्रेरितः श्रीमान् श्रेष्ठिप्रवरः श्रीकेशवदेवः समपादयत् । महात्मनोऽस्य विदुषः संगेन चासौ श्रेष्ठी वानप्रस्थरूपेण भगवन्तमेवाराधयितुं श्रीहरिद्वारतीर्थं समाश्रितवान् । आदर्श-महात्मायं पण्डितप्रवरः १९९१ वैक्रमवत्सरे चैत्रशुक्लपञ्चम्यां मर्त्यलोकं विहाय गोलोकं धाम प्राविशत् ।

श्री पं० उपेन्द्रनाथशास्त्री वैयाकरणभूषणो दर्शनालङ्कारः

श्रीनीलकण्ठशास्त्रिणां कनिष्ठसहोदरोऽयमुपेन्द्रशास्त्री स्वल्प एव वयसि सुयोग्यो विद्वानभूत् । परमभिनवयौवन एव वृद्धौ मातापितरौ विरहाकुलौ विहाय स्वर्लोकमशिश्रयत् । विदुषोऽस्यैव स्मारकरूपा लघुकौमुद्याः शोभना विवृतिरियमुपेन्द्रविवृतिर्निर्मितत्कनिष्ठसहोदरेण विश्वनाथशास्त्रिणा सम्पादिता विद्यार्थिजनोपकाराय विराजतेतराम् ।

एवं श्री पं० अमरनाथ-परशुराम-विश्वमित्रशर्माणोऽपि कुलस्यैतस्य सुयोग्या भूषणभूता विद्वांसोऽभूवन्, परमकाल एव कालकवलितकलेवराः परलोकमध्यवात्सुरिति बन्धूनां चेखिद्यते चेतः ।

साम्प्रतं चापि कुलेऽस्मिन् परम्परागत-पाण्डित्यसंरक्षकाः सुयोग्या विद्वांसो व्याकरणाचार्य-श्री पं० युगलकिशोरशास्त्रि-विश्वनाथशास्त्रिप्रभाकर-नीलाम्बरशास्त्रिविद्यालङ्काराः, वैद्यपञ्चानन श्री पं० जयगोपालशर्म-श्री पं० मुरलीधरशर्मप्रभृतयश्च विद्यन्ते । एवं शतशो वत्सरेभ्यः कुलेऽस्मिन् संस्कृतवैदुषी लिखितपठितेव वेविद्यते भगवत्कृपातः । परतश्चापि परमेश्वरानुकम्पया सुरसरस्वतीसेवका विद्वांसो भगवद्भक्ता एव भूयासुरित्यस्ति साञ्जलिबन्धं प्रार्थना भगवच्चरणसरोरुहेषु ।

का० शु० प्रतिपत् १९९५ वैक्रम

॥ इति शम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थप्रकरणसूची

सं०	प्रकरणम्	पृष्ठम्
१	संज्ञाप्रकरणम्	१–८
२	पञ्च सन्धयः	६–३४
३	षड् लिङ्गानि	३५–६८
४	अव्ययप्रकरणम्	६८–१०२
५	तिङन्ते दशगणाः	१०३–१६६
६	प्रक्रियाः	१६६–२२१
७	कृत्यप्रक्रिया	२२१–२२५
८	कृदन्ताः	२२५–२४७
९	विभक्त्यर्थाः	२४७–२५१
१०	समासाः	२५२–२७४
११	तद्धिताः	२७४–३२६
१२	स्त्रीप्रत्ययाः	३२७–३३५

परिशिष्टे

१–लघुलिङ्गानुशासनम् .. ३३६–३४२

२–व्याकरणसूत्रलक्षणोदाहरणादि, व्याकरणानुबन्धचतुष्टयम्, सन्धिपञ्चत्वञ्च... ३४२–३४४

३–पाणिनीय व्या. आ. कालविचारः। लेखोपयोगिनियमाश्चिह्नानि च ३४४–३४५

४–बालोपयोगि अशुद्धिप्रदर्शनम् (बालानामनुवादे प्रायो जायमाना अशुद्धयस्तत्संशोधनं च) ३४५–३४६

५–अनुवादोपायोगी उपसर्गयोगेन धातूनामर्थविपरिणामो भाषार्थसहितः। ३४७–३६७

६–लघुकौमुदीस्थसमप्रयोगसंग्रहो भाषार्थसंवलितः। (अव्यय-धातुपाठसंग्रहश्चापि यथास्थानम्) ३६७–४०९

७–परीक्षाशिक्षासूत्राणि भाषानुपादसहितानि। ४१०–४१२

८–पञ्जाब-वाराणसी-विहार व्याकरण प्रश्नपत्राणि। ४१३–४२४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वंश-क्रमः

श्रीपण्डितकेशवरामजीमहाराजः

पं० रघुनाथशर्मा

पं० मुकुन्दलालशर्मा

रामचन्द्रः　　धूर्जटिः　　रामनारायणः

परमानन्दः　　रामप्रपन्नः, युगलकिशोरः, जयगोपालः, अमरनाथः, परशुरामः

नीलाम्बरः, मुरलीधरः

पीताम्बरः, सुरेशः, सोहनः,　　व्रजभूषणः　　देवरत्नः, सनत्कुमारः

नीलकण्ठः, उपेन्द्रनाथः, विश्वमित्रः, विश्वनाथः

हरिमित्रः

भवनमोहनः, राममोहनः, हरिमोहनः, शिवमोहनः जगन्मोहनः,　　राधामोहनः।

का० शु० प्रतिपद् १९९५ वै क्र०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

❀ ॐनमः श्रीगणेशाय ❀

लघुसिद्धान्तकौमुदी

(पाणिनीय-व्याकरण-प्रवेशिका)

उपेन्द्रविवृति-सहिता, भाषानुवाद-सहिता च ।

संज्ञाप्रकरणम्

नत्वा [1]सरस्वतीं देवीं शुद्धां [2]गुण्यां करोम्यहम्[3] ।
पाणिनीयप्रवेशाय[4] [5]लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

(अक्षरसमाम्नायः, शिवसूत्राणि)

[6]अ इ उण् १ । ऋ लृक् २ । ए ओङ् ३ । ऐ औच् ४ । ह य व रट् ५ । लण् ६ । ञ म ङ ण नम् ७ । झ भञ् ८ । घ ढ धष् ९ । ज ब ग ड दश् १० । ख फ छ ठ थ च ट तव् ११ । क पय् १२ । श ष सर् १३ । हल् १४ ।

उपेन्द्रविवृतिः

राधमाधवमानम्य विदधे टिप्पणीमिमाम् ।
उपेन्द्रविवृतिं नाम्ना विश्वनाथप्रभाकरः ॥

१—वाग्देवताम् । २—प्रशस्तगुणोपेताम् । ३—अहम् = वरदराजः । ४—पाणिनि-प्रोक्त-व्याकरणशास्त्रे प्रवेशाय । ५—एतन्नामिकां पुस्तिकाम्, लघ्वीं वैयाकरणसिद्धान्तानां कौमुदीं प्रकाशिकामित्यर्थः ६—अत्र सन्ध्यभावः संहिताऽविवक्षामूलः सौत्रः, स्पष्ट-प्रतिपत्त्यर्थो वा ।

हिन्दी अनुवाद

नत्वेति—मैं (वरदराज) शुद्ध तथा प्रशस्त गुणों से युक्त सरस्वती देवी को नमस्कार करके पाणिनीय व्याकरणशास्त्र में प्रवेश के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी को बनाता हूँ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति [1]माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या[2] इतः। हकारादिष्वकार [3]उच्चारणार्थः। [4]लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

१ हलन्त्यम् १ । ३ । ३ ।

उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। उपदेश [5]आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

२ अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० ।

[6]प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

१–महेश्वरादागतानि 'तत आगतः' इत्यण्। महेश्वर-प्रसादलब्धानीत्यर्थः। (तथा चोक्तम्–नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद् विमर्शे शिवसूत्र-जालम्॥

अहं विमर्शे=विचार्य स्फुटीकरोमि, 'विमर्शे' इति छान्दसः प्रयोगः, नन्दिकेश्वरकारिकेयम्।)

नतु महेश्वरप्रोक्तानि, तथा सति अनित्यत्वावगत्या भाष्योक्ताक्षरसमाम्नायत्वानापत्तेः।

२–अन्तिमा वर्णा णकारादयः। ३ "न पुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति" इति भाष्यात्। ४–'लण्' इति सूत्रेऽकार इत्संज्ञको न तूच्चारणमात्रार्थः, तेन रप्रत्याहारसिद्धिः। ५–आद्यं=प्रथमम् उच्चारणं प्रत्यासत्त्या मुनित्रयस्यैव, तच्च—

"धातु-सूत्र-गणोणादि-वाक्य लिङ्गानुशासनम्।
आगम-प्रत्ययादेशा उपदेशः प्रकीर्त्तितः॥" इत्यभियुक्तोक्तं वेदितव्यम्।

६–प्रसक्तस्य=उच्चार्य्यत्वेन प्राप्तस्येत्यर्थः।

इति माहेश्वराणीत्यादि—ये चौदह सूत्र अण् आदि संज्ञाओं (प्रत्याहारों) की सिद्धि के लिये महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए हैं। इनके अन्त के अक्षर इत्संज्ञक हैं। हकार आदि अक्षरों में अकार उच्चारण मात्र के लिए है। किन्तु लण् सूत्र में अकार इत्संज्ञक है।

१–उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनि आदि आचार्यों के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं। सूत्रों में न देखा गया पद दूसरे सूत्रों से अनुवर्तन कर लेना चाहिए; सब स्थानों में।

२–विद्यमान के अदर्शन की लोप संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३ तस्य लोपः १ । ३ । ९ ।

[1]तस्येतो लोपः स्यात् । [2]णादयोऽणाद्यर्थाः ।

४ आदिरन्त्येन [3]सहेता १ । १ । ७१ ।

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च [4]संज्ञा स्यात् । यथाऽणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा । एवमक् अच् अल् हलित्यादयः ।

५ [5]ऊकालोऽज् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः १ । २ । २७ ।

उश्च ऊश्च उ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतसंज्ञः स्यात् । [6]स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन[7] त्रिधा ।

६ [8]उच्चैरुदात्तः १ । २ । २९ ।

१–तस्य = इतः = इत्संज्ञकस्य । २–अण् अक् अच् इत्यादिप्रत्याहारसिद्ध्यर्थाः ३–सह इता, इति छेदः । ४–बोधकः । ५–ऊकालः अच् ह्रस्वदीर्घप्लुतः, इति पदच्छेदः । कुक्कुट-शब्दे उकारस्यैकमात्रत्व-द्विमात्रत्व-त्रिमात्रत्वप्रसिद्धेर्नोक्ता अकारादयः । उ ऊ उ३ इत्युकारत्रयस्योच्चारणकालसदृश उच्चारणकालो यस्य अचः सोऽच् क्रमाद् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतसंज्ञावान् भवतीति सूत्रार्थः । ६–ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन त्रिविधोऽच् । ७–उदात्ताऽनुदात्तस्वरितभेदैः । ८–ताल्वादि-सभाग-स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तः ।

३– जिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप होता है ।

अ इ उण् इत्यादि सूत्रों में णकारादि अण्-अक्-अच् इत्यादि प्रत्याहार सिद्धि के लिये हैं ।

४—अन्त्य इत् के साथ उच्चार्यमाण आदि वर्ण मध्यगामी वर्णों का तथा अपना बोधक होता है । जैसे—'अण्' यह प्रत्याहार अ इ उ इन वर्णों का बोधक है । ऐसे ही अक्-अच्-अल्-हल् इत्यादि प्रत्याहार जानने चाहिए ।

५—एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान है उच्चारणकाल जिस अच् का वह अच् क्रम से ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत संज्ञक होता है । ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत भेद से तीन प्रकार का हुआ वह अच् उदात्तादि भेद से फिर तीन प्रकार का होता है ।

६—तालु आदि सभाग स्थानों के ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न अच् उदात्त संज्ञक होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७ नीचैरनुदात्तः[1] १ । २ । ३० ।

८ समाहारः[2] स्वरितः १ । २ । ३१ ।

स [3]नवविधोऽपि [4]प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

९ [5]मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १ । १ । ८ ।

मुखसहित-नासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् ।
[6]तदित्थम्-अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ।

१—अधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तः । २—उदात्तत्वाऽनुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यत्र सोऽच् (मध्यभागे उच्चार्यमाणः) स्वरितः । ३—त्रयाणां त्रिविधत्वे नव विधाः = भेदाः । ४—अनुनासिकः, अननुनासिकश्चेति भेदाभ्यां द्विभेद इत्यर्थः । ५—मुखेन सहिता नासिकेति विग्रहः । ६—तदित्थम् = ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति त्रिविधानाम् उदात्तानुदात्त-स्वरितभेदैस्त्रधाकृतानां पुनरनुनासिकाननुनासिकभेदाभ्यां द्विधाकरणेन अष्टादश भेदा भवन्ति ।

सर्वं चक्रे स्पष्टमिदम्—

अ इ उ ऋ लृ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
ह्रस्वभेदाः	दीर्घभेदाः	प्लुतभेदाः
१ ह्र. उदात्तानुनासिकः	७ दी. उदात्तानुनासिकः	१३ प्लु उदात्तानुनासिकः
२ ह्र उदात्ताननुनासिकः	८ दी. उदात्ताननुनासिकः	१४ प्लु. उदात्ताननुनासिकः
३ ह्र. अनुदात्तानुनासिकः	९ दी. अनुदात्तानुनासिकः	१५ प्लु अनुदात्तानुनासिकः
४ ह्र. अनुदात्ताननुनासिकः	१० दी. अनुदात्ताननुनासिकः	१६ प्लु अनुदात्ताननुनासिकः
५ ह्र स्वरित नुनासिकः	११ दी. स्वरितानुनासिकः	१७ प्लु. स्वरितानुनासिकः
६ ह्र. स्वरिताननुनासिकः	१२ दी. स्वरिताननुनासिकः	१८ प्लु. स्वरिताननुनासिकः

७—तालु आदि सभाग स्थानों के अधोभाग में उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त संज्ञक होता है ।

८—मध्य भाग में उच्चार्यमाण अच् स्वरित संज्ञक होता है । वह नौ प्रकार का भी अच् अनुनासिक और अननुनासिक भेद से दो-दो प्रकार का होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९—मुख सहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है । सो इस

१० [1]तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १ । १ । ६ ।

तात्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् । (ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) । [2]अ कु ह विसर्जनीयानां कण्ठः । [3]इ चु य शानां तालु । [4]ऋ टु र षाणां मूर्धा । [5]लृ तु ल सानां दन्ताः । [6]उ पूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञ म ङ ण नानां नासिका[7] च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य ।

यत्नो द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च । [8]आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृ-

१—आस्ये - मुखे भवम् आस्यं = स्थानम्, प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः = आभ्यन्तरप्रयत्न इत्यर्थः । (सम्बन्धिशब्दमहिम्ना) स्थानप्रयत्नौ ययोः परस्परं तुल्यौ तौ मिथः सवर्णौ इत्यय सूत्रार्थः ।

२—अकार कवर्ग-हकार-विसर्गाणां कण्ठः स्थानम् । ३—इकार-चवर्ग-यकार-शकाराणां तालु स्थानम् । ४—ऋकार-टवर्ग-रेफ-षकाराणां मूर्धा स्थानम् । ५—लृकार-तवर्ग-लकार-सकाराणां दन्ताः स्थानम् । ६—उकार-पवर्गोपध्मानीयानाम् ओष्ठौ स्थानम् । ७—चकारादेषां यथायथ कण्ठादिकमपि स्थानं बोध्यम् । इति स्थानानि । ८—आद्यः = आभ्यन्तरः ।

प्रकार अ इ उ ऋ इन वर्णों में प्रत्येक के अठारह-अठारह भेद होते हैं । लृ वर्ण के बारह भेद होते हैं; क्योंकि वह दीर्घ नहीं होता । एचों के भी बारह-बारह ही भेद होते हैं; क्योंकि वे ह्रस्व नहीं होते ।

१०—तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के तुल्य हों उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है (ऋ और लृ वर्ण की परस्पर सवर्ण संज्ञा कहनी चाहिये) । अकार, कवर्ग, हकार और विसर्जनीय इनका कण्ठ स्थान है । इकार, चवर्ग, यकार और शकार इनका तालु स्थान है । ऋकार, टवर्ग, रेफ तथा षकार इनका मूर्धा स्थान है । लृकार, तवर्ग, लकार, तथा सकार इनका दन्त स्थान है । उकार, पवर्ग उपध्मानीय इनका ओष्ठ स्थान है । ञकार-मकार-ङकार-णकार-नकार इनका नासिका स्थान भी है । (चकार से तात्वादि भी है) । ए और ऐ का कण्ठतालु स्थान है । ओ और औ का कण्ठोष्ठ स्थान है । वकार का दन्तोष्ठ स्थान है । जिह्वामूलीय का जिह्वामूल स्थान है । अनुस्वार का नासिका स्थान है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयत्न दो प्रकार का है; आभ्यन्तर और बाह्य । आभ्यतर प्रयत्न पाँच प्रकार का

ष्टेषद्विवृत-विवृत-संवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं [१]स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्[२]। [३]ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं [४]स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु [५]विवृतमेव। बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा-विवारः संवारः श्वासो नादोऽघोषो घोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां [६]प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः[७]। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ[८] [९]शलश्च महाप्राणाः।

१—कादिमान्तानाम्। २—यरलवानाम्। ३—शषसहानाम्। ४—अचाम्='अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ' इत्येतेषाम्। ५—संवृतस्वविधायकस्य 'अ अः' इति सूत्रस्य सम्पूर्णाम अष्टाध्यायीं प्रत्यसिद्धत्वात्।

६—क च ट त पाः, इति प्रथमा। ग ज ड द बाः, इति तृतीयाः। ङ ञ ण न माः, इति पञ्चमाः। ७—अत्र चकारेण स्वराणां संग्रहः। ८—ख छ ठ थ फाः, इति द्वितीयाः घ झ ढ ध भा, इति चतुर्थाः। ९—अत्र तु चकारः समुच्चयार्थकः।

आभ्यन्तरप्रयत्नचित्रम्—

स्पृष्टम्					ई स्पृ	विवृतम्		ई. वि.	संवृतम्
क.	च.	ट	त.	प.	य.	अ	ए.	श	ह्रस्वः 'अ' प्रयोगे
ख.	छ.	ठ.	थ	फ.	र.	इ.	ओ.	स.	
ग.	ज.	ड.	द	ब	ल.	उ.	ऐ.	ष.	
घ.	झ.	ढ.	ध.	भ.	व.	ऋ.	औ.	ह	
ङ.	ञ.	ण.	न.	म.		ऌ.			

है :—स्पृष्ट-ईषत्स्पृष्ट-ईषद् विवृत-विवृत और संवृत भेद से। उनमें स्पर्शों का स्पृष्ट प्रयत्न है। अन्तःस्थों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। उष्म वर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न है। स्वरों का विवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अवर्ण का प्रयोग में संवृत प्रयत्न होता है। किन्तु प्रक्रिया दशा में विवृत ही रहता है।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है, जैसे विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। खर प्रत्याहार के वर्णों के विवार-श्वास-अघोष प्रयत्न होते हैं। हश् प्रत्याहार के वर्णों के संवार नाद-घोष प्रयत्न होते हैं। वर्गों के प्रथम-तृतीय-पञ्चम वर्ण तथा यण् इनका अल्पप्राण प्रयत्न होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल उष्माणः। अचः स्वराः। अ⌣कः, अ⌣खः इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। अ⌣पः, अ⌣फः, इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं, अः, इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

११ अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः[1] १। १। ६९।

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य

अत्रायं बाह्यप्रयत्नविवेकः—

विवारः-श्वासः, अघोषः	संवारः, नादः, घोषः	अल्पप्राणः	महाप्राणः	उदात्तः अनुदात्तः, स्वरितः
क. ख. श.	ग. घ ङ य.	क. ग. ङ. य. अ लृ	ख. घ. श	अ. ए.
च. छ. ष.	ज. झ ञ. व.	च. ज ञ. व इ. ए	छ झ ष	इ. ओ.
ट. ठ. स.	ड. ढ ण. र.	ट. ड. ण. र. उ. ओ.	ठ. ढ. स.	उ. ऐ.
त. थ.	द. ध. न. ल.	त. द. न. ल. ऋ. ऐ.	थ. ध. ह.	ऋ. औ.
प. फ.	ब. भ. म ह.	प. ब. म. , औ.	फ. भ	ऌ.

सर्वेषां वर्णानां प्रत्येकं चत्वारो बाह्यप्रयत्नाः।

१—प्रतीयते=विधीयत इति प्रत्ययः स न भवतीत्यप्रत्ययस्तदाह वृत्तौ-अभिधीयमान इति आदेशप्रत्ययागमभिन्नोऽण् इत्यर्थः।

वर्गों के द्वितीय चतुर्थ वर्ण और शल् प्रत्याहार इनका महाप्राण प्रयत्न होता है।

'क' से 'म' तक स्पर्श वर्ण कहलाते हैं। यणों को अन्तःस्थ वर्ग कहते हैं। शल् प्रत्याहार के वर्णों को ऊष्म वर्ण कहते हैं। अचों की स्वर संज्ञा है। ⌣क⌣ख से पूर्व अर्ध विसर्ग-सदृश जिह्वामूलीय कहलाता है। ⌣प⌣फ से पूर्व अर्ध विसर्ग सदृश उपध्मानीय कहलाता है। अनुस्वार और विसर्ग अच् से परे होते हैं; जैसे—अं अः।

११—विधान किये जानेवाले को प्रत्यय कहते हैं। अविधीयमान अण् और उदित सवर्ण का बोधक होता है। केवल इसी सूत्र में अण् पर (लण् के) णकार से लिया जाता है। कु-चु-टु-तु-पु से उदित कहलाते हैं। इस प्रकार 'अ' यह अठारह का बोधक होता है। इसी प्रकार इकार-उकार भी अठारह-अठारह के बोधक हैं। ऋकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संज्ञा[1] स्यात्, [2]अत्रैवाण् परेण णकारेण। [3]कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेवम्–'अ' इत्यष्टादशानां [4]संज्ञा। तथेकारोकारौ [5]ऋकारस्त्रिंशतः। एवम् ऌकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन य व ला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

१२ परः [6]सन्निकर्षः संहिता १। ४। १०९।

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

१३ [7]हलोऽनन्तराः संयोगः १। १। ७।

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

१४ सुप्तिङन्तं पदम् १। १। १४।

[8]सुबन्तं [9]तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

* इति संज्ञाप्रकरणम् *

१—बोधकः। २—अस्मिन्नेव सूत्रे, अन्यत्र तु सर्वत्रैव 'अण्' पूर्वेणैव। इण् ग्रहणं तु सर्वत्र परेणैव भाष्ये तथा व्याख्यानात्। यथा—

"परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाऽण्ग्रहा मताः।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु॥"

३—कु = कवर्गः। चु = चवर्गः। टु = टवर्गः। तु = तवर्गः। पु = पवर्गः इति। ४—बोधकः। ५—ऋऌवर्णयोः सावर्ण्यात्; द्वादश ऌकारस्य; अष्टादश ऋकारस्येति मिलित्वा त्रिंशत्। त्रिंशतः = त्रिंशद्भेदानां संज्ञाबोधकः–इत्यर्थः। ६—सन्निकर्षः = सन्निधिः = समीपता। ७–हलौ च हलश्चेति हल इति विग्रहः। अनन्तराः = अव्यवहिताः = व्यवधानरहिताः, यथा—हर्य्यनुभवः। ८–सुबन्तं यथा 'रामः'। ९–तिङन्तं यथा 'भवति'।

इति संज्ञाप्रकरणम्।

तीस का बोधक है। एवं ऌकार भी तीस का बोधक है। एच् बारह-बारह के बोधक होते हैं। अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य व ल दो-दो प्रकार के होते हैं। इसी से अननुनासिक य–व–ल–दो-दो के बोधक रहते हैं।

१२—वर्णों के अतिशय सामीप्य को संहिता कहते हैं।

१३—अचों के व्यवधान से रहित हल् संयोग संज्ञक होते हैं।

१४—सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

इति संज्ञाप्रकरणम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ अच्सन्धिप्रकरणम्

१५ [1]इको यणचि ६ । १ । ७७ ।

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी+उपास्य इति स्थिते ।

१६ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १ । १ । । ६६ ।

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ।

१७ [2]स्थानेऽन्तरतमः[3] १ । १ । ५० ।

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य्+उपास्य इति जाते ।

१८ अनचि च ८ । ४ । ४७ ।

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् ।

१९ झलां जश् झशि ८ । ४ । ५३ ।

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः[5] ।

२० संयोगान्तस्य लोपः ८ । २ । २३ ।

संयोगान्तं [6]यत्पदं तस्य लोपः स्यात् ।

२१ अलोऽन्त्यस्य १ । १ । ५२ ।

१—इक इति स्थानषष्ठी संहितायामित्यनुवर्तते । २—स्थाने = उच्चारणप्रसङ्गे । ३—अन्तरतमः = अतिसदृशः । 'यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः, इति परिभाषा । ४-झलां स्थाने जशः स्युः झशि परतः संहितायाम्—इत्यर्थः । ५-स्थानकृतान्तर्यात् । ६—'पदस्य' इत्यधिकारः ।

अथ अच्सन्धिः

१५—इक् के स्थान में यण् होता है अच् परे होने पर संहिता के विषय में ।

१६—सप्तमीनिर्देश (सूत्रों में सप्तम्यन्त पद) से विधीयमान कार्य, वर्णान्तर के व्यवधान से रहित पूर्व को होता है ।

१७—प्रसङ्ग होने पर सदृशतम आदेश होता है ।

१८—अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व होता है; अच् परे रहते नहीं होता ।

१९—झलों के स्थान में जश् होते हैं; झश् परे रहते ।

२०—संयोगान्त पद का लोप होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२१—षष्ठी निर्दिष्ट (सूत्रों में षष्ठ्यन्त पद के द्वारा बताए गए) अन्त्य अल् का

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते ([1]यणः प्रतिषेधो वाच्यः) [2]सुद्ध्युपास्यः, सुध्युपास्यः। [3]मद्ध्वरिः, मध्वरिः। [4]धात्त्रंशः, धात्रंशः। [5]लाकृतिः।

२२ एचोऽयवायावः ६ । १ । ७८ ।

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते[6] स्युरचि ।

२३ यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १ । ३ । १० ।

[7]समसंबन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। [8]हरये। [9]विष्णवे। [10]नायकः [11]पावकः।

२४ वान्तो [12]यि प्रत्यये ६ । १ । ७९ ।

---

१ - संयोगान्तस्य यणः (यरलवानाम्) न लोप इत्यर्थः। २—सुद्ध्युपास्यः — सुधी + उपास्यः इत्यवस्थायाम् 'इको यणचि' इति सूत्रेण ईकारस्य यणि यकारे कृते 'सुध्य् उपास्यः' इति जाते 'अनचि च' इति धकारस्य द्वित्वे 'झलां जशझशि' इति, पूर्वधस्य दत्वे, 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति संयोगान्तलोपस्य निषेधे सिद्धं रूपं 'सुद्ध्युपास्यः' इति द्वित्वाभावे सुध्युपास्यः। ३—मधु + अरिः, इतिच्छेदः। ४—धातृ + अंशः। ५-लृ + आकृतिः, एवं गौरी + आगच्छति = गौर्यागच्छति। कुरु + इदम् = कुर्विदम्। मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा। लृ + आकारः = लाकारः। इत्यादीनि ज्ञेयानि। ६—आदेशाः, शत्रुवदादेशः, आगमश्च मित्रवत्। ७—उद्देश्य प्रतिनिर्देश्ययोः समसङ्ख्यत्वे क्रमात् कार्यं स्यादित्यर्थः। ८—हरये—'हरे + ए' इति स्थितौ 'एचोऽयवायावः' इत्यनेन एकारस्य अयादेशे हरये इति सिद्धयति (हरिशब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमिदम्)। ९—विष्णो + ए। १०—नै + अक (:)। ११—पौ + अक (:)। एवं ने + अति = नयति. भो + अति = भवति। वटो + ऋक्षः - वटवृक्षः। ग्लै + अति = ग्लायति। नौ + इक (:) = नाविकः। भौ + उक (:) = भावुकः। इत्यादयः। १२—यि यकारादौ। 'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' इति न्यायात्।

आदेश होता है (वा० संयोगान्त यण् के लोप का प्रतिषेध कहना चाहिये।)

२२—एचों को क्रम से अय्, अव्, आय्, आव्, आदेश होते हैं अच् परे रहते।

२३—सम सम्बंधी विधि (कार्य) यथासङ्ख्यता से (क्रम से) होती है।

२४—यकार है आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय परे हो तो ओ और औ को अव्, आव् आदेश होते हैं। (वा० गो शब्द को वान्त अव्) आदेश होता है यूति शब्द परे रहते यदि मार्ग का परिमाण बताना हो)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम्[1] । नाव्यम्[2] ([3]अध्वपरिमाणे च)[4] गव्यूतिः ।

२५ अदेङ् गुणः १ । १ । २ ।

अत् एङ् च[5] गुणसंज्ञः स्यात् ।

२६ तपरस्तत्कालस्य १ । १ । ७० ।

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाण-समकालस्यैव[6] संज्ञा स्यात् ।

२७ आद्गुणः ६ । १ । ८७ ।

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः[7]। [8]गङ्गोदकम् ।

२८ उपदेशेऽजनुनासिक इत् १ । ३ । २ ।

१–'गापयसोर्यत्' इति यत् प्रत्ययः, गो + य (म्) इति छेदः । २–'नौवयोधर्म·····' इति 'यत्', नौ + य (म) । ३–गोयू'तौ वान्त इत्यनुवर्तते । अध्वपरिमाणे (मार्गपरिमाणे) वाच्ये गोशब्दस्य 'यूति'–शब्दे परे सति 'अव्' आदेशः स्यादित्यर्थः । -गव्यूतिः—'गो + यूतिः' इति स्थितौ 'अध्वपरिमाणे च' इत्यनेन ओकारस्य अवादेशे 'गव्यूतिः' इतिरूपम्. क्रोशयुगस्य (अध्वपरिमाणविशेषस्य) संज्ञेयम् । ५–अ (अर्–अल्) ए ओ, एते गुणसंज्ञकाः । ६–समकालस्य = समानकालिकस्यैव, यथा ह्रस्व उच्चार्यमाणो ह्रस्वस्यैव बोधको नतु दीर्घनामित्यर्थः । ७–उप + इन्द्रः । ८–गङ्गा + उदकम् । एवं गज + इन्द्रः = गजेन्द्रः, रमा + ईशः = रमेशः, सूर्य + उदयः = सूर्योदय , परीक्षा + उत्सुकः = परीक्षोत्सुकः, इत्यादयः ।

२५–अत् और एङ् की गुण संज्ञा होती है ।

२६–तकार है परे जिससे अथवा तकार से परे जो अच्, वह उच्चार्यमाण समानकाल का ही बोधक होता है अर्थात् ह्रस्व के साथ 'त्' हो तो ह्रस्व का बोध करायेगा और दीर्घ एवं प्लुत के साथ होगा तो दीर्घ एवं प्लुत का ।

२७–अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में गुणरूप एक आदेश होता है ।

२८–उपदेश में अनुनासिक अच् की इत्संज्ञा होती है । पाणिनि आदि आचार्यों के कथित वर्ण प्रतिज्ञा से अनुनासिक जानने चाहिएँ । लण् सूत्र में स्थित अवर्ण के सहित उच्चार्यमाण 'र' और 'ल' दोनों का बोधक होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। [1]प्रतिज्ञाऽनुनासिक्याः पाणिनीयाः लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो [2]रलयोः संज्ञा।

२९ [3]उरण् रपरः १।१।५१।

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः [4]। तवल्कारः [5]।

३० लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९।

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

३१ पूर्वत्रासिद्धम्[6] ८।२।१।

१—पाणिनिप्रभृतिप्रोक्ता वर्णाः प्रतिज्ञामात्रबोध्यानुनासिक्यवन्त इत्यर्थः। 'अय-मेवम्' इति कथनं प्रतिज्ञा, सा च तत्तद्व्यवहारतोऽनुमेया, (श० शेखरानुसारमेतत्) पुराऽनुनासिकचिह्नमासीत् साम्प्रतं लेखकपाठकप्रमादात्स्खलितम्। २—नतु रट्लाम्, 'प्रत्याहारेषु इतां न ग्रहणम्' इति नियमात्। ३—उः-अण् रपरः, इतिच्छेदः। 'उः' इति ऋशब्दस्य षष्ठ्येकवचनम्, इयं स्थानषष्ठी। रपरः = रप्रत्याहारपर इत्यर्थः 'रट्ल (ण्)' इत्यत्र रेफात् लकारान्तर्गताऽकारपर्यन्तं 'र' प्रत्याहारः, तेन ऋस्थाने 'अर्' ऌस्थाने 'अल्'। ४—कृष्णर्द्धिः—'कृष्ण + ऋद्धिः' इति स्थितौ पूर्वपरयोः अकारऋकारयोः स्थाने 'आद्गुणः' इतिसूत्रेण गुणविधौ 'उरण् रपरः' इति रपरत्वे अर् गुणो भवति, सिद्धं रूपं कृष्णर्द्धिरिति। ५—तव + ऌकारः। एवं वसन्त + ऋतुः = वसन्तर्तुः राजा + ऋषिः = राजर्षिः, मम + ऌकारः = ममल्कारः, इत्यादयः। ६—अधिकारसूत्रमिदम्। '८।२।१।' इतः परं सर्वत्रैवाधिक्रियतेऽत एव त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धमित्यपि सङ्गच्छते।

२९—तीस प्रकार के 'ऋ' के स्थान में होनेवाला अण् रपर होकर प्रवृत्त होता है।

३०—अवर्णपूर्व पदान्त यकार वकार का विकल्प से लोप होता है अश् परे रहते।

३१—सपाद सप्ताध्यायीस्थ (सवा सात अध्यायों) के सूत्रों की दृष्टि में त्रिपादीस्थ (आठवें अध्याय के तीन पादों के) सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादियों में भी पूर्व-सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सपाद-सप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह[1]। हरयिह। विष्ण इह। विष्णविह।

३२ वृद्धिरादैच् १।१।१।

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः[2] स्यात्।

३३ वृद्धिरेचि ६।१।८८।

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। [3]गुणापवादः। [4]कृष्णैकत्वम्। [5]गङ्गौघः। [6]देवैश्वर्यम्। [7]कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

३४ [8]एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९।

१—हरे + इह। विष्णो + इह। अत्र "२२ एचोऽयवायावः" इति सूत्रेण "अय्, अव्" = आदेशयोःसतोः "३० लोपः शाकल्यस्य" इति पाक्षिके यकारलोपे हर इह, विष्ण इह, इति स्थितिः। नचात्र "२७ आद्गुणः" इति गुणः स्यादिति वाच्यम्, गुणदृष्टौ लोपस्यैत्रासिद्धत्वात्। एवं शौरे + आगच्छ = शौर आगच्छ, शौरयागच्छ। प्रभो + इदानीम् = प्रभइदानोम्, प्रभविदानीम्। श्रियै + उत्कण्ठतः = श्रिया उत्कण्ठतः श्रियायुत्कण्ठतः। भानौ + उत्सुकः = भाना उत्सुकः, भानावुत्सुकः। गुरौ + आयाते = गुरा आयाते, गुरावायाते, इत्यादिकम्। २—आ ("आर्"—"आल्") ऐ औ वृद्धिः। ३—निरवकाशो विधिरपवादः। ४—कृष्णैकत्वम्—'कृष्ण + एकत्वम्' इति स्थितौ निरवकाशत्वेन अपवादभूता वृद्धिः प्रवर्तते। पूर्वपरयोरकारैकारयोः स्थाने 'वृद्धिरेचि' इति सूत्रेण 'ऐ' वृद्धिः, सिद्ध्यन्ति रूपं कृष्णैकत्वम्। गङ्गा + ओघः। ६—देव + ऐश्वर्यम्। ७—कृष्ण + औत्कण्ठ्यम्, एवं पञ्च + एते = पञ्चैते, तण्डुल + ओदनम् = तण्डुलौदनम्। माधव + एधनम् = माधवैधनम्, राम + औत्सुक्यम् = रामौत्सुक्यम्, इत्याद्युदाहरणीयम्। ८—एतिः = इण् (गतौ)। एधतिः = एध (वृद्धौ)। "इक्शितपौ धातुनिर्देशे" इत्यागमानुसारं शितपा निर्देशः।

३२—आत् और ऐच् को वृद्धि संज्ञा होती है।

३३—अवर्ण से एच् परे रहते (पूर्व पर के स्थान में वृद्धि-रूप एक आदेश होता है। यह सूत्र गुण का अपवाद है।

३४ अवर्ण से [illegible] एति एधति और ऊठ् परे रहते पूर्व पर के स्थान में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। [1]पररूपगुणापवादः। [2]उपैति। [3]उपैधते। [4]प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्—[5]उपेतः। [6]मा भवान् प्रेदिधत्। (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) [7]अक्षौहिणी सेना। ([8]प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु)[9]प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः। (ऋते च तृतीयासमासे) सुखेन ऋतः [10]सुखार्तः। तृतीयेति किम्—[11]परमर्त्तः।

(प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे) [12]प्रार्णम् वत्सतरार्णम् इत्यादि।

१—"येन नाप्राप्तौ यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवती"ति न्यायेन "३८ एङि पररूपम्" इति पररूपस्य 'आद्गुणः' इति गुणस्य चापवादोऽयमित्यर्थः। २—उपैति—'उप+एति' इतिस्थितौ 'एङि पररूपमिति' पररूपस्य 'आद्गुणः' इति गुणस्य चापवादभूता वृद्धिः 'एत्येधत्यूठ्सु' इतिसूत्रेण प्रवर्तते सिध्यति रूपम् "उपैति" इति। एवम्—अप+एति=अपैति। ३—उप+एधते। एवम् अव+एधसे=अवैधसे इत्यादि। ४—प्रष्ठ+ऊहः। एवं विश्व+ऊहः=विश्वौहः। ५—उप+इतः, अत्र एतिर्न एजादिः, अतो न वृद्धिः किन्तु गुणः। ६—"मा भवान् प्र+इदिधत्" अत्रापि एधतिर्नास्ति एजादिः, इति न वृद्धिः, किन्तु गुणः। ७—अक्षाणामूहिनीति विग्रहः, सेनाविशेषस्य संज्ञेयम्। "पूर्वपदात्संज्ञाया" मिति णत्वम्। अक्ष+ऊहिनी, इति च्छेदः। ८—प्रशब्दाद् ऊहः, ऊढः, ऊढिः, एषः, एष्यः, एतेषु परतो वृद्धिरित्यर्थः। ९ प्र+ऊहः। प्र+ऊढः। प्र+ऊढिः। प्र+एषः। प्र+एष्यः। १०—सुख+ऋतः। ११—परम+ऋतः—अत्र कर्मधारयः "परमश्चासौ,—ऋतः इति। १२—प्रार्णम्—'प्र+ऋणम्' इति स्थितौ गुणं बाधित्वा 'प्रवत्सतरकम्बले'ति वृद्धौ र परत्वे पूर्वपरयो रकारऋकारयोः 'आर्' आदेशे 'प्रार्णम्' इति रूपं सिध्यति। वत्सतर+ऋणम्। कम्बल+ऋणम्=कम्बलार्णम्। वसन+ऋणम्=वसनार्णम्। ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम्। दश+ऋणम्=दशार्णम् सर्वत्र वृद्धिः।

वृद्धिरूप एक आदेश होता है। यह सूत्र पररूप और गुण दोनों का अपवाद है (वा॰ अक्षशब्द से ऊहिनीशब्द परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है)। (वा॰ प्र-शब्द से ऊह ऊढ ऊढि एष एष्य इन शब्दों के परे होने पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है)। (वा॰) अवर्ण से ऋत शब्द परे रहते वृद्धि होती है तृतीया समास में)। (वा॰ प्र-वत्सतर-कम्बल-वसन-ऋण-दश इन शब्दों से ऋण शब्द परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३५ उपसर्गाः क्रियायोगे १ । ४ । ५९ ।

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र परा अप सम् अनु अव् निस् निर्[1] दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः ।

३६ [2]भूवादयो धातवः १ । ३ । १ ।

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ।

३७ उपसर्गादृति धातौ ६ । १ । ९१ ।

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । [3]प्रार्च्छति ।

३८ एङि पररूपम्[4] ६ । १ । ९४ ।

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । [5]प्रेजते । उपोषति ।

३९ अचोऽन्त्यादि टि १ । १ । ६४ ।

१–निस् निर् दुस् दुर्, अत्र रेफफलं तु निलयते निरयते दुलयते दुरयते इत्यादि लत्वमेव । निस् दुसोस्तु रुत्वम् "उपसर्गस्यायतौ" इति लत्वविधौ असिद्धमेव । २–भूश्च वाश्चेति भूवौ, आदिश्च आदिश्चेति आदी, भूवौ आदी येषामिति विग्रहः । भूप्रभृतयो वासदृशा इत्यर्थः, सादृश्यं चेह क्रियावाचित्वेन, तदेवाह वृत्तौ क्रियावाचिन··· इत्यादि । ३–प्रार्च्छति—'प्र + ऋच्छति' इति स्थितौ गुणं बाधित्वा 'उपसर्गादृति' इति सूत्रेण वृद्धौ अकारऋकारयोः 'आर्' आदेशे 'प्रार्च्छति' रूपं सिध्यति । एवं प्र + ऋच्छत् = प्रार्च्छत्, उप + ऋच्छत् = उपार्च्छत, इत्यादि । ४–वृद्ध्यपवादोऽयम् । ५–प्रेजते—'प्र + एजते' इति स्थितौ 'एङि पररूपम्' इति सूत्रेण पूर्वपरयोः स्थाने एकादेशः 'एकारः' सिद्ध्यति रूपं 'प्रेजते' इति । उप + ओषति । एवम्–उप + एषयति = उपेषयति । प्र + एषयति = प्रेषयति । अव + ओषति + अवोषति ।

३५–क्रिया के योग में प्रादियों की उपसर्ग संज्ञा होती है ।

३६–क्रियावाची भू आदियों की धातु संज्ञा होती है ।

३७–अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एक आदेश होता है ।

३८ अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एक आदेश होता है ।

३९–अचों के मध्य में जो अन्त्य अच्, वह है आदि में जिस के, उस समुदाय की टि संज्ञा होती है । (वा० शकन्ध्वादि गण पठित शब्दों में पररूप होता है) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) तच्च [1]टेः। [2]शकन्धुः। कर्कन्धुः। [3]मनीषा। आकृतिगणोऽयम्—[4]मार्तण्डः।

४० ओमाङोश्च ६।१।९५।

ओमि आङि [5]चाऽऽत् परे पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायों[6] नमः। शिव+एहि।

४१ अन्तादिवच्च ६।१।८५।

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि[7]।

४२ अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१।

१–टिसंज्ञकस्य पररूपमित्यर्थः २–शकन्धुः—'शक+अन्धुः' इति स्थितौ 'अकः सवर्णे दीर्घः' इत्यनेन प्राप्तं दीर्घं बाधित्वा 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इति वार्त्तिकेन पररूपैकादेशः अकारः सिद्ध्यति रूप 'शकन्धु' रिति। कर्क+अन्धुः। मनीषा—'मनस्+ईषा' इति स्थितौ शकन्ध्वादित्वात् टेः पररूपे 'मनीषा' इति रूपम्। अत्र अस् इत्यस्य 'अचोऽन्त्यादि टिः' इत्यनेन टिसंज्ञा। तेन सीमन्तः (सीमन्+अन्तः) हलीषा। (हल+ईषा) लाङ्गलीषा (लाङ्गल+ईषा) पतञ्जलिः (पतन्+अञ्जलिः)। सारङ्गः (सार+अङ्गः)। कुलटा (कुल+अटा)। ४–मार्तण्डः—'मृत+अण्डः' इति छेदे शकन्ध्वादित्वात् पररूपे मृतण्डः। 'तत आगत' इति अण् प्रत्यये आदिवृद्धौ सिद्ध्यति रूपं मार्तण्ड इति। ५–आत् अवर्णात् ओमि आङि च परे पररूपमेकादेशः, इत्यर्थः। ६–शिवाय+ओं नमः ७–शिवेहि शिव+आ+इहि, इति स्थितौ धातूपसर्गं कार्यत्वेनान्तरङ्गत्वाद् "२७ आद्‌गुणः" इति गुणे 'एहि'। बहिरङ्गत्वेन नात्र सवर्णदीर्घः। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे', धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्' इति परिभाषाद्वयमत्रापेक्षते। शिवेहिवत्त कृष्णेहि, अवेहि-इत्यादयः।

४०–अवर्ण से ओम् और आङ् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एक आदेश होता है।

पूर्व पर के स्थान में हुआ एक आदेश पूर्व के अन्तवत् तथा पर के आदिवत् होता है।

४२–अक् से सवर्ण अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में दीर्घरूप एकादेश होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्। [1]दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतॄकारः।

४३ एङः [2]पदान्तादति ६ । १ । १०९ ।

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव[3]। [4]विष्णोऽव।

४४ सर्वत्र विभाषा गोः ६ । १ । १२२ ।

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा [5]प्रकृतिभावः पदान्ते । गोअग्रम् [6]गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम्—[7]चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम्—[8]गोः॥

४५ अनेकाल् शित् सर्वस्य १ । १ । ५५ ।

इति प्राप्ते ।

४६ ङिच्च १ । १ । ५३ ।

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

४७ अवङ् स्फोटायनस्य ६ । १ । १२३ ।

१–दैत्यारिः—दैत्य + अरिः इति स्थितौ 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति सूत्रेण पूर्वपरयोरकारयोः एकादेशे दीर्घे सति सिध्यति रूपं 'दैत्यारिः' इति। विष्णु + उदयः। श्री + ईशः। होतृ + ऋकारः। एवं खर + अरिः = खरारिः, भानु + उदयः = भानूदयः, लक्ष्मी + ईशः = लक्ष्मीशः, इत्यादि। २–अयवादेशबाधकं सूत्रमिदम्। ३–हरे + अव। ४–विष्णो + अव। एवं—स्थले + अत्र = स्थलेऽत्र, कृष्णो + अहम् = कृष्णोऽहम् ५–प्रकृतिभावः = प्रकृत्या यथावस्थितस्वरूपेण भवनं सः = तादवस्थ्यमित्यर्थः, संहिताकार्याभाव इति यावत्। ६–गो + अग्रम्। "४३ एङः पदान्ता" इति पूर्वरूपे 'गोऽग्रम्'। ७–चित्रगु + अग्रम्। ८–गो + अस् (ङस्)

४३–पदान्त एङ् से अत् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

४४–लोक और वेद में एङन्त गोशब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है पदान्त में।

४५–अनेकाल् और शित् आदेश सम्पूर्ण के स्थान में होता है।

४६–ङित अनेकाल् भी अन्त्य को ही होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४७–पदान्त में एङन्त गोशब्द को अवङ् विकल्प से होता है अच् परे रहते।

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि। [1]गवाग्रम्। गोऽग्रम्। पदान्ते किम् गवि[2]॥

४८ इन्द्रे च ६।१।१२४।

गोरवङ् स्यादिन्द्रे। [3]गवेन्द्रः।

४९ दूराद्धूते च ८।२।८४।

दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

५० प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५।

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ [4] कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति।

५१ ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११।

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात्। हरी [5]एतौ। विष्णू इमौ। [6] गङ्गे अमू।

१–गवाग्रम्–'गो–अग्रम्' इति स्थितौ 'एचोऽयवायावः' इत्यनेन प्राप्तम् अवादेशं बाधित्वा 'सर्वत्र विभाषा गोः' इत्यनेन प्राप्तं प्रकृतिभावमपि परत्वाद् बाधित्वा 'अवङ् स्फोटायनस्ये'ति अवङि 'अकः सवर्णे' इत्यनेन दीर्घे च कृते गवाग्रम् इति रूपम्। पक्षे 'सर्वत्र विभाषा गोः' इत्यनेन प्रकृतिभावे गो अग्रम् इति रूपं सिध्यति (प्रकृतिभावाभावपक्षे च 'एङः पदान्तादति' इत्यनेन पूर्वरूपे गोऽग्रम् इति रूपम्)। एवं गो+अक्षः = गवाक्षः, परमत्र व्यवस्थितविभाषया नित्यमवङ्। इति बोध्यम्। तथाचोक्तम्—

देवत्रातो गलो ग्राहः इति योगे च सद्विधिः।
मिथस्तेन विभाष्यन्ते गवाक्षः शंसितव्रतः॥

२–गो+इ (ङि)। ३–गो+इन्द्रः, गव+इन्द्रः, गुणे—गवेन्द्रः। ४–आगच्छ कृष्ण ३+अत्रगौश्चरति, इह प्रकृतिभावान्न सवर्णदीर्घः। ५–एवं धनुषी एते, द्वौ भानू उदयते। द्वे कुले उत्कृष्टे एते स्तः। इत्युदाहार्यम्। ६–गङ्गे अमू गङ्गे+अमू इति स्थितौ 'एचोऽयवा....' इत्ययादेशं बाधित्वा 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति सूत्रेण गङ्गे इत्यस्य प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावे सिध्यति रूपं 'गङ्गे अमू' इति।

४८–गो शब्द को अवङ् होता है इन्द्र शब्द परे रहते।

४९–दूर से सम्बोधन में वाक्य की टि को प्लुत होता है विकल्प से।

५०–प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते सदा प्रकृतिभाव से रहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

५१–ईदन्त ऊदन्त और एदन्त द्विवचन प्रगृह्यसञ्ज्ञक होता है।

५२ अदसो मात् १ । १ । १२ ।

अस्मात्परावीदूतौ[1] प्रगृह्यौ स्तः । [2]अमी ईशाः । रामकृष्णावमू आसाते । मात्किम्[3]—अमुकेऽत्र ।

५३ चादयोऽसत्त्वे १ । ४ । ५७ ।

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ।

५४ प्रादयः १ । ४ । ५८ ।

एतेऽपि[4] तथा ।

५५ निपात एकाजनाङ् १ । १ । १४ ।

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ इन्द्रः । उ उमेशः । ([5]वाक्यस्मरणयोरङित्) आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम्[6] ।

५६ ओत् १ । १ । १५ ।

१-"५१ ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्" इत्यतः ईत् ऊत् च अनुवर्तते, अस्माद् =मान्तादद‍स इत्यर्थः । २-अमीईशाः—'अमी + ईशाः' इति स्थितौ 'अदसो मात्' इति सूत्रेण मान्ता-ददसः परस्य ईकारस्य प्रगृह्यसंज्ञायां सवर्णदीर्घं बाधित्वा 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृतिभावे सिध्यति रूपम् 'अमी ईशाः' इति । ३ असति मादग्रहणे एकारोऽप्यनुवर्तेत, सति तु मादग्रहणेऽसम्भवात् नानुवृत्तिः तेन अमुकेऽत्र (अमुके+अत्र) इत्यत्र न प्रकृतिभावः । किन्तु पूर्वरूपम् (अमुके इति जसि रूपम्) । ४–निपाता इत्यर्थः ।

५-ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् ॥"

६-आ + उष्णम्, अत्र गुणः ईषदुष्णमित्यर्थनिर्देशः ।

५२–मान्त अदस शब्द से परे ईकार, ऊकार की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है ।

५३–अद्रव्यार्थक 'च' आदि निपात सञ्ज्ञक होते हैं ।

५४–अद्रव्यार्थक 'प्र' आदियों की भी निपात सञ्ज्ञा होती है ।

५५–आङ् को छोड़कर एक अच् रूप निपात प्रगृह्यसञ्ज्ञक होता है । [वा० वाक्य और स्मरण अर्थ में 'आ' ङित् नहीं होता] अन्यत्र ङित् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५६–ओदन्त निपात प्रगृह्य सञ्ज्ञक होता है ।

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः। अहो [1]ईशाः।

५७ संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १। १। १६।

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। [2]विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

५८ मय उञो वो वा ८। ३। ३३।

मयः परस्य उञो वो वा अचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

५९ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६। १। १२७।

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि।[3] ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। [4]चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। पदान्ता इति किम्—

६० अचो रहाभ्यां द्वे ८। ४। ४६।

१—एवं मिथो आगच्छतः। अहो अत्र। अथो अपि, इत्यादिकम्। २—विष्णो इति—'विष्णो+इति' इति स्थितौ 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे' इत्यनेन ओकारस्य प्रगृह्यसंज्ञायाम् 'एचोऽयवायावः' इति अवादेशं बाधित्वा 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृतिभावे सिध्यति रूपं 'विष्णो इति'। (प्रगृह्यसंज्ञाभावपक्षे च अवादेशे 'लोपः शाकल्यस्य' इति वैकल्पिके वकारलोपे 'विष्ण इति' 'विष्णविति' इति रूपद्वयम्) एवं भानो+इति, भान इति, भानविति। ३—न दणित्यर्थः। ४—चक्रि अत्र—'चक्री+अत्र' इति स्थितौ 'इको यणचि' इति प्राप्तं यणं बाधित्वा 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' इति वैकल्पिके ह्रस्वे सिध्यति रूपं 'चक्रि अत्र'। नचात्र ह्रस्वे कृते पुनर्यण् स्यादिति वाच्यम्, ह्रस्वविधानसामर्थ्यात् पुनर्यणोऽप्राप्तेः। ह्रस्वाभावपक्षे च यणि कृते 'चक्र्यत्र' इति रूपम्। एवं धनी+आगच्छति=धनि आगच्छति, धन्यागच्छति इत्यादि।

५७—सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार विकल्प से प्रगृह्यसञ्ज्ञक होता है अवैदिक 'इति' शब्द परे रहते।

५८—मय् से परे उञ् को वकार होता है विकल्प से अच् परे रहते।

५९—पदान्त इक् को ह्रस्व होता है विकल्प से असवर्ण अच् परे रहते। ह्रस्वविधानसामर्थ्य से सन्धि-कार्य (यण्) नहीं होता।

६०—अच् से परे जो रेफ और हकार उनसे परे वर्त्तमान यर् को द्वित्व होता है विकल्प से (वा० समास में ह्रस्व और प्रकृतिभाव नहीं होता)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। [1]गौर्य्यौ। (न [2]समासे) [3]वाप्यश्वः।

६१ ऋत्यकः ६ । १ । १२८ ।

ऋति परे पदान्ता अकः [4]प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः। [5]ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्--आर्च्छत्[6]।

इत्यच्सन्धिः

अथ हल्सन्धिप्रकरणम्

६२ स्तोः श्चुना श्चुः ८ । ४ । ४० ।

सकार-तवर्गयोः शकार-चवर्गाभ्यां योगे शकार-चवर्गौस्तः। [7]रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जयः।

१—गौरी+औ, यण्। २– समासे ह्रस्वः 'प्रकृतिभावश्च' न भवतीत्यर्थः। ३—वाप्यश्वः -वापी+अश्वः इत्यत्र 'इको यणचि' इत्यनेन इकारस्य यकारे यणि सिध्यति 'वाप्यश्वः' इति (नचात्रापि चक्रिअत्र इतिवत् हस्वसमुच्चितः प्रकृतिभावः स्यादिति वाच्यम्, 'न समासे' इति तन्निषेधात्) एवं सुधी+उपास्यः सुध्युपास्यः, नदी+उदयः = नद्युदय इत्यादावपि न ह्रस्वः। ४—ह्रस्वा वा इत्यर्थः। ५—ब्रह्मा+ऋषिः। ६ –आ+ऋच्छत्। आटश्चेति वृद्धिः, नात्र आट् पदान्त इति न ह्रस्वः प्रकृतिभावश्चेति। इत्यच्सन्धिप्रकरम्

अथ हल्सन्धिः

रामश्शेते रामस्+शेते इति स्थितौ 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति सूत्रेण शकारयोगे सकारस्य शकारादेशः सिध्यति रूपं 'रामश्शेते'। रामस्+चिनोति। सत्+चित्। शार्ङ्गिन्+जयः, इति। एवं कृष्णस्+चपलः = कृष्णश्चपलः, नारदस्+शशाप = नारदश्शशाप, ग्रामात्+चलितः = ग्रामाच्चलितः, इत्यादि बोध्यम्। अत्र निमित्तकार्मिणोर्न यथासङ्ख्यम्, '६५ शात्' इति ज्ञापकात्।

६१–ह्रस्व ऋकार परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व होता है विकल्प से।

इत्यच्सन्धिः

* अथ हल्सन्धिः *

६२–सकार तवर्ग को सकार चवर्ग के योग में शकार चवर्ग होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

६३ शात् ८ । ४ । ४४ ।

शात् परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्नः[१] । प्रश्नः ।

६४ ष्टुना ष्टुः ८ । ४ । ४१ ।

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । [२]रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ।

६५ न पदान्ताट्टोरनाम्[३] ८ । ४ । ४२ ।

पदान्ताट्टवर्गात् परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात । षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात किम्—[४]ईट्टे । टोः [५]किम्—सर्पिष्टमम्[६] । (अनाम्-नवति-नगरी णामिति[७] वाच्यम्) [८]षण्णाम् । [९]षण्णवति । [१०]षण्णगर्यः ।

१-विश् + न (:) = विश्नः । प्रश् + न (:) प्रश्नः । विच्छप्रच्छधातुभ्यां 'यजयाच यतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' इति नङ् प्रत्यये "च्छ्वोःशूडनुनासिके च" इति शत्वम् । २–रामष्षष्ठः—'रामस् + षष्ठः' इति स्थितौ 'ष्टुनाष्टुः' इति सूत्रेण षकारयोगे सकारस्य षकारादेशः सिध्यति रूप 'रामष्षष्ठः' । रामस् + टीकते । पेष् + ता । तत् + टीका । चक्रिन् + ढौकसे । ३–अनामिति लुप्तषष्ठीकम् । ४–ईट् ते इति छेदः । ५ ष्टुपदानुवृत्तौ सत्यामपि पदान्ते षकारस्य जश्त्वेन डकार एव लप्स्यते इति पदान्ते षकारस्यासम्भवात् न दोषः, इति प्रश्नाशयः । ६–तत्रोत्तरम्–सर्पिष्टमम्, सर्पिष् + तम (म्), अत्र 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' इति विहितस्य षकारस्याऽसिद्धतया जश्त्वाऽसम्भवेन (पदान्ते) षकार एव श्रूयते, इति तद्व्यावृत्त्यर्थं 'टोः' ग्रहणमवश्यं कर्तव्यम्, अन्यथा षकारस्याप्यनुवृत्तौ अत्र दोषः स्यात् । ७ -नाम् नवति–नगरीभिन्नानां ष्टुत्वनिषेध इति वाच्यमित्यर्थः । ८—षड् + नाम्, परस्य नकारस्य ष्टुत्वेन णत्वम्, पूर्वस्य डकारस्य तु 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति अनुनासिको णकारः 'षण्णाम्' । ९ --षड् + नवतिः, '६८ यरोऽनुनासिके-' इति डकारस्य वैकल्पिकोऽनुनासिकः णकारः । (परस्य = (नस्य) ष्टुत्वं णकारः) पक्षे षड्णवतिः षड्णगर्यः, इत्यपि । १०—षड् + नगर्यः, अत्र पूर्ववत् सिद्धिः ।

६३–शकार से परे तवर्ग को चुत्व नहीं होता ।

६४–सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योग में षकार टवर्ग होते हैं ।

६६–पदान्त टवर्ग से परे नाम भिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता । (वा० पदान्त टवर्ग से नाम-नवति-नगरीभिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता, ऐसा कहना चाहिए ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६६ तोः षि ८ । ४ । ४३ ।

न ष्टुत्वम्[१] । सन्षष्ठः ।

६७ झलां जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ।

पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः[२] ।

६८ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ।

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । [३]एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः । ([४]प्रत्यये भाषायां नित्यम्) [५]तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

६९ तोर्लि ८ । ४ । ६० ।

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । [६]तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । तस्यानुनासिको लः ।

१-तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वमित्यर्थः । २-वाक्+ईशः + । ३-एतन्मुरारिः—एतद्+मुरारिः इति स्थितौ 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' दकारस्य नकारे कृते सिध्यति रूपम् 'एतन्मुरारिः' इति । (अनुनासिकाभावपक्षे 'एतद्मुरारिः' इति ।) एवं वाक्+मधु = वाङ्मधु, सत्+मनोहरम् सन्मनोहरम्, उद्+मानम् = उन्मानम् । ऋक्+मन्त्रः = ऋङ्मन्त्रः । दधिमुट्+माद्यति दधिमुण्माद्यति, इत्यादि ज्ञेयम् । ४-लोके प्रत्यये परतो नित्यमनुनासिक इत्यर्थः । ५-तन्मात्रम् -'तद् मात्रम्' इति स्थितौ 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति वार्त्तिकेन दकारस्य नित्यमनुनासिको नकारः, सिध्यति रूपं तन्मात्रम्' इति (अत्र परिमाणे मात्रच् प्रत्ययः)। चित् मय (म्) एवं-विपद्+मय (म्) = विपन्मयम्, अप्+मात्र (म्) = अम्मात्रम्, अप्+मय (म्) = अम्मयम् इत्यादि ६-तद्+लयः । विद्वान्+लिखति । एवं विपद्+लीनः = विपल्लीनः । कुशान्+लाति = कुशांल्लाति, इत्यादिकं बोध्यम् ।

६६–तवर्ग को षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं होता ।

६७–पदान्त में झलों को जश् होते हैं ।

६८–पदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते अनुनासिक विकल्प से होता है (वा० लोक में प्रत्ययावयव सानुनासिक परे रहते पदान्त यर को नित्य अनुनासिक होता है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६९–तवर्ग को लकार परे रहते परसवर्ण होता है ।

६३ शात् ८ । ४ । ४४ ।

शात् परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्नः[१] । प्रश्नः ।

६४ ष्टुना ष्टुः ८ । ४ । ४१ ।

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । [२]रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ।

६५ न पदान्ताट्टोरनाम्[३] ८ । ४ । ४२ ।

पदान्ताट्टवर्गात् परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात । षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात किम्—[४]ईट्टे । टोः [५]किम्—सर्पिष्टमम्[६] । (अनाम्-नवति-नगरी णामिति[७] वाच्यम्) [८]षण्णाम् । [९]षण्णवति । [१०]षण्णगर्यः ।

१-विश्+न (:)=विश्नः । प्रश्+न (:) प्रश्नः । विच्छप्रच्छधातुभ्यां 'यजयाच यतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' इति नङ्प्रत्यये "च्छ्वोःशूडनुनासिके च" इति शत्वम् । २–रामष्षष्ठः—'रामस्+षष्ठः' इति स्थितौ 'ष्टुनाष्टुः' इति सूत्रेण षकारयोगे सकारस्य षकारादेशः सिध्यति रूप 'रामष्षष्ठः' । रामस्+टीकते । पेष्+ता । तत्+टीका । चक्रिन्+ढौकसे । ३–अनामिति लुप्तषष्ठीकम् । ४–ईट् ते इति छेदः । ५ ष्टुपदानुवृत्तौ सत्यामपि पदान्ते षकारस्य जश्त्वेन डकार एव लप्स्यते इति पदान्ते षकारस्यासम्भवात् न दोषः, इति प्रश्नाशयः । ६–तत्रोत्तरम्—सर्पिष्टमम्, सर्पिष्+तम (म्), अत्र 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' इति विहितस्य षकारस्याऽसिद्धतया जश्त्वाऽसम्भवेन (पदान्ते) षकार एव श्रूयते, इति तद्व्यावृत्यर्थं 'टोः' ग्रहणमवश्यं कर्तव्यम्, अन्यथा षकारस्याप्यनुवृत्तौ अत्र दोषः स्यात् । ७ -नाम् नवति–नगरीभिन्नानां ष्टुत्वनिषेध इति वाच्यमित्यर्थः । ८—षड्+नाम्, परस्य नकारस्य ष्टुत्वेन णत्वम्, पूर्वस्य डकारस्य तु 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति अनुनासिको णकारः 'षण्णाम्' । ९ --षड्+नवतिः, '६८ यरोऽनुनासिके-' इति डकारस्य वैकल्पिकोऽनुनासिकः णकारः । (परस्य = (नस्य) ष्टुत्वं णकारः) पक्षे षड्णवतिः षड्णगर्यः, इत्यपि । १०—षड्+नगर्यः, अत्र पूर्ववत् सिद्धिः ।

६३–शकार से परे तवर्ग को चुत्व नहीं होता ।

६४–सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योग में षकार टवर्ग होते हैं ।

६६–पदान्त टवर्ग से परे नाम भिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता । (वा० पदान्त टवर्ग से नाम्-नवति-नगरीभिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता, ऐसा कहना चाहिए ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६६ तोः षि ८ । ४ । ४३ ।

न ष्टुत्वम्[१] । सन्षष्ठः ।

६७ झलां जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ।

पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः[२] ।

६८ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ।

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । [३]एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः । ([४]प्रत्यये भाषायां नित्यम्) [५]तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

६९ तोर्लि ८ । ४ । ६० ।

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । [६]तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । तस्यानुनासिको लः ।

१-तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वमित्यर्थः । २-वाक्+ईशः+ । ३-एतन्मुरारिः—एतद्+मुरारिः इति स्थितौ 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' दकारस्य नकारे कृते सिध्यति रूपम् 'एतन्मुरारिः' इति । (अनुनासिकाभावपक्षे 'एतद्मुरारिः' इति ।) एवं वाक्+मधु = वाङ्मधु, सत्+मनोहरम् सन्मनोहरम्, उद्+मानम् = उन्मानम् । ऋक्+मन्त्रः = ऋङ्मन्त्रः । दधिमुट्+माद्यति दधिमुण्माद्यति, इत्यादि ज्ञेयम् । ४-लोके प्रत्यये परतो नित्यमनुनासिक इत्यर्थः । ५-तन्मात्रम् -'तद् मात्रम्' इति स्थितौ 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति वार्त्तिकेन दकारस्य नित्यमनुनासिको नकारः, सिध्यति रूपं तन्मात्रम्' इति (अत्र परिमाणे मात्रच् प्रत्ययः) । चित् मय (म्) एवं-विपद्+मय (म्) = विपन्मयम्, अप्+मात्र (म्) = अम्मात्रम्, अप्+मय (म्) = अम्मयम् इत्यादि ६-तद्+लयः । विद्वान्+लिखति । एवं विपद्+लीनः = विपल्लीनः । कुशान्+लाति = कुशाँल्लाति, इत्यादिकं बोध्यम् ।

६६-तवर्ग को षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं होता ।

६७-पदान्त में झलों को जश् होते हैं ।

६८-प्रदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते अनुनासिक विकल्प से होता है (वा० लोक में प्रत्ययावयव अनुनासिक परे रहते पदान्त यर् को नित्य अनुनासिक होता है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६९-तवर्ग को लकार परे रहते परसवर्ण होता है ।

७० उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८ । ४ । ६१ ।

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः ।

७१ तस्मादित्युत्तरस्य १ । १ । ६७ ।

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ।

७२ आदेः परस्य १ । १ । ५४ ।

परस्य यद् विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य [1]थः ।

७३ झरो झरि सवर्णे ८ । ४ । ६५ ।

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ।

७४ खरि च ८ । ४ । ५५ ।

खरि झलां चरः स्युः । इत्युदो दस्य तः । [2]उत्थानम् । उत्तम्भनम् ।

७५ झयो होऽन्यतरस्याम् ८ । ४ । ६२ ।

१—विवार-श्वासाऽघोष-महाप्राणप्रयत्नसादृश्यात् । एवं भूताऽऽन्तरतम्य (सादृश्य)-परीक्षायामेव बाह्यप्रयत्नानामुपयोगः । २—उत्थानम्—'उद्+स्थानम्' इति स्थितौ 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इति सूत्रेण सकारस्य स्थाने थकारः पूर्वसवर्णः, 'उद् थ् थानम्' इति जाते, 'झरो झरि सवर्णे' इत्यनेन पूर्वथकारस्य विकल्पेन लोपे दस्य चर्त्वेन तकारे सिद्धं रूपम् 'उत्थानम्' इति । (अत्र यद्यपि तस्मादित्युत्तरस्य' इति परिभाषया 'स्था' इत्यस्य पूर्वसवर्णः प्राप्नोति तथापि 'आदेः परस्य' इति सूत्रेण आदिभूतस्य सकारस्य स्थाने भवति)। उद्+स्तम्भनम् । एवम्—उद्+स्थापयति = उत्थापयति ।

७०—उद् से परे वर्त्तमान स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण होता है ।

७१—पञ्चमीनिर्देश से किये जानेवाला कार्य अन्य वर्णों के व्यवधान से रहित पर के स्थान में होता है ।

७२—पर को विधान किया गया कार्य पर के आदि को होता है ।

७३—हल् से परे झर् का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर् परे रहते ।

७४—खर् परे रहते झलों को चर् होते हैं ।

७५—झय् से परे हकार को पूर्वसवर्ण होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः । नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो [1]वर्गचतुर्थः । [2]वाग्घरिः, वाग्हरिः ।

७६ शश्छोऽटि ८ । ४ । ६३ ।

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि । तद् शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि चे'ति जकारस्य चकारः । [3]तच्छिवः, तच्शिवः (छत्वममीति-वाच्यम्) तच्छ्लोकेन ।

७७ मोऽनुस्वारः ८ । ३ । २३ ।

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि । हरिं [4]वन्दे ।

७८ नश्चापदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४ ।

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः [5]यशांसि । आक्रंस्यते[6] । झलि किम्—[7]मन्यसे ।

१—घकारः । वाग्घरिः—'वाक् + हरिः' इति स्थितौ 'झलां जशोऽन्ते' इत्यनेन ककारस्य गकारे कृते 'झयोः होऽन्यतरस्याम्' इति हकारस्य नाद-घोषसंवार-महाप्राण-प्रयत्नस्य तादृशो वर्गचतुर्थो घकार आदेशः, सिध्यति रूपं 'वाग्घरिः' इति (पूर्व-सवर्णाभावपक्षे तु वाग्हरिः इति) एवं तद् + हानम् = तद्धानम् । सम्पद् + हानिः = सम्पद्धानिः । ककुभ् + हासः = ककुब्भासः, इत्यादि ज्ञेयम् । ३—तच्छिवः—'तद् + शिव' इति स्थितौ 'स्तोः श्चुनाश्चुः' इति सूत्रेण दकारस्य जकारे 'खरि च' इति जकारस्य चकारे 'तच् शिवः' इति जाते 'शश्छोऽटि' इति सूत्रेण शकारस्य छकारादेशे सिध्यति रूपं 'तच्छिवः' इति । चत्वाभावपक्षे 'तच् शिवः' इति । तद् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन । एवम् एतद् + शान्तम् = एतच्छान्तम् । ४—हरिम् + वन्दे । ५—यशांसि—'यशान् + सि' इति स्थितौ 'नश्चापदान्तस्य झलि' इति सूत्रेण झलप्रत्याहारघटिते सकारे परतः अपदान्तस्य नकारस्यानुस्वारे कृते सिद्धं रूपं 'यशांसि' ६—आक्रम् + स्यते, एवं वासान् + सि = वासांसि । प्रणम् + स्यते = प्रणंस्यते, इत्यादि बोध्यम् । ७—मन् + यसे ।

७६—झय से परे श को छ होता है अट् परे रहते विकल्प से (वा०—झय् से परे श को छ हो विकल्प से अम परे रहते, ऐसा कहना चाहिए) ।

७७—मान्त पद को अनुस्वार होता है हल् परे रहते ।

७८—अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है झल् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७६ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८ । ४ । ५८ ।

स्पष्टम्[1] । शान्तः[2] ।

८० वा पदान्तस्य[3] ८ । ४ । ५६ ।

[4]त्वङ्करोषि, त्वं करोषि ।

८१ मो राजि समः क्वौ ८ । ३ । २५ ।

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म[5] एव स्यात् । सम्राट्[6] ।

८२ हे मपरे वा ८ । ३ । २५ ।

मपरे हकारे मस्य मो वा । [7]किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति (यवलपरे-[8]यवला वा) [9]किँय्ह्यः, किंह्यः । किँव्ह्वलयति, किंह्वलयति । किँल्ह्लादयति, किंह्लादयति ।

१-(अपदान्तस्य) अनुस्वारस्य ययि परे (नित्यं) परसवर्णः स्यादित्यर्थः २-शाम्+त (:) = शान्तः । एवम् अङ्कितः, अञ्चितः, कुण्ठितः, ग्रन्थः, दान्तः । गुम्फितः । ३-पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे पर-सवर्णो वा स्यादिति सूत्रार्थः । पदान्ते विकल्पः, अपदान्ते नित्यमिति फलितम् । ४-त्वम्+करोषि, "मोऽनुस्वारः" त्वं करोषि, पाक्षिकपरसवर्णः-त्वङ्करोषि । एवं-त्वं+पचसि, त्वम्पचसि त्वं पचसि वा, मृत्युं+जयः = मृत्युञ्जयः, मृत्युंजयः । दानं+यच्छति = दानंय्यच्छति, दानंयच्छति वा । सं+वत्सरः = संव्वत्सरः, संवत्सरः । सुन्दर+लिखति = सुन्दरंल्लिखति, सुन्दरंलिखति । अहं+लिखामि - अहंल्लिखामि अहं लिखामि इत्यादि । ५-मकारस्य मकारविधानम् अनुस्वारबाधनार्थम् , एवमग्रिमसूत्रेऽपि ।। ६-सम्+राट् , अज्झीनं परेण संयोज्यम् । ७-किम्+ह्मलयति, पक्षेऽनुस्वारः । ८-मकारस्येति सम्बन्धः, हे इत्यस्यानुवृत्तिः । तथा चायमर्थः-यवलपरके हकारे परे मकारस्य क्रमशो यवला वा भवन्ति, पक्षेऽनुस्वारः । ९-किम्+ह्यः । किम्+ह्वलयति । किम्+ह्लादयति । सर्वत्र पक्षेऽनुस्वारः ।

७६-अनुस्वार को यय् परे रहते परसवर्ण होता है ।

८०-पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहते विकल्प से परसवर्ण होता है ।

८१-क्विबन्त राज् धातु परे रहते सम् के म् को मकार हो होता है (अर्थात् म् को अनुस्वार नहीं होता) ।

८२-मपरक हकार परे रहते म् को म् विकल्प से होता है । (वा०-य-व-ल-परक हकार परे रहते मकार को क्रम से य-व-ल होते हैं विकल्प से] ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८३ नपरे नः ८ । ३ । २७ ।

नपरे हकारे मस्य नो वा । [1]किन्ह्नुतः, किंह्नुतः ।

८४ डः सि धुट् ८ । ३ । २९ ।

डात्परस्य सस्य धुड् वा ।

८५ आद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ ।

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः । [2]षट्त्सन्तः, षट्सन्तः ।

८६ ङ्णोः कुक् टुक् शरि ८ । ३ । २८ ।

वा स्तः ([3]चयो [4]द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्) [5]प्राङ्ख्षष्ठः, [6]प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः । [7]सुगण्ठ्षष्ठः, सुगण्ट्षष्ठः सुगण्षष्ठः ।

८७ नश्च ८ । ३ । ३० ।

नान्तात्परस्य सस्य धुड्वा । [8]सन्त्सः, सन्सः ।

८८ शि तुक् ८ । ३ । ३१ ।

१–किम् + ह्नुते । २–षड् + सन्तः, "७४ खरि च" इति चर्त्वम् षट्त्सन्तः । ३–क-च-ट-त-पामित्यर्थः । ४–ख-छ-ठ-थ-फा इत्यर्थः । ५–प्राङ् षष्ठः । ६–क-ष संयोगे क्षः । ७–सुगण् + षष्ठः । ८–सन् + सः = सन्त्सः, एवं विद्यार्थिन् + सहस्व, विद्यार्थिन्त्सहस्व, छात्रान् + स्वापय = छात्रान्त्स्वापय इत्यादि ।

८३–नपरक हकार परे रहते म् को न् होता है विकल्प से ।

८४–ड से परे स को धुट् का आगम होता है विकल्प से ।

८५–टित् कित् जिसको कहे जायें क्रम से उसके आदि और अन्त अवयव होते हैं; अर्थात् टित् आदि, कित् अन्त ।

८६–ङकार णकार को कुक् और टुक् का आगम होता है शर् परे रहते क्रम से । (वा०–चयों को द्वितीय वर्ण होते हैं शर् परे रहते पौष्करसादि ऋषि के मत में) ।

८७–नान्त से परे स को धुट् का आगम होता है विकल्प से ।

८८–पदान्त तकार को शकार परे रहते तुक् का आगम होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । [1]सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः ।

८९ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८ । ३ । ३२ ।

ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात् परस्याचो नित्यं [2]ङमुट् । [3]प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । [4]सन्नच्युतः ।

९० समः सुटि ८ । ३ । ५ ।

समो रुः सुटि ।

१-सन् + शम्भुः, इत्यत्र नस्य विकल्पेन तुगागमे सन्त् + शम्भुः, "शश्छोटि" इति शस्य वा छत्वे सन्त् + छम्भुः, "स्तोश्चुनाश्चु" इति श्चुत्वेन 'तस्य चः,' 'न'-स्य 'ञः' सञ्छम्भुः । "झरो झरि सवर्णे" इति वा चलोपे १ 'सञ्छम्भुः । लोपाभावे २ सञ्च्छम्भुः । छत्वाभावे तुकि च सति ३ सञ्च्शम्भुः । तुग-भावे ४ सञ्शम्भुः । एवं-बालाञ्छास्ति, बालाञ्च्छास्ति, बालाञ्च्शास्ति बालाञ्शास्ति, इत्यादि । अयं चात्र रूपसंग्रहश्लोकः —

"ञ्छौ ञ्चछा ञ्चशा ञशाविति चतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्-छत्व-चलोपानां विकल्पनात् ॥"

२-ङमुट्, ङम् = (ङणनम्) प्रत्याहारः, तदन्ते 'उट् प्रत्येकान्वयी, "सञ्ज्ञायां कृतं टित्त्वं सञ्ज्ञिभिः सह सम्बध्यते" इति तेन ङुट्-णुट्-नुट् इति त्रय आगमाः । ३-प्रत्यङ् + आत्मा । सुगण् + ईशः ४-सन्नच्युतः—'सन् + अच्युतः' इति स्थितौ 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्' इति सूत्रेण नकारात् परस्याचः नित्यं नुडागमे सिध्यति रूपं 'सन्नच्युतः इति । एवं तिङ् + अतिङः = तिङ्ङतिङः । तस्मिन् + इति तस्मिन्निति । पठन् + एति = पठन्नेति इत्यादयो बोध्याः अस्मिन् सूत्रे नित्य-शब्दो 'नित्य-प्रहसितः' इत्यादाविव प्रायिकत्वबोधकः तेन क्वचिन्न, यथा—तिङ् + अन्तम् = तिङन्तम् सन् + आदिः=सनादिः । तथा च सूत्रनिर्देशः "सुप्तिङन्तं पदम्" "सनाद्यन्ता धातवः" इति ।

८९—ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त पद से परे अच् को प्रायः ङमुट् का आगम होता है ।

९०—सम् को रु होता है सुट् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९१ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८ । ३ । २ ।

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ।

९२ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८ । ३ । ४ ।

अनुनासिकं विहाय रोः [1]पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ।

९३ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ।

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः (संपुंकानां सो वक्तव्यः) [2]सँस्कर्ता, संस्स्कर्ता ।

९४ पुमः खय्यम्परे ८ । ३ । ६ ।

अम्परे खयि पुमो रुः । [3]पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः ।

९५ नश्छव्यप्रशान् ८ । ३ । ७ ।

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यान्नतु प्रशान्शब्दस्य ।

१–रोः पूर्वस्मात् वर्णात् परः, अर्थात्–रोः (पञ्चमी) पूर्वस्य स्वरस्योपरि 'अनुस्वारः' । २–(सम्+कर्ता "सम्परिभ्याम् " इति सुट्) सम्+स्कर्ता — संस्स्कर्त्ता, सँस्स्कर्ता "समो वा लोपमेके" इति भाष्यात्पक्षे एकसकारकमपि रूपद्वयम् । एवं संस्कारः, संस्कृतम्, संस्करोति । ३–पुँस्कोकिलः—'पुम्+कोकिलः' इति स्थिते 'पुमः खय्यम्परे' इति सूत्रेण मस्य रुत्वे 'अत्रानुनासिकः ··' इति अनुनासिके, 'पुँस्कोकिलः' इति स्थिते रेफस्य विसर्गः 'संपुंकानां सो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य सत्वे सिध्यति रूपं 'पुँस्कोकिलः' इति (अनुनासिकाभावपक्षेऽनुस्वारः पुंस्कोकिलः इति)। एवं पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । पुंश्चरित्रम् । पुंस्तिलकम् । पुंष्टीका ।

९१–इस रुप्रकरण में रुसे पूर्व अच् को अनुनासिक होता है विकल्प से ।

९२–अनुनासिक पक्ष को छोड़कर रु से पूर्ववर्त्ती अच् से परे (अर्थात्—ऊपर), अनुस्वार का आगम होता है ।

९३–खर् परे रहते अथवा अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग होता है । (वा०–सम् पुम् कान् इनके विसर्ग को स होता है) ।

९४–अम्परक खय् परे रहते पुम् के मकार को रु होता है ।

९५–अम्परक छव परे रहते नान्त पद को रु होता है प्रशान् शब्द को छोड़कर ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । [1]सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः ।

८९ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८ । ३ । ३२ ।

ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात् परस्याचो नित्यं [2]ङमुट् । [3]प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । [4]सन्नच्युतः ।

९० समः सुटि ८ । ३ । ५ ।

समो रुः सुटि ।

१-सन्+शम्भुः, इत्यत्र नस्य विकल्पेन तुगागमे सन्त्+शम्भुः, "शश्छोटि" इति शस्य वा छत्वे सन्त्+छम्भुः, "स्तोश्चुनाश्चु" इति श्चुत्वेन 'तस्य चः,' 'न'-स्य 'ञः' सञ्च्छम्भुः । "झरो झरि सवर्णे" इति वा चलोपे १ 'सञ्छम्भुः । लोपाभावे २ सञ्च्छम्भुः । छत्वाभावे तुकि च सति ३ सञ्च्शम्भुः । तुग-भावे ४ सञ्शम्भुः । एवं-बालाञ्छास्ति, बालाञ्च्छास्ति, बालाञ्च्शास्ति बालाञ्शास्ति, इत्यादि । अयं चात्र रूपसंग्रहश्लोकः—

"ञ्छौ ञ्चछा ञ्चशा ञशाविति चतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्-छत्व-चलोपानां विकल्पनात् ॥"

२-ङमुट्, ङम्=(ङणनम्) प्रत्याहारः, तदन्ते 'उट्' प्रत्येकान्वयी, "सञ्ज्ञायां कृतं टित्त्वं सञ्ज्ञिभिः सह सम्बध्यते" इति तेन ङुट्-णुट्-नुट् इति त्रय आगमाः । ३-प्रत्यङ्+आत्मा । सुगण्+ईशः ४-सन्नच्युतः—'सन्+अच्युतः' इति स्थितौ 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्' इति सूत्रेण नकारात् परस्याचः नित्यं नुडागमे सिध्यति रूपं 'सन्नच्युतः इति । एवं तिङ्+अतिङः=तिङ्ङतिङः । तस्मिन्+इति तस्मिन्निति । पठन्+एति=पठन्नेति इत्यादयो बोध्याः अस्मिन् सूत्रे नित्य-शब्दो 'नित्य-प्रहसितः' इत्यादाविव प्रायिकत्वबोधकः तेन क्वचिन्न, यथा—तिङ्+अन्तम्=तिङन्तम् सन्+आदिः=सनादिः । तथा च सूत्रनिर्देशः "सुप्तिङन्तं पदम्" "सनाद्यन्ता धातवः" इति ।

८९—ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त पद से परे अच् को प्रायः ङमुट् का आगम होता है ।

९०—सम् को रु होता है सुट् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६१ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८ । ३ । २ ।

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ।

६२ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८ । ३ । ४ ।

अनुनासिकं विहाय रोः [1]पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ।

६३ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ।

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः (संपुंकानां सो वक्तव्यः) [2]सँस्कर्ता, संस्स्कर्ता ।

६४ पुमः खय्यम्परे ८ । ३ । ६ ।

अम्परे खयि पुमो रुः । [3]पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः ।

६५ नश्छव्यप्रशान् ८ । ३ । ७ ।

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यान्नतु प्रशान्शब्दस्य ।

१–रोः पूर्वस्मात् वर्णात् परः, अर्थात्–रोः (पञ्चमी) पूर्वस्य स्वरस्योपरि 'अनुस्वारः' । २–(सम्+कर्ता "सम्परिभ्याम् " इति सुट्) सम्+स्कर्ता — संस्स्कर्त्ता, सँस्स्कर्ता "समो वा लोपमेके" इति भाष्यात्पक्षे एकसकारकमपि रूपद्वयम् । एवं संस्कारः, संस्कृतम्, संस्करोति । ३–पुँस्कोकिलः—'पुम्+कोकिलः' इति स्थिते 'पुमः खय्यम्परे' इति सूत्रेण मस्य रुत्वे 'अत्रानुनासिकः ··' इति अनुनासिके, 'पुँस्कोकिलः' इति स्थिते रेफस्य विसर्गः 'संपुंकानां सो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य सत्वे सिध्यति रूपं 'पुंस्कोकिलः' इति (अनुनासिकाभावपक्षेऽनुस्वारः पुंस्कोकिलः इति)। एवं पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । पुंश्चरित्रम् । पुंस्तिलकम् । पुंष्टीका ।

६१–इस रुप्रकरण में रुसे पूर्व अच् को अनुनासिक होता है विकल्प से ।

६२–अनुनासिक पक्ष को छोड़कर रु से पूर्ववर्त्ती अच् से परे (अर्थात्—ऊपर), अनुस्वार का आगम होता है ।

६३–खर् परे रहते अथवा अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग होता है । (वा०–सम् पुम् कान् इनके विसर्ग को स होता है) ।

६४–अम्परक खय् परे रहते पुम् के मकार को रु होता है ।

६५–अम्परक छव् परे रहते नान्त पद को रु होता है प्रशान् शब्द को छोड़कर ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९६ विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ।

खरि । [1]चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व । अप्रशान् किम्-[2]प्रशान्तनोति पदान्तस्येति किम्—हन्ति[3] ।

९७ नॄन् पे ८ । ३ । १० ।

नॄनित्यस्य रुर्वा [4]पे ।

९८ कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८ । ३ । ३७ ।

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः, चाद्विसर्गः । [5]नॄं ≍पाहि, नॄँ ≍पाहि, नॄंः पाहि, नॄँः पाहिः नॄन्पाहि ।

९९ तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ । २ ।

द्विरुक्तस्य [6]परमाम्रेडितं स्यात् ।

१०० कानाम्रेडिते ८ । ३ । १२ ।

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते । [7]काँस्कान् ।

१०१ छे च ६ । १ । ७३ ।

चक्रिन् + त्रायस्व । अनुनासिकानुस्वारौ पाक्षिकौ चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व एवं कस्मिंश्चित, कस्मिँश्चित् । भक्तांस्तारय, भक्ताँस्तारय । विद्वांश्छात्रः विद्वाँश्छात्रः वेदांष्टीकस्व, वेदाँष्टीकस्व । २—अन्यथा 'प्रशाँस्तनोति' इति स्यात् । ३—अन्यथा 'हंस्ति' इति स्यात् । ४—पे = पकारे । ५—नॄन् + पाहि । 'नॄन् + पालयस्व' इत्यादावपि । ६—पर रूपमित्यर्थः । ७—कान् + कान् । अनुनासिकानुस्वारौ पाक्षिकौ "संपुंकानाम्' इति सः ।

९६—खर् परे रहते विसर्जनीय को स होता है ।

९७—नॄन् के नकार को रु होता है विकल्प से पकार परे रहते ।

९८—कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग को क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय होते हैं, पक्ष में विसर्ग भी होता है ।

९९—द्विरुक्त के पहले रूप की आम्रेडित सञ्ज्ञा होती है ।

१००—कान् के नकार को रु होता है आम्रेडित परे रहते ।

१०१—ह्रस्व को छ परे रहते तुक् का आगम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]ह्रस्वस्य छे तुक्। [2]शिवच्छाया।

१०२ पदान्ताद्वा ६ । १ । ७६ ।

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग् वा। [3]लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

इति हल्सन्धिप्रकरणम्।

—:०:—

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

१०३ विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ।

खरि। [4]विष्णुस्त्राता।

१०४ वा शरि ८ । ३ । ३६ ।

१—"७७९ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" इत्यतः 'ह्रस्वस्य' 'तुक्' इति चानुवर्तते।
२—शिवच्छाया—शिव+छाया इति स्थितौ 'छे च' इति तुगागमे 'शिवत् छाया' इति जाते तकारस्य जश्त्वेन दकारे, दकारस्य श्चुत्वेन जकारे, जकारस्य 'खरि च' इति चकारे सिध्यति रूपं 'शिवच्छाया' इति। न चात्र-'३०६ चोः कुः" इति कुत्वं स्यादिति वाच्यम् श्चुत्वस्याऽसिद्धत्वात्। एवं वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया। स्व+छात्रः=स्वच्छात्रः।
३—लक्ष्मी+छाया, एवं नदी+छन्ना=नदीच्छन्ना, नदीछन्ना।

इति हल्सन्धिः

—:*:—

अथ विसर्गसन्धिः

४—विष्णुः+त्राता, एवं छात्रः+तिष्ठति=छात्रस्तिष्ठति, गौः+चरति=गौश्चरति, कृष्णः+छिनत्ति कृष्णश्छिनत्ति, इत्यादि।

१०२—पदान्त दीर्घ से छ परे रहते तुगागम होता है विकल्प से।

इति हल्सन्धिः

—:*:—

अथ विसर्गसन्धिः

१०३—विसर्जनीय को स होता है खर् परे रहते।

१०४—शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा [1]हरिःशेते, [2]हरिश्शेते ।

१०५ स-सजुषो रुः ८ । २ । ६६ ।

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ।

१०६ अतो रोरप्लुतादप्लुते ६ । १ । ११३ ।

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । [3]शिवोऽर्च्यः ।

१०७ हशि च ६ । १ । ११४ ।

[4]तथा । [5]शिवो वन्द्यः ।

१०८ भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य योऽशि ८ । ३ । १७ ।

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा [6]इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः तेषां, रोर्यत्वे कृते ।

१—हरिः + शेते । २—पक्षे सत्वे, "स्तोश्चुना श्चुः" इति शकारे हरिश्शेते, एवं छात्राः + सन्ति = छात्राः सन्ति, छात्रा सन्ति, छात्रास्सन्ति । रसाः + षट् = रसाःषट्, रसाष्षट्, इत्यादयः । ३—शिवस् + अर्च्यः । अत्र रुत्वे कृते उत्वं गुणः पूर्वरूपं च । उत्वं प्रति रुत्वस्याऽसिद्धत्वं तु न भवति, रुत्वमनूद्य उत्वविधानसामर्थ्यात् , शिवोऽर्च्यः, एवं शुद्धोऽहम् । बुद्धोऽहम् । छात्रोऽयम् इत्यादि । ४—अप्लुतादतो रोरुः स्याद् हशि, इत्यर्थः । ५—शिवो वन्द्यः शिवस् + वन्द्यः इति स्थितौ 'ससजुषो रुः' इति रुत्वे 'हशि च' इति उत्वे वकारगताकारेण सहोकारस्य 'आद् गुणः' इति गुणे ओकारे सिध्यति रूपं 'शिवो वन्द्यः' इति । एवं रामो वदति, छात्रो गच्छति, कृष्णो जयति, काको डीयते, कर्णो ददाति, व्यासो ब्रूते, इत्यादयः । ६—देवास् + इह, रोर्यादेशे "३० लोपः शाकल्यस्य" इति विकल्पेन यलोपः; देवा इह, देवायिह । एवं छात्रा आगच्छन्ति, वीरा उत्सहन्ते, देवा एते, धार्मिका वर्धन्ते, भक्ता भजन्ति, हया हेषन्ति, याज्ञिका यान्ति, बाला रमन्ते, विप्रा दयन्ते । हलि सर्वत्र "हलि सर्वेषाम्" इति नित्यं 'य' लोपः ।

१०५—पदान्त सकार और सजुष् शब्द के षकार को रु होता है ।

१०६—अप्लुत अत् से परे रु को उ होता है अप्लुत अत् परे रहते ।

१०७—अप्लुत अत् से परे रु को उ होता है हश् परे रहते ।

१०८—भो-भगो-अघो और अकार है पूर्व में जिसके ऐसे रु को य् होता है अश् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०९ हलि सर्वेषाम् ८ । ३ । २२ ।

भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः[1] । भगो नमस्ते । अघो याहि ।

११० रोऽसुपि ८ । २ । ६९ ।

अह्नो रेफादेशो नतु सुपि । अहरहः[2] । अहर्गणः ।

१११ रो रि ८ । ३ । १४ ।

रेफस्य रेफे परे लोपः ।

११२ ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः[3] ६ । ३ । १११ ।

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते[4] । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम्—तृढः[5] । वृढः । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे, रोरीति लोपे च प्राप्ते—

११३ विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ ।

१–भोस् + देवाः । भगोस् + नमस्ते । अघोस् + याहि । एषु नित्य यलोपः । २ अहन् + अहः । अहन् + गणः, अत्र क्रमेण–'अतोरोर...' 'हशि च' इति सूत्राभ्यामुत्वं न, 'रु'—इत्यस्यैव उत्वविधानात् । अत एव प्रातरत्र, भ्रातर्देहि, अहर्भाति, इत्यादि सिद्ध्यन्ति । ३–अत्र सूत्रेऽण्-ग्रहणं पूर्वेण, तथा चोक्तम्—

"परेणैवेण्ग्रहाःसर्वे पूर्वेणैवाण्ग्रहा मताः । ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु" ॥ इति

४—पुना रमते—'पुनर् + रमते' इति स्थिते 'रोरि' इति पूर्वरेफस्य लोपे 'ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति पूर्वस्याणो दीर्घे सिद्धं रूपं 'पुना रमते' इति । हरिस् (र्) + रम्यः । शम्भुस् (र्) + राजते । एवं निर् + रसः = नीरसः, लिढ् + ढे = लीढे, अजर्घर् + र् = अजर्घाः । प्रातर् + रमते = प्राता रमते । ५–तृढ् = ढ (:) । वृढ् = ढः । 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारलोपः । अणोऽभावान्न दीर्घप्रवृत्तिः ।

१०९–भो-भगो-अघो-अ पूर्वक यकार का लोप होता है हल् परे रहते ।

११०–अहन् शब्द को रेफादेश होता है; सुप् परे हो तो नहीं होता ।

१११–रेफ का रेफ परे रहते लोप होता है ।

११२–लोपनिमित्तक ढकार और रेफ परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११३–तुल्यबलविरोध में पर कार्य होता है ।

[1]तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात्। इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्रासिद्धमिति 'रो रि' इत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव। [2]मनोरथः।

११४ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२।

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे। [3]एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्-एषको [4]रुद्रः। अनञ् समासे किम-असः शिवः[5]। हलि किम् एषोऽत्र[6]।

११५ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्। ६।१।१३४।

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव[7] पूर्येत॥ [8]सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। [9]सैष दाशरथी रामः। इति विसर्गसन्धिप्रकरणम्।

१-'अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाशयोरेकत्र समावेशस्तुल्यबलविरोधः' यथा चात्रैव 'रो रि' इति सूत्रं हरीरम्य इत्यादौ लब्धावकाशं 'हशि च' इति च 'शिवो वन्द्यः' इत्यत्र लब्धावकाशं तयोर्द्वयोश्च 'मनोरथः' इत्यत्र समावेशः। अत्र सूत्रे अपरं कार्यमित्यपि च्छेदः। अत एव तत्तदिष्टस्थलेषु पूर्वविप्रतिषेधोऽपि भवति। २ मनोरथः—'मनस् + रथः' इति स्थितौ सस्य रुत्वे कृते 'हशि च' इति उत्वे 'रो रि' लोपे च प्राप्ते 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इति परत्वाद् लोपे एव युक्तिसिद्धे, 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति हशि चेत्यस्य दृष्टौ 'रोरि' इत्यस्यासिद्धत्वाद् उत्वमेव स्यात्। अकारोकारयोर्गुणे ओकारे सिद्धं रूपं 'मनोरथः' इति। ३-एषस् + विष्णुः। सस् + शम्भुः। एवम्-एष शोभते, एष ददाति, स चलति, स च, इत्यादि। ४ = एषकस् + रुद्रः। अत्र अकच् प्रत्ययः "हशि च" इति रोरुत्वे सिद्धः। ५-असस् + शिवः। ६-एषस् + अत्र = एषोऽत्र, एवम्—सोऽहम्। ७-'लोपे सत्येव' इत्यवधारणेन इह न-'सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्' लोपे सत्यसत्यपि च छन्दः पूर्तेः। ८-सस् + इमामविड्ढि···। ९-सैष दाशरथिः—'सस् + एषः' इति स्थितौ 'सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्' इति सलोपे वृद्धौ सत्यां सैष दाशरथिरिति। अत्रायं समग्रः श्लोकः—

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः। सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः॥

इति विसर्गसन्धिः।

११४-ककार रहित एतत् और तत् शब्द सम्बन्धी सु का लोप होता है हल् परे रहते; नञ् समास में नहीं होता।

११५-तत् शब्द सम्बन्धी सु का लोप होता है अच् परे रहते, यदि लोप होने पर ही पाद-पूर्ति होती हो। इति विसर्गसन्धिः

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ षड्लिङ्गेषु—अजन्तपुंल्लिङ्गाः

[1]११६ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १ । २ । ४५ ।

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ।

११७ [2]कृत्तद्धित-समासाश्च । १ । २ । ४६ ।

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च [3]तथा स्युः ।

११८ स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्-ङेभ्यांभ्यस्-ङसिभ्यांभ्यस्-ङसोसाम् ङ्योस्सुप् ४ । १ । २ ।

अजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

१—अर्थोऽस्यास्तीति अर्थवत्, तेन धनं वनमित्यादौ प्रतिवर्णं सञ्ज्ञा न । सत्यां च तस्यां स्वादयः, 'सुपो धातु…' इति लोपेऽपि पदसंज्ञायां जरत्वनलोपादयो दुर्वाराः । एतत्सूत्रं सुभाषितस्यैतस्योत्तरम्—

तत्र प्रश्नः—

(क) विद्वान् कीदृग् वचो ब्रूते, (ख) को रोगी (ग) कश्च नास्तिकः ।
(घ) कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति, सूत्रं तत्पाणिनेर्वद ॥१॥

क्रमशः—(क) अर्थवत् =सार्थम् । (ख) अधातुः = निर्वीर्यः ।
(ग) अप्रत्ययः =विश्वासरहितः । (घ) प्रातिपदिकम् = प्रतिपत्तिथौ भवम् इति॥

२—कृतः तद्धिताश्च प्रययास्तेन तदन्ता ग्राह्याः प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति वचनात्, प्रत्ययान्तत्वेनाऽप्राप्तौ सूत्रमिदम् । समासग्रहणं तु नियमार्थम् । स चायं नियमः—

"यत्रार्थवति संघाते पूर्वो भागस्तथोत्तरः ।
स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हः समासस्यैव तस्य चेत्" इति । तेन वाक्यस्य न ।

३—प्रातिपदिकसंज्ञा इत्यर्थः

अथ अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण

११६—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से भिन्न अर्थवान् शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११७—कृदन्त, तद्धितान्त और समास की प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी।

११९ ङ्याप्-प्रातिपदिकात्। ४। १। १।

१२० प्रत्ययः ३। १। १।

१२१ परश्च ३। १। २।

इत्यधिकृत्य। [1]ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

१२२ सुपः १। ४। १०३।

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचन-द्विवचन-बहुवचनसंज्ञानि स्युः

१२३ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १। ४। २२।

[2]द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः।

१२४ विरामोऽवसानम् १। ४। ११०।

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। [3]रुत्वविसर्गौ। [4]रामः।

१२५ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १। २। ६४।

१–सूत्रत्रयस्य समुदितोऽयमर्थः। २–एकत्वविवक्षायाम् एकवचनम्, द्वित्वविवक्षायां द्विवचनम्। ३–'१०५ ससजुषो रुः' इति रुत्वम्। "९३ खरवसानयोर्विसर्जनीय" इति विसर्गः। ४–रामः—रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः = परमात्मा (तदवतारो दाशरथिः)। रामशब्दात् प्रथमैकवचने सुप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'राम+स्' इति स्थितौ 'स'स्य रुत्वे रेफस्य 'खरवसानयोः' इति विसर्ग इति सिध्यति रूपं 'रामः'।

११८–११९-१२०-१२१–पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक इन तीनों का अधिकार जाता है। ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

१२२ सुप् के तीन तीन वचन क्रम से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञक होते हैं।

१२३–द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और एकत्व की विवक्षा में एकवचन होता है।

१२४–वर्णों के अभाव की अवसान संज्ञा होती है।

१२५–एक विभक्ति में जिनका समान रूप देखा जाय वहाँ उनमें से एक ही शेष रहता है (अन्य का लोप होता है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

१२६ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६ । १ । १०२ ।

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते—

१२७ नादिचि ६ । १ । १०४ ।

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि। [1]रामौ।

१२८ बहुषु बहुवचनम् १ । ४ । २१ ।

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

१२९ चुटू १ । ३ । ७ ।

प्रत्ययाद्यौ [2]चुटू इतौ स्तः।

१३० विभक्तिश्च १ । ४ । १०४ ।

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

१३१ न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४ ।

विभक्तिस्थास्तवर्ग-सकार-मकाराः नेतः। इति सस्य नेत्त्वम्। रामाः।

१३२ एकवचनं सम्बुद्धिः २ । ३ । ४९ ।

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

१—रामः+औ "३३ वृद्धिरेचि" इति वृद्धिः। २—चवर्गः (च छ ज झ ञाः) टवर्गश्च (ट ठ ड ढ णाः) इत्यर्थः।

१२६—अक् से प्रथमा-द्वितीया सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है।

१२७—अवर्ण से इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता।

१२८—बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है।

१२९—प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

१३०—सुप् और तिङ् की विभक्ति संज्ञा होती है।

१३१—विभक्ति के तवर्ग, सकार, मकार की इत्सञ्ज्ञा नहीं होती।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१३२—सम्बोधन में प्रथमा के एकवचन (सु) की सम्बुद्धि संज्ञा होती है।

१३३ यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १ । ४ । १३ ।

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं [1]तस्मिन्नङ्गं स्यात् ।

१३४ एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६ । १ । ६९ ।

एङन्ताद् ह्[2]स्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम ! हे रामौ !

१३५ अमि पूर्वः ६ । १ । १०७ ।

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः । रामम्[3] । रामौ ।

१३६ लशक्वतद्धिते १ । ३ । ८ ।

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या ल-श-कवर्गा [4]इतः स्युः ।

१३७ तस्माच्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ ।

पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसः [5]सस्तस्य नः स्यात् पुंसि ।

१३८ अट्-कु-प्वाङ्-नुम्-व्यवायेऽपि ८ । ४ । २ ।

अट् कवर्ग-पवर्ग-आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासंभवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् [6]समानपदे । इति प्राप्ते—

१—प्रत्यये इत्यर्थः । २—सम्बुद्ध्याक्षिप्तस्याङ्गस्य एङ्ह्रस्वाभ्यां सम्बन्धः । ३—राम+अम् । ४—इत्संज्ञकाः । ५—सकारः । ६—समानपदम् =अखण्डपदम् ; तेन रघुनाथः इत्यत्र न णत्वम्, एवं रमानाथ-रामनाथादयः ।

१३३—जो प्रत्यय जिससे किया जाय, तदादि शब्दस्वरूप की उस प्रत्यय के परे रहते अङ्ग संज्ञा होती है ।

१३४—एङन्त ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है ।

१३५—अक् से अम् सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्वरूप होता है ।

१३६—तद्धित को छोड़कर प्रत्यय के आदि लकार, शकार और कवर्ग की इत्-संज्ञा होती है ।

१३७—पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे शस् के सकार को नकार आदेश होता है ।

१३८—अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका पृथक् २ या जितनों का सह-सम्भव हो उनका व्यवधान होने पर भी रेफ षकार से परे नकार को णकार होता है । समानपद में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१३९ पदान्तस्य ८ । ४ । ३७ ।

नस्य णो न ।[१] रामान् ।

१४० टा-ङसि-ङसामिनात्स्याः ७ । १ । १२ ।

अदन्तात्टादीनामिनादयः[२] स्युः । णत्वम् । रामेण[३] ।

१४१ सुपि च ७ । ३ । १०२ ।

यञादौ सुपि[४] अतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ।

१४२ अतो भिस[५] ऐस् । ७ । १ । ९ ।

"४५ अनेकाल् शित्सर्वस्य[६]" । रामैः ।

१४३ ङेर्यः ७ । १ । १३ ।

अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः ।

१४४ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ[७] १ । १ । ५६ ।

१–+ (श्) अस् । पूर्वसवर्णदीर्घे सस्य नः । २–'टा इत्यस्य 'इन', 'ङसि' इत्यस्य 'आत्' 'ङस्', इत्यस्य 'स्य' इति । ३–राम+(टा) इन । गुणो णत्वं च । ४–अदन्तस्याङ्गस्येत्यर्थः । ४–अदन्तादङ्गाद् 'भिस्' इत्यस्य 'ऐस्' स्यादिति सूत्रार्थः । ६–इति सर्वस्य भिसः 'ऐस्' वृद्धिविसर्गौ–रामैः ७–'अनल्विधौ' इति न अल्विधिः, तस्मिन् = अनल्विधौ । अल्विधिश्च=अलाश्रितो विधिः=अल्विधिः, एकवर्णाश्रितो विधिरित्यर्थः । अल् चेह स्थान्यवयव एव गृह्यते तदाह स्थान्यलाश्रयविधाविति यथा 'क इष्टः' इत्यत्र यज्धातोः क्तप्रत्यये सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च 'इष्टः' इति रूपम् । नात्र स्थानिवद्-भावाद् यकारं मत्वा 'हशि च' इत्युत्वं स्थान्यलाश्रयविधित्वात् ।

१३९–पदान्त के न को ण नहीं होता ।

१४०–अदन्त अंग से परे टा, ङसि, ङस् के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य आदेश होते हैं ।

१४१–यञादि सुप् परे रहते अदन्त अंग को दीर्घ होता है ।

१४२–अदन्त अङ्ग से परे भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है ।

१४३–अदन्त अङ्ग से परे ङे के स्थान में य आदेश होता है ।

१४४–आदेश स्थानिवत् होता है परन्तु स्थानी सम्बन्धी जो अल्, तदाश्रयविधि कर्तव्य हो तो स्थानिवत् नहीं होता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आदेशः स्थानिवत् स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ। इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः।[१] रामाय। रामाभ्याम्।

१४५ बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३।

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः। सुपि किम्—[३]पचध्वम्।

१४६ वाऽवसाने ८।४।५६।

अवसाने झलां चरो वा रामात्, रामाद्। रामाभ्याम् रामेभ्यः। रामस्य।

१४७ ओसि च ७।३।१०४।

अतोऽङ्गस्यैकारः[४]।[५] रामयोः।

१४८ ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४।

ह्रस्वन्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः।

१४९ नामि ६।४।३।

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः।[६] रामाणाम्। रामे। रामयोः। एत्वे कृते।

१–रामाय—रामशब्दात् चतुर्थ्येकवचने ङे-प्रत्यये 'ङेर्यः' इति यकारादेशे तस्य स्थानिवद्भावेन सुप्त्वात् 'सुपि चेति' दीर्घे 'रामाय' इति सिध्यति (अत्र दीर्घे कर्त्तव्ये सन्निपातपरिभाषा तु न प्रवर्त्तते 'कष्टाय क्रमणे' इति निर्देशात्)। २–'सुपि च' इति दीर्घस्यापवादोऽयम्। ३–अन्यथा "पचेध्वम्" इति स्यात्। नात्र सुप्, किन्तु (ध्वम्) तिङ्। ४–अदन्तस्याङ्गस्य एकारादेशः स्याद् ओसि परे इत्यर्थः ५–राम+ओस्, एत्वे "२२ एचोऽयवायावः" इति 'अय्' आदेशः। ६–रामाणाम्—रामशब्दात् षष्ठीविभक्तौ बहुवचने 'राम+आम्' इति स्थितौ 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि' अनुबन्धलोपे राम नाम् इति जाते 'नामि' इति दीर्घे नस्य 'अट् कुप्वाङ्' इति णत्वे सिध्यति रूपं रामाणाम्' इति। ७–राम+(ङि) इ, गुणः।

१४५–झलादि बहुवचन सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है।

१४६ अवसान में (अन्त में) झलों के स्थान में चर् होते हैं विकल्प से।

१४७–ओस् परे रहते अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है।

१४८–ह्रस्वान्त नद्यन्त और आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् का आगम होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१४९–नाम् परे रहते अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

१५० आदेश-प्रत्यययोः ८ । ३ । ५९ ।

इण्कुभ्यां परस्य पदान्तस्य आदेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य [1]मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः ।[2]

१५१ सर्वादीनि [3]सर्वनामानि १ । १ । २७ ।

सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि[4] व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् । (इति सर्वादयः) ।

१५२ जसः शी ७ । १ । १७ ।

अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । [5]अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । [6]सर्वे ।

१—आन्तरतम्यात् षकार इत्यर्थः ५—अकारान्ताः सर्वेऽपि पुंल्लिङ्गाः शब्दाः । रामशब्दस्य सप्तविभक्तिषु प्रयोगः—

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणाऽभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ॥
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम् ।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम ! मां पालय ॥ १ ॥

३—सर्वादिगणपठितानि सर्वनामसञ्ज्ञानि भवन्तीत्यर्थः । सर्वस्य नाम 'सर्वनाम' इत्यन्वर्थेयं सञ्ज्ञा, 'सर्वनाम' इति महासञ्ज्ञाकरणसामर्थ्यात् , तेन सर्वो नाम कश्चित् तस्मै 'सर्वाय' (नतु सर्वस्मै) । सर्वमतिक्रान्तोऽतिसर्वस्तस्मै 'अतिसर्वाय' इति । "संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः" इति फलितम् । ४—इमानि त्रीणि गणसूत्राणि । ५—नतु शित्वात्सर्वादेशः सर्वादेशात्प्राक् शकारस्य इत्संज्ञाया एवाभावात् । सर्वादेशे जाते एव स्थानिवद्भावेन प्रत्ययत्वात् "लशक्वतद्धिते" इति इत्संज्ञा अत एव "नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्" इत्यपि न प्रवर्तते । ६—सर्वे—सर्वशब्दात् प्रथमा बहुवचने जस् प्रत्यये, सर्वनाम-

---

१५०—इण् कवर्ग से परे अपदान्त आदेशरूप और प्रत्ययावयव सकार को षकार आदेश होता है ।

१५१—सर्वादि शब्द-स्वरूप सर्वनाम संज्ञक होते हैं ।

१५२—अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी आदेश होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१५३ सर्वनाम्नः स्मै ७ । १ । १४ ।

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै । सर्वस्मै ।

१५४ ङसि-ङ्योः स्मात्-स्मिनौ ७ । १ । १५ ।

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ।

१५५ आमि सर्वनाम्नः सुट् ७ । १ । ५२ ।

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः । [1]एत्व-षत्वे । [2]सर्वेषाम् । सर्वस्मिन्[3], शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः । उभशब्दो द्विवचनान्तः । उभौ २ । उभाभ्याम् ३ । उभयोः २ । तस्येह [4]पाठोऽकजर्थः । उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति । डतर-डतमौ प्रत्ययौ । प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहण-

---

संज्ञायां 'जसः शी' इति जसः शीभावे शकारस्य इत्संज्ञायां लोपे च 'आद्गुणः' इति गुणे सिध्यति रूपं 'सर्वे' इति ।

१—एत्वम् "बहुवचने झल्येत्" इत्यनेन । षत्वम् "आदेशप्रत्यययोः इत्यनेन । २—सर्वेषाम् सर्वशब्दात् षष्ठीबहुवचने 'सर्व आम्' इति स्थितौ 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुडागमे 'सर्व साम्' इति जाते 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इत्यनेन षत्वे सिध्यति रूपं 'सर्वेषाम्' इति ।

३—प्र०	सर्वः,	सर्वौ,	सर्वे ।	पं० सर्वस्मात्,	सर्वाभ्यां,	सर्वेभ्यः ।
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ,	सर्वान् ।	ष० सर्वस्य,	सर्वयोः,	सर्वेषाम् ।
तृ०	सर्वेण,	सर्वाभ्याम्,	सर्वैः ।	स० सर्वस्मिन्,	,,	सर्वेषु ।
च०	सर्वस्मै,	सर्वाभ्याम्,	सर्वेभ्यः ।	सं० हे सर्व !	प्रथमावत् शेषम् ।	

४—अकच्प्रत्ययार्थः, तथा च सूत्रम् "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः" इति । द्विवचनेऽन्यस्य तु कस्यापि सर्वनामसंज्ञाकार्यस्य नास्ति प्रसङ्गः । ५—अस्ति, इति हरदत्तः । नास्ति इति कैयटः ।

१५३—अदन्त सर्वनाम से परे 'ङे' को 'स्मै' आदेश होता है ।

१५४—अदन्त सर्वनाम से परे 'ङसि' 'ङि' को क्रम से स्मात् और स्मिन् होते हैं ।

१५५—अवर्णान्त अङ्ग से परे सर्वनाम से किये गए आम् को सुट् का आगम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मिति तदन्ता[1] ग्राह्या। नेम[2] इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु न, यथासंख्यमनुदेशः [3]समानाम्" इति ज्ञापकात्।

१५६ पूर्वपरावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४।

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात् सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे, पूर्वाः। असंज्ञायां किम्-उत्तराः कुरवः। स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था। व्यवस्थायां किम्—दक्षिणा गाथकाः कुशला इत्यर्थः।

१५७ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५।

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। स्वे, स्वाः= आत्मीयाः [5]आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः=ज्ञातयोऽर्था वा।

१५८ अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः[6] १।१ ३६।

---

१ कतर-कतम-यतर-यतम-ततर-ततम-एकतर-एकतमेत्यादयः। २—सर्वनामसंज्ञ इति शेषः। ३—अन्यथा समेषामिति स्यात्। ४—स्वस्य (पूर्वादिशब्दस्य) अभिधेयः (दिग्देशकालरूपः) तेन अपेक्ष्यते इति स्वाभिधेयापेक्षः (अवधिः) तस्य अवधेर्नियम इति 'स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमः'=(व्यवस्था)। तथा च यत्र कस्मात् पूर्वं कस्मादपरमित्यवश्याकांक्षानियमः स्यात् तत्रैव भवति सर्वनामसञ्ज्ञा। "दक्षिणा गाथकाः" इत्यत्र तु दक्षिणशब्दः चतुरवाचक इति नावधेराकाङ्क्षा। एवम् "अधरे रागः" "उत्तरे प्रत्युत्तरे च शक्तः" इत्यादावपि अवधिनियमाभावात् (अधर-उत्तरशब्दयोः) न सर्वनामसंज्ञा। ५—स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः (क) आत्मा (ख) आत्मीयः (ग) धनम् (घ) ज्ञातिश्च (जातिः)। तत्रात्मात्मीयवाचिनः सर्वनामसंज्ञा, नतु ज्ञातिधनवाचिनः। ६—उपसंव्यानम्=परिधानीयम्=(वस्त्रादिकम्)।

१५६—पूर्व आदि शब्दों की व्यवस्था में और असंज्ञा में सर्वत्र गणसूत्र से नित्य प्राप्त सर्वनाम सञ्ज्ञा जस् में विकल्प से होती है। (पूर्वादि शब्दों के अर्थ से अपेक्षित अवधि के नियम को व्यवस्था कहते हैं)।

१५७—ज्ञाति धन से अन्य आत्मा-आत्मीय अर्थ में स्व शब्द को गणसूत्र से नित्य प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस् परे रहते विकल्प से होती है।

१५८ बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द की गणसूत्र से प्राप्त नित्य सर्वनाम संज्ञा जस् परे रहते विकल्प से होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। अन्तरे अन्तरा वा गृहाः बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः, परिधानीया इत्यर्थः।

१५९ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७। १। १६।

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। एवं परादीनाम्। शेषं सर्ववत्।

१६० प्रथम चरम-तयाल्पाऽर्ध-कतिपय-नेमाश्च १। १। ३३।

एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः प्रथमे, प्रथमाः। तयः [1]प्रत्ययः। द्वितये, द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे, नेमाः, शेषं सर्ववत्। ([2]तीयस्य ङित्सु वा) द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जरः[3]।

१६१ जराया जरसन्यतरस्याम्[4] ७। २। १०१।

अजादौ विभक्तौ। 'पदाङ्गाधिकारे तस्य (च)[5] तदन्तस्य च'। [6]निर्दिश्य

१–तेन तदन्ताः=(तयप्प्रत्ययान्ताः) =द्वितय-द्वय-त्रितय-त्रय-चतुष्टय-पञ्चतय-षट्तय-सततय-अष्टतय-नवतय-दशतयादयो ग्राह्याः, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति नियमात् केवलप्रत्ययस्य सर्वनामत्वे प्रयोजनाभावात्। २–तीयस्य=तीयप्रत्ययान्तस्य ङित्सु ङिद्वचनेषु (ङे ङसि-ङस् ङि इत्येतेषु)। ३–निर्गतो जराया इति निर्जरः=देवः "अमरा निर्जरा देवाः" इत्यमरः। ४–जराशब्दस्य 'जरस्' आदेशः स्याद् वा अजादौ विभक्तौ, इति सूत्रार्थः। ५-(अत्राङ्गधिकारः) तेन निर्जरस्यापि सिद्धम्। ६–सर्वस्य 'निर्जर'—शब्दस्यादेशप्राप्तौ वचनम्—निर्दिश्यमानस्येति, सूत्रे यावन्मात्रस्य स्थानित्वेन निर्देशस्तावन्मात्रस्येत्यर्थः।

१५९–पूर्वादि नौ शब्दों से परे ङसि और ङि को स्मात् और स्मिन् विकल्प से होते हैं।

१६०–प्रथम, चरम, तयप्रत्ययान्त और अल्प, अर्ध, कतिपय, नेम की जस् परे रहते सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

१६१–जरा शब्द को जरस् आदेश होता है विकल्प से अजादि विभक्ति परे रहते। (वार्तिक–(१) पदाधिकार और अंगाधिकार में जो कार्य जिसको कहे गये हैं उसको और वह शब्द जिसके अन्त में हो उसको–दोनों को–होते हैं। (२) बताये गये मात्र को आदेश होता है। (३) एकदेशविकृत होने पर भी वह अन्य नहीं हो जाता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मानस्यादेशा भवन्ति !' [1]एकदेशविकृतमनन्यवदिति जरशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ[2] निर्जरसः। इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। [3]विश्वपाः।

१६२ दीर्घाज्जसि च ६ । १ । १०५ ।

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः। विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ।

१६३ सुडनपुंसकस्य १ । १ । ४३ ।

स्वादि पञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि [4]स्युरक्लीबस्य।

१६४ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १ । ४ । १७ ।

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं [5]पदं स्यात्।

१६५ यचि भम् १ । ४ । १८ ।

यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्।

१६६ आ कडारादेका संज्ञा १ । ४ । १

इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च[6]।

१–नहि छिन्नपुच्छोऽश्वो गर्दभो भवति, तेन। २–निर्जरसौ–निर्जरशब्दात् प्रथमा-द्विवचने 'निर्जर औ' इति स्थितौ 'जरायाः जरसन्यतरस्याम्' इति 'जरस्' आदेशे सिध्यति रूपं 'निर्जरसौ' जरसादेशाभावपक्षे 'निर्जरौ' इति। ३–विश्वं पाति=रक्षति इति 'विश्वपाः' अत्र क्विप् प्रत्ययः, तस्य (क्विपः) लोपः। ४–अनपुंसकस्य=नपुंसकभिन्नस्य। ५–पदसंज्ञं स्यात्। ६–तेनेत्थं व्यवस्था (सु-औ-जस्-अम्-औट्) इति सर्वनामस्थान-भिन्नायाम् अजादौ (शसादौ) विभक्तौ 'भ'-संज्ञा, हलादौ च 'पद' संज्ञा।

१६२–दीर्घ से जस् और इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता।

१६३–नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर स्वादि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है।

१६४–सु से लेकर कप्प्रत्यय पर्यन्त सर्वनामस्थान से भिन्न प्रत्यय परे रहते पूर्व की पदसंज्ञा होती है।

१६५–सु से लेकर कप्प्रत्यय तक सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि तथा अजादि प्रत्यय परे रहते पूर्व की भ संज्ञा होती है।

१६६–'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहले एक की एक ही संज्ञा होती है। जो पर और अनवकाश हो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१६७ आतो धातोः ३ । ४ । १०४ ।

आकारान्तो यो [1]धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । अलोऽन्त्यस्य । [2]विश्वपः । विश्वपा । [3]विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शङ्खध्मादयः[4] धातोः किम्-[5]हाहान् । हाहै । हाहाः२ । हाहौः२ : हाहाम्[6] । [7]हाहे । हरिः । [8]हरी ।

१६८ जसि च ७ । ३ । १०९ ।

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः । हरयः ।

१६९ ह्रस्वस्य गुणः ७ । ३ । १०८ ।

सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

१७० शेषो घ्यऽसखि १ । ४ । ७ ।

शेष इति स्पष्टार्थम् । ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम् ।

१—"क्विबन्ता विडन्ताः विजन्ताः (शब्दाः) धातुत्वं न जहति" इति क्विबन्तस्यापि 'विश्वपा' शब्दस्य धातुत्वम् । २—विश्वपः विश्वपाशब्दात् द्वितीया बहुवचने शसि 'विश्वपा अस्' इति स्थितौ 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'आतो धातोः' इति सूत्रेणाकारलोपे रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'विश्वपः' इति ।

३—

प्र०	विश्वपाः,	विश्वपौ,	विश्वपाः ।
द्वि०	विश्वपाम्	,,	विश्वपः ।
तृ०	विश्वपा,	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः ।
च०	विश्वपे,	,,	विश्वपाभ्यः ।
पं०	विश्वपः,	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः ।
ष०	,,	विश्वपोः,	विश्वपाम् ।
स०	विश्वपि	,,	विश्वपासु ।
सं०	हे विश्वपाः ! शेषं प्रथमावत्—		

४—आकारान्ताः पुंल्लिङ्गाः । ५—'हाहा' शब्दोऽनुकरणं नतु धातुरूपः, (हां जहातीति विग्रहे तु धातुरेव हाहाशब्दः, विश्वपावत्) । ६—दीर्घत्वान्नुडभावः । ७—शेषं विश्वपावत् । ८—हरि औ- "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति सूत्रेण पूर्वसवर्णदीर्घः ।

१६७—अकारान्त जो धातु तदन्त भसंज्ञक अङ्ग का लोप होता है ।

१६८—ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है जस् परे रहते ।

१६९—ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है सम्बुद्धि परे रहते ।

१७०—ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों की घिसंज्ञा होती है सखि शब्द को छोड़कर ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१७१ आङो नाऽस्त्रियाम् ७ । ३ । १२० ।

घेः परस्याङोना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा[1] हरिणा[2] । हरिभ्याम् । हरिभिः ।

१७२ घेर्ङिति ७ । ३ । १११ ।

घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः । [3]हरये ।

१७३ ङसि-ङसोश्च ६ । १ । ११० ।

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः । [4]हरेः । हर्योः । हरीणाम् ।

१७४ अच्च घेः ७ । ३ । ११९ ।

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत् । [5]हरौ । हर्योः । हरिषु । एवं [6]कव्यादयः ।

१७५ अनङ् सौ ७ । ३ । ९३ ।

सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसंबुद्धौ[7] सौ ।

१७६ अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १ । १ । ६५ ।

१—'टा' इति तृतीयैकवचनस्य 'आङ्' इति संज्ञा-इत्यर्थः । २—हरिणा—हरिशब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'शेषो ध्यसखि' इत्यनेन घिसंज्ञायाम् 'आङो नास्त्रियाम्' इत्यनेन 'टा' इत्यस्य नादेशे नस्य णादेशे सिध्यति रूपं 'हरिणा' इति । ३—हरि+(ङे) ए, गुणे, अय् =हरये । ३—हरि+(ङसि) अस्, अत्र गुणे पूर्वरूपं विसर्गः = हरेः । ५—हरि+ङि अच्च घेः=('हरि' इत्यस्य) अत् ('हर' इति) 'ङि' इत्यस्य 'औत्' वृद्धिः=हरौ । ६—(ह्रस्व)—इकारान्ताः पुंल्लिङ्गाः=कविरव्यादयः । ७—सम्बुद्धिभिन्ने ।

१७१—घि संज्ञक से परे आङ् (टा) को ना होता है ।

१७२—घिसंज्ञक को गुण होता है ङित् सुप् परे रहते ।

१७३—एङ् से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे रहते दोनों के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है ।

१७४—इकार उकार से परे ङि को औत् और इ को अ आदेश होता है ।

१७५—अङ्गसंज्ञक सखि शब्द को अनङ् होता है सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते ।

१७६—अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्।

१७७ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६ । ४ । ८ ।

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

१७८ अपृक्त एकाल्[1] प्रत्ययः १ । २ । ४१ ।

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

१७९ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सु-ति-स्यपृक्तं हल् ६ । १ । ६८ ।

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते।

१८० नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८ । २ । ७ ।

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत् पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्। [3]सखा।

१८१ सख्युरसम्बुद्धौ ७ । १ । ९२ ।

सख्युरङ्गात् परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात्।

१८२ अचो ञ्णिति ७ । २ । ११५ ।

१—एकाल्—एकवर्णरूपः। २—'सु'—सम्बन्धि, 'ति' (तिप्) सम्बन्धि, तिपा साहचर्यात् 'सि' (सिप्)—सम्बन्धि (नतु सिच् सम्बन्धि)। ३—सखा—सखि-शब्दात् प्रथमैकवचने सुविभक्तौ अङ्गसंज्ञायां 'अनङ् सौ' इति 'अनङ्' अनुबन्धलोपे 'सखन् स्' इति स्थितौ 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति उपधा दीर्घे 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्' इत्यादिना सूत्रेण सकारलोपे 'नलोपः प्रतिपदिकान्तस्य' इति नकारलोपे सिध्यति रूपं 'सखा' इति।

१७७—नान्त की उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

१७८—एक अल् वाले प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है।

१७९—हलन्त से परे सु, ति, सि के अपृक्त हल् का लोप होता है और दीर्घ ङी, आप् से सु के अपृक्त हल् का लोप होता है।

१८०—प्रातिपदिक संज्ञक पद के अन्तिम नकार का लोप होता है।

१८१—अङ्गसंज्ञक सखि शब्द से परे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थाम णिद्वत् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१८२—अजन्त अङ्ग को वृद्धि होती है ञित् णित् प्रत्यय परे रहते।

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञ्णिति णिति च परे। [1]सखायौ। सखायः। हे सखे। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या। सख्ये।

१८३ ख्यत्यात् परस्य ६।१।११२।

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः[2]।

१८४ औत् ७।३।११८।

इदुतोः परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

१८५ पतिः समास [3]एव १।४।८।

घिसंज्ञः। [4]पत्या। पत्ये। पत्युः २। पत्यौ। शेषं हरिवत्। समासे तु—[6]भूपतये। [7]कतिशब्दो बहुवचनान्तः।

१८६ बहु-गण-वतु-डति संख्या[8] १।१।२३।

१—सखायौ—सखिशब्दात् प्रथमाद्विवचने अविभक्तौ 'सखि औ' इति स्थिते 'सख्युरसम्बुद्धौ' इति णिद्वद्भावे 'अचो ञ्णिति' इति सूत्रेण वृद्धौ कृतायाम् आयादेशे सिध्यति रूपं 'सखायौ' इति। २ सखि+(ङसि) अस् यणि कृते 'सख्यस्' उत्वे 'सख्युः'। षष्ठीविभक्तौ—सख्युः, सख्योः, सखीनाम्। शेषमुच्चारणं स्पष्टं मूले। ३—'पति' शब्दः समास एव 'घि'—संज्ञ इत्यर्थः। तेन केवलस्य न घिसंज्ञाकार्याणि। ४—पत्या—'पति' शब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'पतिः समास एव' इति नियमात् घिसंज्ञाभावे 'इको यणचि' इति यणि सिध्यति रूपं 'पत्या' इति। ५—'ख्यत्यात्परस्य' इत्यनेन 'उत्वम्'। ६—समासे घिसंज्ञाकार्याणि भवन्त्येव। शेषं सर्वं हरिवत्। ७—'किमः सङ्ख्यापरिमाणे डति च' इति 'डति'—प्रत्यये टिलोपः, का सङ्ख्या येषां ते कति नित्यं बहुवचनान्तोऽयम्। ८—बहुः गणः वतुः डतिः इत्येषां समाहारः=बहुगणवतुडति सङ्ख्या=एते 'सङ्ख्या' संज्ञाः स्युरित्यर्थः, वतु-डतिप्रत्ययौ, तत्र तदन्ता ग्राह्याः, वत्वन्ता डत्यन्ता इति।

१८३—यण् हो जाने पर ह्रस्व खि ति शब्द और दीर्घ खी ती शब्द से परे ङसि ङस् के अकार को उकार आदेश होता है।

१८४—इकार उकार से परे ङि को औत् आदेश होता है।

१८५—पति शब्द की समास में घि संज्ञा होती है।

१८६—बहु शब्द गण शब्द वतुप्रत्ययान्त और डतिप्रत्ययान्त की संख्या संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१८७ डति च १ । १ । २५ ।

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ।

१८८ षड्भ्यो लुक् ७ । १ । २२ ।

[१]जश्शसोः ।

१८९ प्रत्ययस्य लुक्-श्लु-लुपः १ । १ । ६१ ।

लुक्-श्लु-लुप्-शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं [२]स्यात् ।

१९० प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १ । १ । ६२ ।

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात् । इति जसि चेति गुणे प्राप्ते—

१९१ न लुमताऽङ्गस्य १ । १ । ६३ ।

[३]लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । [४]कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम् । कतिषु । युष्मदस्मद्षट्संज्ञकास्त्रिषु [५]सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । [६]त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ ।

१९२ त्रेस्त्रयः ७ । १ । ५३ ।

१—'षट्–संज्ञकेभ्यो जस्-शसोर्लुक् स्यात् । २—लुक्-श्लु-लुप् संज्ञमित्यर्थः । ३—लुक्-श्लुः लुप् (च) इत्येते लुमन्तः शब्दाः । ४—कति—'कति' शब्दात् प्रथमाबहुवचने जसि षट्संज्ञायां 'षड्भ्यो लुक्' इति जसो लुकि सिध्यति रूपं 'कति' इति । (नच 'प्रत्यय-लोपे प्रत्ययलक्षणम्' इति प्रत्ययलक्षणेन 'जसि-चे' ति गुणः स्यादिति वाच्यम्, 'न लुमताङ्गस्ये' ति प्रत्ययलक्षणाभावात् । ५—सरूपाः = समानरूपाः, समानोच्चारणाः इत्यर्थः । ६—त्रि + (जस्) अस्, "जसि च" इति गुणः, अयादेशः ।

१८७—डति प्रत्ययान्त संख्यावाचक शब्द की षट्संज्ञा होती है ।

१८८—षट्संज्ञक से परे जस्, शस् का लुक् होता है ।

१८९—लुक्, श्लु, लुप् इन शब्दों से किया गया जो प्रत्यय का अदर्शन, उसकी क्रम से लुक्, श्लु, लुप् संज्ञा होती है ।

१९०—प्रत्यय के लोप होने पर भी तदाश्रित कार्य होता है ।

१९१—लुक्, श्लु, लुप् शब्दों से जहाँ लोप हुआ हो वहाँ तन्निमित्तक अङ्ग कार्य नहीं होता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९२—त्रि शब्द को त्रय आदेश होता है, आम् परे रहते ।

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि—[1]प्रियत्रयाणाम् ।

१९३ त्यदादीनामः ७ । २ । १०२ ।

एषामकारो विभक्तौ । ([2]द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः) द्वौ । द्वौ । [3]द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । पाति लोकमिति [4]पपीः=सूर्यः । दीर्घाज्जसि च । पप्यौ २ । पप्यः । हे पपीः । पपीम् । पप्या । पपीभ्याम् ३ । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः २ । पप्यः । पप्योः । दीर्घत्वान्न नुट्, [5]पप्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । पपी[6], पप्योः । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः । बह्व्यः [7]श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ।

१९४ [8]यू स्त्र्याख्यौ नदी १ । ४ । ३ ।

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः (प्रथमलिङ्गग्रहणं च)=पूर्वं [9]स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ।

१९५ [10]अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७ । ३ । १०७ ।

१–बहुव्रीहिसमासे (अन्यपदार्थप्रधाने) समागतानि समस्तानि गौणानि = उपसर्जनानि वा उच्यन्ते । प्रियास्त्रयो यस्य स 'प्रियत्रिः' तेषां 'प्रियत्रयाणाम्' । २–'त्यद्' इत्यारभ्य 'द्वि' शब्दपर्यन्तमेव 'अ' कारो भवति इति इष्यते–इष्टिः । ३–द्वाभ्याम्—'द्वि' शब्दात् तृतीयाद्विवचने भ्यामि विभक्तौ 'त्यदादीनामः' इति इकारस्याकारे 'सुपि चे' ति दीर्घे सिध्यति रूपं 'द्वाभ्याम्' इति । ४–'यापोः किद् द्वे च' इत्युणादिसूत्रेण 'ई'—प्रत्ययः, द्वित्वम्, आलोपश्च, 'आतो लोप इटि च' इत्यनेन । ५–आमि रूपमिदम् । ६–पपी—'पपीशब्दात्' सप्तम्येकवचने 'ङि' विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'पपी' इति रूपम् । ७–श्रेयस्यः = कल्याण्यः स्त्रियः । ८–ईश्च ऊश्च 'यू'=ईदूदन्तौ इत्यर्थः, स्त्र्याख्यौ=नित्यस्त्रीलिङ्गौ, इत्यर्थः, स्त्रियम् आचक्षाते इति विग्रहाद्, तदेवाह वृत्तौ । ९–यः शब्दः प्रथमं स्त्रीलिङ्गः स्यात् पश्चादुपसर्जनदशायां लिङ्गविपर्ययेऽपि तस्य नदीसंज्ञा भवतीति भावः । १०–'अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ, इति सूत्रार्थः ।

१९३–त्यदादियों को अकार अन्तादेश होता है विभक्ति परे रहते (द्वि शब्द तक)।

१९४–ईदन्त, ऊदन्त नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी संज्ञा होती है ।

(वा० जो शब्द पहले नित्य स्त्रीलिंग हो वह उपसर्जन होने से अन्यलिंग में भी नदीसंज्ञक होता है ।)

१९५–अम्बार्थक और नदीसंज्ञक का ह्रस्व होता है सम्बुद्धि परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि ।

१९६ आण्नद्याः ७ । ३ । ११२ ।

नद्यन्तात् परेषां [1]ङिताम् आडागमः ।

१९७ आटश्च ६ । १ । ९० ।

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः । [2]बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः२ । नद्यन्तत्वान्नुट् । बहुश्रेयसीनाम् ।

१९८ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७ । ३ । ११६ ।

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम् । [3]बहुश्रेयस्याम् । शेषं पपीवत् । [4]अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः—अतिलक्ष्मीः, शेषं बहुश्रेयसीवत् । प्रधीः[5] ।

१९९ अचि श्नु-धातु-भ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६ । ४ । ७७ ।

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते—

१–ङिताम् ङिद्वचनानाम् (ङे, ङसि, ङस् , ङि इत्येतेषाम्) । २–बहुश्रेयस्यै—'बहुश्रेयसी' शब्दात् चतुर्थ्येकवचने 'ङे' विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'बहुश्रेयसी ए' इति स्थिते नदीसंज्ञायाम् 'आण् नद्याः' इति आडागमे. 'बहुश्रेयसी आ ए' इति जाते 'आटश्चे' ति वृद्धौ 'इको यणचि' इति यणि सिध्यति रूपं बहुश्रेयस्यै इति । (यद्यपि 'बहुश्रेयसी' शब्दस्य नित्यस्त्रीलिङ्गत्वाभावात् 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' इत्यनेन नदीसंज्ञा न प्राप्नोति, तथापि 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' इति वार्तिकेन भवत्येवात्र नदीसंज्ञा) । ३–नुटः परत्वादाट् । ४–"लक्षेर्मुट् च" इत्युणादिसूत्रेण 'ई' प्रत्ययः, मुडागमश्च 'अत एव ङीबन्तत्वाभावाद् हल्ङ्याब्भ्य इति सुलोपो न । ५–प्रध्यायतीति प्रधीः, इति विग्रहः । प्रकृष्टा धीर्यस्येति विग्रहे तु 'धी'-शब्दस्य नित्यस्त्रीत्वात् यथायथं नदीकार्याणि भविष्यन्त्येव (बहुश्रेयसीवत्) ।

१९६—नद्यन्त से परे ङिद्वचनों को आट् का आगम होता है ।

१९७—आट् से अच् परे रहते वृद्धि एकादेश होता है ।

१९८—नद्यन्त, आबन्त और नीशब्द से परे ङि को आम् आदेश होता है ।

१९९—श्नुप्रत्ययान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त, जो धातु और "भ्रू" अंग को इयङ् उवङ् आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२०० एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६ । ४ । ८२ ।

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये । [1]प्रध्यौ । प्रध्यम् । प्रध्यः । प्रध्यि । शेषं पपीवत् । एवं [2]ग्रामणीः । ङौ तु ग्रामण्याम्[3] । अनेकाचः किम्—नीः नियौ नियः । अमि शसि च परत्वादियङ् । नियम्[4] । नियः । ङेराम्, नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम्—सुश्रियौ[5] । यवक्रियौ ।

२०१ गतिश्च १ । ४ । ६० ।

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ([6]गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते) । शुद्धधियौ ।

२०२ न भूसुधियोः ६ । ४ । ८५ ।

१—प्रध्यौ—'प्रधी' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'अचिश्नु धातु' 'इत्यनेन इयङि प्राप्ते 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' इत्यनेन यण् सिध्यति रूपं 'प्रध्यौ' इति । २—ग्रामं नयति इति ग्रामणीः = ग्राममुख्यः, (भाषायाम् 'नम्बरदार' इति) । ३—ग्रामण्याम्—'ग्रामणी' शब्दात् सप्तम्येकवचने ङिविभक्तौ 'ग्रामणी इ' इति स्थिते 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' इति सूत्रेण ङेरामि 'एरनेकाचो' इति यण् सिध्यति रूपं 'ग्रामण्याम्' इति । ४—नी + अम्, अत्र "इको यणचि" इति प्राप्तं यणं बाधित्वा "अमि पूर्वः" इति पूर्वरूपं प्राप्नोति, ततः परत्वात् "अचि श्नु ···" इति 'इयङ्' "एरनेकाच····" इति त्विह न प्रवर्ततेऽनेकाच्त्वाभावात् । ५—शोभनं श्रयतीति विग्रहः । शोभना श्रीर्यस्येति विग्रहे तु नदीत्वं स्यादेव । ६—गतिकारकपूर्वपदस्यैव यण् इति भावः, तेन शुद्धा धीर्यस्य स शुद्धधीः, शुद्धधियौ, शुद्धधियः । इत्यादौ 'शुद्धशब्दस्य' गतिकारकत्वाभावान्न यण् किन्तु इयङ् । उपसर्गाणामेव गतिसंज्ञा ।

२००—धातु के अवयवों का संयोग नहीं है पूर्व में जिसके ऐसा जो इवर्ण, उवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग उसको यण् होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

२०१—प्रादियों की क्रिया के योग में गति संज्ञा होती है ।

(वा॰ गतिकारक से इतर पूर्वपद हो तो यण् नहीं होता) ।

२०२—भू और सुधी को यण् नहीं होता अजादि सुप् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

एतयोरचि सुपि यण् न [1]सुधियौ। सुधियः, इत्यादि। सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतमिच्छतीति सुतीः। सुख्यौ, सुत्यौ। सुख्युः,[2] सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः[3]।

२०३ तृज्वत् क्रोष्टुः ७।१।९५।

असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः।

२०४ ऋतो ङि-सर्वनामस्थानयोः ७।३।११०।

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते—

२०५ [4]ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७।१।९४।

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ।

२०६ अप्तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षत्तृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तॄणाम् ६।४।११।

१—सुधियौ—'सुधी' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औ विभक्तौ 'सुधी औ' इति स्थिते 'इको यणचि' इति यणं बाधित्वा 'अचि श्नुधातु....' इत्यनेन इयङ् प्राप्नोति, तं च 'एरनेकाचो' इति यण् बाधते, यणं च तं 'न भूसुधियोः' इति निषेधति पुनश्च 'अचिश्नु' इत्यादिना इयङि कृते सिध्यति रूपं 'सुधियौ' इति। २—सुखी+(ङसि)अस्, सुती+(ङसि) अस्, यणि कृते "ख्यत्यात्परस्य" इति-उत्वम्।

३—१	भानुः	भानू,	भानवः।
२	भानुम्,	,,	भानून्।
३	भानुना,	भानुभ्याम्,	भानुभिः।
४	भानवे	,,	भानुभ्यः।
५	भानोः,	भानुभ्याम्,	भानुभ्यः।
६	भानोः,	भान्वोः,	भानूनाम्।
७	भानौ	,,	भानुषु।
(सं०)	हे भानो!		शेषं प्रथमावत्।

एवं ह्रस्व-उकारान्ताः सर्वेऽपि पुंलिङ्गाः शब्दा बोध्याः।

४—उशना = शुक्राचार्यः। पुरुदंसा = मार्जारः। अनेहा = समयः।

२०३—क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होता है, सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

२०४—ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है ङि और सर्वनामस्थान परे रहते।

२०५—ऋदन्त और उशनस् आदि को अनङ् आदेश होता है सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते।

२०६—अप् आदियों की उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ।[1] क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् । क्रोष्टून् ।

२०७ विभाषा तृतीयादिष्वचि ७ । १ । ९१ ।

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । क्रोष्ट्रे ।

२०८ ऋत उत् ६ । १ । १११ ।

ऋतो ङसिङसोरत उदेकादेशः । रपरः ।

२०९ रात् सस्य ८ । २ । २४ ।

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रेफस्य विसर्गः । [2]क्रोष्टुः । क्रोष्टोः । (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि[3] । पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहूः । हूह्वौ । हूह्वः । हूहून् । इत्यादि ।

१—क्रोष्टा—'क्रोष्टु' शब्दात् प्रथमैकवचने सुविभक्तौ 'तृज्वत् क्रोष्टुः' इति तृज्वद्भावे 'क्रोष्टृ स्' इति स्थिते 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' इत्यनेन प्राप्तं गुणं बाधित्वा 'ऋदुशनस् पुरुदंसोऽनेहसां च' इत्यनेन अनङि 'क्रोष्टन् स्' इति जाते एकदेशविकृतमनन्यवद्' इति न्यायेन 'अप् तृन्' इति उपधा दीर्घे 'हल्ङ्याब्भ्यो:' इति सलोपे नकारलोपे च सिध्यति रूपं 'क्रोष्टा' इति । २–क्रोष्टुः—'क्रोष्टु' शब्दात् पञ्चम्येकवचने 'ङसि' विभक्तौ वैकल्पिके तृज्वद्भावे 'क्रोष्टृ अस्' इति स्थिते 'ऋत उत्' इति उत्वे एकादेशे रपरत्वे च 'क्रोष्टुर् स्' इति जाते 'रात्सस्य' इति सकारलोपे रेफस्य विसर्गे 'क्रोष्टुः' इति रूपम् ।

३–१ क्रोष्टा,	क्रोष्टारौ,	क्रोष्टारः	५ क्रोष्टुः = क्रोष्टोः, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः
२ क्रोष्टारम्,	,,	क्रोष्टून्	६ ,,=,, , क्रोष्ट्रोः = क्रोष्ट्वोः, क्रोष्टूनाम्
३ क्रोष्ट्रा=क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः	७ क्रोष्टरि=क्रोष्टौ, ,,=,, क्रोष्टुषु
४ क्रोष्ट्रे=क्रोष्टवे,	,,	क्रोष्टुभ्यः	(सं०) हे क्रोष्टो ! शेष प्रथमावत् ।

२०७–क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होता है विकल्प से, अजादि तृतीयादि विभक्ति परे रहते ।

२०८–ऋदन्त अङ्ग से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे रहते पूर्व पर के स्थान में उकार आदेश होता है ।

२०९–रेफ से परे संयोगान्तलोप केवल स का ही होता है अन्य का नहीं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः। हे अतिचमु !। अतिचम्वै। अतिचमूनाम्। खलपूः।

२१० ओः सुपि ६।४।८६।

धात्ववयव-संयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। [1]खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। [2]स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः।

२११ वर्षाभ्वश्च ६।४।८४।

अस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः। (दृन्-कर-पुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः) दृन्भ्वौ। एवं करभूः। [3]धाता। हे धातः !। धातारौ। धातारः। (ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्) धातॄणाम्। एवं नप्त्रा-

---

१—द्वितीयायाम्—खलप्वम्, खलप्वौ, खलप्वः। एवं सर्वत्राजादौ विभक्तौ यण्।

२–स्वभुवौ—'स्वभू' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'इको यणचि' इति प्रातं यणं वाधित्वा 'अचि श्नु धातु…' इति उवङ् प्राप्नोति, तञ्च 'ओः सुपि' इति यण् बाधते तञ्चापि 'न भू सुधियो' रिति निषेधति, पुनश्च 'अचि श्नु' इति उवङि कृते सिध्यति रुपं 'स्वभुवौ' इति।

४–१ धाता	धातारौ,	धातारः।		५ धातुः,	धातृभ्याम्,	धातृभ्यः।
२ धातारम्	,,	धातॄन्।		६ ,,	धात्रोः,	धातॄणाम्।
३ धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः।		७ धातरि,	,,	धातृषु।
४ धात्रे,	,,	धातृभ्यः।		(सं०) हे धातः ! शेषं प्रथमावत्।		

एवम्—ऋकारान्ताः कर्तृ-भर्तृ-सवित्रादयः।

(वा०—नुम्, अच् परे रहते रभाव और तृज्वद्भाव इनकी अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से नुट् ही होता है।)

२१०–धातु के अवयवों का संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसको यण् होता है अजादि सुप् परे रहते।

२११–वर्षाभू शब्द के अवयव उवर्ण के स्थान में यण् होता है अजादि सुप् परे रहते।

(वा० (१) दृन्करपुनः पूर्वक भू के उवर्ण को यण् होता है अजादि सुप् परे रहते। (२) ऋवर्ण से परे न को ण होता है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दयः। नप्त्रादिग्रहणं [1]व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न—पिता, [2]पितरौ पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत्। एवं जामात्रादयः। ना[3]। नरौ।

२१२ नृ च ६। ४। ६।

अस्य नामि वा दीर्घः नृणाम्, नॄणाम्।

२१३ गोतो णित्[4] ७। १। ६०।

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत्[5]। गौः। गावौ। गावः।

२१४ औतोऽम् शसोः ६। १। ६३।

ओतोऽम् शसोरचि आकार एकादेशः। गाम्। [6]गावौ। गाः। गवा। गवे। गोः २। इत्यादि[7]।

१—उणादिविषयेऽस्ति पक्षद्वयम् "उणादीनि-अव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि" इत्येकः। 'व्युत्पन्नानि' इत्यपरः। व्युत्पन्नानीति पक्षे सर्वे एते शब्दाः उणाद्यन्तगंताः प्रकृतिप्रत्ययविभागवन्तः। अव्युत्पत्तिपक्षे च नैतेषु प्रकृतिप्रत्ययविभागवन्तः। तत्र व्युत्पत्तिपक्षे = व्युत्पन्नानि-इति मते नप्त्रादीनामपि तृन्-तृजन्तत्वेनैव दीर्घे सिद्धे पुनस्तेषां ग्रहणं नियमार्थम्-"सिद्धौ सत्यामारभ्यमाणो विधिर्नियमाय" इति न्यायात्। स नियमश्चायम् "उणादिनिष्पन्नानां तृन्-तृच्-प्रत्ययान्तानां संज्ञाशब्दानां चेदुपधादीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेव" इति। तेन पित्रादीनां न—पिता, पितरौ, पितरः। अव्युत्पत्तिपक्षे तु तेषु सर्वत्र प्रकृतिप्रत्ययकल्पनाऽभावात् सूत्रे गृहीतानामेव भविष्यति दीर्घः, इति पितृमात्रादीनां दीर्घप्राप्तिरेव नास्ति। २—पितरौ—'पितृ' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' इत्यनेन रपरे गुणे सिध्यति 'पितरौ' इति। ('अप्तृन्' इति दीर्घस्तु न; नप्त्रादिग्रहणस्य व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थत्वात्)। ३—नृ+सु+अनङ्, सुलोपः, दीर्घः, ना = पुरुषः। ४—ओतो णिदिति वाच्यम्, अत एव वृत्तौ ओकाराद् विहितमित्यादि। ५—णिद्वद्भावात् "अचो ञ्णिति" इति वृद्धिः, गौः, गावौ इत्यादि। ६—गावौ 'गो' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ णिद्वद्भावे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ 'एचोऽयवायावः' इति आवादेशे 'गावौ' इति रूपं सिध्यति। ७—गोशब्द उभयलिङ्गः, उच्चारणं समानमेव। सप्तम्याम् -गवि, गवोः, गोषु।

२१२—नृ को दीर्घ होता है विकल्प करके नाम् परे रहते।

२१३—ओकार से विहित सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है,

२१४—ओकार से अम् शस् सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में आकार एकादेश होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२१५ रायो हलि ७ । २ । ८५ ।

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः[1] । रायौ । रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः ग्लौभ्यामित्यादि ।

इत्यजन्ताः पुंल्लिङ्गाः

अथाजन्त-स्त्रीलिंगाः

[2]रमा ।

२१६ औङ आपः ७ । १ । १८ ।

आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा । [3]रमे । [4]रमाः ।

२१७ सम्बुद्धौ च ७ । ३ । १०६ ।

१—रै-शब्दोऽयं धनवाची—तदुच्चारणम् :—

१	राः,	रायौ,	रायः ।
२	रायम्	,,	,,
३	राया,	राभ्याम्,	राभिः ।
४	राये,	,,	राभ्यः ।
५	रायः	राभ्याम्,	राभ्यः ।
६	रायः,	रायोः,	रायाम् ।
७	रायि	,,	रासु ।

(सं०) हे राः ! प्रथमावत् ।

इत्यजन्ताः पुंल्लिङ्गाः ।

२— रमते-इति रमा 'रम्' धातोः पचाद्यचि टाप् । रमा सु+"हल्ङ्याब्" इति सुलोपः । ३—रमा+औ, औङः शीभावे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च गुणः । ४—रमा+(जस्) अस् यद्यपि पूर्वसवर्णदीर्घः प्राप्तः, परं "दीर्घाज्जसि च" इति निषेधात् न भवति, ततश्च "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घो भवति । शसि तु "प्रथमयोः" इति पूर्वसवर्णदीर्घ एव ।

२१५—रैशब्द को आकार अन्तादेश होता है हलादि विभक्ति परे रहते ।

इत्यजन्तपुंल्लिङ्ग प्रकरणम

अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम

२१६—आबन्त अंग से परे औ को शी आदेश होता है ।

२१७—आबन्त अंग को एकार होता है सम्बुद्धि में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ। एङ् ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः। हे रमे ! हे रमे ! हे रमाः ! रमाम्। रमे। रमाः।

२१८ आङि चापः ७ । ३ । १०५ ।

आङि ओसि चाप एकारः। [1]रमया। रमाभ्याम्। रमाभिः।

२१९ याडापः ७ । ३ । ११३ ।

[2]आपो ङितो याट्। [3]वृद्धिः। [4]रमायै। रमाभ्याम् ३। रमाभ्यः २। रमायाः २। रमयोः २। [5]रमाणाम्। [6]रमायाम्। रमासु। एवं दुर्गाम्बिकादयः[7]।

२२० सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७ । ३ । ११४ ।

आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः। [8]सर्वस्यै। सर्वस्याः २। सर्वासाम्। [9]सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। [10]एवं विश्वादयः आबन्ताः।

१–रमा+(टा) आ, आप एत्वेऽयादेशः। २–आबन्तात्परस्य ङिद्वचनस्य 'याट्' आगम इत्यर्थः। ३–"वृद्धिरेचि" इत्यनेन। ४–रमायै 'रमा' शब्दात् चतुर्थ्येकवचने ङे-विभक्तौ 'रमा ए' इति स्थितौ 'याडापः' इति याडागमे टकारलोपे 'रमा या ए' इति जाते 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ सिध्यति रूपं 'रमायै' इति। ५–रमा+आम् आबन्तत्वात् "ह्रस्वनद्यापो नुट्" इति आमो नुट् (आगमः) नस्य णत्वं रमाणाम्। ६–रमा+ङि. "ङेराम्नद्याम्नीभ्यः" इति ङेरामि, स्थानिवद्भावेन आमो ङित्वमाश्रित्य "याडापः" इति याट्। ७–आकारान्ताः स्त्रीलिङ्गाः प्रायः सर्वे। ८–सर्वस्यै सर्वशब्दात् स्त्रीत्वे टाप्, सर्वा (ङे) ए, याटोऽपवादः 'स्याट्' पूर्वस्य—आप अकारस्य ह्रस्वः "वृद्धिरेचि" इति वृद्धिः, न तु "आटश्चेति" अत्राटैकदेशत्वेनाऽनर्थकत्वात्। ९–सर्वस्याम्—'सर्वा' शब्दात् सप्तम्येकवचने ङिविभक्तौ 'ङे राम्नद्याम्नीभ्यः' इति ङेरामि स्थानिवद्भावेन ङित्वमाश्रित्य 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याटि आपश्च ह्रस्वे 'सर्वस्या आम्' इति स्थितौ सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपं 'सर्वस्याम्' इति। १०–सर्वाशब्दतुल्या इत्यर्थः।

२१८–आङ् ओस् परे रहते आबन्त अंग को एकार होता है।

२१९–आबन्त अंग से परे ङिद्वचन को याट् का आगम होता है।

२२०–आबन्त सर्वनाम से परे ङिद्वचन को स्याट् का आगम होता है और आप् को ह्रस्व होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२२१ विभाषा दिक् समासे बहुव्रीहौ १ । १ । २८ ।

सर्वनामता वा । [1]उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै । [2]तीयस्येति वा संज्ञा । द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । एवं तृतीया । (१९५) अम्बार्थेति ह्रस्वः । हे अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! जरा । [3]जरसौ, इत्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । [4]गोपा विश्वपावत् । [5]मतीः । मत्या[6] ।

२२२ ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६ ।

[7]इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै, [8]मतये । मत्याः २, मतेः २ ।

२२३ इदुद्भ्याम् ७ । ३ । ११७ ।

१–उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालम् = उत्तरपूर्वा, तस्यै—उत्तरपूर्वस्यै । २–"तीयस्य ङित्सु वा" इत्यनेन । ३–जरसौ—'जरा' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'जरायाः जरसन्यतरस्याम्' इति जराशब्दस्य जरसादेशे 'जरसौ' इति रूपं पक्षे च 'औङ् आपः' इति औङः शीत्वेऽनुबन्धलोपे पूर्वपरयोर्गुणे भवति रूपं 'जरे' इति । ४–गाः पातीति गोपाः स्त्री, नायं टाबन्तः किन्तु क्विबन्तः, तेन सुलोपो याट् च न । सर्वं चास्योच्चारणं पुंल्लिङ्गविश्वपाशब्दवद् बोध्यम् । गोशब्दस्य स्त्रीत्वे तु गोपी, इत्येव । ५–मति + (शस्) अस् पूर्वसवर्णदीर्घे सस्य रुत्वविसर्गौ, स्त्रीत्वान्नत्वं न । ६–स्त्रीत्वात् 'ना'–भावो न । ७–इयङुवङ्प्रातियोग्यौ इति भावः । ८–मति + (ङे) ए नद्यन्तत्वादाट् , वृद्धौ यण् , मत्यै । नदीत्वाभावपक्षे घिसंज्ञाकार्यम् गुणः, आय् ।

२२१–दिक्समास बहुव्रीहि की सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है ।

२२२–इयङ् उवङ् के स्थानी स्त्री शब्द से भिन्न नित्य स्त्रीलिंगवाची ईकार ऊकार तथा ह्रस्व इवर्ण उवर्ण की नदीसंज्ञा विकल्प से होती है, ङिद्वचन परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२२३–नदी संज्ञक इकार उकार से परे ङि को आम् होता है ।

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्, [1]मतौ। शेषं हरिवत्। एवं बुद्ध्यादयः[2]।

२२४ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९।

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ

२२५ अचि र ऋतः ७।२।१००।

तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। [3]गुण-दीर्घोत्वानामपवादः। [4]तिस्रः, तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः। आमि नुट्।

२२६ न तिसृचतसृ ६।४।४।

एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु। द्वे[5]। द्वे। द्वाभ्याम्।

१—मति+ङि, नदीत्वाभावपक्षे 'घि' संज्ञायाम् "अच्च घेः" इति इकारस्याऽकारः, ङेरौत्वे च "वृद्धिरेचि" इति वृद्धौ सत्याम् मतौ—

१ मतिः,	मती,	मतयः	५—मत्याः=मतेः, मतिभ्याम् मतिभ्यः
२ मतिम्,	मती,	मतीः	६— ,, ,, मत्योः, मतीनाम्
३ मत्या	मतिभ्याम्,	मतिभिः	७—मत्याम् =मतौ, ,, मतिषु
४ मत्यै=मतये	,,	मतिभ्यः	सं० हे मते! (इत्यादि। मतिः=बुद्धिः)

२—(ह्रस्व)—इकारान्ताः स्त्रीलिङ्गाः। ३—'तिस्र' इति जसि 'ऋतो ङि....' इति प्राप्तम् "जसि च" इति प्राप्तं वा गुणं बाधते। 'तिस्रः' इति शसि पूर्वसवर्णदीर्घं बाधते। 'प्रियतिस्रः' इति ङसि "ऋत उत्" इति उत्वञ्चापवादत्वादयं बाधते इत्यर्थः। ४—(त्रि) तिसृ+(जस्) अस्, ऋकारस्य रेफादेशः। शब्दोऽयं नित्यबहुवचनान्तः। एवं (चतुर्) चतसृ-शब्दोऽपि बोध्यः। ५—'द्वि' शब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। स्त्रीत्वे विभक्तौ "त्यदादीनामः" इत्यत्वे टाप् (द्वि) द्वा+औ इति स्थितौ "औङ आपः" इत्यौकारस्य शीत्वे गुणः=द्वे इति सिद्धम्।

२२४—त्रि और चतुर् शब्द को स्त्रीलिङ्ग में तिसृ और चतसृ आदेश होता है।

२२५—तिसृ चतसृ शब्द के ऋ को र होता है अच् परे रहते।

२२६—तिसृ चतसृ को नाम् में दीर्घ नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । गौरी । [1]गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि[2] ! । गौर्यैं । इत्यादि । एवं नद्यादयः । [3]लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः[4] । स्त्री । हे स्त्रि ! ।

१२७ स्त्रियाः ६ । ४ । ७९ ।

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रियः ।

१२८ वाम्शसोः ६ । ४ । ८० ।

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम्, स्त्रीम् । स्त्रियः, स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रियाः । परत्वान्नुट्, स्त्रीणाम्[5] । स्त्रीषु । श्रीः । श्रियौ । श्रियः ।

२२९ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १ । ४ । ४ ।

१—गौरी औ= गौर्यौ, गौरी+अस् =गौर्यः । उभयत्रापि "दीर्घाज्जसि च" इति निषेधात्पूर्वसवर्णदीर्घो न, किन्तु यण् । २—हे गौरि ! इत्यत्र "अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः" इति ह्रस्वः ३—"लक्षेर्मुट् च" इत्युणादिसूत्रेण 'ई-प्रत्ययो मुडागमश्च अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः ।

४—अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धी-ह्री-श्रीणामुणादिषु ।
सप्त-स्त्रीलिङ्गशब्दानां न सुलोपः कदाचन ॥

५—स्त्रीणाम्—'स्त्री' शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' इति नदीसंज्ञायां 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुडागमे 'पर्जन्यवत् लक्षणप्रवृत्तिः' इति न्यायेन दीर्घस्यापि पुन 'नामि' इति दीर्घे णत्वे 'स्त्रीणाम्' इति रूपम् । "स्त्रियाः" इति प्राप्तम् इयङादेशं परत्वाद् "ह्रस्वनद्यापो नुड्" इति नुड् बाधते, स्त्रीणाम् । सप्तम्यां तु स्त्री+ङि, ङेराम् इयङ् एव, न तु नुट्, अत्र आमो लाक्षणिकत्वात् 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् इति न्यायात् ।

२२७—स्त्री शब्द को इयङ् आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते ।

२२८—स्त्री शब्द को इयङ् विकल्प से होता है; अम् और शस् में ।

२२९—इयङ् उवङ् के स्थानी नित्य स्त्रीलिंग ईकार ऊकार की नदीसंज्ञा नहीं होती है, स्त्री शब्द को छोड़कर (अर्थात् स्त्री शब्द की तो नदी संज्ञा होती है) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री। हे श्रीः। [1]श्रियै। श्रियाः २, श्रियः २।

२३० वामि १।४।५।

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। [2]श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियि, श्रियाम्। धेनुर्मतिवत्।

२३१ स्त्रियां च ७।१।९६।

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते।

२३२ ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५।

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप्। क्रोष्ट्री गौरीवत्। [3]भ्रूः श्रीवत्। स्वयंभूः पुंवत्।

२३३ न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१०।

ङीप्टापौ न स्तः।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च [5]ननान्दा [6]दुहिता तथा।
[7]याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः।

१—"ङिति ह्रस्वश्च" इति ङित्सु (ङे ङसि ङस् ङि इत्येतेषु) वा नदी संज्ञा। श्री+(ङे) ए। "आण्नद्याः" इत्याट्, "आटश्च" इति वृद्धिः, इयङ्। नच 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' इति ङित्स्वपि नदीसंज्ञानिषेधः स्यादिति वाच्यम्, 'हे श्रीः!' इति सम्बोधने तस्य चरितार्थत्वात्, ङिति पृथग्विधानाच्च। २—नदीत्वपक्षे नुट्। ३—हे भ्रूः!। ४—षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्-टापौ न स्तः। इति सूत्रार्थः ५—ननान्दा ननान्दरौ, ननान्दरः। ननान्दरम्, ननान्दरौ, ननान्दॄः। ननान्द्रा। ननान्द्रे। ननान्दुः २। ननान्द्रोः २। ननान्दरि। हे ननान्दः!। ननान्दा=पत्युर्भगिनी (नँनद इति भाषायां)। ६—दुहिता, दुहितरौ, दुहितरः। ७—याता, यातरौ, यातरः (भ्रातृभार्याः परस्परं यातरः)

२३०—इयङ् उवङ्-स्थानी, नित्यस्त्रीलिंङ्ग ईकार ऊकार की नदी संज्ञा होती है विकल्प से आम् परे रहते; स्त्री को छोड़कर।

२३१—स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्द के तृजन्त के सदृश रूप होते हैं।

२३२—ऋदन्त और नान्तों से ङीप् होता है स्त्रीलिङ्ग में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२३३—षट्संज्ञक और स्वस्रादियों से ङीप् और टाप् नहीं होते। इति स्त्रीलिङ्गाः।

स्वसा। स्वसारौ। माता पितृवत्, [1]मातॄः। द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौर्ग्लौवत्।

इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

अथाजन्त-नपुंसकलिङ्गाः

२३४ अतोऽम् ७।१।२४।

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्[2]। अमि पूर्वः। ज्ञानम्। एङ्ह्रस्वादिति [3]हल्लोपः, हे ज्ञान।

२३५ नपुंसकाच्च ७।१।११।

क्लीबादौङः शी स्यात्। [4]भसंज्ञायाम्।

२३६ यस्येति च ६।४।१४८।

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः इत्यलोपे प्राप्ते ([5]औङः श्यां प्रतिषेधः) ज्ञाने।

२३७ जश्शसोः शिः।७।१।२०।

क्लीबादनयोः शिः स्यात्।

१—मातॄः—'मातृ' शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि अनुबन्धलोपे 'मातृ अस्' इति स्थितौ 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति ऋकारस्य दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'मातॄः' ('तस्माच्छसो नः पुंसि' इति तु नात्र प्रवर्त्तते, मातृशब्दस्य पुंल्लिंगत्वाभावात्)। २—अमोऽम्-विधानम् "स्वमोर्नपुंसकात्" इति प्राप्तस्य लुको बाधनार्थम्। ३—मकार-लोपः, सम्बुद्धिलोपस्य नित्यत्वेन सोरेव वा प्राग्लोपः। ४—'सुडनपुंसकस्य" इति नपुंसकवर्जमेव सुटः सर्वनामस्थानसंज्ञा। तेन "यचि भम्" इति 'भ' संज्ञा। ५—औङ्स्थानिके शीभावेऽल्लोपौ ('यस्येति च' इति प्राप्तः,) न भवतीत्यर्थः।

अथ अजन्तनपुंसकलिंगप्रकरणम्

२३४—अदन्त नपुंसक अंग से परे सु और अम् को अम् होता है।

२३५—नपुंसक अंग से परे औङ् को शी होता है।

२३६—भसंज्ञक इवर्ण अवर्ण का लोप होता है इकार और तद्धित परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२३७—नपुंसक से परे जस् शस् को शि होता है।

२३८ शि सर्वनामस्थानम् १ । १ । ४२ ।

शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ।

२३९ नपुंसकस्य झलचः ७ । १ । ७२ ।

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ।

२४० मिदचोऽन्त्यात् परः १ । १ । ४७ ।

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् । उपधादीर्घः । [1]ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं धन-वन-फलादयः ।

२४१ [2]अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७ । १ । २५ ।

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ।

२४२ टेः ६ । ४ । १४३ ।

डिति भस्य टेर्लोपः । [3]कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य [4]त्वन्यतममित्येव । (एकतरात् प्रतिषेधो [5]वक्तव्यः) एकतरम् ।

ज्ञानानि—ज्ञान+(जस्) शि, शकारस्येत्संज्ञालोपौ, सर्वनामस्थानसंज्ञा, नुम्, ज्ञानन्+इ, इति स्थितौ, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इत्युपधादीर्घः । २–डित्करणं टिलोपार्थम् । ३–कतरत्—'कतर' शब्दात् प्रथमैकवचने सुविभक्तौ अमादशं बाधित्वा 'अद्ड्-डतरादिभ्यः, पञ्चभ्यः' इति सोरद्ड्आदेशेऽनुबन्धलोपे 'कतर अत्' इति स्थितौ भसंज्ञायां 'टेः' इति टिलोपे 'कतरत्' इति सिद्धम् । ४–नायं तमप्प्रत्ययान्तः, किन्तु अव्युत्पन्नप्रातिपदिकः, स्वभावाद् बहुविषये निर्धारणे वर्तते, डतम–प्रत्ययान्तत्वाभावादेव न सर्वनामसंज्ञापि, ततश्च अन्यतमाय । अन्यतमात् । अन्यतमानाम् । अन्यतमे । इत्येतान्येव रूपाणि; नतु स्मै–स्मात्–सुट्–स्मिन् घटितानि । ५–अद्डादेशस्येति भावः ।

२३८–शि की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है ।

२३९–झलन्त और अजन्त नपुंसक अंग को नुमागम होता है, सर्वनामस्थान परे रहते ।

२४०–अचों के मध्य में अन्त्य अच् से परे और उसी अन्त्य अच् का अन्तावयव मित् होता है ।

२४१–नपुंसकलिंग में डतरादि पाँच से परे सु अम् को अद्ड् आदेश होता है ।

२४२–डित् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक टि का लोप होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२४३ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १ । २ । ४७ ।

अजन्तस्येत्येव । [1]श्रीपम् । ज्ञानवत् । द्वे २ । त्रीणि २ ।

२४४ [2]स्वमोर्नपुंसकात् ७ । १ । २३ ।

लुक्स्यात् । वारि ।

२४५ इकोऽचि विभक्तौ ७ । १ । ७३ ।

इगन्तस्य नुमचि विभक्तौ । वारिणी । [3]वारीणि । (१९१) न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे[4]सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः । हे वारे !, हे वारि ! । आङो ना, वारिणा । घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते । (वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन) वारिणे । वारिणः २ । वारिणोः २ । नुमचिरेति नुट् । [5]वारीणाम् । वारिणि । हलादौ हरिवत् ।

१—श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि २ । श्रीपेण । णत्वं च 'एकाजुत्तरपदे णः' इत्यनेन । २—लुगित्यनुवर्त्तते । ३—वारि+(जस्) 'शि' इत्यस्य सर्वनामस्थानत्वात् 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति दीर्घः । ४—अनित्यत्वे च ज्ञापकम् 'इकोचि विभक्तौ' इत्यत्राचिग्रहणमेव, तच्चेत्थम्—सूत्रे 'अचि' ग्रहणाभावे, वारिभ्यामित्यादौ तु जातेऽपि नुमि 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नकारलोपात् न किञ्चिद् वैरूप्यम् । 'सु'—विभक्तौ च सोर्लुकि परतो विभक्तेरभावात् प्राप्नोत्येव न नुम् । न च 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' स्यादिति वाच्यम् "न लुमताऽङ्गस्य" इति तन्निषेधात् । तथा च व्यर्थं सद् 'अचि' ग्रहणं 'न लुमताङ्गस्य' इत्यस्याऽनित्यत्वं ज्ञापयति । ५—वारीणाम्='वारि' शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति प्राप्तं नुटं बाधित्वा 'इकोऽचि विभक्तौ' इत्यनेन नुम् प्राप्नोति तं च 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' इति वार्तिकबलेन नुट् बाधते । 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्' णत्वे सिध्यति रूपं 'वारीणाम्' इति ।

(वा०-एकतर शब्द से परे सु और अम् को अद्ड् आदेश नहीं होता) ।

२४३—नपुंसक लिङ्ग में अजन्त प्रातिपादिक को ह्रस्व होता है ।

२४४—नपुंसक अङ्ग से परे सु और अम् का लुक होता है ।

२४५—नपुंसक इगन्त अङ्ग को नुम् होता है, अजादि विभक्ति परे रहते ।

(वा०-वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव, गुण की अपेक्षा नुम् होता है, पूर्वविप्रतिषेध से) ।

CC-0, Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२४६ अस्थि-दधिद-सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७ । १ । ७५ ।

एषामनङ् स्यात् टादावचि ।

२४७ अल्लोपोऽनः ६ । ४ । १३४ ।

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थान-यजादि-स्वादिपरो योऽम् तस्याकारस्य लोपः । दध्ना । दध्नः । दध्नः । दध्नोः । दध्नोः ।

२४८ विभाषा ङिश्योः ६ । ४ । १३६ ।

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । [1]दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थि-सक्थ्यक्षि । [2]सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे !, हे सुधि ! ।

२४९ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य ७ । १ । ७४ ।

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये[3] भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा टादावचि ।

१–दध्नि 'दधि' शब्दात् सप्तम्येकवचने ङिविभक्तौ 'दधि इ' इति स्थितौ 'अस्थि दधि' इति अनङादेशे 'दधन् इ' इति जाते 'विभाषा ङिश्योः' इति वैकल्पिकेऽकारलोपे सिध्यति रूपं 'दध्नि' इति । पक्षे 'दधनि' इति । २–सु=शोभना धीर्यस्य तत्कुलम् =सुधि । 'ह्रस्वो नपुंसके' इति ह्रस्वः ।

३–'यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते ।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यादुक्तपुंस्कं (भाषितपुंस्कं) तदुच्यते' ॥
'पीलुर्वृक्षः फलं पीलु, पीलुने नतु पीलवे ।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं, तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥

तथा चात्र 'सुधि' शब्दो भाषित–पुंस्कः पुंल्लिङ्गे नपुंसकलिंगे च 'शोभना धीर्यस्य' इति एकमेवार्थमुपादाय प्रवृत्तत्वात् ।

२४६—अस्थ्यादि शब्दों को अनङ् होता है; टादि अच् परे रहते ।

२४७—अङ्ग का अवयव, सर्वनामस्थान से भिन्न यजादि स्वादिपरक जो अन्, उस के अकार का लोप होता है ।

२४८—अङ्गादि परक अन् का लोप होता है, विकल्प से ङि और शि परे रहते ।

२४९—प्रवृत्तिनिमित्त एक होने पर, भाषितपुंस्क इगन्त नपुंसक शब्द को पुंवद्भाव होता है, विकल्प से टादि अच् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुधिया, सुधिनेत्यादि। मधु। मधुनी मधूनि। हे मधो! हे मधु! सुलु। सुलुनी। सुलूनि। सुल्वा सुलुनेत्यादि। धातृ। धातृणी। धातॄणि। हे धातः!, हे धातृ! धात्रा, धातृणा; धातॄणाम्। एवं ज्ञात्रादयः।

२५० एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८।

[1]आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव[2] स्यात्। [3]प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। [4]प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्। [5]प्रराभ्याम्। [6]सुनु। सुनुनी। सूनूनि। सुनुनेत्यादि।

इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः

अथ हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः

२५१ हो ढः ८।२।३१।

हस्य ढः स्याद् झलि पदान्ते च। [7]लिट्, लिड्। लिहौ। लिहः। लिड्भ्याम्। लिट्त्सु, [8]लिट्सु।

१—'ह्रस्वो नपुंसके प्रा········' इत्यादिना आदिश्यमानेषु। २–एचः स्थाने ह्रस्वः-अकार इक् च प्राप्नोति, तत्रायं नियमः (इगेव नतु अकारः)। ३–प्रद्योशब्दः नपुंसकलिंगे-एकारोदाहरणं च स्मृतां इयेंन तत्कुलं स्मृति, स्मृते-शब्दः। ४–प्रै शब्दः। ५–प्रराभ्याम्—बहुव्रीहौ प्रकृष्टः रा=धनं यस्येति तत्कुलं प्ररि 'ह्रस्वो नपुंसके' इति इकारः 'प्ररि' शब्दात् तृतीयाद्विवचने भ्यामि 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति न्यायेन 'रायो हलि' इति आत्वे सिध्यति रूपं 'प्रराभ्याम्' इति। ६–सुनौ शब्दः।

इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः।

७—लेढीति लिट् (कर्त्तरि क्विप्) सुलोपे ढत्वे जश्त्वम् वा चर्त्वं च।

८—लिट्त्सु–'डः सि धुट्' इति धुट् 'खरि च' इति चर्त्वम्, तस्याऽसिद्धत्वात्, 'चयो द्वितीया···' इति तकारस्य थकारो न।

२५०—आदिश्यमान ह्रस्वों के मध्य में एच् के स्थान में इक् ही ह्रस्व होता है।

इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

अथ हलन्तपुंलिंगप्रकरणम्

२५१—हकार को ढकार होता है झल् पर रहते और पदान्त में।

eGC. Nepal-Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२५२ दादेर्धातोर्घः ८ । २ । ३२ ।

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः ।

२५३ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८ । २ । ३७ ।

[1]धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष्, से ध्वे पदान्ते च । धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । [2]धुक्षु ।

२५४ वा द्रुह-मुह-ष्णुह-ष्णिहाम् ८ । २ । ३३ ।

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च । ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्, द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुट्सु, [3]ध्रुट्त्सु । एवं मुह् ।

२५५ धात्वादेः षः सः ६ । १ । ६४ ।

[4]स्नुक्, स्नुग्, स्नुट्, स्नुड् । एवं स्निह् ।

२५६ इग्यणः संप्रसारणम् १ । १ । ४५ ।

१—धातोरित्यनुवर्तते 'एकाचः' 'झषन्तस्य' इति च धात्ववयवस्य विशेषणम् । एकाच् झषन्तश्च यो धात्ववयवः (व्यपदेशिवद्भावेन धातुर्वा) तस्य (तदवयवस्य) बशः (ब-ग ड-दानाम्) भष् (भ-घ-ढ-धाः) स्यात्सकारे ध्वशब्दे च (परे) पदान्ते च, इति सूत्रार्थः । २—दुह+सु (प्), हस्य घत्वे चर्त्वम्, 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वम्, क्-ष्, संयोगे क्षः । ३—'वा द्रुह...' इति घत्वाभावपक्षे ढत्वे जश्त्वे च 'ङः सि धुट्' इति वैकल्पिको 'धुट्' भष्भावश्च । ४—ष्णुह् धातुः, षस्य सत्वे 'निमित्तापाये नैमितकस्याप्यपायः' इति णस्य नत्वम् ।

२५२–उपदेश में दादि धातु के अवयव हकार को घकार होता है झल् परे रहते और पदान्त में ।

२५३–धातु का अवयव जो एकाच् झलन्त, तदवयव बश् को भष् होता है, सकार और ध्वशब्द परे रहते और पदान्त में ।

२५४–द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् के ह को घ होता है विकल्प से, झल् परे रहते और पदान्त में ।

२५५–धातु के आदि ष को स होता है ।

२५६–यण् के स्थान में हुए इक् की संप्रसारण संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः स्यात् ।

२५७ वाह ऊठ् ६ । ४ । १३२ ।

[1]भस्य वाहः संप्रसारणमूठ् ।

२५८ संप्रसारणाच्च ६ । १ । १०८ ।

संप्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः । [2]वृद्धिः । [3]विश्वौहः । [4]इत्यादि ।

२५९ चतुरनडुहोराम्रुदात्तः ७ । १ । ९८ ।

अनयोराम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे ।

२६० सावनडुहः ७ । १ । ८२ ।

अस्य नुम् स्यात् सौ परे । [5]अनड्वान् ।

२६१ अम् संबुद्धौ ७ । १ । ९९ ।

हे अनड्वन् ! अनड्वाहौ । अनड्वाहः । अनडुहः । अनडुहा ।

१—'भ'-संज्ञकस्य । २—'एत्येधत्यूठ्सु' इत्यनेन । ३—विश्वौहः—'विश्ववाह् शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि अनुबन्धलोपे विश्ववाह् अस् इति स्थितौ भसंज्ञायां 'वाह ऊठ्' इत्यनेन ऊठि संप्रसारणे 'विश्व ऊ आह अस्' इति जाते 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'एत्येधत्यूठ्सु' इति वृद्धौ सिध्यति रूपं 'विश्वौहः' इति । ४—विश्वौहा, विश्ववाड्भ्याम्, विश्ववाड्भिः इत्यादि । सुपि–विश्ववाट् (सु) त्सु, 'धुट्' वा । एवं भारं वहतीति भारवाट्, भारवाहौ, भारवाहः । भारवाहम्, भारवाहौ, भारौहः । भारौहा, भारवाड्भ्याम् । भारौहे । भारौहाः २ । भारौहोः २ । भारौहाम् । भारौहि । भारवाट्सु, भारवाट्त्सु, । इत्यादयः । ५–अनडुह् + सु, आम् (अनड्वाह् + सु), नुम्, अनड्वान्ह् + सु सुलोपः, "संयोगान्तस्य....'' इति हकारलोपः, तस्याऽसिद्धत्वान्नलोपो न अनड्वान् । इह "वसु-स्रंसु....'' इति दत्वं तु न, "सावनडुहः'' इति 'नुम्'–विधानसामर्थ्यात् ।

२५७–भसंज्ञक वाह् शब्द को ऊठ् संप्रसारण होता है ।

२५८–संप्रसारण से अच् परे रहते पूर्वरूप एकादेश होता है ।

२५९–चतुर और अनडुह् शब्द को आम् होता है, सर्वनामस्थान परे रहते ।

२६०–अनडुह् शब्द को नुमागम होता है, सु परे रहते ।

२६१–अनडुह् शब्द को संबोधन में अमागम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२६२ वसु-स्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८ । २ । ७२ ।

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते । अनुडुद्भ्यामित्यादि । सान्तेति किम्—विद्वान्[1] । पदान्ते किम्—स्रस्तम्[2] ध्वस्तम् ।

२६३ सहेः साडः सः ८ । ३ । ५६ ।

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः । [3]तुराषाट् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ।

२६४ दिव औत् ७ । १ । ८४ ।

दिविति प्रातिपदिकस्यौत् स्यात् सौ । [4]सुद्यौः । सुदिवौ ।

२६५ दिव उत् ६ । १ । १३१ ।

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते । सुद्युभ्याम् । इत्यादि । चत्वारः[5] । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ ।

२६६ षट्चतुर्भ्यश्च ७ । १ । ५५ ।

एभ्य आमो नुडागमः ।

२६७ रषाभ्यां[6] नो णः समानपदे ८ । ४ । १ ।

"अचो रहाभ्यां द्वे"[7] । [8]चतुर्ण्णाम् । चतुर्णाम् ।

१–(साम्प्रतम्) नायं सान्तः । २–स्रस् + त (म्), ध्वस् + त (म्) । नात्र पदान्तत्वम् । ३–तुरम् (=वज्रम्) । साहयति (अन्येषामपीति दीर्घः) इति तुराषाट् = इन्द्रः । ४–सुदिव् + सु, वकारस्य–औत्वे यणि सस्य रुत्वविसर्गौ ५–चतुर+(जस्) अस् 'चतुरनडु···' इत्याम् । ६–रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यादेकपदे । ७–इति णस्य पक्षे द्वित्वम् । ८–चतुर्ण्णाम्—'चतुर्' शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि 'चतुर् आम्' इति स्थिते 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुटि 'रषाभ्याम्—' इति णत्वे 'अचोरहाभ्यां द्वे' इति वा द्वित्वे 'चतुर्ण्णाम्' इति पक्षे 'चतुर्णाम्' इति रूपं सिध्यति ।

२६२–सान्त वस्वन्त और स्रंसादि के स को द होता है पदान्त में ।

२६३–साड्रूप सह् के स को ष होता है ।

२६४–प्रातिपदिक दिव् शब्द को औत् होता है, सु परे रहते ।

२६५–दिव् शब्द को ऊकार अन्तादेश होता है, पदान्त में ।

२६६–षट्संज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् का आगम होता है ।

२६७–(समानपद में) रेफ षकार से परे न को ण होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

२६८ रोः सुपि ८ । ३ । १६ ।

रोरेव विसर्गः सुपि[1] । षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते ।

२६९ शरोऽचि ८ । ४ । ४९ ।

अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु ।

२७० मो नो धातोः ८ । २ । ६४ ।

धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते । [2]प्रशान् ।

२७१ किमः कः ७ । २ । १०३ ।

किमः कः स्याद् [3]विभक्तौ । कः । कौ । [4]के । इत्यादि । शेषं सर्ववत् ।

२७२ इदमो मः ७ । २ । १०८ ।

[5]सौ । [6]त्यदाद्यत्वापवादः ।

२७३ इदोऽय् पुंसि ७ । २ । १११ ।

इदम् [7]इदोऽय् सौ पुंसि । [8]अयम् । त्यदाद्यत्वे ।

१–अनेन नात्र विसर्गः । चतुर्षु रेफस्य 'इण्'–प्रत्याहारान्तर्गतत्वादादेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । २–'प्रशाम्' मकारान्तोऽयं शब्दः । प्रशान् इत्यत्र 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपस्तु न 'मो नो धातोः' इति विहितस्य नत्वस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वात् । ३–'विभक्तौ' इत्यनुवर्तते । विभक्तौ परतः 'किम्'–शब्दस्य 'क' आदेशः स्यादित्यर्थः । ४–किमः सर्वनामत्वात् 'जसः शी' ततो गुणः = के । ५–'सौ' इत्यनुवर्तते । 'इदम्'–शब्दस्य मकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे; इत्यर्थः । ६–'त्यदादीनामः' इति प्राप्तस्य अत्वस्य बाधनार्थमिदम्, इत्यर्थः । ७–'इद्'–भागस्य । ८–इदम् + सु, सुलोपः, इदः–अय् ।

२६८–सप्तमी के बहुवचन में रु के रेफ को विसर्ग होता है, अन्य रेफ को नहीं ।

२६९–अच् परे रहते शर् को द्वित्व नहीं होता ।

२७०–धातु के म को न होता है, पदान्त में ।

२७१–किम् को क आदेश होता है, विभक्ति परे रहते ।

२७२–इदम् शब्द के म को म ही रहता है सु परे रहते ।

२७३–इदम् के इद् को अय् होता है, सु परे रहते पुंल्लिंग में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२७४ अतो गुणे ६ । १ । ९७ ।

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः ।

२७५ दश्च ७ । २ । १०९ ।

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । [1]इमौ । [2]इमे । त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः[3] ।

२७६ अनाप्यकः ७ । २ । ११२ ।

[4]अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ । [5]आबिति प्रत्याहारः । [6]अनेन ।

२७७ हलि लोपः ७ । २ । ११३ ।

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ । नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधि[7]रनभ्यासविकारे ।

१–'इदम्+औ' अत्वम्, पररूपम्, वृद्धौ मत्वम् । २—सर्वनामत्वाद् जसः शी । ३–प्रायः प्रयोगादर्शनमेवात्र मूलम् । इदं प्रायिकम्–'हे स !' इति भाष्यप्रयोगात् । ४–ककाररहितस्य 'इदम्'–शब्दस्य य 'इद्'–भागस्तस्य 'अन' आदेशः स्याद् आपि विभक्तौ परतः, इत्यर्थः । 'अकः' इत्युक्तेः साकच्कस्य 'अन' आदेशो हलि लोपश्च न, तेन इमकेन, इमकाभ्याम् इत्यादि । ५–('टा' आ इत्यारभ्य सुपः पकारपर्यन्तम् 'आप्'-प्रत्याहारः ६–इदम् +टा, त्यदाद्यत्वं पररूपं च, अनादेश 'टाङसिङसा—' इति 'टा'-स्थाने 'इनः', गुणः । ७–अभ्यासविकारं वर्जयित्वाऽनर्थकेऽलोन्त्यविधिर्न भवतीत्यर्थः । अत्र 'इद्' इति समुदायैकदेशत्वादनर्थकः, (समुदायो ह्यर्थवान् तस्यैकदेशोऽनर्थकः इति न्यायः) तेन सर्वस्यैव (इद् इत्यस्य) लोपः, अत्रत्यो विशेषो मत्कृतमध्यकौमुदी-टीकायां द्रष्टव्यः ।

२७४–अपदान्त अकार से गुण परे रहते पूर्वरूप एकादेश होता है ।

२७५–इदम् के द को म होता है, विभक्ति परे रहते ।

२७६–ककाररहित इदम् शब्द के इद् भाग को अन् होता है आप् विभक्ति परे रहते ।

२७७–ककारहित इदम् शब्द के इद् भाग का लोप होता है, हलादि आप् विभक्ति परे रहते ।

(वा० अनर्थक में 'अलोन्त्यस्य' नहीं लगता, अभ्यास विकार को छोड़कर)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

२७८ आद्यन्तवदेकस्मिन् १ । १ । २१ ।

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव च स्यात्। सुपि चेति दीर्घः । [1]आभ्याम् २ ।

२७९ नेदमदसोरकोः ७ । १ । ११ ।

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । [2]एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । [3]अनयोः २ । एषाम् । अस्मिन् । एषु ।

२८० द्वितीयाटौस्स्वेनः २ । ४ । ३४ ।

[4]इदमेतदोरन्वादेशे । किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा—अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । [5]राजा ।

२८१ न ङिसम्बुद्ध्योः ८ । २ । ८ ।

आभ्याम्—'इदम्' शब्दात् तृतीयाद्विवचने भ्यामि त्यदाद्यत्वे पररूपे 'इद भ्याम्' इति स्थिते 'हलिलोपः' इति दकारस्य लोपे प्राप्ते 'नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे' इति परिभाषया अलोऽन्त्यविधेरभावे इद्भागस्यैव लोपे 'अ भ्याम्' इति जाते 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इति अन्तवद्भावेनादन्तत्वं मत्वा 'सुपि चे'ति दीर्घः, सिद्धं रूपम् 'आभ्याम्' इति । २–'बहुवचने झल्येत्' इति-एत्वम् । ३–'ओसि च' इत्येत्वेऽयादेशः । ४–'इदमोऽन्वादेशे' इति 'एतद्' इति चानुवर्तते । द्वितीयायाम् (अम्, औट्, शस् इत्येषु) 'टा' विभक्तौ, 'ओसि' च 'इदम्'-शब्दस्य एतच्छब्दस्य च 'एन' आदेशः स्यादन्वादेशे, इत्यर्थः । ५–राजन् + सु 'हल्ङ्याप' इति सुलोपः, नान्तस्य दीर्घे 'नलोपः प्राति···' इति नकारलोपः = राजा ।

२७८–एक में क्रियमाण कार्य आदि और अन्त की तरह होता है ।

२७९–ककाररहित इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् को ऐस् नहीं होता ।

२८०–द्वितीयाविभक्ति, टा, ओस् परे रहते इदम् और एतद् शब्द के स्थान पर एन आदेश होता है; अन्वादेश में ।

२८१–ङि और सम्बुद्धि परे रहते न का लोप नहीं होता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वा उत्तरपदपरक ङि परे रहते 'न ङिसम्बुद्ध्योः' प्रवृत्त नहीं होता)

नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्! ([1]ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः) [2]ब्रह्मनिष्ठः। राजानौ। राजानः। राज्ञः[3]।

६८२ नलोपः सुप्-स्वर-संज्ञा-तुग्विधिषु कृति ८। २। २।

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धः। नान्यत्र राजाश्व[4] इत्यादौ। [5]इत्यसिद्धादात्वमेत्वमैस्त्वं च न। राजभ्याम्। राजभिः। राजभ्यः। राजभ्यः। राजनि, [6]राज्ञि। राजसु। यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः।

६८३ न संयोगाद् वमन्तात् ६। ४। १३७।

वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न। [7]यज्वनः। यज्वना। यज्वभ्याम्। ब्रह्मणः। ब्रह्मणा।

१–उत्तरपदे परतो यो ङि तस्मिन् परे 'न ङिसम्बुद्ध्योः' इति प्राप्तस्य निषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः। २–ब्रह्मणि निष्ठा-अस्येति विग्रहः। अत्र नलोपो भवत्येव, समासे 'निष्ठा' इत्यस्य उत्तरपदत्वात् 'उत्तरपदं' समासस्य चरमावयवे रूढम्। ३–राज्ञः—राजन् + (शस्) अस्, 'अल्लोपोऽनः' इत्यकारलोपः। श्चुत्वम्। जञोर्ज्ञः, अयं च (ज्ञः) लोक-वेद-प्रसिद्ध-ध्वनिविशेष-(बोधकलिपि)-सङ्केतो न तु वर्णान्तरम्, प्रमाणानुपलम्भात्! केचिदेनं 'ग्य'-वत् 'ज्य'-वद् वा उच्चारयन्ति, तन्न समीचीनं किन्तु 'ज्ञ्' इत्यस्य यथोच्चारणं स्यात्तथोच्चारणीयम्। ४–ननु 'राजभ्याम्' इत्यादौ नलोपस्य 'पूर्वत्रासिद्धम्' इत्यनेनासिद्धत्वात्किमर्थं "न लोपः सुप्स्वर…" इति सूत्रारम्भ इति चेन्न, तस्य नियमार्थत्वात् न "सिद्धौ सत्यामारभ्यमाणो विधिर्नियमाय" इति हि न्यायः। नियमस्वरूपं चेदम् 'नलोपश्चेदसिद्धः स्यात्तर्हि सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिष्वेव' इति। तेन 'राजाश्वः' इत्यत्र षष्ठीसमासे नलोपे-राजा + अश्वः, इत्यत्र सुबादिविधित्वाभावेन नलोपस्य नाऽसिद्धत्वमिति 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घः। ५–'राजभ्याम्' इत्यत्र 'सुपि च' इति-आत्वं प्राप्तम् 'राजभ्यः' इत्यत्र 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वं प्राप्तम्, 'राजभिः' इत्यत्र 'अतो भिस्' इति ऐस्त्वम् प्राप्तम्। ६–'विभाषा ङिश्योः' इति विकल्पेन 'अ'-कारलोपः। ७–यज्वनः—'यज्वन्' शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि

२८२–सुब्विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि और कृत्प्रत्ययपरक तुग्विधि में न का लोप असिद्ध होता है, अन्यत्र नहीं।

२८३–वकारान्त मकारान्त संयोग से परे अन् के अकार का लोप नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२८४ इन्-हन्-पूषार्यम्णां शौ ६ । ४ । १२ ।

एषां शावेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र । इति निषेधे प्राप्ते ।

२८५ सौ च ६ । ४ । १३ ।

इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ । वृत्रहा । हे वृत्रहन् ! ।

२८६ एकाजुत्तरपदे णः ८ । ४ । १२ ।

[1]एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः । [2]वृत्रहणौ ।

२८७ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७ । ३ । ५४ ।

ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम् । [3]वृत्रघ्नः । इत्यादि । एवं शार्ङ्गिन्, यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन् ।

२८८ मघवा बहुलम् ६ । ४ । १२८ ।

मघवन्शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । ऋ इत् ।

विभक्तौ 'यज्वन् अस्' इति स्थितौ भसंज्ञायां 'न संयोगाद् वमन्तात्' इति अकारलोपस्य निषेधे रुत्वे विसर्गे सिध्यति 'यज्वनः' इति ।

१–उत्तरपदशब्दः समासस्य चरमावयवे रूढः । २–अत्र प्रातिपदिकान्तनकारस्य णकारः ३–वृत्रहन् +(शस्) अस्, 'अल्लोपोऽनः' सूत्रेण अल्लोपः हस्य कुत्वम् (घः) ।

२८४–इन् हन् पूषन् और अर्यमन् शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है, केवल शि परे रहते, अन्यत्र नहीं ।

२८५–इन्नादि की उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते ।

२८६–एक अच् है उत्तरपद में जिसके ऐसा जो समास, उसमें पूर्वपदस्थित निमित्त रेफ षकार से परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिस्थित न को ण होता है समान पद में ।

२८७–ञित्, णित् प्रत्यय और हकार परे रहते हन् के ह को कुत्व होता है ।

२८८–मघवन् शब्द को तृ अन्तादेश होता है, विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२८९ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७ । १ । ७० ।

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे। [1]मघवान्। मघवन्तौ। मघवन्तः। हे मघवन्!। [2]मघवद्भ्याम्। तृत्वाभावे—[3]मघवा। [4]सुटि राजवत्।

२९० श्व-[5]युव-मघोनामतद्धिते ६ । ४ । १३३ ।

अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते संप्रसारणम्। मघोनः[6] मघोना[7] मघवभ्याम्। एवं श्वन्, युवन्।

२९१ न संप्रसारणे संप्रसारणम् । ६ । १ । ३७ ।

१–मघवान्–'मघवन्' शब्दात् प्रथमैकवचने सुविभक्तौ 'मघवा बहुलम्' इति 'तृ' इत्यन्तादेशे अनुबन्धलोपे 'उगिदचाम्' इति नुमि 'हल्ङ्याब्' इति सलोपे 'संयोगान्तस्ये' ति तकारलोपे उपधादीर्घे 'मघवान्' इति रूपं तृत्वाभावपक्षे तु 'मघवा' इति। अत्र नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वमिति न सर्वादेशः 'तृ' इति। 'तृ' इत्यन्तादेशपक्षे तकारस्य संयोगान्तलोपः, तस्याऽसिद्धत्वान्नलोपो न। २–इत्यादिस्पष्टम्। ३–तृत्वाभावपक्षे 'मघवन्'–शब्दो नान्तः, उपधादीर्घो नलोपश्च। ४–सुटि=सु-औ-जस्-अम्-औट् इति पञ्चवचनेषु। ५–अस्मिन् सूत्रे सुभाषितमेतत्—

काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नासि बाले! किमिदं विचित्रम् (प्र०)।
विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह ॥ (उ०)। ॥ १ ॥

६–मघवन +(शस्) अस्, वकारस्य–उत्वे (सम्प्रसारणे) पूर्वरूपे च गुणः। ७–मघोना—'मघवन्' शब्दात् टा-ङे-ङसि-ङस्-ओस्-आम्-ङिविभक्तिषु क्रमेण। ७–मघोना—'मघवन्' शब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'आद्गुणः' इति गुणे सिध्यति 'मघोना' इति। तृत्वादेशपक्षे तु 'मघवता' इति। मघोनः २। मघोनोः २। मघोनाम्। मघोनि।

२८९–धातुभिन्न उगित् और नलोपी अञ्चति को नुम् होता है, सर्वनामस्थान परे रहते।

२९०–अन्नन्त भसंज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है। तद्धित भिन्न प्रत्यय परे रहते।

२९१–सम्प्रसारण परे रहते पूर्व यण को संप्रसारण नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात्। इति यकारस्य नेत्वम्। अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं संप्रसारणम्। यूनः[1]। [2]यूना। युवभ्याम्। इत्यादि। अर्वा[3]। हे अर्वन्!।

२९२ अर्वणस्त्रसावनञः ६। ४। १२७।

नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि।

२९३ पथिमथ्यृभुक्षामात् ७। १। ८५।

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे।

२९४ इतोऽत् सर्वनामस्थाने ७। १। ८६।

[4]पथ्यादेरिकारस्याकारः सर्वनामस्थाने परे।

२९५ थो न्थः ७। १। ८७।

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने। [5]पन्थाः। पन्थानौ। पन्थानः।

१-'युवन्'+(शस्) अस्, वस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपं सवर्णदीर्घः। २-यूना—'युवन्' शब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'श्वयुवमघोनाम्' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च 'यु उन् आ' इति स्थिते 'न सम्प्रसारणे संप्रसारणम्' इति यकारस्य सम्प्रसारणनिषेधे सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपं 'यूना' इति। ३-'अर्वन् इति नान्तोऽयं शब्दः। 'अर्वन्तौ' इत्यत्र अर्वन्+औ, इति स्थितौ 'तृ' इत्यन्तादेशः, उगिदचां' इति नुम्, अनुस्वारः परसवर्णश्च। ४-पथि-मथि-ऋभुक्षामिकारस्याऽऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे इत्यर्थः। ५-पन्था—'पथिन्' शब्दात् प्रथमैकवचने सौ 'पथिमथि' इति नस्य आत्वे 'इतोऽत् सर्वनामस्थाने' इति इकारस्याकारे 'थो न्थः' इति थकारस्य न्थादेशे सवर्णदीर्घे रुत्वविसर्गौ 'पन्थाः' इति रूपम्।

२९२-नञ् रहित अर्वन् अंग को तृ अन्तादेश होता है, सु परे रहते नहीं।

२९३-पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् को आकार अन्तादेश होता है सु परे रहते।

२९४-पथ्यादिक के इकार को आकार अन्तादेश होता है सर्वनामस्थान परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२९५-पथिन्, मथिन् के थ को न्थ होता है सर्वनामस्थान परे रहते।

२९६ भस्य टेर्लोपः ७ । १ । ८८ ।

भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः । पथः । पथा । पथिभ्याम् । एवं मथिन्[1] ऋभुक्षिन् ।

२९७ ष्णान्ता षट् १ । १ । २४ ।

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात् । पञ्चन् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । पञ्च[2] । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । नुट्[3] ।

२९८ नोपधायाः ६ । ४ । ७ ।

नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि । पञ्चानाम् । पञ्चसु ।

२९९ अष्टन आ विभक्तौ ७ । २ । ८४ ।

हलादौ[4] वा स्यात् ।

३०० अष्टाभ्य औश् ७ । १ । २१ ।

कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् । अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति । अष्टौ[6] । अष्टौ । अष्टाभिः । अष्टाभ्यः । अष्टाभ्यः । अष्टानाम्[7] । अष्टासु । आत्वाभावे—अष्ट । पञ्चवत् ।

१–मन्थाः मन्थानौ । शसादौ-मथः, मथा इत्यादि । ऋभुक्षाः ऋभुक्षाणौ । शसादौ-ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, इत्यादि । २–'षड्भ्यो लुक्' इति जस्-शसोर्लुक्, नलोपश्च । ३–'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुट् । ४–'रायो हलि' इत्यतः 'हलि' इत्यपकृष्यते । "अष्टनो दीर्घाद्" इति सूत्रे दीर्घग्रहणसामर्थ्यादस्य (आत्वस्य) वैकल्पिकत्वमवगम्यते । ५–(सूत्रे) अष्टाभ्यः इति । ६–अष्टौ—'अष्टन्' शसि 'अष्टन-आ विभक्तौ' नकारस्य आत्वे सवर्णदीर्घे 'अष्टाभ्य औश्' इति शसः (जसो) वा औसि अनुबन्धलोपे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ सिध्यति रूपम् 'अष्टौ' इति (औत्वाभावे 'अष्ट' इति रूपम्) । ७–'षट्चतुर्भ्यः' इत्यनेन नुटि 'नोपधायाः' इति दीर्घे नलोपः ।

२९६–भसंज्ञक पथ्यादि की टि का लोप होता है ।

२९७–षान्त नान्त संख्या की षट् संज्ञा होती है ।

२९८–नान्त की उपधा को दीर्घ होता है, नाम् परे रहते ।

२९९–अष्टन् को आत्व होता है विकल्प से, हलादि विभक्ति परे रहते ।

३००–कृताकार अष्टन् शब्द से परे जस्, शस् को औश् आदेश होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

३०१ ऋत्विग्-दधृक्-स्रग्-दिगुष्णिगञ्चु-युजि-क्रुञ्चां च ३।२।५९।

एभ्यः क्विन्। अञ्चेः सुप्युपपदे। [1]युजि-क्रुञ्चोः केवलयोः। क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते। कनावितौ[2]।

३०२ कृदतिङ् ३।१।९३।

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्।

३०३ वेरपृक्तस्य ६।१।६७।

अपृक्तस्य वस्य लोपः।

३०४ क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२।

क्विन् प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते। अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम्। [3]ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विजौ। ऋत्विग्भ्याम्।

३०५ युजेरसमासे ७।१।७१।

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे। सुलोपः, संयोगान्तलोपः, कुत्वेन[4] नस्य ङः। युङ्। अनुस्वारपरसवर्णौ। युञ्जौ। युञ्जः। युग्भ्याम्।

३०६ चोः कुः ८।२।३०।

१–(सूत्रे) चकारादिदं लभ्यते। २–क्विन्प्रत्यये ककार नकारौ इत्संज्ञौ। ३–'ऋतुषु यजति' इति विग्रहः, क्विन्प्रत्यये 'वचिस्वपि……' इति संप्रसारणं पूर्वरूपयणादेशश्चेति। 'ऋत्विज् + सु' ''हल्ङ्याप्'' इति लोपे, चोः कुः, इति कुत्वम्। ४–'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इत्यनेन।

३०१–ऋत्विज् आदि से क्विन् होता है। अञ्चु धातु से सुप् उपपद रहते; युजि क्रुञ्च् इन केवल से क्विन् होता है, क्रुञ्चधातु के न का लोप नहीं होता।

३०२–सन्निहित धात्वधिकार में पठित तिङ् भिन्न प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है।

३०३–अपृक्तवकार का लोप होता है।

३०४–क्विप् प्रत्यय जिससे किया जाये उसको कवर्ग अन्तादेश होता है पदान्त में।

३०५–युज् धातु को नुम् होता है सर्वनामस्थान परे रहते, समास में नहीं।

३०६–चवर्ग को कवर्ग आदेश होता है झल् परे रहते पदान्त में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च। [1]सुयुक्, सुयुग्। सुयुजौ। सुयुग्भ्याम्। [2]खन्। खञ्जौ। खन्भ्याम्।

३०७ व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-च्छशां[3] षः ८। २। ३६।

झलि पदान्ते च। जश्त्व-चर्त्वे। [4]राट्, राड्। राजौ। राजः। राड्भ्याम्। एवं विभ्राट्। [5]देवेट्। विश्वसृट् (परौ व्रजेः षः पदान्ते) परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च, पदान्ते [6]षत्वमपि। [7]परिव्राट्। परिव्राजौ।

३०८ विश्वस्य वसुराटोः ६। ३। १२८।

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ [8]राट्शब्दे च परे। [9]विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम्।

३०९ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८। २। २९।

पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः [10]स्कोर्लोपः। [11]भृट्। सस्य श्चुत्वेन

१—अत्र 'युजेरसमासे' इति समासे नुम्निषेधाद् न नुम्। २—नायं क्विन्प्रत्ययान्तः किन्तु क्विबन्तः, तेन कुत्वम्। २—'खञ्ज्' शब्दोऽयम्। ३—एषामन्त्यस्य षः। ४—षस्य जश्त्वेन डः, वा चर्त्वम्। ५—'देवान् यजति' इति विग्रहः, क्विपि सम्प्रसारणम्, पररूपम्, गुणः। 'देवेज्' शब्दः। ६—'निपात्यते' इति शेषः ७—परित्यज्य (गृहादिकम्) व्रजति इति परिव्राट संन्यासी। ८—'राट्'—इति टकारविशिष्टग्रहणं पदान्तोपलक्षणार्थम्। उपलक्षणत्वं च 'स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्' ९—**विश्वाराट्**—'विश्वराज्' शब्दात् क्विबन्ताद् प्रथमैकवचने सौ 'व्रश्चेति' षत्वे तस्य जश्त्वेन डकारे 'वावसाने' इति चर्त्वे 'विश्वस्य वसुराटोः' इति दीर्घे 'हल्ङ्याब्भ्यो' इति सलोपे 'विश्वाराट्' इति रूपम्। १०—सकाररककारयोरित्यर्थः ११—'भ्रस्ज' धातोः क्विपि संप्रसारणम्, 'स्को' रिति सलोपः। जकारस्य 'व्रश्च' इति षत्वे जश्त्वे च, वा चर्त्वम्।

३०७—व्रश्चादि सातों को और छान्त शान्त को षकार अन्तादेश होता है झल् परे रहते और पदान्त में।

(वा० परिपूर्वक व्रजधातु को क्विप् होता है, दीर्घ होता है और षकार होता है पदान्त में)।

३०८—विश्व शब्द को दीर्घ होता है वसु और राट् परे रहते।

३०९—संयोग के आदि सकार ककार का लोप होता है पदान्त में और झल् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शः। 'झलां जश् झशि' इति शस्य जः। भृज्जौ। भृड्भ्याम्। [1]त्यदाद्यत्वम् पररूपत्वम्[2]।

३१० तदोः सः सावनन्त्ययोः ७। २। १०६।

त्यदादीनां तकार-दकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ। [3]स्यः। त्यौ। त्ये। [4]सः। तौ। ते। [5]यः। यौ। ये। [6]एषः। एतौ। एते। एतम्। अन्वादेशे-एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः।

३११ ङेप्रथमयोरम् ७। १। २८।

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः।

३१२ त्वाहौ सौ ७। २। ९४।

अनयोर्मपर्यन्तस्य[7] त्वाहौ आदेशौ स्तः।

३१३ शेषे लोपः ७। २। ९०।

एतयोष्टिलोपः। त्वम्। [8]अहम्।

३१४ युवावौ द्विवचने ७। २। ९२।

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ।

१—'त्यदादीनामः' इति =अत्वम्। २—'अतो गुणे' इति पररूपम्। ३—'त्यद्' शब्दस्येदं रूपम्। ४–इदं 'तद्' शब्दस्य। ५—'यद्' ६–'एतद्'। ७—'युष्म्' 'अस्म्' इति भागस्य। ८—अहम्—'अस्मत्' शब्दात् प्रथमैकवचने सौ 'ङेप्रथमयोरम्' इति सोरमादेशे 'त्वाहौ सौ' इति मपर्यन्तभागस्य अहादेशे 'अह अद् अम्' इति स्थितौ पररूपे 'अहद् अम्' इति जाते 'शेषे लोपः' इति टिलोपे सिध्यति रूपम् 'अहम्' इति।

३१०–त्यदादियों के अन्त्यभिन्न त द को स होता है सु परे रहते।

३११–युष्मद् अस्मद् से परे ङे और प्रथमा द्वितीया विभक्ति को अम् आदेश होता है।

३१२–युष्म् अस्म् को त्व अह आदेश होता है सु परे रहते।

३१३–आत्व यत्व निमित्त से भिन्न विभक्ति परे रहते युष्मद् अस्मद् के अन्त का लोप होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३१४–युष्म् अस्म् को युव आव आदेश होता है द्वित्व की उक्ति में विभक्ति परे रहते।

३१५ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७ । २ । ८८ ।

[1]औङि एतयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् ।

३१६ यूय-वयौ जसि ७ । २ । ९३ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य । [2]यूयम् । वयम् ।

३१७ त्वमावेकवचने ७ । २ । ९७ ।

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

३१८ द्वितीयायां च ७ । २ । ८७ ।

अनयोरात् स्यात् । त्वाम् । माम् ।

३१९ शसो नः ७ । १ । २९ ।

आभ्यां शसो नः स्यादमोऽपवादः (७२) आदेः परस्य । (२०) संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् ।

३२० योऽचि ७ । २ । ८९ ।

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया । [3]मया ।

१–'औङ' इत्यौकारविभक्तेः संज्ञा । २–यूयम्—युष्मच्छब्दात् प्रथमाबहुवचने जसि अमादेशे मपर्यन्तस्य 'यूयवयौ जसि' इति यूयादेशे पररूपे 'यूयद् अम्' इति स्थिते 'शेषे लोपः' इति टिलोपे सिध्यति रूपं 'यूयम्' इति । ३–मया–'अस्मत्' शब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'त्वमावेकवचने' इति मपर्यन्तभागस्य मादेशे 'अतोगुणे' इति पररूपे च 'मद् आ' इति स्थितौ 'योऽचि' इति दकारस्य यकारे कृते सिध्यति रूपं 'मया' इति ।

३१५–युष्मद् अस्मद् को आकार होता है प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन परे रहते लोक में ।

३१६–युष्मद् अस्मद् के युष्म् अस्म् भाग को यूय वय आदेश होते हैं जस् परे रहते ।

३१७–एकत्व की विवक्षा से युष्म् अस्म् को त्व म आदेश होते हैं विभक्ति परे रहते ।

३१८–युष्मद् अस्मद् को आकार अन्तादेश होता है द्वितीया विभक्ति परे रहते ।

३१९–युष्मद् अस्मद् से शस् को न आदेश होता है ।

३२०–युष्मद् अस्मद् को यकार आदेश होता है अनादेश अजादि विभक्ति परे रहते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३२१ युष्मदस्मदोरनादेशे ७ । २ । ८६ ।

अनयोरात् स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।

३२२ तुभ्य-मह्यौ ङयि ७ । २ । ९५ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य । टिलोपः[२] । तुभ्यम् ।

३२३ भ्यसोऽभ्यम्[३] ७ । १ । ३० ।

आभ्यां परस्य । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

३२४ एकवचनस्य[४] च ७ । १ । ३२ ।

आभ्यां ङसेरत् । [५]त्वत् । मत् ।

३२५ पञ्चम्या अत् ७ । १ । ३१ ।

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात् । [६]युष्मत् । अस्मत् ।

३२३ तव-ममौ ङसि ७ । २ । ९६ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य तव-ममौ स्तो [७]ङसि ।

३२७ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७ । २ । ९७ ।

१—युष्मदस्मदोर्मपर्य्यन्तस्य 'तुभ्य–मह्यौ' आदेशौ स्तः 'ङे' विभक्तौ—इत्यर्थः । २–'शेषे लोपः' इत्यनेन । ३–युष्मदस्मद्भ्यां परस्य भ्यसः (चतुर्थीबहुवचनस्य) 'अभ्यम्' इत्यादेशः स्यादित्यर्थः । ४—पञ्चम्येकवचनस्येत्यर्थः । ५—'त्वमावेकवचने' इति त्वमौ । ६—युष्मत्—'युष्मद्' शब्दात् पञ्चमीबहुवचने भ्यसि 'युष्मद् भ्यस्' इति । 'पञ्चम्या अत्' इति भ्यसः 'अत्' आदेशे टिलोपे सिध्यति रूपं 'युष्मत्' इति । ७—षष्ठ्येकवचने ।

३२१—युष्मद् अस्मद् को आकार आदेश होता है अनादेश हलादि परे रहते ।

३२२—युष्म् अस्म् को तुभ्य मह्य आदेश होते हैं ङे परे रहते ।

३२३—युष्मद् से परे भ्यस् को अभ्यम् आदेश होता है ।

३२४—युष्मद् अस्मद् से परे ङसि को अत् होता है ।

३२५—युष्मद् से परे पञ्चमी के भ्यस् को अत् आदेश होता है ।

३२६—युष्म् अस्म् को तव मम आदेश होते हैं ङस् परे रहते ।

३२७—युष्मद् अस्मद् से परे ङस् को अश् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तव । [1]मम । [2]युवयोः । आवयोः ।

३२८ साम आकम् ७ । १ । ३३ ।

आभ्यां परस्य साम [3]आकं स्यात् । युष्माकम् । [4]अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । [5]युष्मासु । अस्मासु ।

३२९ युष्मदस्मदोः षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयास्थयोर्वां-नावौ ८ । १ । २० ।

पदात् परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वां नौ इत्यादेशौ स्तः ।

३३० बहुवचनस्य वस्-नसौ ८ । १ । २१ ।

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्-नसौ स्तः ।

३३१ तेमयावेकवचनस्य ८ । १ । २२ ।

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते-मे एतौ स्तः ।

३३२ त्वामौ द्वितीयायाः ८ । १ । २३ ।

१—मम—अस्मच्छब्दात् षष्ठ्येकवचने 'ङस्' विभक्तौ 'तवममौ ङसि' इति मपर्यन्तस्य ममादेशे पररूपे 'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्' इति ङसोऽशादेशे अन्त्यलोपे 'ममद् अ' इति स्थिते टिलोपे सिध्यति रूपं 'मम' इति । २—'युवावौ द्विवचने' इति युवावौ । ३—'आकम्' आदेशानन्तरम्-अन्त्यलोपपक्षे ('शेषे' लोपः' इत्यस्यार्थे मतद्वयम् 'आत्व-यत्वनिमित्तेतरविभक्तौ एतयोरन्त्यस्य लोपः' इत्येकम् । अपरं च 'शेषे' इति षष्ठ्यर्थे सप्तमी तथा च "मपर्यन्ताच्छेषस्य लोपः" इत्यर्थः, तत्रान्त्यलोपपक्षे इदम्)-प्राप्तस्य 'आमि सर्वनाम्नः सुट् इति') सुटो निवृत्त्यर्थं ('साम' इति ससुट्कनिर्देशः । ४—अस्माकम्—'अस्मद्' शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि 'अस्मद् आम्' इति स्थिते दलोपे—'साम आकम्' इति सूत्रेण (अन्त्यलोप इति पक्षे) सुट्सहितस्य आमः 'आकम्' आदेशे सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपम् 'अस्माकम्' इति । ५—'युष्मदस्मदोरनादेशे' इत्यात्वम् ।

३२८—युष्मद् अस्मद् से परे साम् को आकम् होता है ।

३२९—पद से परे अपाद के आदि में स्थित षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयाविशिष्ट युष्मद् अस्मद् शब्दों को वाम् नौ आदेश होते हैं ।

३३०—बहुवचन में पूर्ववत् षष्ठ्यादि विशिष्टों को वस् नस् आदेश होते हैं ।

३३१—पूर्ववत् स्थितों को षष्ठी और चतुर्थी के एकवचन में ते मे आदेश होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३३२—पूर्ववत् स्थितों को द्वितीया के एकवचन में त्वा मा आदेश होते हैं ।

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा-मा, इत्यादेशौ [1]स्तः।

"[2]श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
[3]सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः"॥

१ (एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः)। २ (एकतिङ् वाक्यम्) तेनेह न—ओदनं पच [4]तव भविष्यति।

इह तु स्यादेव—शालीनां ते ओदनं दास्यामि। ३ (एते वांनावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः) अन्वादेशे तु नित्यं स्युः। धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्ति वा। तस्मै ते नम [5]इत्येव। सुपात् सुपाद्। सुपादौ।

३३३ पादः पत् ६।४।१३०।

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः। सुपदः। सुपदा। सुपाद्भ्याम्। अग्निमत्, [6]अग्निमद्। अग्नमथः।

१—इत्थमत्र विवेकः—द्वितीयैकवचने 'त्वामौ'। चतुर्थीषष्ठ्येकवचनयोः 'ते मे' इति विभक्तित्रयबहुवचनेषु वस् नसौ। सर्वत्र द्विवचने 'वाम्' 'नौ' इति भवतः। २—श्रीशः = परमात्मा, त्वा = त्वाम्, मा माम्, इह अवतु = रक्षतु। स श्रीशः ते = तुभ्यं, मे = मह्यम्, अपि शर्म = सुखम्, दत्तात् = दद्यात्! स हरिः, ते = तव, मे = मम, स्वामी = ईश्वरः। विभुः = विष्णुः, वाम् = युवाम्, नौ = आवाम्, पातु = रक्षतु। ३—ईशः वाम् = युवाभ्याम् नौ = आवाभ्याम्, सुखं ददातु। हरिः, वाम् = युवयोः, नौ = आवयोः, पतिः = पालकः। स ईशः, वः = युष्मान्, नः = अस्मान्, अव्यात् = रक्ष्यात्। वः = युष्मभ्यम् नः = अस्मभ्यम्, शिवम् = कल्याणं दद्यात्। अत्र—संसारे, स हरिः, वः = युष्माकम्, नः = अस्माकम्, सेव्यः = सेवनीयः = भजनीयः। इत्युदाहरणानि। ४—अत्र तु तिङ् (तिङन्त-) द्वयम्। ५—नित्यमित्यर्थः। ६—'अग्निं मथ्नाति' इति विग्रहः।

(वा०—(१) समान वाक्य में युष्मद् अस्मद् को उक्त आदेश होते हैं। (२) एकतिङ् शब्द-समुदाय को वाक्य कहते हैं। (३) ये वां नौ आदि आदेश अनन्वादेश में विकल्प से होते हैं, अन्वादेश में नित्य)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३३३—पाद् शब्द को पद् आदेश होता है।

३३४ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ६ । ४ । २४ ।

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति । नुम् । संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन ङः । [1]प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः ।

३३५ अचः ६ । ४ । १३८ ।

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोपः ।

३३६ चौ ६ । ३ । १३८ ।

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः । [2]प्राचः । प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । [3]प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ् । उदञ्चौ ।

३३७ उद ईत् ६ । ४ । १३९ ।

उच्छब्दात् परस्य लुप्तनकाराञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् । [4]उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् ।

१—प्राञ्च्+सु, नलोपः नुम् 'संयोगान्तस्य.....' इति चकारलोपः, 'न' कारस्य 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इत्यनेन ङः । २–प्राचः—प्रपूर्वात् अञ्च्धातोः क्विन्नन्तात् द्वितीयाबहुवचने शसि 'अनिदितां हल उपधाया क्ङिति' इति उपधाभूतस्य नकारस्य लोपे 'प्र अच् अस्' इति स्थिते भसंज्ञायां 'अचः' इति सूत्रेणाकारलोपे 'चौ' इति सूत्रेण दीर्घे रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'प्राचः' इति । ३–प्रति अञ्च् (शस्) अस् , नलोपः, 'अचः' इत्याकारलोपः पूर्वस्याऽणः । ('प्रति' इत्येतद्गतस्य 'इ' कारस्य) दीर्घः, प्रतीचः । ४-उदीचः—उत् पूर्वाद् अञ्च्धातोः क्विन्नन्तात् शसि तकारस्य जश्त्वेन दकारे भत्वे नलोपे च 'उद् अच् अस्' इति स्थितौ 'उद ईत्' इति अचोऽकारस्य ईत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ सिध्यति रूपम् 'उदीचः' इति ।

३३४—हलन्त अनिदित् अङ्ग की उपधा के न का लोप होता है कित्, ङित् परे रहते ।

३३५—लुप्तनकार अञ्चु के भसंज्ञक अकार का लोप होता है ।

३३६—लुप्तनकार तथा लुप्त अकार अञ्चु परे रहते पूर्व अण को दीर्घ होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३३७—उत् शब्द से परे लुप्तनकार अञ्चु के भसंज्ञक अकार को ईकार होता है ।

३३८ समः समि: ६ । ३ । ९३ ।

अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ[1] । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीचः[2] । सम्यग्भ्याम् ।

३३९ सहस्य सध्रिः । ६ । ३ । ९५ ।

तथा[3] । सध्र्यङ् ।[4] सध्रीचः ।

३४० तिरसस्तिर्यलोपे ६ । ३ । ९४ ।

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः[5] । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिर्यग्भ्याम् ।

३४१ नाञ्चेः पूजायाम् ६ । ४ । ३० ।

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न । प्राङ् । प्राञ्चौ । नलोपाभावादलोपो न । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक्[6] । पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगित्त्वान्नुम्[7] ।

३४२ [8]सान्त-महतः संयोगस्य । ६ । ४ । १० ।

१—'सम्' इत्यस्य 'समि' इत्यादेशः' । २–'न' लोपः, 'अ' लोपः, दीर्घः, यथा प्रतीचः । ३–वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे 'सह' इत्यस्य 'सध्रिः' इत्यादेशः स्यादित्यर्थः । ४–सध्रीचः सहपूर्वाद् अञ्चतेः क्विन्नन्तात् द्वितीयाबहुवचने शसि भसंज्ञायां 'सहस्य-सध्रिः' इति सध्र्यादेशे नलोपे 'सध्रिअच् अस्' इति जाते 'अचः' इति अकार लोपे 'चौ' इति पूर्वस्याणो दीर्घे सिध्यति रूपं 'सध्रीचः' इति । ५–'तिरि' आदेशः । 'तिरश्चः' इत्यत्र 'अचः' इति–अकारलोपान्न तिर्य्यादेशः । ६–पयो (जलम्) मुञ्चति-इति विग्रहः । मेघोऽर्थः । ७–'उगिदचां…' इत्यनेन । ८–विद्वान्, विद्वांसौ । महान्, महान्तौ, इत्यादौ च "संयोगान्तस्य लोपः" इत्यनेन कृतस्य सकारलोपस्याऽसिद्धत्वान्नान्तोपधत्वं नास्तीति 'सर्वनामस्थाने चा…' इति दीर्घो न प्राप्नोति-इत्यतः सूत्रारम्भः ।

३३८—अप्रत्ययान्त अन्चु परे रहते सम् को समि आदेश होता है ।

३३९—अप्रत्ययान्त अन्चु परे रहते सह को सध्रि आदेश होता है ।

३४०—अलुप्ताकार अप्रत्ययान्त अन्चु परे रहते तिरस् को तिरि आदेश होता है ।

३४१—पूजार्थक अन्चु के न का लोप नहीं होता ।

३४२—संयुक्त सान्त और महत् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ होता है सर्वनामस्थान परे रहते, सम्बुद्धि को छोड़कर ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महद्! महद्भ्याम्।

३४३ अत्वसन्तस्य चाधातोः ६। ४। १४।

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे। धीमान्-धीमन्तौ। धीमन्तः। हे धीमन्! शसादौ महद्वत्। भातेर्डवतुः[१]। डित्त्व-सामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। शत्रन्तस्य-भवन्[२]।

३४४ उभे अभ्यस्तम् ६। १। ५।

[३]षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः।

३४५ नाभ्यस्ताच्छतुः ७। १। ७८।

अभ्यस्तात् परस्य[४] शतुर्नुम् न। ददत् ददतौ। ददतः।

३४६ जक्षित्यादयः षट् ६। १। ६।

षट् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते[५] अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः। जक्षत्, जक्षद्। जक्षतौ। जक्षतः। एवं जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्। गुप्, गुब्। गुपौ। गुपः। गुब्भ्याम्।

३४७ त्यदादिषु दृशोनालोचने कञ् च ३। २। ६०।

१–भातेः=भा (दीप्तौ) इत्यस्मात्। २–शतृप्रत्ययान्तस्य अत्वन्तत्वाभावात् अत्व-'सन्तस्य चा…' इति दीर्घो न। ३–षष्ठाध्यायस्थद्वित्वप्रकरणे। ४–शतृप्रत्ययस्य। ५–ते चैते सप्त—

'जक्षि-जागृ-दरिद्रा-शास्-दीधीङ्-वेवीङ्-चकास्तथा।
अभ्यस्तसंज्ञा विज्ञेया धातवो मुनिभाषिताः॥

३४३–अत्वन्त की उपधा और धातुभिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ होता है। सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते।

३४४–छठे अध्याय के द्वित्व प्रकरण में जो दो विधान किये हैं वे दोनों समुदित अभ्यस्त संज्ञक होते हैं।

३४५–अभ्यस्त से परे शत् को नुम् नहीं होता।

३४६–जागृ आदि छः और जक्षिति, इन सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होती है।

३४७–त्यदादि उपपद रहते अनालोचनार्थक दृश् धातु से कञ् प्रत्यय होता है और क्विन् भी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् चात् क्विन् ।

३४८ आ सर्वनाम्नः ६ । ३ । ९१ ।

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्[1]-दृश्-वतुषु । तादृक्[2], तादृग् । तादृशौ । तादृशः । तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे । विट्, विड् । विशौ । विशः । विड्भ्याम् ।

३४९ नशेर्वा ८ । २ । ६३ ।

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । नक्, नग्, नट्, [3]नड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् । नड्भ्याम् ।

३५० स्पृशोऽनुदके क्विन् ३ । २ । ५८ ।

[4]अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् । [5]घृतस्पृक्, घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । [6]दधृक्, दधृग् । दधृषौ । दधृग्भ्याम् । रत्नमुट्, रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुड्भ्याम् । षट्, षड् । षड्भिः । षड्भ्यः २ । षण्णाम्[7] । षट्सु, षट्त्सु । रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात् ससजुषोरुरिति रुत्वम् ।

३५१ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८ । २ । ७६ ।

१–'दृग्-दृश्-वतुषु' इति सूत्रमनुवर्तते । २–'स' इव दृश्यते इति तादृक् बाहुलकात् कर्मणि क्विन् । स इव पश्यतीति कर्मकर्तरि वा क्विन्, दृशेरत्र ज्ञानविषयत्वापत्तिमात्र-वृत्तित्वादज्ञानार्थता । तद् दृश् क्विन्, क्विनः सर्वापहारे 'आ सर्वनाम्नः' इति दकारस्य-आत्वे, 'तादृश' इति भवति । सु-विभक्तौ व्रश्चेति षः, षस्य "झलां जशोऽन्ते" इति डः, तस्य 'क्विन् प्रत्ययस्येति' 'गः', 'वावसाने' इति वा कः । तादृक् तादृग् । (कञ्-प्रत्यये तु 'तादृशः' रामवत् ।) एवमेव 'घृतस्पृक्' इत्यादौ साधने बोध्यम् । ३–कुत्वाभावपक्षे षत्वम्, जश्त्वम्, वा=चर्त्वं च । ४–उदकशब्दभिन्ने, इत्यर्थः । ५–'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' इति कुत्वम् । ६–'ऋत्विग्दधृक्...' इति क्विन्नन्तनिपातन-मिदम् । ७–'षट् चतुर्भ्यश्च' इति नुट्, षस्य जश्त्वे 'षड् + नाम्' इत्यत्र 'अनाम्' इति पर्युदासात् 'ष्टुना ष्टुः' इति ष्टुत्वम्, 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति डस्य णत्वे, षण्णाम्

३४८–सर्वनाम को आकार अन्तादेश होता है दृग्, दृश्, वतु परे रहते ।

३४९–नश् को कवर्ग अन्तादेश होता है पदान्त में ।

३५०–उदकभिन्न सुबन्त उपपद रहते स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३५१–रेफवान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है पदान्त में ।

रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते। [१]पिपठीः। पिपठिषौ। पिपठीर्भ्याम्।

३५२ नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८।

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः। ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः। पिपठीष्षु, पिपठीःषु। [२]चिकीः। चिकीर्षौ। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षुः। [३]विद्वान्। विद्वांसौ। हे विद्वन्!।

३५३ वसोः संप्रसारणम् ६।४।१३१।

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात्। [४]विदुषः। (२६२) वसुस्रंस्विति दः। विद्वद्भ्याम्।

३५४ पुंसोऽसुङ् ७।१।८९।

सर्वनामस्थाने विवक्षितेऽसुङ् स्यात्। पुमान्। हे पुमन्!। पुमांसौ। पुंसः। पुंभ्याम्। पुंसु। (२०४) ऋदुशनेत्यनङ्। उशना। उशनसौ। (अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः) हे उशन्!, हे उशनन्।

१–'पठ्' धातोः सन्नन्तात् क्विप्, पिपठिषति, इति पिपठीः पिपठिष् + सु, 'हल्ङ्याप्' इति सुलोपे षत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'ससजुषो रुः' इति रुः, 'र्वो...' इति दीर्घः। २–चिकीर्ष् + सु 'हल्ङ्याप्' इति सुलोपे, 'रात्सस्य' इति सकारलोपे, च रेफस्य विसर्गः, चिकीः। ३–विद्वान्—विद्धातोः लटः शत्रादेशे शतुश्च 'विदेः शतुर्वसुः' इति वस्वादेशेऽनुबन्धलोपे विद्वस्शब्दात् कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकात् प्रथमैकवचने सौ 'उगिदचां' इति नुमि विद्वन्स् स्' इति स्थितौ 'सान्तमहत....' इति दीर्घे 'हल्ङ्याबिति' विभक्तिसकारलोपे संयोगान्तत्वेन पूर्वसकारलोपे सिध्यति रूपं 'विद्वान्' इति। ४–विद्वस् + (शस्) अस्। सम्प्रसारणम् (वस्य = उत्वम्, पूर्वरूपम्, षत्वम्। ५–पुंस् + सु, असुङ् = पुंमस् + सु, सुलोपः। 'उगिदचां....' इति नुम्, 'सान्तमहतः' इतिदीर्घः। संयोगान्तलोपः, पुमान्।

३५२–नुम्, विसर्जनीय और शर् के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से परे स को ष होता है।

३५३–वस्वन्त भसंज्ञक अङ्ग को सम्प्रसारण होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३५४–सर्वनामस्थान की विवक्षा में पुंस् को असुङ् होता है।

हे उशनः !, हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु। अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः ! । वेधाः । वेधसौ । हे वेधः !! [1]वेधोभ्याम् ।

३५५ अदस औ सुलोपश्च ७ । २ । १०७ ।

अदस औत् स्यात् सौ परे सुलोपश्च। (३१०) तदोरिति सः। असौ। त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । वृद्धिः ।

३५६ अदसोऽसेर्दादु दो मः ८ । २ । ८० ।

अदसोऽसान्तस्य दात् परस्य उदूतौ, दस्य मश्च। [2]आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य-उः, दीर्घस्य-ऊः । अमू । (१५२) जसः शी । गुणः ।

३५७ एत ईद् बहुवचने ८ । २ । ८१ ।

अदसो दात् परस्यैत ईद् दस्य च मो [3]बह्वर्थोक्तौ। [4]अमी । (३१) पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्। अमू। अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां "ना"-[5]भावः ।

३५८ न मु ने[6] ८ । २ । ३ ।

१-एवं 'चन्द्रमस्' शब्दः। २-परिमाणकृतान्तरतम्यात्। ३-बहुवचने। ४-अदस् (जस्), त्यदाद्यत्वे पररूपे 'जसः शी' 'आद्गुणे'। 'अदे' इति स्थितौ 'एत ईद् बहुवचने' इति-इत्वे दस्य मश्च, अमी। एवं तृतीयादिबहुवचने सर्वत्र 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वं कृत्वा इत्वं दस्य मत्वं च विधेयम्। ५-'आङो नाऽस्त्रियाम्' इत्यनेन। ६-(७।३। १२०) 'ना'-भावदृष्टौ, (८।२।८०) 'मु'-भावस्याऽसिद्धत्वात् कथं (घिसंज्ञा) 'ना'-भावः, इत्यसिद्धत्वाऽभावप्रतिपादनार्थमिदं सूत्रम्।

(वा०—उशनस् शब्द को सम्बोधन में विकल्प से अनङ् आदेश होता है और न का लोप विकल्प से होता है)।

३५५—अदस् के अन्त्य अल् को औ होता है सु परे रहते।

३५६—सान्तभिन्न अदस् शब्द के दकार से परे ह्रस्व को उ, दीर्घ को ऊ आदेश होता है और द को म होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

३५८ ना-भाव करने पर या कर चुकने पर मु-भाव असिद्ध नहीं होता।

"ना"-भावे कर्तव्ये कृते च मु-भावो नासिद्धः। अमुना[1]। अमूभ्याम्। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः २। [2]अमीषाम्।

इति हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः

अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

३५९ नहो धः ८। २। ३४।

नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च।

३६० नहि वृति-वृषि-व्यधि-रुचि-सहि-तनिषु क्वौ ६। ३। ११४।

क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः। [3]उपानद्। उपानहौ। उपानत्सु। [4]क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः। उष्णिक्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। [5]द्यौः। दिवौ। दिवः। द्युभ्याम्।

१–अमुना—'अदस्' शब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ त्यदाद्यत्वे पररूपे च 'अद आ' इति स्थिते 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' अकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे 'अमु आ' इति जाते 'नमु ने' इति सूत्रेण मुभावस्यासिद्धत्वाभावबोधनात् घिसंज्ञायाम् 'आङो नाऽस्त्रियाम्' इति नादेशे सिध्यति रूपम् 'अमुना' इति। अदस्+भ्याम्, त्यदाद्यत्वं पररूपम्, सुपि चेति दीर्घः ऊत्वं, मत्वं चेति अमूभ्याम्। २– अमीषाम् 'अदस्' शब्दादामि त्यदाद्यत्वे पररूपे 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुटि 'अद साम्' इति स्थिते 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वे 'एत ईद् बहुवचने' इति एकारस्य इत्वे दस्य च मकारे सस्य षत्वे सिध्यति रूपम् 'अमीषाम्' इति। इति हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः।

३–'उप' उपसर्गात् 'णह' (बन्धने) धातोः क्विप् पूर्वस्य दीर्घः। उपानत्=पादत्राणम् (जूता)। एवं नीवृत्। प्रावृट्। मर्मावित्। अभीरुक्। ऋतीषट्। परीतत्। इत्येतेषु पूर्वपददीर्घः। ४–"ऋत्विग्दधृक्……" इति क्विन्। ५–"दिव औत्" इति वस्य औत्वम्, विसर्गः। ६–"दिव उत' इति-उत्वम्।

इति हलन्तपुंल्लिङ्गाः

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गाः

३५९–नह धातु के ह को ध होता है झल् परे रहते पदान्त में।

३६०–क्विबन्त नहि वृति वृषि आदि परे रहते पूर्व पद को दीर्घ होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]गीः । गिरौ । गिरः । एवं [2]पूः । चतस्रः [3]चतसृणाम् । का । [4]के । काः । सर्वावत् ।

३६१ यः सौ ७ । २ । ११० ।

इदमो दस्य यः । इयम् त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । टाप् । दश्चेति मः । इमे । इमाः । इमाम् । [5]अनया । (२७७) हलि लोपः, आभ्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः । अनयोः । आसाम् । अस्याम् । आसु । त्यदाद्यत्वम् टाप् । स्या । त्ये । त्याः । एवं [6]तद्, एतद् । [7]वाक् । वाग् । वाचौ । वाग्भ्याम् । वाक्षु । अप् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । (२०६) अप्तृन्निति दीर्घः । आपः । अपः ।

३६२ अपो भि ७ । ४ । ४८ ।

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये । अद्भिः । अद्भ्यः २ । अपाम् । अप्सु । दिक्, दिग् । दिशः । दिग्भ्याम् (३४७) त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि । [8]कुत्वम् । [9]दृक, दृग् । दृशौ । दृग्भ्याम् । त्विट् । त्विड् । त्विषौ । त्विड्भ्याम्

१–गिर्+सु, सुलोपः "र्वोरुपधाया दीर्घ ' इति दीर्घः । रेफस्य विसर्गः । गीः=वाणी । २–पूः=नगरी, पूः पुरौ, पुरः । ३ चतसृणाम् 'चतुर' शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि 'त्रिचतुरोः' इति चतस्रादेशे 'अचि र ऋतः' इति प्राप्तं रेफादेशं 'नुमचिरेति' पूर्वविप्रतिषेधेन बाधित्वा नुट्' नामीति प्राप्तस्य दीर्घस्य 'न तिसृ चतसृ' इति निषेधे "ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यमिति'' णत्वे सिध्यति 'चतसृणाम्' । ४–'किमः कः' इति कादेशे स्त्रियां टाप्, हल्ङ्याबिति सुलोपः ५–अनया—'इदम्' शब्दात् तृतीयैकवचने-टाविभक्तौ त्यदाद्यत्वं पररूपं स्त्रीत्वे टापि सवर्णदीर्घे 'इदा आ' इति स्थिते 'अनाप्यकः' इति सूत्रेण इद् भागस्य अनादेशे 'आङि-चापः' इति एकारादेशे, 'एचोऽयवायावः' इति अयादेशे सिध्यति रूपम् 'अनया' इति । ६–'तत्' शब्दस्य स्त्रियां सा, ते, ताः । 'एतत्' शब्दस्य एषा, एते, एताः । ७–'चोः कुः' इति कुत्वम्, 'वाच्' शब्दोऽयम् ! ८–'ऋत्विग्' सूत्रेण । ९–"क्विन्–प्रत्ययस्य ·····' इति सूत्रे क्विन् प्रत्ययो (दृष्टो) यस्मादिति बहुव्रीहिः । तथा च अत्र क्विन्-प्रत्ययाभावेऽपि 'तादृक्' इत्यादौ 'त्यदादिषु दृशोऽना लोचने···' इत्यनेन क्विन् विधानदर्शनात् भवत्येव कुत्वम् ।

३६१–इदम् शब्द के दकार को यकार होता है सु परे रहते स्त्रीलिङ्ग में ।

३६२-अप् शब्द को तकार अन्तादेश होता है भादि प्रत्यय परे रहते । इति ह०स्त्री० ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१०५) ससजुषो रुरिति रुत्वम्। सजूः। सजुषौ। सजूर्भ्याम्। आशीः। आशिषौ। आशीर्भ्याम्। असौ। उत्व-मत्वे। अमू। अमूः। [1]अमुया। अमूभिः। [2]अमुष्यै। अमूभ्यः। अमुष्याः। [3]अमुयोः। अमूषाम्। अमुष्याम्। अमूषु।

इति हलन्ताः स्त्रीलिंगाः।

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

स्वमोर्लुक्। [4]दत्वम्। [5]स्वनडुत्, स्वनडुद्। स्वनडुही। (२५९) चतुरनडुहोरित्याम्। स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। [6]वाः। वारी। वारि। वार्भ्याम्। [7]चत्वारि। [8]किम्। के। कानि। इदम्। इमे। इमानि। (अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः) एनत्, एनद्। एने। एनानि। एनेन। एनयोः २॥ [9]अहः। (२४८) विभाषा [10]ङिश्योः। अह्नी, अहनी। अहानि।

३६३ अहन्। ८। २। ६८।

१—अत्र क्विप् अदस्+टा, त्यदाद्यत्वे—पररूपे स्त्रीत्वविवक्षायां टाप्। सवर्णदीर्घः, 'आङि चापः' इत्येत्वेऽयादेशः, उत्व—मत्वे, अमुया। २—अदस्+ङे, त्यदाद्यत्वं पररूपम्, टाप्, सवर्णदीर्घः, अदा+ए इत्यत्र 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याट्, आपश्च ह्रस्वः, वृद्धौ उत्वे मत्वे षत्वे च, अमुष्यै। ३—अमुयोः—'अदस्' शब्दात् ओसि विभक्तौ त्यदाद्यत्वे पररूपे स्त्रीत्वे टापि सवर्णदीर्घे 'अदा आस्' इति स्थिते 'आङि चापः' इति एकारादेशेऽयादेशे च 'अदयोस्' इति जाते 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' इति उत्वे मत्वे च तस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपम् 'अमुयोः' इति। इति हलन्त-स्त्रीलिङ्गाः।

४—"वसुस्रंसु" इत्यनेन। ५—सु=शोभनाः अनड्वाहः=वृषभा यस्मिन् यस्य वा तत्कुलम्। ६—'वार्' इति रान्तोऽयं शब्दः। ७—चतुर्+(जस्) शि, "चतुरनडुहो" इत्याम्। ८—नात्र किमः कादेशो विभक्तेरभावात्। प्रत्ययलक्षणं तु न, "न लुमतेति" लुकि तन्निषेधात्। ९—अहन्+सु, नुलोपः, "रोऽसुपि" इति नकारस्य रेफादेशः विसर्गः। १०—वा—अकारलोपः।

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

(वा०-अन्वादेश में एतद् शब्द को विकल्प से एनत् आदेश होता है नपुंसकलिङ्ग में)।

३६३—अहन् शब्द को र आदेश होता है पदान्त में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते। [1]अहोभ्याम्। दण्डि। (सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः) हे दण्डिन्! हे दण्डि! दण्डिनी। दण्डीनि। दण्डिना। दण्डिभ्याम्॥ [2]सुपथि। टेर्लोपः। सुपथी। सुपन्थानि। [3]ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जी। ऊर्न्जि। नरजानां [4]संयोगः। तत्। ते। तानि। यत्। ये। यानि। एतत्। एते। एतानि। [5]गवाक्। गोची। गवाञ्चि। पुनस्तद्वत्। [6]गोचा। गवाग्भ्याम्। शकृत्। शकृती। शकृन्ति। ददत्। ददती।

३६४ वा नपुंसकस्य ७।१।७९।

१—"हशि च" इति—उत्वम्, गुणः। २—सुपथि=शोभनमार्गम्—नगरम्। द्विवचने 'सुपथी' नपुंसकत्वात्सर्वनामस्थानसंज्ञाऽभावाद् "यचि भम्" इति भसंज्ञायाम्, "भस्य टेर्लोपः" इति टिलोपः। बहुवचने 'सुपन्थानि' "शि सर्वनामस्थानम्" इति शेः सर्वनामस्थानत्वात् "थो न्थः" इति न्थादेशे "इतोऽत्सर्वनामस्थाने" इति अत्वे सुपन्थन्+इ इत्यवस्थितौ उपधादीर्घः। ३—'ऊर्ज्', धातोः क्विप्। ४—(नकार-रेफ-जकाराणां संयोगः) अत्र व्यपदेशिवद्भावेनाऽन्त्याच् ऊकारस्ततो नुमि एवं वर्णक्रमः—इति भावः।

५—गवाक् शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः।
असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं (१०९) मतम्॥

६—गोचा—गोपूर्वकादञ्चतेः क्विन् प्रत्यये 'गो अञ्च्' शब्दात् समासत्वेन प्रातिपदिकसंज्ञायां टाविभक्तौ 'गो अञ्च् आ' इति स्थितौ अनिदितामिति नलोपे यत्वे च 'अचः' इति अचोऽकारस्य लोपे सिध्यति रूपं 'गोचा'। पूजायां तु 'नाञ्चेः पूजायाम्' इति नलोपनिषेधे 'अवङ् स्फोटायनस्य' इति अवङि सवर्णदीर्घे 'गवाञ्चा' इति अवङभावपक्षे 'सर्वत्र विभाषा गोः' इति वैकल्पिके प्रकृतिभावे 'गो अञ्चा' इति प्रकृतिभावाभावे 'एङः पदान्तादति' इति पूर्वरूपे 'गोऽञ्चा' इति रूपं सिध्यति।

स्वम् सुप्सु नव, षड् भादौ षट्के स्युः, त्रीणि जश्शसोः।
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय॥

गोपूर्वकादञ्चेः क्विनि, सर्वापहारे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सुः, गो अञ्च+सु, सुलोपे 'अनिदितां हलः' इति नस्य लोपः। "अवङ् स्फोटायनस्य"

३६४—अभ्यस्त से परे शतृप्रत्ययान्त क्लीबाङ्ग को विकल्प से नुम् होता है। सर्वनामस्थान परे रहते।

-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभ्यस्तात् परो यः [1]शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने। ददन्ति। ददति। तुदत्।

३६५ आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०।

अवर्णान्तादङ्गात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्योः। तुदन्ती। तुदती। तुदन्ति।

३६६ शप्-श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१।

शप्श्यनोरात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः। [2]पचन्ती पचन्ति। दीव्यत्। दीव्यन्ती। दीव्यन्ति। [3]धनुः। धनुषी। (३४२) सान्तेति दीर्घः। (३५२) नुम्विसर्जनीयेति षः। [4]धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। एवं [5]चक्षुर्हविरादयः। पयः। पयसी। पयांसि। पयसा। पयोभ्याम्। सुपुम्। सुपुंसी।

इत्यवङि, सवर्णदीर्घः, चोः कुरिति कुत्वम्, जश्त्वे वैकल्पिके चर्त्वे च गवाक्, गवाग्। प्रकृतिभावे गोअक्, गोअग्। पूर्वरूपे गोऽक्, गोऽग्। पूजायां गवाङ्, गोअङ्, गोऽङ्। इति सौ नवरूपाणि। विस्तरभयान्न सर्वाणि दर्शितानि।

१–'शतृ' प्रत्ययः। २–द्विवचनान्तमिदम्। ३–'धन' धातोः 'उस्' प्रत्ययः 'धनुष्' शब्दो भवति। धनुर्भ्यामित्यत्र रेफान्तत्वेऽपि धातुत्वाभावात् हलि चेति र्वोरिति च न दीर्घः। ४–धनूंषि—'धनुष्' शब्दात् प्रथमाबहुवचने जसि 'जस्शसोःशि' इति श्यादेशे सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि नस्यानुस्वारे 'सान्तमहतः संयोगस्येति' उपधादीर्घे 'नुम् विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि' इति सस्य षत्वे सिध्यति रूपं 'धनूंषि' इति। ५–चक्षुः, चक्षुषी, चक्षूंषि। हविः, हविषी, हवींषि।

३६५–अवर्णान्त अङ्ग से परे शतृप्रत्ययान्त शब्दस्वरूप को नुम् होता है विकल्प से शीप्रत्यय और नदीसंज्ञक परे रहते।

३६६–शप् श्यन् सम्बन्धी आकार से परे शतृ के अवयवान्त शब्दस्वरूप को नित्य नुम् होता है शी और नदी परे रहते।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

—:०:—

[1]सुपुमांसि। [2]अदः। [3]विभक्तिकार्यम्। उत्व-मत्वे। अमू। [4]अमूनि। शेषं पुंवत्।

इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः।

इति षड्लिङ्गः

अथाऽव्ययप्रकरणम्

३६७ स्वरादि-निपातमव्ययम् १। २। ३७।

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः।

१-स्वर्। २-अन्तर्। ३-प्रातर्। ४-पुनर्। ५-सनुतर्। ६-उच्चैस्। ७-नीचैस्। ८-शनैस्। ९-ऋधक्। १०-ऋते। ११-युगपत्। १२-आरात्। १३-पृथक्। १४-ह्यस्। १५-श्वस्। १६-दिवा। १७-रात्रौ। १८-सायम्। १९-चिरम्। २०-मनाक्। २१-ईषत्। २२-जोषम्। २३-तूष्णीम्। २४-बहिस्। २५-अवस्। २६-अधस्। २७-समया। २८-निकषा। २९-स्वयम्।

१-शोभनाः पुमाँसो यत्र तत् कुलं-सुपुम्, सुपुंसी, जसि-सुपुमांसि-'नपुंसकस्य झलचः' इति नुम्, 'सान्तमहतः' इति दीर्घः। २-'अदस्' शब्दस्य प्रथमाया एकवचने रूपम्। ३-त्यदाद्यत्वम्, (पररूपम् गुणः) ४-अमूनि—'अदस्' शब्दात् (नपुंसके) जसि त्यदाद्यत्वे पररूपे 'जश्शसोःशि' इति जसःश्यादेशे 'अद+इ' इति स्थितौ 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि उपधादीर्घे 'अदानि' इति स्थितौ 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' इति उत्वे दस्य मत्वे सिध्यति रूपम् 'अमूनि' इति। पुनस्तद्वत् रूपाणि।

इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः

अथाऽव्ययाऽर्थाः

१-स्वर्गः। २-मध्यम्। ३-दिनादि (प्रत्यूषम्)। ४-भूयः (अप्रथमम्)। ५-अन्तर्धानम्। ६-उच्चस्थानम्। ७-नीचस्थानम्। ८-क्रियामान्द्यम्। ९-सत्यम्। १०-विना। ११-एककालम्। १२-दूरं, सामीप्यञ्च। १३-भिन्नम्। १४-अतीतदिनम्। १५-आगामिदिनम्। १६-दिनम्। १७-रात्रिः। १८-दिनावसानम्। (निशामुखम्)। १९-बहुकालम्। २०-अल्पम्। २१-अल्पम्। २२-मौनम्। २३-मौनम्। २४-बाह्यम्। २५-बाह्यम्। २६-नीचैः। २७-सामीप्यम्। २८-सामीप्यम्। २९-आत्मना।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३६७-स्वरादिगणपठित शब्द और निपातसंज्ञक शब्दों की अव्ययसंज्ञा होती है।

३०-वृथा । ३१-नक्तम् । ३२-न । ३३-नञ् । ३४-हेतौ । ३५-इद्धा । ३६-अद्धा । ३७-सामि । ३८-वत् । ३९-ब्राह्मणवत् । ४०-क्षत्रियवत् । ४१-सना । ४२-सनत् । ४३-सनात् । ४४-उपधा । ४५-तिरस् । ४६-अन्तरा । ४७-अन्तरेण । ४८-ज्योक् । ४९-कम् । ५०-शम् । ५१—सहसा । ५२—विना । ५३—नाना । ५४-स्वस्ति । ५५-स्वधा । ५६-अलम् । ५७-वषट् । ५८-श्रौषट् । ५९-वौषट् । ६०-अन्यत् । ६१-अस्ति । ६२-उपांशु । ६३-क्षमा । ६४-विहायसा । ६५-दोषा । ६६-मृषा । ६७-मिथ्या । ६८-मुधा । ६९-पुरा । ७०-मिथो । ७१-मिथस् । ७२-प्रायस् । ७३-मुहुस् । ७४-प्रवाहुकम् । (७५-प्रवाहिका) । ७६-आर्यहलम् । ७७-अभीक्ष्णम् । ७८-साकम् । ७९-सार्धम् । ८०-नमस् । ८१-हिरुक् । ८२-धिक् । ८३-अथ । ८४-अम् । ८५-आम् । ८६-प्रताम् । ८७-प्रशान् । ८८-मा । ८९-माङ् । (आकृतिगणोऽयम्) ९०-च । ९१-वा । ९२-ह । ९३-अह । ९४-एव । ९५-एवम् । ९६-नूनम् । ९७-शश्वत् ।

३०-व्यर्थम् । ३१-रात्रिः । ३२-निषेधः । ३३-निषेधः । ३४-निमित्तम् । ३५-प्राकाश्यम् । ३६-स्फुटम् । (अवधारणञ्च) । ३७-अर्धम् , जुगुप्सितञ्च । ३८-वत्-प्रत्ययः सादृश्येऽर्थे । ३९-तस्योदाहरणम् । ४०-एतदपि । ४१-नित्यम् । ४२-नित्यम् । ४३-नित्यम् । ४४-भेदः । ४५-तिरस्कारः । ४६-मध्यं विना च । ४७-विना । कालभूयस्त्वम् । ४८-शीघ्रं, सम्प्रति च । ४९-जलं, मूर्धा निन्दा सुखञ्च । ५०-सुखम् । ५१-आकस्मिकम् । ५२-वर्जनम् । ५३-अनेकम् । ५४-मङ्गलम् । ५५-पितृदानम् । ५६-भूषणं, पर्याप्तिः, शक्तिः, वारणं निषेधश्च । ५७-देवहविर्दाने । ५८-देवहविर्दाने । ५९-देवहविर्दाने । ६०-अन्यार्थकम् । ६१-अस्तीत्यर्थे । ६२-अप्रकाशं रहस्यञ्च । ६३-क्षमार्थे । ६४-आकाशः । ६५-रात्रिः । ६६-असत्यम् । ६७-असत्यम् । ६८-व्यर्थम् । ६९-पूर्वकाले । ७०-रहः, सहार्थः । ७१-रहः सहार्थः । ७२-बाहुल्यम् । ७३-वारंवारम् । ७४-समानकालम् (७५-इदं पाठान्तरम्) । ७६-बलात्कारः । ७७-पौनःपुन्यम् । ७८-सहार्थकः । ७९-सहार्थकः । ८०—नमस्कारः । ८१-वर्जनम् । ८२-निन्दा, भर्त्सनञ्च । ८३—प्रारम्भः, अनन्तरं, मङ्गलञ्च । ८४-शीघ्रम् । ८५-स्वीकारः । ८६-ग्लानिः । ८७-समानम् । ८८-निषेधः, शंका च । ८९-निषेधः, शंका च । ९०-समुच्चयः । ९१-विकल्पः । ९२-प्रसिद्धः । ९३-पूजा, स्पष्टता च । ९४-अवधारणम् । ९५-उक्तपरामर्शः । ९६-निश्चयः, तर्कश्च । ९७-पौनःपुन्यं नित्यञ्च । ९८-एककालम् । ९९—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९८–युगपत् । ९९–भूयस् । १००–कूपत् । १०१–सूपत् । १०२–कुवित् । १०३–नेत् । १०४–चेत् । १०५–चण् । १०६–यत्र । १०७–कच्चित् । १०८–नह । १०९–हन्त । ११०–माकिः । १११–माकिम् । ११२–नकिः । ११३–नकिम् । ११४–माङ् । ११५–नञ् । ११६–यावत् । ११७–तावत् । ११८–त्वै । (११९–न्वै) । १२०–द्वै । १२१–रै । १२२–श्रौषट् । १२३–वौषट् । १२४–स्वाहा । १२५–स्वधा । १२६–वषट् । १२७–तुम् । १२८–तथाहि । १२९–खलु । १३०–किल । १३१–अथो । १३२–अथ । १३३–सुष्ठु । १३४–स्म । १३५–आदह । (+ उपसर्ग-विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च) १३६–अवदत्तम् । १३७–अहंयुः । १३८–अस्तीक्षीरा । १३९–अ । १४०–आ । १४१–इ । १४२–ई । १४३–उ । १४४–ऊ । १४५–ए । १४६–ऐ । १४७–ओ । १४८ औ । १४९–पशु । १५०–शुकम् । १५१–यथाकथाच । १५२–पाट् । १५३–प्याट् । १५४–अङ्ग । १५५-है । १५६-हे । १५७-भो । १५८-अये ।

पुनः, आधिक्यञ्च । १००–प्रश्नः, प्रशंसा च । १०१–प्रश्नः प्रशंसा च । १०२–भूरि । १०३–शंका । १०४–यदि । १०५–यद्यर्थे । १०६–यस्मिन्, गर्हाऽऽश्चर्यञ्च । १०७–इष्टप्रश्नः । १०८–प्रत्यारम्भः । १०९–विषादो हर्षो वाक्यारम्भश्च । ११०–वर्जनम् । १११–वर्जनम् । ११२–वर्जनम् । ११३–वर्जनम् । ११४–निषेधः । ११५–निषेधः । ११६–साकल्यम् । ११७–साकल्यम् । ११८–वितर्कः । ११९ पाठान्तरमिदम् । १२०–वितर्कः । १२१–दानम् । १२२–देवहविर्दानम् । १२३–देवहविर्दानम् । १२४–देवहविर्दानम् । १२५–पितृदानम् । १२६–देवदानम् । १२७–तुंकारः । १२८–निदर्शनम् । १२९–वाक्यालङ्कारे निश्चये निषेधे च । १३०–वार्तायाम् । (ऐतिह्ये) अलीके च । १३१–मङ्गलम्, आनन्तर्यम्, अधिकारश्च । १३२–उपर्युक्तेषु । १३३–प्रशंसा । १३४–अतीते, पादपूरणे च । १३५–उपक्रमः, कुत्सनञ्च । +उपसर्गप्रतिरूपकाः विभक्तिप्रतिरूपकाः स्वरप्रतिरूपकाश्चाऽव्ययानीत्यर्थः । १३६–(अव) इति उ० सं० प्र० । १३७–(अहं) इति सुब्विभ० प्र० । (अहंकारवान्) । १३८–(अस्ति) इति तिङ् वि० प्र० । =विद्यमानदुग्धा (गौः) । १३९–सम्बोधनम् । १४०–वाक्यस्मरणयोः । १४१–सम्बोधनम् । १४२–सम्बो० । १४३–सम्बो० । १४४–सम्बो० । १४५ सम्बो० । १४६–सम्बो० । १४७–सम्बो० । १४८–सम्बो० । (एकदेशस्वरप्रतिरूपका इमे) । १४९-सम्यक् । १५०–शीघ्रता । १५१–अनादरः । सम्बो० । १५३–सम्बो० । १५४–सम्बो० । १५५–सम्बो० । १५६–सम्बो० । १५७–सम्बो० । १५८–सम्बो०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१५९-च्च। १६०-विषु। १६१-एकपदे। १६२-युत्। १६३ आतः। चादिराकृतिगणः।

३६८ तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १।१।३८।

यस्मात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात्। (परिगणनं कर्तव्यम्) [1]तसिलादयः प्राक् पाशपः। [2]शस् प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम्[3]। आम्। [4]कृत्वोऽर्थाः। [5]तसि-वती। [6]ना-नाञौ। [7]एतदन्तमप्यव्ययम्। [8]अतः, इत्यादि।

३६९ कृन्मेजन्तः १।१।३९।

कृद् यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं [9]स्यात्। [10]स्मारं। [11]जीवसे, पिबध्यै।

३७० [12]क्त्वा-तोसुन्-कसुनः १।१।४०।

१५९-हिंसा। १५०-नानार्थम्। १६१-अकस्मात्। १६२-निन्दा। १६३-इतोऽपि।

१-'पञ्चम्यास्तसिल्' इत्यतः 'याप्ये पाशप्' इति पर्य्यन्तमित्यर्थः। २-'बह्वल्पार्थात् ···शस्' इत्यारभ्य 'समासान्ताः' इति सूत्रपर्यन्ताः। ३-'अम्' 'आम्'' प्रत्ययौ, तदन्ता इत्यर्थः। ४-'सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' इत्यादि विहिता कृत्वसुजादयस्त्रयः। ५-'तसिश्च' इति (एकदिगर्थे) विहितः 'तसि' प्रत्ययः। 'तेन तुल्यं····' 'तत्र तस्येव' इति वतिप्रत्ययश्च। ६-'विनञ्भ्यां नानाञौ नसह' इति विहितौ। ७-पूर्वोक्तप्रत्ययान्तमित्यर्थः ८-अतः=अस्मात् (स्थानात्) कारणाद् वा (तसिल्प्रत्ययान्तोऽयम्) अत्र=(इह)। शतशः अनेकशः। एकक्रुत्वः। इत्येवमादीनि तदुदाहरणानि। ९-मान्त एजन्तश्च यः कृत्प्रत्ययः तदन्तमित्यर्थः। १०-अत्र णमुल् (अम्) प्रत्ययः। स्मृत्वा, स्मृत्वा, इत्यर्थः ११-जीवसे, (असे) प्रत्ययः, जीवनाय-इत्यर्थः, पिबध्यै (शध्यै) प्रत्ययः, पातायेत्यर्थः। (द्वाविमौ वैदिकौ)। १२-क्त्वा, तोसुन्, कसुन्, प्रत्ययाः।

३६७—जिस शब्द से सब विभक्तियों की उत्पत्ति नहीं होती ऐसे तद्धितान्त शब्द की अव्यय संज्ञा होती है।

३६९—मान्त और एजन्त कृत् प्रत्ययान्त शब्द की अव्यय संज्ञा होती है।

३७०—क्त्वा तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

एतदन्तमव्ययम् ।[1]कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ।

३७१ [2]अव्ययीभावश्च १ । १ । ४१ ।

[3]अधिहरि ।

३७२ [4]अव्ययादाप्सुपः २ । २ । ८२ ।

अव्ययाद् विहितस्यापः सुपश्च लुक् । [5]तत्र शालायाम् ।

(अव्ययलक्षणम्)

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न [6]व्येति तदव्ययम् ॥ इति ॥
[7]वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥

(उदाहरणम्)

वगाहः । अवगाहः । पिधानम्, अपिधानम् । इत्यव्ययानि ।

(इति पूर्वार्द्धम्)

—:०:—

१–क्त्वा-कृत्वा, तोसुन् उदेतोः = (उदितो भूत्वा इत्यर्थः) कसुन्—विसृपः = (गत्वा)। २–अव्ययमित्यर्थः । ३–'हरौ' इति 'अधिहरि' विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः (समासः)। ४–लुगित्यनुवर्तते । ५–'तत्र इत्यतः स्त्रीत्वे टाप् तस्य लुक् । ६–विकृतं भवति । ७–वष्टि–इति भागुरिः = तन्नामा-आचार्यः, अवाऽप्योः = अव-अपि एतयोः, अल्लोपम् = अकारस्य लोपं वष्टि = इच्छति । तथा हलन्तानामपि शब्दानाम् आपं (टाप् प्रत्ययं) वष्टि = इच्छति । अत्र दृष्टान्तः–वाचा, निशा, दिशा (इत्यादि)। इत्यव्ययप्रकरणम् । (इति पूर्वार्द्धम्) ।

३७१—अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा होती है ।

३७२—अव्यय से किये गये आप् और सुप् का लुक् होता है । इत्यव्ययानि ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति पूर्वार्द्धम्

[अथोत्तरार्द्धम्]

अथ तिङन्ते भ्वादयः

लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्[1]। एषु पञ्चमो [2]लकारश्छन्दोमात्रगोचरः।

३७३ [3]लः कर्मणि च[4] भावे चाकर्मकेभ्यः[5] २। ४। ६६।

१–एते दश लकाराः। २–अनुलोमसंख्यया पञ्चमो लेट्-एव, नतु प्रतिलोमसंख्यया लोट्, 'छन्दसि लेट्' इति सूत्रात्। ३–लकाराः। ४–चकारात् कर्त्तरि। ५–अत्रापि चकारात् 'कर्त्तरि' इति लभ्यते। अर्थो वृत्तौ स्पष्टः। अत्र के 'सकर्मकाः' के 'अकर्मकाः' इति विवेक इत्थम्—

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
'सकर्मकं' तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥ १॥

यत्र कर्तृवाचकपदेन सह प्रयुक्तं क्रियापदं 'किम्' इत्यपेक्षते तत्र स धातुः 'सकर्मकः' यथा देवदत्तो भक्षयति, व्रजति, अधीते-इत्याद्येषु सर्वत्र 'किम्' इत्यपेक्षा जायतेऽतः सकर्मका एते धातवः। यत्र तु क्रियापदं 'किम्' इत्यस्याऽपेक्षां न कुरुते तेऽकर्मकाः। यथा–भवति, एधते, लज्जते, शेते-इत्यादयः।

तथा च परिगण्यते—

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥ १॥

इदं चाप्यत्र बोध्यम्—

दशासु गणेषु सर्वत्रापि सकर्मकाऽकर्मकाभ्यां कर्तर्येव लकारा अत एव गणीयप्रयोगे सर्वत्र-उक्तः (अभिहितः) कर्ता। अनुक्तं (अभिहितं) कर्म। तस्मादेव गणीय-क्रियायोगे कर्मणि 'कर्मणि द्वितीया' इति शास्त्रेण द्वितीयैव। कर्तरि च प्रातिपदिकार्थत्वात्प्रथमैव। यथा देवदत्तो गृहं गच्छति। चैत्रः शेते, इत्यादि। सकर्मकेभ्यः कर्मणि, अकर्मकेभ्यो भावे लकाराः भावकर्मप्रक्रियायां प्रदर्शयिष्यन्ते। तत्र भावः कर्म वा 'उक्तम्'

३७३—सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में लकार होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

३७४ वर्तमाने लट् ३ । २ । १२३ ।

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य [1]नेत्त्वम् । भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते ।

३७५ तिप्-तस्-झि - सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-तातां-झ-थासाथां-ध्वमिड्-वहि-महिङ् ३ । ४ । ७८ ।

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ।

३७६ लः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ ।

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

३७७ तङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० ।

तङ् प्रत्याहारः शानच्-कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः । [2]पूर्वसंज्ञाऽपवादः ।

३७८ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् । १ । ४ । १२ ।

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ।

३७९ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२ ।

(अभिहितम्), कर्ता च 'अनुक्तः' (अनभिहितः) । तेन तद्योगे कर्तरि 'कर्तृ-करणयोस्तृतीया' इति सूत्रेण तृतीया कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्रत्वात्प्रथमा (उक्तत्वान्न द्वितीया) यथा—अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण, स्थीयते देवदत्तेन ।

एतन्मूलिकैवैषा प्रसिद्धिः—

'प्रथमान्तो यदा कर्ता द्वितीया कर्मणस्तदा ।
यदा कर्ता तृतीयान्तः प्रथमा कर्मणस्तदा' ॥ १ ॥

१–न इत्संज्ञा इत्यर्थः । २–परस्मैपदसंज्ञाया अपवाद इत्यर्थः ।

३७४—वर्तमानकालिक क्रियावृत्ति धातु से लट् लकार होता है ।

३७५—लकार के स्थान पर तिबादि अठारह आदेश होते हैं ।

३७६—लकार के स्थान पर होने वाले आदेश परस्मैपद संज्ञक होते हैं ।

३७७—तङ् प्रत्याहार और शानच्-कानच् की आत्मनेपद संज्ञा होती है ।

३७८—अनुदात्तेत और ङित धातु की आत्मनेपदसंज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३७९—स्वरितेत् और ञित् धातु के कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद होता है ।

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

३८० शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १ । ३ । ७८ ।

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं [1]स्यात् ।

३८१ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथम-मध्यमोत्तमाः १ । ४ । १०१ ।

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ।

३८२ तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः १ । ४ । १०२ ।

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि (वचनानि) [2]प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ।

१—एवं चायमत्र सङ्ग्रहः—

आत्मनेपदिनः	परस्मैपदिनः
(१) अनुदात्तेतः (धातवः) ।	(१) अनुदात्तेद्भिन्नाः (धातवः) ।
(२) ङितः (धातवः)	(२) ङिद्भिन्नाः (धा०) ।
कर्तृगामिक्रियाफलाः—	कर्तृभिन्न-(पर)-गामिक्रियाफलाः—
(३) स्वरितेतः (धातवः) ।	(३) स्वरितेतः (धा०)
(४) ञितश्च (धातवः) ।	(४) ञितश्च (धा०)
	(५) स्वरितेद्भिन्नाः (धा०)
	(६) ञिद्भिन्नाश्च (धा०)

तेन स्वरितेतो ञितश्च—उभयपदिनः

२—तेनेत्थं व्यवस्था—

। तिङ् ।

परस्मैपदम्				आत्मनेपदम्			
पुरुषः	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुषः	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तिप्	तस्,	झि	प्र० पु०	त,	आताम्,	झ
म० पु०	सिप्	थस्,	थ	म० पु०	थास्,	आथाम्,	ध्वम्
उ० पु०	मिप्	वस्,	मस्	उ० पु०	इट्,	वहि,	महि (ङ्)

३८०—आत्मनेपदनिमित्तहीन धातु से कर्ता में परस्मैपद होता है ।

३८१—तिङ के आत्मनेपद और परस्मैपद सम्बन्धी तीन-तीन त्रिकों की क्रम से प्रथम, मध्यम, उत्तम संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३८३ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५।

[1]तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः।

३८४ अस्मद्युत्तमः १ । ४ । १०७ ।

[2]तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः।

३८५ शेषे प्रथमः । १ । ४ । १०८ ।

मध्यमोत्तमयोरविषये [3]प्रथमः स्यात्। भू ति, इति जाते।

३८६ तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३ । ४ । ११३ ।

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः।

३८७ कर्तरि शप् ३ । १ । ६८ ।

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः [4]शप्।

३८८ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७ । ३ । ८४ ।

१—तिङा वाच्यं यत्कारकं (कर्तृरूपं कर्मरूपं वा) तद्वाचिनि=तद्वाचके। यथा—त्वं भवसि। त्वं अनुभूयसे (मया)। २—तिङ्वाच्यकारकवाचिनि-अस्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च उत्तमः (पुरुषः) यथा-अहं भवामि। अहं अनुभूये-(त्वया)। ३—तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदस्मद्भिन्ने=तदादिशब्दे प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च प्रथमः पुरुषः इत्यर्थः। यथा-स भवति। सोऽनुभूयते (त्वया मया वा)। ४—'शप्' विकरणोऽयं धातु-प्रत्यय-मध्यपाती।

३८२—प्राप्तप्रथमादिसंज्ञक त्रिकों के तीन वचनों की क्रम से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञा होती है।

३८३—तिङ्वाच्य-कारकवाची युष्मद् के प्रयुन्यमान तथा अप्रयुज्यमान होने पर धातु से मध्यम पुरुष होता है।

३८४—उक्तप्रकार अस्मद् के प्रयुज्यमानाऽप्रयुज्यमान होने पर उत्तम पुरुष होता है।

३८५—मध्यम, उत्तम के अविषय में प्रथम पुरुष होता है।

३८६—धात्वधिकार में पठित तिङ् शित् की सार्वधातुक संज्ञा होती है।

३८७—कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते धातु से शप् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३८८—सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते इगन्त अङ्ग को गुण होता है:

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः । [1]अवादेशः । [2]भवति । भवतः ।

३८९ झोऽन्तः ७ । १ । ३ ।

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । "२७४ अतो गुणे" । [3]भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ।

३९० अतो दीर्घो यञि ७ । ३ । १०१ ।

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः ।

३९१ [4]परोक्षे लिट् ३ । २ । ११५ ।

[5]भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः ।

३९२ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३ । ४ । ८२ ।

लिटस्तिबादीनां नवानां [6]णलादयः स्युः भू अ, इति स्थिते ।

३९३ भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६ । ४ । ८८ ।

भुवो वुगागमः स्यात् [7]लुङ्लिटोरचि ।

१—'एचोऽयवायावः' इति । २—भवति—भूधातोः वर्तमाने लटि प्रथमपुरुषैकवचने लस्य तिबादेशे सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्त्तरि शप्' इति शपि, अनुबन्धलोपे 'भू अ ति' इति स्थिते 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणेऽवादेशे सिध्यति रूपं 'भवति' इति । ३—भू + अ + अन्ति, पररूपम् । ४—अक्षिभ्यः परं = परोक्षम् तस्मिन्काले । ५—अनद्यतन इति-व्यतीताया रात्रेरुत्तरार्द्धत आगामिन्या रात्रेः पूर्वार्द्धपर्य्यन्तम् (यः कालः सः) अद्यतनः, तद्भिन्नोऽनद्यतनः । ६—णल्, अतुस्, उस् । थल्, अथुस्, अ । णल्, व, म, । इत्यादेशाः (नव) । ७—लुङ्-लिट्सम्बन्धिनि, इत्यर्थः ।

३८९—प्रत्ययावयव झ को 'अन्त' आदेश होता है ।

३९०—अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है यञादि सार्वधातुक परे रहते ।

३९१—भूत अनद्यतन परोक्षार्थवृत्ति धातु से लिट् लकार होता है ।

३९२—लिट् के स्थान में तिबादि नौ को णलादि नौ होते हैं ।

३९३—भू धातु को वुगागम होता है लुङ् लिट् सम्बन्धी अच परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३९४ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ ।

लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे [1]स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् [2]भूव् अ, इति स्थिते ।

३९५ पूर्वोऽभ्यासः ६ । १ । ४ ।

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ।

३९६ हलादिः [3]शेषः ७ । ४ । ६० ।

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः ।

३९७ ह्रस्वः ७ । ४ । ५९ ।

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ।

३९८ भवतेरः ७ । ४ । ७३ ।

[4]भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि ।

३९९ अभ्यासे चर्च ८ । ४ । ५४ ।

१—हलादीनामेकाचामनेकाचां च धातूनां प्रथमावयवस्य द्वित्वम्, अजाद्यनेकाचां धातूनां तु द्वितीयावयवस्येति विवेकः । २—'वृक्षः प्रचलन्, सहावयवैः प्रचलति' इति वुक्सहितस्य भुवो द्वित्वम् । ३—अत्र-अन्यथावृत्तिपूर्वकत्वे सति स्वावस्थानत्वम् =शेषत्वम्-तदेवाह वृत्तौ-अन्ये हलो लुप्यन्ते इति, अत्रायं विशेषो बोध्यः =यत्र आदिर्हल् स्यात् तत्र स एव शिष्यते, यत्र तु-आदिर्हल् न सम्भवेत्तत्रान्त्यस्य निवृत्तिमात्रम्—तथा च 'आद आत' इत्यादौ दकारतकारमात्रं निवर्तते । ४—भू-धातोः 'इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे' ।

३९४—अभ्यासरहित धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है । आदिभूत अच से परे द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होता है ।

३९५—यहाँ जो किए गए हैं उनमें से प्रथम की अभ्यास संज्ञा होती है ।

३९६—अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है अन्य हलों का लोप होता है ।

३९७—अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता है ।

३९८—भू धातु के अभ्यास के उकार को अकार होता है लिट् परे रहते ।

३९९—अभ्यास में झलों को जश् और खरों को चर् होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। [1]झलां जशः खयां चर इति विवेकः। [2]बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

४०० लिट् च ३।४।११५।

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः।

४०१ आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५।

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्। [3]बभूविथ। बभूवथुः। बभूव बभूव। बभूविव। बभूविम।

४०२ अनद्यतने लुट् ३।३।१५।

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्।

४०३ स्यतासी लृ-लुटोः ३।१।३३।

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः। शबाद्यपवादः। लृ इति [4]लृङ्लृटोर्ग्रहणम्।

४०४ आर्धधातुकं शेषः ३।१।१४४।

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय [5]एतत्संज्ञः स्यात्। [6]इट्।

१—झलां जशः, खयां चरः, इति तु परमार्थः। २—भू, लिट् तिप्, तिपो णल्। भू + अ इति स्थितौ वुक् द्वित्वे। भूव्भूव् + अ। हलादिशेषे भू भूव् + अ। अभ्यासह्रस्वे उकारस्याऽकारः। भस्य बत्वं बभूव। बभूविथ–भूधातोर्लिटि सिपि थलि 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इडागमे भुवो वुगागमे द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ह्रस्वेऽभ्यासस्य 'भवतेरः' इति उकारस्य अकारे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे सिध्यति 'बभूविथ' इति। ४—निरनुबन्धकग्रहणे सामान्यग्रहणम्। ५—आर्धधातुकसंज्ञः। ६—'आर्धधातुकस्य....' इत्यनेन।

४००—लिडादेश तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

४०१—वलादि आर्धधातुक को इडागम होता है।

४०२—भविष्यत् अनद्यतन अर्थ में धातु से लुट् होता है।

४०३—धातु से स्य और तास् प्रत्यय होते हैं लृट् लृङ् और लुट् परे रहते हैं।

४०४—तिङ् शित् से भिन्न धातु से विहित प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४०५ [1]लुटः प्रथमस्य डा-रौ-रसः २ । ४ । ८५ ।

डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । [2]भविता ।

४०६ तासस्त्योर्लोपः ७ । ४ । ५० ।

[3]तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये

४०७ रि च ७ । ४ । ५१ ।

रादौ प्रत्यये [4]तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ।

४०८ लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ ।

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा । स्यः । इट् । [5]भविष्यति । भविष्यतः । [6]भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ।

४०९ लोट् च ३ । ३ । १६२ ।

[7]विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् ।

१–लुटः प्रथमपुरुषस्थानिकानां 'तिप्, तस्, झि, इत्येतेषां क्रमेण 'डा, रौ, रस्' इत्यादेशाः स्युः इत्यर्थः । २–'दीधीवेवीटाम्' इति निषेधात्–इटो न गुणः । ३–सस्येति भावः । ४–'तासेरस्तेश्च सस्य लोपः (इति भावः) । ५–'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वम् । ६–भविष्यन्ति–भूधातोर्भविष्यदर्थे लृटि प्रथमपुरुष-बहुवचने लृटो 'झि' आदेशे 'झोऽन्तः' इति झस्यान्तादेशे 'स्यतासी लृलुटोः' इति शपोऽपवादे स्ये आर्धधातुकसंज्ञायाम् आर्धधातुकस्येड् वलादेः इति इटि 'भू इ स्य अन्ति' इति स्थिते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणेऽवादेशे सस्य षत्वे पररूपे सिध्यति रूपं 'भविष्यन्ति' इति । ७–'विधिनिमन्त्रणामन्त्र,...' इति सूत्रोक्तेषु ।

४०५–लुट्के प्रथम पुरुषके तिप्, तस्, झि को क्रमसे डा, रौ, रस् आदेश होते हैं।

४०६–तास् और अस् के स का लोप होता है सादि प्रत्यय परे रहते ।

४०७–तास् के स् का लोप होता है रादि प्रत्यय परे रहते ।

४०८–भविष्यत् अर्थ में धातुसे लृट् होता है क्रियार्थक क्रिया के होने वा न होने पर।

४०९–विध्यादि अर्थों में धातु से लोट् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४१० आशिषि लिङ्लोटौ ३ । ३ । १७३ ।

४११ एरुः ३ । ४ । ८६ ।

लोट एकारस्य उः । भवतु ।

४१२ तुह्योस्तातङाशिष्यन्तरस्याम् ७ । १ । ३५ ।

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । [1]परत्वात् सर्वादेशः । भवतात् ।

४१३ लोटो लङ्वत्[2] ३ । ४ । ८५ ।

लोटस्तामादयः सलोपश्च ।

४१४ तस्थस्थमिपां तांतंतामः ३ । ४ । १०१ ।

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात् स्युः । भवताम् । भवन्तु ।

४१५ सेर्ह्यपिच्च ३ । ४ । ८७ ।

लोटः सेर्हिः, सोऽपिच्च ।

४१६ अतो हेः ६ । ४ । १०५ ।

१–ङिच्चेत्यस्याऽनन्यार्थङित्त्वेषु-अनङ् आदिषु चरितार्थत्वान्न बाधकत्वम् , (परत्वात्सर्वादेशः) । अत्र तु 'युतात्' इत्यादौ गुणादिनिषेधो ङित्त्वप्रयोजनम् । २–लङ्वदिति स्थानषष्ठ्यन्तात्-लङो वतिप्रत्यये सिद्ध्यति । तेन लङ्स्थानिकस्य कार्यस्यैवातिदेशः, नतु लङि विधीयमानस्य कार्यस्य, तेन 'भवतु' 'अत्तु' इत्यादौ-अडाटौ न भवतः । लङो यथा तमादयः सलोपश्च भवति तथैव लोटोऽपि भवेदित्यर्थः । ३–ङित् लकारस्थानिकानां 'तस् , थस् , थः, मिप्' इत्येषां 'ताम् , तम् , त, अम्' इत्येते आदेशा क्रमेण स्युरित्यर्थः ।

४१०–आशीर्वाद अर्थ में धातुसे लिङ् और लोट् लकार होते हैं ।

४११–लोट् सम्बन्धी इ को उ आदेश होता है ।

४१२–आशीर्वाद अर्थ में तु और हि को तातङ् होता है बिकल्प से ।

४१३–लोट् में लङ् की तरह कार्य होते हैं ।

४१४–ङित् सम्बन्धी तस्-थस्-थ-मिप् को क्रम से ताम्-तम्-त-अम् आदेश होते हैं ।

४१५–लोट् सम्बन्धी सि को हि होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४१६–अदन्त से परे हि का लुक् होता है ।

अतः परस्य हेर्लुक्। [1]भव, भवतात्। भवतम्। भवत।

४१७ मेर्निः ३।४।८९।

लोटो मेर्निः स्यात्।

४१८ आडुत्तमस्य पिच्च। ३।४।९२।

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। हिन्योरुत्वं न [2]इत्वोच्चारणसामर्थ्यात्।

४१९ ते प्राग्धातोः १।४।८०।

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

४२० आनि लोट् ८।४।१६।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य लोडादेशस्य आनीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि (दुरःषत्व-णत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः) [3]दुःस्थिति। दुर्भवानि। ([4]अन्तःशब्दस्याङ् किविधि-णत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्) अन्तर्भवाणि।

४२१ नित्यं ङितः ३।४।९९।

१—भव–भूधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने लस्य सिपि शपि गुणेऽवादेशे 'भव सि' इत्यवस्थायां 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हि आदेशे 'अतो हे'–रिति हेर्लुकि सिध्यति रूपं 'भव' इति। (हेस्ताङ्ङादेशपक्षे 'भवतात्' इति)। २—अन्यथा 'सेर्ह्यपिच्च', 'मेर्निः' इत्युभयत्रापि—उत्वमेवोच्चारितं भवेत् पाणिनिना 'सेर्ह्युः' 'मेर्नुः' इति। ३—अन्यथा षत्वष्टुत्वयोः णत्वे च दुःष्ठितिः, दुर्भवाणि, इति स्यात्। ४—अङ्विधिः—यथा 'अन्तर्धा' 'आतश्चोपसर्गे' इत्यनेन 'अङ्'—प्रत्ययः। किविधिर्यथा-अन्तर्धिः 'उपसर्गे घोः किः' इति 'कि' प्रत्ययः। णत्वविधिर्यथा—अन्तर्भवाणि।

४१७—लोट् सम्बन्धी मि को नि आदेश होता है।

४१८—लोट् सम्बन्धी उत्तम पुरुष को आट् का आगम होता है वह पित् होता है।

४१९—गतिसंज्ञक और उपसर्गसंज्ञक धातु से पहले प्रयुक्त होते हैं।

४२०—उपसर्गस्थ निमित्त र-ष-से परे लोट् सम्बन्धी आनि के न को ण होता है।

(वा०–(१) षत्व-णत्व के विधान में दुर् को उपसर्गत्व नहीं होता है (२) अङ् विधि, किविधि और णत्व कर्तव्य में अन्तर् शब्द की उपसर्ग संज्ञा होती है)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४२१—ङित लकार सम्बन्धी सकारान्त उत्तम पुरुष के स् का नित्य लोप होता है।

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। (२१) अलोऽन्त्यस्येति सलोपः। भवाव। भवाम।

४२२ अनद्यतने लङ् ३। २। १११।

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

४२३ लुङ्-लङ्-लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६। ४। ७१।

एष्वङ्गस्याऽट् स्यात्।

४२४ इतश्च। ३। ४। १००।

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः। अभवत्। अभवताम्। [1]अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत। अभवम्। अभवाव। अभवाम।

४२५ [2]विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट-संप्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ् ३। ३। १६१।

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ्।

४२६ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३। ४। १०३।

---

१ अभवन्—भूधातोरनद्यतनभूते लङि प्रथमपुरुषबहुवचने झेरन्तादेशे शपि अटि च 'अ भू अ अन्ति' इति जाते इतश्चेति इकारलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'अभवन्त्' इति दशायां संयोगान्तलोपे सिध्यति रूपम् 'अभवन्' इति। २–विधिः–प्रेरणम् =आज्ञाकरणम् भृत्यादेः। पठेत्, यजेत्। निमन्त्रणम् =नियोगकरणम् श्राद्धभोजनादिप्रवर्तनम् (दौहित्रादेः) इह भुञ्जीत। आमन्त्रणम् =कामचारानुज्ञा तदिच्छानुसारमन्वेषणा (इहासीत भवान्) अधीष्टः =आदरपूर्विकाऽध्येषणा (पुत्रमध्यापयेद् भवान्) सम्प्रश्नः =सम्प्रधारणम् =उचिताऽनुचितपरिपृच्छा (भो! वेदमधीयीय—उत तर्कम्) प्रार्थनम् =याचनम् (भो! भोजनं लभेय)।

४२२—अनद्यतन भूतार्थवृत्ति धातु से लङ् लकार होता है।

४२३—लुङ्, लङ्, लृङ् परे रहते अङ्गको अट् का आगमन होता है, वह उदात्त होता है।

४२४—ङित् लकार सम्बन्धी इकारान्त परस्मैपद के इकार का लोप होता है।

४२५—प्रेरण-निमन्त्रण-आमन्त्रण-सत्कारपूर्वकव्यापार-सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।

४२६—लिङ् सम्बन्धी परस्मैपदको यासुट् आगम होता है और वह उदात्त ङित् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो [1]ङिच्च ।

४२७ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७ । २ । ७९ ।

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ।

४२८ अतो येयः ७ । २ । ८० ।

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । [2]गुणः ।

४२९ लोपो [3]व्योर्वलि ६ । १ । ६६ ।

[4]भवेत् । भवेताम् ।

४३० झेर्जुस् ३ । ४ । १८० ।

लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ।

४३१ लिङाशिषि ३ । ४ । ११६ ।

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ।

४३२ किदाशिषि ३ । ४ । १०४ ।

आशिषि लिङो यासुट् कित् (३०९) स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः ।

१—ङित्वोक्तिः 'वक्ष्यमाणा' इत्यादौ ङीब्भावार्था 'क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति प्रतिषेधः' इति ज्ञापनात् । २—"आद् गुणः" इत्यनेन । ३—वकारयकारयोर्लोपः स्याद् वल् प्रत्याहारघटितवर्णे (परे) ४—भवेत्—भूधातोः विधिलिङि तिपि शपि अनुबंन्धलोपे गुणेऽवादेशे 'भवति' इति स्थितौ इतश्चेति इकारलोपे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' अनेन यासुटि 'अतो येयः' इति यास इयादेशे 'भव इय् त्' इति स्थितौ 'आद् गुणः' इति गुणे 'लोपोव्योर्वलि' इति यलोपे सिध्यति रूपं 'भवेत्' इति ।

४२७—सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप होता है ।

४२८—अत् से परे सार्वधातुक के अवयव यास् को इय् होता है ।

४२९—यकार वकार का लोप होता है वल् परे रहते ।

४२०—लिङ् सम्बन्धी झि को जुस् होता है ।

४३१—आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है

४३२—आशीर्वाद अर्थ में लिङ् को यासुट् कित् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४३३ क्ङिति च १ । १ । ५ ।

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः। भूयात्। [1]भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। [2]भूयास्व। भूयास्म।

४३४ लुङ् ३ । २ । ११० ।

[3]भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

४३५ माङि लुङ् ३ । ३ । १७५ ।

[4]सर्वलकारापवादः।

४३६ स्मोत्तरे लङ् च ३ । ३ । १७६ ।

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ्।

४३७ च्लि लुङि ३ । १ । ४३ ।

शबाद्यपवादः।

४३८ च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ ।

१—भूयास्ताम्—भूधातोराशीर्लिङि प्रथमपुरुषद्विवचने तसि, सस्य 'तस्थस्थमिपाम्' इति तामादेशे 'लिङाशिषि' इति आर्धधातुकत्वेन शपोऽभावे यासुटि 'भूयास् ताम्' इति स्थितौ 'सुट् तिथोः' इति सुटि अनुबन्धलोपे 'भूयास् स् ताम्' इति स्थिते 'किदाशिषि' इति कित्त्वेन गुणनिषेधे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते चे' ति यासुटः सस्य लोपे सिध्यति रूपं 'भूयास्ताम्' इति। २—वस्-मसोः सकारस्य "नित्यं ङितः' इति लोपः। ३—भूतसामान्ये। ४—'माङ्प्रयोगे सर्वलकाराणां स्थाने लुङेव भवतीत्यर्थः। मा वद, मा वदेत्—इत्यादौ तु नायं माङ्, किन्तु निषेधार्थो 'मा' शब्दः। ५—लुङि परतः (शबादीन् बाधित्वा) 'च्लिः' स्यादित्यर्थः।

४३३—गित् कित् ङित् निमित्तक इग्लक्षण में गुण और वृद्धि नहीं होती।

४३४—भूतार्थक धातु से लुङ् लकार होता है।

४३५—माङ् उपपद रहते धातु से लुङ् लकार होता है।

४३६—स्म उत्तर में है जिस माङ् के ऐसे माङ् के उपपद रहते धातु से लुङ् होता है, लङ् भी।

४३७—धातु से च्लि होता है लुङ् परे रहते।

४३८—च्लि को सिच आदेश होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इचावितौ।

४३९ गाति-स्था-घु-पा-भूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ ।

एभ्यः सिचो लुक्स्यात्। [1]गापाविहेणादेश-पिबती गृह्येते।

४४० भूसुवोस्तिङि ७ । ३ । ८८ ।

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न। अभूत्। अभूताम्। [2]अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम्। अभूव। अभूम।

४४१ न माङ्योगे ६ । ४ । ७४ ।

अडाटौ न स्तः। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्।

४४२ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । ३ ।

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं[3] तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्। अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम। सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् इत्यादि [4]ज्ञेयम्।

१—इण् आदेशो 'गा'। 'पिब' आदेशो यस्य भवति स 'पा' गृह्यते, गापोर्ग्रहणे इङ्पिबत्योर्ग्रहणमिति" भाष्योक्तेः। २—अभूवन्—भूधातोर्लुङ् प्रथमपुरुषबहुवचने तस्य झ्यादेशे ईडागमे झेरन्तादेशे च्लौ, च्लेः सिचि 'गातिस्थे' ति सिचो लुकि 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' इति वुगागमे इतश्चेति ईकारलोपे संयोगान्तत्वेन तकारलोपे च सिध्यति रूपम् 'अभूवन्' इति। ३—हेतुहेतुमद्भावादौ (कारणकार्यभावादौ) द्योत्ये।

४—भूधातुप्रयोगप्रकारनिर्देशः क्रमशः सर्वलकारेषु—

धर्मात् सुखं भवति वत्स! यथा बभूव
भक्तध्रुवस्य, भविता च तवापि तच्छ्वः।
लाभो भविष्यति, भवान् भवतु प्रवृत्तौ
धर्मे, यथाऽभवदसौ भगवत्प्रपन्नः ॥ १ ॥

४३९—गा, स्था, घुसंज्ञक, पा और भू धातु से परे सिच् का लुक् होता है।

४४०—भू सू धातु को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं होता है।

४४१—माङ् के योग में अट् आट् नहीं होते हैं।

४४२—हेतुहेतुमद्भावादि जो लिङ् के निमित्त, उन अर्थों में भविष्यत्कालिक क्रिया वाची धातु से लृङ् लकार होता है क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत [1]सातत्यगमने । २ । अतति ।

४४३ अत आदेः ७ । ४ । ७० ।

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात्[2] लिटि । [3]आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु ।

४४४ आडजादीनाम् । ६ । ४ । २७ ।

अजादेरङ्गस्याऽऽट् लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् । लुङि सिचि इडागमे कृते ।

४४५ अस्तिसिचोऽपृक्ते ७ । ३ । ९६ ।

[4]विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः ।

४४६ इट ईटि ५ । २ । २८ ।

दैवाद् भवेच यदि ते क्वचिदन्तरायो
भूयात् सदा तव विभुर्भगवान् सहायः ।
धर्मादभूदपि च तस्य सुखं, त्वयाऽऽप्तो
धर्मोभविष्यदिह चेत् सुखमाऽऽ (ऽ) भविष्यत् ॥ १ ॥

१–निरन्तरगमने । २—'न व्यथो लिटि'' इति सूत्रात् ''लिटि' इत्यनुवर्तते, तेन 'ऋ' धातोर्यङ् लुक्प्रकरणे ''अरर्ति' इत्यादौ न दीर्घः लिडभावात् । ३–आत–अतधातो-र्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'अ अत अ' इति स्थितौ 'अत आदेः' इति अभ्यासस्य दीर्घे पुनः सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपम् 'आत' इति । ४—सिच्च अस् चेति (समाहारे) 'सिचस्' । अस्तीति विद्यमानार्थकमव्ययम् 'सिचस्' इत्यस्य विशेषणम् । तथैवाह-वृत्तौ-विद्यमानात्सिच इत्यादि ।

४४३—अभ्यास के आदि अकार को दीर्घ होता है ।
४४४—अजादि अङ्ग को आडागम होता है । लुङ्, लङ्, लृङ् परे रहते ।
४४५—विद्यमान सिच और अस्ति से परे अपृक्त हल् को इट् का आगम होता है ।
४४६—इट् से परे सकार का लोप होता है ईट् परे रहते ।
(वा०-एकाचः करने में सिच् का लोप सिद्ध होता है) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इटः परस्य लोपः स्यादीटि परे। ('सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः)[1] आतीत्[2]। आतिष्टाम्।

४४७ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९।

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्। आतिषुः। आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। षिध गत्याम्। २।

४४८ ह्रस्वं लघु[3] १।४।१०।

४४९ संयोगे गुरु १।४।११।

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात्।

४५० दीर्घं च १।४।१२।

गुरु स्यात्।

४५१ पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६।

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। (२५५) धात्वादेरिति सः। सेधति।[5] षत्वम् सिषेध।

४५२ असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५।

असंयोगात् परोऽपिल्लिट् कित्[6] स्यात्। सिषिधतुः। सिषिधुः। सिषेधिथ। सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिधिव। सिषिधिम। सेधिता। सेधिष्यति।

१—सिचः सकारलोपस्य ("इट ईटि ८।२।२८") त्रैपादिकत्वेनाऽसिद्धत्वाद् "अकः सवर्णे" इति दीर्घाऽप्राप्तिरिति-तदर्थमिदं वार्तिकम्। २—आतीत्—अतधातोर्लुङि तिपि इतश्चेति इकारलोपे च्लौ, सिचि अनुबन्धलोपे 'आडजादीनामि'ति आटि आटश्चेति वृद्धौ 'आत सत्' 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि तकारस्य च 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटि अनुबन्धलोपे 'आत इ स् ई त्' इति जाते 'इट ईटि' सकारलोपे 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति वार्त्तिकेन सिज्लोपस्यासिद्धत्वाभावात् सवर्णदीर्घे सिद्धं रूपम् 'आतीत्' इति। ३-एकमात्रिकम्। ४—द्विमात्रिकम्। ५-"आदेशप्रत्यययोः" इत्यनेन। ६-तेन न गुणः।

४४७—सिच्, अभ्यस्त और विद् से परे ङित्सम्बन्धी झि को जुस् होता है।

४४८—ह्रस्व की लघु संज्ञा होती है।

४४९—संयोग परे रहते ह्रस्व की गुरु संज्ञा होती है।

४५०—दीर्घ की गुरु संज्ञा होती है।

४५१—पुगन्त अङ्ग और लघूपध अङ्ग के अवयव इक् को गुण होता है सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते।

४५२—असंयोग से परे पित्भिन्न लिट् कित् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सेधतु। असेधत्। सेधेत्। [1]सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत्। एवं [2]चिती संज्ञाने। ४।

१—"किदाशिषि" इति यासुटः कित्त्वात् ङित्त्वाच्च न गुणः। २—ईकार इत्, ईदित्फलं तु "श्वीदितो निष्ठायाम्" इति निष्ठायामनिट्क्त्वम्। अत्र प्रसङ्गाद् धातुषु वर्णविशेषाणाम् इत्करणफलं दर्श्यते चित्रे—

वर्णानाम्	इत्करणे	प्रयोजनम्	उदाहरणम्
(उदात्त) 'अ'—	इत्करणे फलम्	परस्मैपदम्	अत—'अतति'।
अनुदात्त) 'अ'—	इत्करणे फ०	आत्मनेपदम्	एध–'एधते'।
स्वरित) 'अ'—	इत्करणे फ०	उभयपदम्	भज-'भजति, भजते'।
'आ—	इत्करणे फ०	"आदितश्च" इति निष्ठायाम् इट्-निषेधः	(ञि) फला-'प्रफुल्लः'।
इ—	इत्करणे फ०	"इदितो नुम् धा०" इति नुम्	(टु) नदी 'नन्दति'।
इर्	इत्करणे फ०	"इरितो वा" इति अङ्वा	णिजिर्–'अनिजत्', 'अनैक्षीत्'।
ई—	इत्करणे फ०	"श्वीदितो निष्ठायाम्" निष्ठायां नेट्	उन्दीः उन्नः, उत्तः।
उ—	इत्करणे फ०	"उदितो वा" इति क्त्वे वेट्	शमु-शमित्वा, शान्त्वा।
ऊ—	इत्करणे फ०	"स्वरतिसूति" इति वेट्	गुपू-गोपिता, गोप्ता।
ऋ—	इत्करणे फ०	"नाग्लोपिशा···" उपधा-ह्रस्वभावः	लोकृ-अलुलोकत्।
ऌ—	इत्करणे फ०	"पुषादिद्युतादि···" इति च्लेरङ्	गम्लृ-अगमत्।
ए—	इत्करणे फ०	"ह्मयन्त" इति वृद्ध्यभावः	कटे-अकटीत्।
ओ	इत्करणे फ०	"ओदितश्च" इतिनिष्ठानत्वम्	भुजो–भुग्नः।
ङ्—	इत्करणे फ०	आत्मनेपदम्	शीङ्–शेते।
ञ्—	इत्करणे फ०	उभयपदम्	श्रिञ्–श्रयति, श्रयते।
ञि—	इत्करणे फ०	"ञीतः क्तः" इति वर्तमाने क्तः	ञिइन्धी–इद्धः।
टु—	इत्करणे फ०	"ट्वितोऽथुच्"	टुनदि-नन्दथुः, टुवेपृ-वेपथुः।
डु—	इत्करणे फ०	"ड्वितः क्त्रिः"	डुकृञ्–कृत्रिमम्।
ष्—	इत्करणे फ०	"षिद्भिदादिभ्योऽङ्"	त्रपूष्–त्रपा, क्षमूष्–क्षमा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]शुच शोके । ५ । [2]गद व्यक्तायां वाचि । ६ । गदति ।

४५३ नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च ८ । ४ । १७ ।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु । प्रणिगदति ।

४५४ कुहोश्चुः ७ । ४ । ६२ ।

अभ्यासकवर्ग-हकारयोश्चवर्गादेशः ।

४५५ अत उपधायाः ७ । २ । ११६ ।

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे । [3]जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदिथ । जगदथुः । जगद ।

४५६ णलुत्तमो वा ७ । १ । ९१ ।

उत्तमो णल् वा णित्स्यात् । जगाद, जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ।

४५७ अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ ।

क्वचित्ककार-णकारादीनाम् इत्करणं तु केवलं विशेषणार्थम् (विशेषग्रहणार्थम्) यथा 'इण्' गतौ । 'इक्' स्मरणे "इणो यण्" "इण्वदिकः" इति । चेतति, चेततः, चेतन्ति । चिचेत । चिचिततुः । चिचितुः । चेतिता । चेतिष्यति । चेततु । अचेतत् । चेतेत् । चित्यात् । अचेतीत् । अचेतिष्यत् ।

१—शोचति । शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः । शोचिता । शोचिष्यति । शोचतु, शोचतात् । अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् । अशोचीत् । अशोचिष्यत् इत्यादि । २—स्पष्टायाम् । ३—जगाद—गद्धातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां 'हलादि शेषः' इति दकारलोपे 'ग गद अ' इति स्थिते 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासगकारस्य जकारे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ सिद्धं रूपं 'जगाद' इति ।

४५३—उपसर्गस्थनिमित्त से परे नि के न को ण होता है गदादि परे रहते ।

४५४—अभ्यास के कवर्ग हकार को चवर्ग होता है ।

४५५—उपधा के अत् को वृद्धि होती है ञित् , णित् , प्रत्यय परे रहते ।

४५६—उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित् होता है ।

४५७—हलादि धातु के ह्रस्व अकार को वृद्धि होती है विकल्प से इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि। अगादीत्, अगदीत्। अगदिष्यत्। णद [1]अव्यक्ते शब्दे। ७।

४५८ णो नः ६। १। ६५।

धात्वादेर्णस्य नः। णोपदेशास्त्वनर्द्[2]-नाटि-नाथ-नाध-नन्द-नक्क-नॄ-नृतः।

४५९ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८। ४। १४।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः। प्रणदति। [3]प्रणिनदति। नदति। ननाद।

४६० अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६। ४। १२०।

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽत एत्वमभ्यासलोपश्च किति। [4]नेदतुः। नेदुः।

४६१ थलि च सेटि ६। ४। १२१।

[5]प्रागुक्तं स्यात्। नेदिथ। नेदथुः। नेद। ननाद, ननद। नेदिव। नेदिम। नदिता। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। [6]अनादीत्। अनदीत्। अनदिष्यत्। टुनदि समृद्धौ। ८।

१–अस्फुटे। २–नर्द-नाटि-नाथ-नाध-नन्द-नक्क-नॄ नृत् इत्येतान् धातून् परित्यज्याविशिष्टाः (नकारादयः) णोपदेशाः। णोपदेशफलं तु णत्वादिकम्। ३–"नेर्गद-नद-पत-पदे" त्यादिना णत्वम्। ४–नेदतुः—णद् धातोर्लिटस्तसि, तस्यातुसादेशे धातोर्णस्य नत्वे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'न नद् अतुस्' इति स्थितौ 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' इति एत्वेऽभ्यासलोपे सस्य रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'नेदतुः' इति। ५–अत एत्वम्, अभ्यासलोपश्च ! ६–"अतो हलादेर्लघोः" इति विकल्पेन वृद्धिः।

४५८–धातु के आदि में स्थित ण को न होता है।

४५९–उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के न को ण होता है समास और असमास में।

४६०–लिट् को निमित्त मान कर आदेश आदि नहीं हुए हैं जिसको, ऐसा जो अङ्ग तदवयव असंयुक्तहलमध्यस्थ अकार को एकार होता है और अभ्यास का लोप होता है कित् लिट् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४६१–पूर्वसूत्र को कार्य होता है सेट थल् परे रहते।

४६२ आदिर्ञि-टु-डवः । १ । ३ । ५ ।

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ।

४६३ इदितो नुम् [1]धातोः । ७ । १ । ५८ ।

नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । [2]अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् । अर्च पूजायाम् । ९ । अर्चति ।

४६४ [3]तस्मान्नुड् द्विहलः । ७ । ४ । ७१ ।

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात् परस्य नुट् स्यात् । [4]आनर्च । आनर्चतुः अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । आर्चत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् । व्रज गतौ । १० । व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ।

४६५ वद-व्रज-हलन्तस्याचः ७ । २ । ३ ।

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु । [5]अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् । कटे [6]वर्षावरणयोः । ११ । कटति । [7]चकाट । चकटतुः । कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् ।

१–इदितो धातोर्नुम् इत्यर्थः । २–अनन्दीत्—टुनदिधातोर्लुङि तिपि 'आदिर्ञि-टुडवः' इति टोरित्संज्ञायां लोपे चान्तेकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे 'इदितो नुम् धातोः' इति नुमि अटि 'अनन्दति' इति स्थितौ च्लौ, सिचि, सिच इटि, इतश्चेति इकार लोपे तकारस्य इटि च सिचो लोपे सिध्यति रूपम् 'अनन्दीत्' इति । ३–"अत आदेः" इति कृतिदीर्घादित्यर्थः, तेन 'आर्चीत्' इत्यादौ नुट् न । ४–आनर्च–अर्चधातोर्लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'अ अर्च अ' इति स्थितौ 'अत आदेः' इति अभ्यासस्य दीर्घे 'तस्मान्नुड् द्विहलः' इति नुटि सिध्यति रूपम् 'आनर्च' इति । ५–अव्राजीत्—व्रजधातोर्लुङि तिपि इकारलोपे अडागमे च्लौ च्लेः सिचि इटि ईटि सिचो लोपे दीर्घे च 'वद व्रज हलन्तस्याचः' इति वृद्धौ सिध्यति रूपम् 'अव्राजीत्' इति । ६–'वर्षे-आवरणे च' । ७–"कुहोश्चुः" इति चुत्वम् ।

४६२–उपदेश में धातु के आदि ञि-टु-डु इत्संज्ञक होते हैं ।

४६३–इदित् धातु को नुमागम होता है ।

४६४–द्विहल धातु के दीर्घीभूत आकार से परे नुट् होता है ।

४६५–वद व्रज और हलन्त धातु के अच् के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपद सिच् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

४६६ ह्म्यन्तक्षणश्वस-जागृ-णि-श्व्येदिताम् ७ । २ । ५ ।

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च [1]वृद्धिर्नेडादौ सिचि । [2]अकटीत् । अकटिष्यत् । गुपू रक्षणे । १२ ।

४६७ गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः ३ । १ । २८ ।

एभ्य आयप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ।

४६८ सनाद्यन्ता धातवः ३ । १ । ३२ ।

[3]सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः । [4]गोपायति ।

४६९ आयादय आर्धधातुके वा ३ । १ । ३१ ।

१–अस्य यथासङ्ख्यमिमान्युदाहरणानि–मह (पूजायाम्) अमहीत् । क्रमु (पादविक्षेपे) अक्रमीत् । हय (गतौ) अहयीत् । क्षणु (हिंसायाम्) अक्षणीत् । श्वस् (प्राणने) अश्वसीत् । जागृ (निद्राक्षये) अजागरीत् । ण्यन्ते छन्दसि "नोनयति ध्वनयति" इत्यादिना चङि निषिद्धे ऊन (परिहाणे) इत्यस्य लुङि (मा भवान्) ऊनयीत् । (टुओ) श्वि (वृद्धौ) अश्वयीत् । (एदित्) कटे (वर्षावरणयोः) अकटीत् ।

२–अकटीत्—'कट्' धातोर्लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे च्लौ, सिचि, इटि, ईटि च सिचो लोपे सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अ कट् ई त्' इति जाते 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'ह्यन्त-क्षण-श्वस्-जागृ-णि-श्व्येदिताम्, इति निषेधे सिध्यति रूपम् 'अकटीत्' इति ।

३–सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विप्-णिज्-यङौ तथा ।
यगायेयङ् णिङ्चेति द्वादशाऽमी सनादयः ॥

४–गोपायति—गुप्धातोः 'गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः' इति स्वार्थे आयप्रत्यये 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'सनाद्यन्ताः धातवः' इति 'गोपाय' इत्यस्य धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि पररूपे सिध्यति रूपं 'गोपायति' इति ।

४६६–हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त धातु और क्षण, श्वस् , जागृ, तथा ण्यन्त श्वि और एदित् धातु को वृद्धि नहीं होती ।

४६७–गुप् , धूप, विच्छ, पण् और पन् धातुओं से आय् प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

४६८–सन् से लेकर कमेणिङ पर्यन्त प्रत्ययान्त शब्दों की धातु संज्ञा होती है ।

४६९–आर्धधातुक की विवक्षा में आयादि विकल्प से होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आर्धधातुक-विवक्षायामायादयो वा स्युः। (कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि)। आस्कासोराम्विधानान्मस्य[1] नेत्त्वम्।

४७० अतो लोपः ६ । ४ । ४८ ।

आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके।

४७१ आमः २ । ४ । ८१ ।

आमः परस्य लुक्।

४७२ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० ।

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि।

४७३ उरत् ७ । ४ । ६६ ।

अभ्यासऋवर्णस्याऽत् स्यात्। वृद्धिः। गोपायाञ्चकार[2]। द्वित्वात् परत्वाद्यणि प्राप्ते।

१-अन्यथा मकारस्येत्संज्ञायां मित्त्वात् "मिदचोन्त्यात्परः" इति शास्त्रेण आस-कासधात्वोः-आ-आस् का-आस् इत्यत्र दीर्घेण तादवस्थ्यमेवेति तयोराम्-विधानमेव व्यर्थं स्यात्। २-गोपायाञ्चकार—गुप्धातोः 'आयादय आर्धधातुके वा' इति विकल्पेनायप्रत्यये 'पुगन्ते' ति गुणे धातुसंज्ञायां लिटि 'कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि' इति आम् प्रत्यये आस्कासोराम्विधानात् मकारस्येत्वाभावेन लोपाभावे 'गोपाय आम् लिट् इति स्थितौ 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञनुप्रयोगे लिटस्तिपि णलि कृञो द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इति अभ्यासऋवर्णस्याकारे रपरे च कृते 'हलादि शेषः' इति रलोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासककारस्य चकारे 'गोपायाम् चकृ अ' इत्यवस्थायाम् 'अचोञ्णिति' इति ऋकारस्य वृद्धौ रपरत्वे मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च सिध्यति रूपं 'गोपायाञ्चकार' इति (भ्वनुप्रयोगे 'गोपायांबभूव', अस्तेरनुप्रयोगे 'गोपायामास', आयाभावपक्षे च 'जुगोप' इति रूपम्।

(वा० कास् और अनेकाच् धातु से आम् होता है लिट् परे रहते।)

४७०-आर्धधातुक उपदेश कालमें जो अकारान्त उसके अ का लोप होता है आर्धधातुक परे रहते।

४७१-आम् से परे लिट् का लोप होता है।

४७२-आमन्त से परे लिट् परक कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४७३-अभ्यास ऋवर्ण को अत् होता है।

४७४ द्विर्वचनेऽचि १ । १ । ५९ ।

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतुः ।

४७५ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७ । २ । १० ।

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण् न ।

[१]ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शी-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु [२]निहताः स्मृताः ।।

कान्तेषु—शक्लेकः । चान्तेषु—पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट् । छान्तेषु—प्रच्छेकः । जान्तेषु—त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज्-सृजः पञ्चदश । दान्तेषु—अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्यति-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द-हदः षोडश । धान्तेषु—क्रुध्-क्षुध्-बुध्-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध्-सिध्या एकादश । नान्तेषु—मन्य-हनौ द्वौ । पान्तेषु—आप्-क्षुप-क्षिप्-तप्-तिप्-तृप्य-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश । भान्तेषु—यभ्-रभ्-लभस्त्रयः । मान्तेषु—गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः । शान्तेषु—क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश । षान्तेषु—कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष-पुष्य्-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष् एकादश । सान्तेषु—घस्-वसती द्वौ । हान्तेषु—दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह्-वहोऽष्टौ अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् (१०३) । गोपायाञ्चकर्थ । गोपायाञ्चक्रथुः । गोपायाञ्चक । गोपायाञ्चकार । [१]गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकृव । गोपायाञ्चकृम । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः ।

१–ऊदन्तो यथा–भू (सत्तायाम्) । ऋदन्तो यथा–पॄ (पालन-पूरणयोः) । यु (मिश्रणामिश्रणयोः) । रु (शब्दे) । क्ष्णु (तेजने) । शीङ् (स्वप्ने) स्नु (प्रस्रवणे) । णु (स्तुतौ) । टुक्षु (शब्दे) । टु ओश्वि (गतिवृद्धयोः) । डीङ् (विहायसा गतौ) । श्रिञ् (सेवायाम्) । वृङ् (संभक्तौ) । वृञ् (वरणे) । इत्येतद्व्यतिरिक्ता अजन्ता एकाचो धातवोऽनिट इत्यर्थः । (अस्यां कारिकायां सेट्धातु-संग्रहः) । एतदग्रे चाऽनिटां हलन्तानां संग्रहः । क्रमभङ्गे तु लाघवमेव कारणम् । २–अनुदात्ताः, इत्यर्थः ।

४७४–द्वित्वनिमित्तक अच् परे रहते अच् को आदेश नहीं होता द्वित्वकी चिकीर्षा में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४७५–उपदेश में एकाच् और अनुदात्तधातु से परे आर्धधातुक को इट् नहीं होता ।

४७६ स्वरति सूति-सूयति-धूञूदितो वा ७ । २ । ४४ ।

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् । जुगोपिथ, जुगोप्थ । [1]गोपायिता, गोपिता, गोप्ता । गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपाय्यात्, गुप्यात् । [2]अगोपायीत् ।

४७७ नेटि ७ । २ । ४ ।

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न । अगोपीत् । [3]अगौप्सीत् ।

४७८ झलो झलि ८ । २ । २६ ।

झलः परस्य सस्य लोपो झलि । अगौप्ताम् । अगौप्सुः । अगौप्सीः । अगौप्तम् । अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्स्म । अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत् । क्षि क्षये । १३ । क्षयति । [4]चिक्षाय ! [5]चिक्षियतुः चिक्षियुः । "(४७५) एकाच" इति निषेधे प्राप्ते ।

१—**गोपायिता**—'गुप्' धातोः लुटि विवक्षिते वैकल्पिके आयप्रत्यये 'पुगन्ते' ति गुणे धातु-संज्ञायां लुटस्तिपोडादेशे तासि 'गोपाय ता' इति स्थिते 'स्वरति-सूति-सूयति-धूञूदितो वा' इति वैकल्पिके इटि 'अतो लोप' इति अकारलोपे सिध्यति रूपं'गोपायिता' इति । (आयाभावे इटि सति 'गोपिता' इडभावपक्षे 'गोप्ता' इति ।) २—**अगोपायीत्**—गुप्धातोर्लुङि विवक्षिते वैकल्पिके आयप्रत्यये गुणे धातुसंज्ञायां लुङस्तिपि इकारलोपे च्लौ, सिचि, इटि ईटि च 'अ गोपाय इ स् ई त्' इति स्थितौ 'इट ईटी' ति सकारलोपे सर्वणदीर्घे 'अतो लोपः' इति अकारलोपे सिध्यति रूपम् 'अगोपायीत्' इति । आयप्रत्ययाभावपक्षे स्वरतीतिं वैकल्पिके इटि ईटि सिचो लोपे 'वदव्रजहलन्तस्याच' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'नेटि' इति निषेधे पुगन्तेति गुणे सिध्यति रूपम् 'अगोपीत्' इति इडभावपक्षे च हलन्त-लक्षणायां वृद्धौ सत्याम् 'अगौप्सीत्' रूपम् । ३—इडभावपक्षे रूपमिदम् । ४—'अचो ञ्णिति' इति वृद्धिः । ५—इयङ् ।

४७६—स्वरत्यादि और ऊदित् धातु से परे वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है विकल्प से ।

४७७—इडादि सिच् परे रहते हलन्त को वृद्धि नहीं होती ।

४७८—झल् से परे स् का लोप होता है झल् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४७९ कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि ७ । २ । १३ ।

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ।

४८० अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७ । २ । ६१ ।

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न ।

४८१ उपदेशेऽत्वतः ७ । २ । ६२ ।

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात् ।

४८२ ऋतो भारद्वाजस्य ७ । २ । ६३ ।

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेड् भारद्वाजस्य मते । तेन अन्यस्य स्यादेव । अयमत्र संग्रहः—

"[१]अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥"

१–(ऋदन्तभिन्नेषु) अजन्तेषु-अनिट्सु धातुषु क्रादिनियमात् =('कृ सृ भृ वृ', सूत्रात्) लिटि सर्वत्र नित्यमिट् प्राप्तः, स च "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्" थलि निषिध्यते (पाणिनिमतेन) भारद्वाजमतेन "ऋतो भारद्वाजस्य" इति नियमाद् विधीयते । एवम् अकारवान् तासि नित्यानिट् यो धातुस्तस्मादपि क्रादिनियमेन लिटि सर्वत्र 'इट्' थलि "उपदेशेऽत्वतः" इति निषिद्धो भारद्वाजनियमेन पुनर्विधीयते । तथा च मतद्वयेन विकल्पः सिद्ध्यति । क्रमेणोदाहरणम्—यथा चिक्षयिथ, चिक्षेथ । तेपिथ, ततप्थ । पपिथ, पपाथ । पेचिथ, पपक्थ । इयजिथ, इयष्ठ । तथा चोक्तं संग्रहकारिकायाम्—अजन्तोऽकारवान्वेत्यादि । किञ्च ईदृक् =तासौ नित्याऽनिट् ऋदन्तो धातुस्थलि

४७९–क्रादि धातुओं से ही परे लिट् को इट् नहीं होता, अन्य अनिट् धातुओं से परे भी लिट् को इट् होता है ।

४८०–उपदेश में जो अजन्त धातु, तास् परे रहते नित्य अनिट्, उससे परे थल् को इट् नहीं होता ।

४८१–उपदेश में अकारवान् जो धातु, तास् परे रहते नित्य अनिट्; उसको थल् परे रहते इट् नहीं होता ।

४८२–तास् परे रहते नित्य अनिट् ऋदन्त धातु को ही थल् परे रहते इट् नहीं होता भारद्वाज के मत में । अन्य धातुओं को तो भरद्वाज के मत से इट् होता ही है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]चिक्षयिथ, चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय, चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ।

[2]४८३ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७ । ४ । २५ ।

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् ।

४८४ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ।

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि । [3]अक्षैषीत् । अक्षैष्टाम् । अक्षैषुः । अक्षेष्यत् । तप सन्तापे । १४ । तपति । तताप । तेपतुः । तेपुः । तेपिथ । [4]ततप्थ । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । क्रमु पादविक्षेपे । १५ ।

४८५ वा भ्राश-भ्लाश-भ्रमु-क्रमु-क्लमु-त्रसि-त्रुटि-लषः ३ । १ । ७० ।

एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ।

४८६ क्रमः परस्मैपदेषु ७ । ३ । ७६ ।

नित्यमनिड् भवति, क्रादिनियमेन सर्वत्र प्राप्तस्येटस्थलि अजन्तत्वात् 'अचस्तास्वत्थल्यनिटः' इति पाणिनिमतेन, "ऋतो भारद्वाजस्य" इति भारद्वाजमतेनापि–इडनिषेधात् । यथा–जहर्थ । दधर्थ । यस्तु न स्यादजन्तो नाप्यकारवान् स च तासौ नित्यानिडपि लिटि सर्वत्र सेट् एव क्रादिनियमात् ।

१–चिक्षयिथ–'क्षि' धातोः लिटि सिपि, तस्य थलादेशे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणेऽयादेशे सिध्यति रूपं 'चिक्षयिथ' इति । पक्षे इडभावे गुणे 'चिक्षेथ' इति । २–कृत्सार्वधातुकयोस्तु–संचित्य, श्रृणुयात्, इत्यादौ न दीर्घः । ३–अक्षैषीत्–'क्षि' धातो लुंङि तिपि अडागमे तिप इकारलोपे च्लौ, च्लेः सिचि इण्निषेधे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति इटि 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ सिध्यति रूपम् 'अक्षैषीत्' इति । ४–भारद्वाजमते 'इट्, अन्यमते तदभावः ।

४८३–अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है यादि प्रत्यय परे रहते । कृत् और सार्वधातुक परे रहते नहीं होता ।

४८४–इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ।

४८५–भ्राशादि धातुओं को विकल्प से श्यन् होता है कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते ।

४८६–क्रम धातु को दीर्घ होता है परस्मैपदपरक शित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति। क्राम्यति, क्रामति। चक्राम। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रामत्। क्रामेत्, क्राम्येत्। [1]अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्। पा पाने। १६।

४८७ पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्यर्ति-सर्ति-शद-सदां पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्यर्च्छ-धौ-शीय-सीदाः ७। ३। ७८।

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्तस्तेन [2]न गुणः। पिबति।

४८८ आत औ णलः ७। १। ३४।

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। [3]पपौ।

४८९ आतो लोप इटि च ६। ४। ६४।

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः। पपतुः। पपुः। पपिथ, [4]पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

४९० एर्लिङि ६। ४। ११०।

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि [5]पेयात्। (४३९) गातिस्थेति सिचो लुक्। अपात्। अपाताम्।

४९१ आतः ३। ४। ११०।

१—"ह्ययन्त" इति न वृद्धिः। २—उपधायामिकारस्याभावात्। ३—पा पा + अ अभ्यासह्रस्वः, णल औत्वम्। ४—इड्विकल्पः पूर्ववत्। ५—पेयात्—'पा' धातोराशीर्लिङि, तिपि इकारलोपे 'यासुट् परस्मैपदेष्वि' ति यासुटि अनुबन्धलोपे 'पा यास् त्' इति जाते 'स्को' रिति सलोपे 'एर्लिङि' इति एत्वे—'पेयात्' इति।

४८७—पा आदि धातुओं को पिबादि आदेश होते हैं इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय परे रहते।

४८८—आदन्त धातु से परे णल् को औ होता है।

४८९—अजादि कित् ङित् आर्धधातुक और इट् परे रहते आकार का लोप होता है।

४९०—घुसंज्ञक और मास्थादि धातुको एत्व होता है आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते।

४९१—सिज्लुक होने पर आदन्त से ही झि को जुस् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्।

४९२ उस्यपदान्तात् ६ । १ । ९६ ।

अपदान्तादकाराद्रुसि पररूपमेकादेशः । [1]अपुः । अपास्यत् । ग्लै हर्षक्षये । १७ । [2]ग्लायति ।

४९३ आदेच उपदेशेऽशिति ६ । ४ । ४५ ।

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं न तु शिति । [3]जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् ।

४९४ वाऽन्यस्य संयोगादेः ६ । ४ । ६८ ।

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि । ग्लायेत्, ग्लायात् ।

४९५ यम-रम-नमातां सक् च ७ । २ । ७३ ।

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । [4]अग्लासीत् अग्लास्यत् । ह्वृ कौटिल्ये । १८ । [5]ह्वरति ।

१—अपुः–'पा' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषबहुवचने झौ अडागमे च्लौ, च्लेः सिचि 'गाति-स्था-घुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लुकि 'आतः' इति झेर्जुसि 'अपाउस्' इति स्थिते 'उस्यपदान्तात्' इति आकारस्य पररूपे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपम् 'अपुः' इति । २–शपि ऐकारस्य 'आय्' । ३—जग्लौ, जग्लतुः, जग्लुः । जग्लिथ, जग्लाथ, जग्लथुः जग्ल । जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम । ४—अग्लासीत्–'ग्लै' धातोर्लुङि तिपि तिप इकारलोपेऽडागमे 'आदेच उपदेशेऽशिति' इति आत्वे च्लौ, सिचि 'यमरमनमातां सक् च' इति सकि सिच इटि ईटि च 'अ ग्ला स् इ स् ई त्' 'इट-ईटी' ति सिचो लोपे सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपम् 'अग्लासीत्' इति । एवं अग्लासिष्टाम्, अग्लासिषुः, इत्यादिः "सार्वधातुका···" इति (अर्) गुणः । ५–(ह्रस्व)–ऋकारान्तत्वादनिट् ।

४९२–अपदान्त अकार से उस् परे रहते पररूप एकादेश होता है ।

४९३–उपदेश में एजन्त धातु को आत्व होता है शित् परे रहते नहीं होता ।

४९४–घुमास्थादि से अन्य संयोगादि धातु के अकार को एकार होता है विकल्प से आर्धधातुक लिङ् परे रहते ।

४९५–यम्, रम्, नम् और आदन्त धातु को सक् का आगम होता है और सिच् को इडागम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४९६ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७ । ४ । १० ।

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि । उपधाया वृद्धिः । [1]जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । जह्वर्थ, जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार, जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्ता ।

४९७ ऋद्धनोः स्ये ७ । २ । ७० ।

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् स्यात् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ।

४९८ गुणोऽर्ति-संयोगाद्योः ७ । ४ । २९ ।

अर्त्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च । [2]ह्वर्यात् । [3]अह्वार्षीत् । अह्वरिष्यत् । श्रु श्रवणे । १९ ।

४९९ श्रुवः शृ च ३ । १ । ७४ ।

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् [4]श्नुप्रत्ययश्च । [5]शृणोति ।

५०० सार्वधातुकमपित् १ । २ । ४ ।

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् । शृणुतः ।

१–जह्वार–'ह्वृ' धातोर्लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'उरत्' रपरेऽकारे हकारस्य श्चुत्वे झकारस्य जकारे 'ज ह्वृ आ' इति जाते 'ऋतस्य संयोगादेर्गुणः' अर् गुणे उपधावृद्धौ सिध्यति रूपं 'जह्वार' इति । २–ह्वर्यात्–'ह्वृ' धातोराशीर्लिङि तिपि इकारलोपे यासुटि अनुबन्धलोपे 'ह्वृ यास् त्' इति स्थिते यासुटः कित्वात् 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति प्राप्तस्य गुणस्य 'क्ङिति च' इति निषेधे 'गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः' इति गुणे स्कोरिति सकारलोपे सिध्यति रूपं 'ह्वर्यात्' इति । ३–अह्वार्ष्टाम्, अह्वार्षुः । ४–शपोऽपवादः । ५–ऋवर्णान्तस्य णत्वं वाच्यम् । श्नुप्रत्ययस्याऽपित्त्वेन ङित्वात् । 'शृ' इत्येतस्य न गुणः । "सार्वधातुका...." इति गुणः ।

४९६–ऋदन्त संयोगादि अङ्ग को गुण होता है लिट् परे रहते ।

४९७–ऋदन्त और हन् धातु से परे स्य को इट् का आगम होता है ।

४९८–ऋ धातु और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होता है यक् परे रहते और आर्धधातुक परे रहते ।

४९९–श्रु धातु को शृ आदेश होता है । और श्नु प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५००–पित्भिन्न सार्वधातुक ङिद्वत् होता है ।

५०१ हुश्नुवोः सार्वधातुके ६ । ४ । ८७ ।

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । [१]शृण्वन्ति । शृणोषि । शृणुथ । शृणोमि ।

५०२ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६ । ४ । १०७ ।

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः । शृण्वः । शृणुवः । शृण्मः, शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव, शुश्रव । शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु । शृणुतात् । शृणु- ताम् । शृण्वन्तु ।

५०३ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६ । ४ । १०६ ।

असंयोगपूर्वात् प्रत्ययादुतो हेर्लुक् । शृणु, शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणावादेशौ । [२]शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृण्व, अशृणुव । अशृण्म, अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । [३]श्रूयात् । [४]अश्रौषीत्, अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ । २० ।

२—शृण्वन्ति—'श्रु' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने झौ झेरन्तादेशे 'श्रुवः शृ च' इति शृ इत्यादेशे श्नुप्रत्यये च 'शृ नु अन्ति' इति स्थिते 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वे गुणाभावे 'हुश्नुवोः सार्वधातुके' इति यणि णत्वे च सिद्धं रूपं 'शृण्वन्ति' इति । २—"आडुत्तमस्य पिच्च" इति 'आट्' । ३—"अकृत्सार्वधातुकयोः" इति दीर्घः । ४—अश्रौषीत्—'श्रु' धातो- र्लुङि तिपि इकारलोपे च्लौ च्लेः सिचि अटि इण्निषेधे ईटि 'अ श्रु स् ई त्' इति जाते 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति उकारस्य वृद्धौ सस्य षत्वे 'अश्रौषीत्' इति रूपम् । अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः । अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट । अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्म । अत्र सर्वत्र "सिचि वृद्धिः परस्मै...." इत्यनेन वृद्धिः ।

५०१—हु धातु और श्नुप्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग, तदवयव असंयोगपूर्वक उवर्ण को यण् आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

५०२—असंयोगपूर्वक प्रत्ययके उकार का लोप होता है विकल्पसे वकारमकार परे रहते ।

५०३—असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकारान्त अङ्ग से परे हि का लुक् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५०४ इषु-गमि-यमां छः ७ । १ । ७७ ।

एषां छः स्यात् शिति । गच्छति । [1]जगाम ।

५०५ गम-हन-जन-खन-घसां-लोपः क्ङित्यनङि ६ । ४ । ९८ ।

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ, जगन्थ । जग्मथुः । जग्म । जगाम, जगम । जग्मिव । जग्मिम । [3]गन्ता ।

५०६ गमेरिट् परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८ ।

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । [4]अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ।

५०७ पुषादि-द्युतादि-लृदितः परस्मैपदेषु ३ । १ । ५५ ।

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । [5]अगमत् । अगमिष्यत् । इति परस्मैपदिनः ।

१–गम्, गम् + अ, 'शेषेलोपः' श्चुत्वम्, "अत उपधायाः" इति वृद्धिः । २–जग्मतुः 'गम्' धातोर्लिटि तसि अतुसादेशे धातोर्द्वित्वे पूर्वस्याभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'कुहोश्चु'-रिति गकारस्य जकारे 'ज गम् अतुस्' इति स्थिते 'गम्–हम–जने' ति उपधालोपे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'जग्मतुः' इति । ३–'गन्ता' इत्यत्र गम् + ता, इति स्थितौ मकारस्य "नश्चापदान्तस्य..." इति अनुस्वारः, "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" । ४–अगच्छत्–'गम्' धातोर्लङि तिपि इकारलोपे अडागमे शपि 'इषु गमि-यमां छः' इति मकारस्य छकारे 'छे च' इति तुगागमे 'अगत् छ् अ त्' इति जाते तकारस्य श्चुत्वेन चकारे परसंयोगे सिद्धं रूपं 'अगच्छत्' इति । ५–अगमत्, अगमताम्, अगमन् । अगमः, अगमतम्, अगमत । अगमम्, आगमाव, अगमाम ।

५०४–इष् गम्, यम् को छ आदेश होता है शित् परे रहते ।

५०५–गम्, हन्, जन्, खन्, घस् की उपधा का लोप होता है अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते, अङ् परे रहते नहीं होता ।

५०६–गम् से परे सादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है परस्मैपद परे रहते ।

५०७–श्यन्विकरण पुषादि, द्युतादि और लृदित से परे च्लि को अङ् होता है परस्मैपद परे रहते । इति परस्मैपदिनः ।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ आत्मनेपदिनः—एध वृद्धौ। १।

५०८ टित आत्मनेपदानां टेरे ६ । ४ । ७९ ।

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते।

५०९ आतो ङितः ७ । २ । ८१ ।

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। [१]एधेते। एधन्ते।

५१० थासः से ३ । ४ । ८० ।

टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। "२७४ अतो गुणे"। एधे। एधावहे। एधामहे।

५११ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३ । १ । ३६ ।

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि।

५१२ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १ । ३ । ६३ ।

आम्प्रत्ययो [२]यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। आम्प्रकृत्या तुल्य-

---

१–एधेते–'एध्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषद्विवचने आतामादेशे शपि 'एध् अ आताम्' इति स्थितौ 'आतो ङितः' इति आकारस्य इयादेशे 'लोपो व्योर्वलि' इति यकारलोपे गुणे 'टित आत्मनेपदानाम्' इति टेरेत्वे सिध्यति रूपम् 'एधेते' इति। २–तद्गुणसंविज्ञानोऽतद्गुणसंविज्ञानश्चेति द्विविधो बहुव्रीहिः। तस्य=अन्यपदार्थस्य (प्रधानीभूतस्य) गुणाः=विशेषणानि, तेषां संविज्ञानम्=क्रियान्वयितया ज्ञानं विद्यते यत्र स तद्गुणसंविज्ञानः यथा "लम्बकर्णमानय" इत्यादौ अन्यपदार्थस्य (प्रधानीभूतस्य) पुरुषादेः गुणाः कर्णादयः, आनयनक्रियान्वयितया प्रतीयन्ते। यत्र च–प्रधानीभूतान्यपदार्थविशेषणानि क्रियान्वयितया न विज्ञायन्ते सोऽतद्गुणसंविज्ञानः—यथा "दृष्टसागरमानय"

अथात्मनेपदिनः

५०८–टित् लकार सम्बन्धी आत्मनेपद की टि को एत्व होता है।

५०९–अकार से परे ङित् के आ को इय् होता है।

५१०–टित् लकार के थास् को से आदेश होता है।

५११–इजादि गुरुमान् धातु से ऋच्छति को छोड़कर आम् होता है।

५१२–अनुप्रयुज्यमान कृञ् धातु से आम्प्रकृति के तुल्य आत्मनेपद होता है। (अर्थात् आम्प्रकृति यदि आत्मनेपदी हो तो कृञ् से आत्मनेपद होता है, अन्यथा नहीं)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मनुप्रयुज्यमानात् 'कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

५१३ लिटस्तझयोरेशिरेच् ३ । ४ । ८१ ।

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेजेतौ स्तः । [2]एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ।

५१४ इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८ । ३ । ७८ ।

इण्णन्तादङ्गात् परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात् । एधाञ्चकृढ्वे ! एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ।

५१५ धि च ८ । २ २५ ।

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः । एधिताध्वे ।

इत्यादौ प्रधानीभूतस्यान्यपदार्थस्य पुरुषादेर्विशेषणानि–सागरादयः–आनयन–क्रियान्वयितया न प्रतीयन्ते । तथा च प्रकृते "आम्प्रत्ययवद्" इति–अतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः, तेन आम्प्रत्ययविनिर्मुक्तः आम्प्रत्ययस्य प्रकृतिभूतो धातुरेव गृह्यते, इति । तथा चानेन सूत्रेणेदं तत्त्वं बोध्यते—यस्माद्धातोराम् प्रत्ययः कृतः स चेत्परस्मैपदी तदा प्रयुज्यमानात्कृञोऽपि परस्मैपदं स्यात्, यद्यात्मनेपदी स्यात् (प्रकृतिभूतो धातुः) तदा कृञोऽप्यात्मनेपदम् । उभयपदित्वे च कृञोऽप्युभयपदमेव प्रयोक्तव्यम् इति ।

१–कृञो ञित्वात्कर्तृ भिन्न–(पर) गामिनि क्रियाफले परस्मैपदं प्राप्नोति, तत्रैवं व्यवस्थाप्यते, 'आम्' यस्माद् (धातोः) विहितः, तस्य (धातोः) यद्यात्मनेपदं स्यात्तदैव कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यादन्यथा न । तेन "इन्दाञ्चकार" इत्यादौ न (तङ्) आत्मनेपदम् ।

२–एधाञ्चक्रे–'एध्' धातोर्लिटि 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्याम् आमः इतिलिटो लुक् 'एध् आम्' इति स्थितौ 'कृञ्चानुप्रयुज्यते' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे आत्मनेपदत्वात् लिटः स्थाने तप्रत्यये एशादेशे कृञो द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'एधाम् चक्रु ए' इति जाते 'असंयोगात् लिट् कित्' इति कित्त्वाद् गुणनिषेधे यणि मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च 'एधाञ्चक्रे' इति रूपम् ।

५१३–लिट् के त और झ को इश् इरेच् आदेश होता है ।

५१४–इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम् और लुङ् , लिट् के धकार को ढकार होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५१५–धादि प्रत्यय परे रहते स का लोप होता है ।

५१६ ह एति ७ । ४ । ५२ ।

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे।

५१७ आमेतः ३ । ४ । ९० ।

लोट एकारस्याम् स्यात्। एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्।

५१८ सवाभ्यां वामौ ३ । ४ । ९१ ।

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः [1]एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्।

५१९ एत ऐ ३ । ४ । ९३ ।

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। एधै। एधावहै। एधामहै। (१९७) [2]आटश्च। ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि।

५२० लिङः सीयुट् ३ । ४ । १०२ ।

[3]सलोपः। एधेत। एधेयाताम्।

५२१ झस्य रन् ३ । ४ । १०५ ।

लिङो झस्य रन् स्यात्। [4]एधेरन्। एधेथाः। एधेध्वम्।

५२२ इटोऽत् ३ । ४ । १०६ ।

१–'एधसे' इति सिद्धे एकारस्य वत्वम्। २–इति सूत्रेण वृद्धिः। ३–'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इत्यनेन। 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपः। ४–एधेरन्–'एध्' धातोः विधिलिङि प्रथमपुरुषबहुवचने झादेशे शपि 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि

५१६–तास् और अस्ति के स् को ह् होता है इकार परे रहते।

५१७–लोट् के ए को आम् होता है।

५१८–स-व से परे लोट् के एकार को व अम् होता है।

५१९–लोट् के उत्तमपुरुष के एकार को ऐकार होता है।

५२०–लिङ् के तिबादि को सीयुट् का आगम होता है।

५२१–लिङ् के झ को रन् आदेश होता है।

५२२–लिङ् स्थानिक इट् को अत् आदेश होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि।

५२३ सुट् तिथोः ३। ४। १०७।

लिङस्तथोः सुट्। [1]यलोपः। आर्धधातुकत्वात् सलोपो न। एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। एधीषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। [2]एधिषीध्वम् एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। [3]ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्।

५२४ आत्मनेपदेष्वनतः ७। १। ५।

अनकारात् परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। ऐधिढ्वम्। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि। कमु[4] कान्तौ।२।

५२५ कमेर्णिङ् ३। १। ३०।

स्वार्थे, ङित्वात्तङ्। कामयते।

५२६ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६। ४। ५५।

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात्। कामयाञ्चक्रे। (४९६)[5] आयादय इति णिङ् वा। चकमे। चकमाते। चकमिरे।

'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपे 'एध अ ईय् झ' इति स्थितौ 'झस्य रन्' इति रनादेशे 'लोपो व्योर्वलि' इति यकारलोपेऽकारेकारयोर्गुणे सिध्यति रूपम् 'एधेरन्' इति।

१–सीयुटो यकारस्य लोपः। १–एधिषीध्वम् अत्र 'ध्वम्' इत्यस्य, इणः परत्वेऽपि, अङ्गस्य—इणन्तत्वाभावात् 'इणः षीध्वंलुङ्...' एति ढत्वं न। 'ऐधिढ्वम्' इत्यत्र तु सिज्विशिष्टस्याङ्गसंज्ञा सिजवयव इट् इति–अङ्गान्तर्भूतत्वेन, ('धि च' इति सकारलोपे) इण्णन्ताङ्गत्वं न भवति ढत्वम्। ३–ऐधिष्ट–'ऐध्' धातोर्लुङि तादेशे आटि "आटश्चेति" वृद्धौ 'ऐध् त' इति स्थितौ च्लौ, च्लेः सिचि 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि, सस्य षत्वे ष्टुत्वे च सिध्यति रूपम् 'ऐधिष्ट' इति। ४–इच्छायामित्यर्थः। ५–'आयादय आर्धधातुके वा'।

५२३—लिङ् सम्बन्धी तकार, थकार को सुट् का आगम होता है।

५२४—अनकार से परे आत्मनेपद सम्बन्धी झ को अत् आदेश होता है।

५२५—कम धातु से णिङ प्रत्यय होता है स्वार्थ में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५२६—आमादि प्रत्यय परे रहते णि के स्थान में अय् आदेश होता है।

चकमिषे। चकमाथे। चकमिध्वे। चकमे। चकमिवहे। चकमिमहे। कामयिता, कमिता। कामयितासे। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट।

५२७ विभाषेटः ८। ३। ७९।

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः। कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

५२८ णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३। १। ४८।

ण्यन्ताच्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे। कामि अ त इति स्थिते।

५२९ णेरनिटि ६। ४। ५१।

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

५३० णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७। ४। १।

चङ्-परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्।

५३१ चङि ६। १। ११।

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य।

५३२ सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे ७। ४। ९३।

५२७—इण से परे जो इट्, उससे परे षीध्वं और लुङ्, लिट् के ध को ढ होता है विकल्प से।

५२८—ण्यन्त से परे और श्रि, द्रु, स्रु, धातुओं से परे च्लि को चङ् आदेश होता है कर्त्रर्थ लुङ् परे रहते।

५२९—अनिडादि आर्धधातुक परे रहते णि का लोप् होता है।

५३०—चङ् परक णि परे रहते अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है।

५३१—चङ् परे रहते अभ्यासभिन्न धातु के प्रथम अवयव एकाच् को द्वित्व होता है और अजादि के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

५३२—चङ्परक णि परे रहते जो अङ्ग उसके अवयव लघुपरक अभ्यास को सन्वद्भाव होता है यदि णि परे रहते अक् का लोप न हुआ हो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चङ्-परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं [1]स्याण्णावग्लोपेऽसति ।

५३३ सन्यतः ७ । ४ । ७९ ।

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि ।

५३४ दीर्घो लघोः ७ । ४ । ९४ ।

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये । [2]अचीकमत । णिङ-भावपक्षे (कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः) [3]अचकमत । अकामयिष्यत । अकमिष्यत । अय गतौ । ३ । अयते ।

५३५ उपसर्गस्यायतौ ८ । २ । १९ ।

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् [4]प्लायते । [5]पलायते ।

५३६ दयायासश्च ३ । १ । ३७ ।

१–णौ-अग्लोपो (णिज्निमित्तकोऽक्प्रत्याहारघटितवर्णलोपः) यदि न भूतः स्याद् इत्यर्थः । सति-अग्लोपे दीर्घसन्वद्भावौ न भवतः । यथा अचकमत् अजहलत् इत्यादि । २–अचीकमत—'कम्' धातोः 'कमेर्णिङ्' इति णिङ् 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'कामि' इत्यस्य धातुसंज्ञायां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने तादेशेऽडागमे च्लौ 'णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्' इति च्लेश्चङि 'अकामि अत' इति स्थिते 'णेरनिटि' इति णेर्लोपे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्व' इति उपधाह्रस्वे 'चङि' इति 'कम्' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां 'हलादिशेषः' इति अभ्यासमकारलोपेऽभ्यासककारस्य 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'अचकमत' इति जाते 'सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे 'दीर्घोलघोः' इति दीर्घे सिध्यति रूपम् 'अचीकमत' इति । णिङभावपक्षे—'अचकमत' इति रूपम् । ३–'चङि' इति द्वित्वम् । अत्र णेरभावात् सन्वद्भावो न, तेन इत्वं दीर्घश्चापि न । ४–'प्र' उपसर्गः । ५–'परा' उपसर्गः ।

५३३–अभ्यास के अकार को इत् होता है सन् परे रहते ।

५३४–लघु अभ्यास को दीर्घ होता है सन्वद्भाव के विषय में ।

(वार्तिक—कम् से परे च्लि को चङ् आदेश होता है ।)

५३५–अय धातुपरक उपसर्ग के रेफ को लकार होता है ।

५३६–दय्-अय्-आस् से आम् होता है लिट् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि। अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट। (५२७) [1]विभाषेटः। अयिषीध्वम्, अयिषीढ्वम्। आयिष्ट। आयिध्वम्, आयिढ्वम्। आयिष्यत। द्युत दीप्तौ। ४। द्योतते।

५३७ द्युति-स्वाप्योः संप्रसारणम् ७। ४। ६७।

अभ्यासस्य। [2]दिद्युते।

५३८ द्युद्भ्यो लुङि १। ३। ९१।

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात्। (५०७) पुषादीत्यङ् अद्युतत्। [3]अद्योतिष्ट। अद्योतिष्यत। एवं [4]श्विता वर्णे। ५। [5]ञिमिदा स्नेहने। ६। [6]ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः। ७। मोहनयोरित्येके। [7]ञिक्ष्विदा चेत्येके। [8]रुच

१–इति वा ढत्वम्। २–दिद्युते—'द्युत' धातोर्लिटि प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे तकारस्यैशादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्' इति सम्प्रसारणे इकारे 'सम्प्रसारणाच्चे' ति उकारस्य पूर्वरूपे 'दित् द्युत् ए' इति स्थितौ 'हलादिशेषः' इति अभ्यास तकारस्य लोपे सिध्यति रूपं 'दिद्युते' इति। दिद्युताते, दिद्युतिरे—इत्यादि। द्योतिता। द्योतिष्यते। द्योतताम्। अद्योतत। द्योतेत। द्योतिषीष्ट। ३–अद्युतत्—'द्युत्' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने 'द्युद्भ्यो लुङि' इति वैकल्पिके परस्मैपदसंज्ञके तिपि इकारलोपेऽडागमे 'अ द्युत् त्' इति स्थिते मध्ये च्लौ तस्य 'पुषादिद्युतादि-ऌदितः परस्मैपदेषु' इति अङादेशे 'अद्युतत्' इति। (अत्र अङो ङित्वात् पुगन्तेति गुणो न)। ४–श्वेतते। शिश्विते। श्वेतिता। श्वेतिष्यते। श्वेतताम्। अश्वेतत। श्वेतेत। श्वेतिषीष्ट। अश्वेतिष्ट। अश्वितत्। अश्वेतिष्यत। ५–मेदते। मिमिदे। (लुङि) अमिदत्, अमेदिष्ट। ६–स्वेदते। सिष्विदे। (लुङि) अस्विदत् अस्वेदिष्ट। ७–क्ष्वेदते। चिक्ष्विदे। इत्यादि। ८–रोचते। रुरुचे। (लुङि) अरुचत्, अरोचिष्ट। एवं घोटते। जुघुटे। अघुटत्, अघोटिष्ट, एवं लुङि सर्वत्र रूपद्वयम्। शोभते, शुशुभे। क्षोभते, चुक्षुभे। नभते, नेभे। ताभते, तुतुभे। स्रंसते, सस्रंसे। भ्रंसते, बभ्रंसे। ध्वंसते, दध्वंसे। स्रम्भते, सस्रम्भे। एषां लुङि परस्मैपदेऽङि 'अनिदिताम्' इति नकारलोपः। अस्रसत्। अभ्रसत्, अध्वसत्। अस्रभत्। विपूर्वकस्रम्भधातुर्विश्वासे प्रयुज्यते।

५३७–द्युत् और स्वापि के अभ्यास को संप्रसारण होता है।

५३८–द्युतादि से पर लुङ् को परस्मैपद होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दीप्तावभिप्रीतौ च । ८ । घुट परिवर्तने । ९ । शुभ दीप्तौ । १० । क्षुभ सञ्चलने । ११ । णभ तुभ हिंसायाम् । १३ । स्रंसु भ्रंसु ध्वंसु अवस्रंसने । १६ । ध्वंसु गतौ च । १७ । स्रम्भु विश्वासे । १८ । वृतु वर्तने । १९ । वर्तते [1]ववृते । वर्तिता ।

५३९ वृद्भ्यः स्यसनोः १ । ३ । ९२ ।

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च ।

५४० न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७ । २ । ५९ ।

वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दुभ्यः शकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् [2]तङानयोरभावे । वर्त्स्यति, वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत । वर्तिषीष्ट । [3]अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत । दद दाने । २० । ददते ।

५४१ न शस-दद-वादि-गुणानाम् ६ । ४ । १२६ ।

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन [4]विहितो योऽकारस्तस्य च एत्वाभ्यासलोपौ न । [5]दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत् । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । त्रपूष् लज्जायाम् । २१ । त्रपते ।

१–'ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन' इति कित्वान्न गुणः । २–यत्र तङ् आनश्च (आत्मनेपदं) न स्यात् । अर्थात् परस्मैपदादिकं स्यात् । ३–'वृतु' धातुपर्यन्तोऽयं द्युतादिगणः, तेन पक्षे अवृतत्–'वृत्' धातोर्लुङि 'द्युद्भ्यो लुङि' इति वैकल्पिके परस्मैपदे लस्य तिपि मध्ये च्लौ, च्लेः 'पुषादीति' अङि अटि 'अ वृत् अ त्' ङित्वात् 'पुगन्ते' ति गुणाभावे सिध्यति रूपम् 'अवृतत्' इति । पक्षे आत्मनेपदे 'अवर्त्तिष्ट' इति । ४–'पेचे' इत्यत्र अकारस्य गुणत्वेऽपि, गुणशब्देन विहितत्वाऽभावाद् एत्वाऽभ्यास-लोप-निषेधो न । 'शशरतुः' इत्यादौ गुणशब्देन विहितत्वाद् एत्वाभ्यासलोपनिषेधः प्रवर्तते । ५–दददे–'दद' धातोर्लिटि लस्य तकारादेशे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये तकारस्यैशादेशे 'द ददए' इति स्थितौ एत्वेऽभ्यासलोपे च प्राप्ते 'न शस-दद-वादिगुणानाम्' इत्यनेन तन्निषेधे सिध्यति रूपं 'दददे' इति ।

५३९–पाँच वृतादियों से परस्मैपद विकल्प से होता है स्य, सन् परे रहते ।

५४०–वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दू धातुओं से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् नहीं होता तङ् और आन के अभाव में ।

५४१–शस् दद और वकारादि धातुओं को और गुण शब्द से विहित अकार को एत्व नहीं होता और अभ्यास का लोप नहीं होता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५४२ तॄ-फल-भज-त्रपश्च ६ । ४ । १२२ ।

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च [1]त्रेपे । त्रपिता, [2]त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट, [3]अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत । इत्यात्मनेपदिनः ।

अथ उभयपदिनः ।

श्रिञ् सेवायाम् । १ । श्रयति । श्रयते । [4]शिश्राय, शिश्रिये । श्रयिता । श्रयिष्यति, श्रयिष्यते । श्रयतु, श्रयताम् । अश्रयत्, अश्रयत । श्रयेत्, श्रयेत । [5]श्रीयात्, श्रयिषीष्ट । चङ् । [6]अशिश्रियत्, अशिश्रियत । अश्रयिष्यत् । अश्रयिष्यत ॥ भृञ् भरणे । २ । भरति, भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः । बभर्थ । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभृषे । भर्तासि, भर्तासे । [7]भरिष्यति, भरिष्यते । भरतु, भरताम् । अभरत्, अभरत । भरेत्, भरेत ।

५४३ रिङ् श-यग्-लिङ्क्षु ७ । ४ । २८ ।

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात् । रीङि प्रकृते रिङ् विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न [8]भ्रियात् ।

५४४ उश्च १ । २ । १२ ।

१—त्रेपे-'त्रप्' धातोर्लिटि लस्य तकारादेशे तस्य 'एश्'-आदेशे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'त त्रप् ए' इति स्थिते 'त्रि-फल-भज-त्रपश्च' इति एत्वेऽभ्यासलोपे च सिध्यति रूपं 'त्रेपे' इति । २—ऊदित्वाद् वेट् । ३—'झलो झलि' इति सलोपः । ४—शिश्रियतुः, शिश्रियुः शिश्रयिथ, शिश्रियथुः इत्यादि । ५—'अकृत्सार्वधातु....' इति दीर्घः । ६—अशिश्रियत्—'श्रि' धातोर्लुङि लस्य तिपि इकारलोपे इडागमे च्लौ 'णिश्रि-द्रु-स्रुभ्यः कर्त्तरि-चङ्' इति च्लेश्चङि 'अ श्रि अ त्' इति स्थिते 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'अचिश्नु'-रिति इयङादेशे 'अशिश्रियत्' इति रूपम् । ७—'ऋद्धनोः स्ये' इति 'इट्' । ८—'अकृत्सार्व....' इति दीर्घः प्राप्तः, 'रिङ्' इति ह्रस्वविधानसामर्थ्यान्न भवति ।

५४२—तॄ-फल्-भज्-त्रप् धातुओं के अकार को एत्वाभ्यास लोप होता है कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते । इत्यात्मनेपदिनः ।

अथ उभयपदिनः ।

५४३—श यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ऋकार को रिङ् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५४४—ऋवर्ण से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं, तङ् परे रहते ।

ऋवर्णात् परौ झलादी लिङ्सिचौ [१]कितौ स्तस्तङि। भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। अभार्षीत्। अभार्ष्टाम्। अभार्षुः। अभार्षीः।

५४५ ह्रस्वादङ्गात् ८। २। २७।

सिचो लोपो झलि। अभृत। अभृषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। हृञ् हरणे। ३। हरति, हरते। [३]जहार, जह्रे। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जहृषे। हर्ता। [४]हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। हृषीयास्ताम्। अहार्षीत्, अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत। धृञ् धारणे। ४। धरति, [५]धरते। णीञ् प्रापणे। ५। [६]नयति, नयते॥ डुपचष् पाके। ६। पचति, पचते। पपाच। पेचिथ, पपक्थ। पेचे। [७]पक्ता॥ भज सेवायाम्। ७। भजति, भजते। [८]बभाज, भेजे। भक्ता।

१–तेन न गुणः। २–अभार्षीत्–'भृ' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने मस्य तिपीकारलोपेऽडागमे च्लौ, च्लेः सिचि 'अ भृ स् त्' 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति इडागमे 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति ऋकारस्य 'अर्' वृद्धौ सस्य षत्वे सिध्यति रूपम् 'अभार्षीत्' इति। जहार (जह्रे) 'हृ' धातो लिंटि प्रथमपुरुषैकवचने लस्य परस्मैपदे तिपि 'णल्' आदेशे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'ज हृ अ' इति स्थितौ 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ सिध्यति रूपं 'जहार'। आत्मनेपदे च तकारस्य 'एश' आदेशे द्वित्वादौ सति 'ज हृ ए' इति स्थितौ लिटः कित्वात् गुणाभावे यणि 'जह्रे' इति रूपम् सिध्यति। २–हरिष्यति–'हृ' धातोर्लृटि लस्य परस्मैपदे तिपि शपोऽपवादे 'स्य'–प्रत्यये 'हृ स्य ति' इति स्थिते 'ऋद्धनोः स्ये' इति इडागमे गुणे सस्य षत्वे सिध्यति रूपं 'हरिष्यति' इति ५—दधार। अधृत, अधार्षीत्। अधृत–'धृञ्' धातो लुङि आत्मनेपदे लस्य तादेशेऽटि मध्ये च्लौ, 'च्लेः' सिचि 'अ धृ स् त' इति जाते 'ह्रस्वादङ्गात्' इति सिचः सकारलोपे सिध्यति 'अधृत' इति रूपं परस्मैपदे 'अधार्षीत्' इति। ६–लिटि-निनाय, निन्यतुः, निन्युः। निनयिथ। निन्ये, निन्याते, निन्यिरे। अनैषीत्, अनेष्ट, अनेषाताम्। ७–पक्ष्यति, पक्ष्यते। लुङि–अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः। आत्मनेपदे—अपक्त, अपक्षाताम् अपक्षत। ८–भेजतुः, भेजुः इत्यादि।

५४५–ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सिच् का लोप होता है झल परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]भक्ष्यति, भक्ष्यते । [2]अभाक्षीत्, अभक्त । [3]अभक्षाताम् ॥ यज देवपूजा-सङ्गतिकरणदानेषु । ८ । यजति, यजते ।

५४६ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ ।

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि । [4]इयाज ।

५४७ वचि-स्वपि-यजादीनां किति ६ । १ । १५ ।

[5]वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति । [6]ईजतुः । ईजुः । इयजिथ, [7]इयष्ठ । ईजे । यष्टा ।

५४८ षढोः कः सि ८ । २ । ४१ ।

यक्ष्यति, [8]यक्ष्यते । इज्यात्, यक्षीष्ट । [9]अयाक्षीत्, अयष्ट । वह प्रापणे । ९ । वहति, वहते । [10]उवाह । ऊहतुः । ऊहुः । उवहिथ ।

१–भज्+स्यति । 'चोः कुः' इति गः 'खरि च' इति कः । ककारात्परस्य सस्य षत्वम् । कषसंयोगे क्षः । एवमग्रेऽपि । २–अभाक्षीत्–'भज्' धातोर्लुङि परस्मैपदे तिपीकारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि 'एकाच उपदेशे....' इति इणनिषेधे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटि 'वद-व्रजे' ति वृद्धौ जकारस्य कुत्वेन गकारे 'खरिचे' ति चर्त्वे सस्य षत्वे सिध्यति रूपम् 'अभाक्षीत्' इति । ३—(लुङि) अभक्ष्यत । ४—इयाज ययज्+अ, (अभ्यासस्य सम्प्रसारणम्, पूर्वरूपम्, उपधावृद्धिः । ५—यजादयश्चैते—

'यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसि-वेञ्-व्येञ् इत्यपि ।
ह्वेञ् वदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव ॥'

६—यज्+अतुस् 'इत्यत्र' 'वचिस्वपी' ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च 'इज्' इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे, सवर्णदीर्घे ईजतुः । ७ इडभावपक्षे रूपमिदम् । इयष्ठ ययज्+थ (ल्), अभ्यासस्य सम्प्रसारणम् ! 'व्रश्चभ्रस्जसृज' इति जकारस्य षत्वम् । ततः ष्टुत्वम् । ८—षस्य कत्वम्, कषसंयोगे क्षः । ९—अयाक्षीत्, अयाष्टाम्, अयाक्षुः । वदव्रजेति वृद्धिः । १०—उवाह, ऊहतुः इत्यादि । इयाज, ईजतुः-इत्यादिवत् ।

५४६—वच्यादि और ग्रह्यादि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है लिट् परे रहते ।

५४७—वच-स्वप और यजादि धातु को सम्प्रसारण होता है कित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

५४८—षकार और ढकार को क होता है सकार परे रहते ।

५४९ झषस्तथोर्धोऽधः ८ । २ । ४० ।

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः ।

५५० ढो ढे [1]लोपः ८ । ३ । १३ ।

५५१ सहिवहोरोदवर्णस्य ६ । ३ । ११२ ।

अनयोरवर्णस्य ओत् स्याड्ढलोपे । [2]उवोढ । ऊहे । [3]वोढा । वक्ष्यति । [4]अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः । अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ । अवाक्षम्, अवाक्ष्व । अवाक्ष्म । अवोढ, अवक्षाताम्; अवक्षत । अवोढाः, अवक्षाथाम्, अवोढ्वम् । अवक्षि, अवक्ष्वहि, अवक्ष्महि । अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत ।

इति भ्वादयः

२–अथादादयः

अद भक्षणे (१)

५५२ अदिप्रभृतिभ्यः शपः २ । ४ । ७२ ।

१–ढस्य ढे परे लोप इत्यर्थः । २–उवह् +थ (ल्) थस्य धत्वे हस्य 'हो ढः' इति ढत्वम्, ष्टुत्वेन धस्यापि ढत्वम्, शेषं मूले स्पष्टम् । ३—वोढा-'वह्' धातोर्लुटि लस्य तिपि तस्य डादेशे शपोऽपवादे तास् प्रत्यये 'वह् ता' इति स्थितौ 'होढः' इति हकारस्य ढकारे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तकारस्य धकारे तस्य ष्टुत्वेन ढकारे 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारलोपे 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति अकारस्य ओकारे सिध्यति रूपं 'वोढा' इति । ४—अवाक्षीत्-'वह्' धातोर्लुङि लस्य तिपि इकारलेपे ऽटि मध्ये च्लौ, सिचि 'वद व्रजे'ति वृद्धौ तकारस्य ईटि 'अवाह् स् ई त्' इति जाते 'होढः' इति हस्य ढत्वे 'षढोः कः सि' इति ढस्य कत्वे सकारस्य षत्वे 'अवाक्षीत्' इति रूपम् ।

इति भ्वादयः ।

५४९— झष् से परे तकार, थकार को धकार होता है धा धातु को छोड़कर ।

५५०—ढकार का लोप होता है ढकार परे रहते ।

५५१—सह्, वह्; धातु के अकार को ओकार होता है ढकार के लोप होने पर ।

इति भ्वादयः ।

अथ अदादयः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५५२—अदादिगणपठित धातुओं से परे शप् का लुक् होता है ।

लुक् स्यात्। अत्ति। अत्तः। [1]अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

५५३ लिट्यन्यतरस्याम् २। ४। ४०।

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि। [2]जघास। उपधालोपः।

५५४ शासि-वसि-घसीनां च ८। ३। ६०।

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्। घस्य चर्त्वम्। [3]जक्षतुः। जक्षुः [4]जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास, जघस। जक्षिव। जक्षिम। [5]आद। आदतुः। आदुः।

५५५ इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ७। २। ६६।

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्। आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु, अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु।

५५६ हुझल्भ्यो हेर्धिः ६। ४। १०१।

१–अदन्ति–'अद्' धातोर्लटि लस्य झौ झेरन्तादेशे 'कर्त्तरि शप्' इति शपि तस्य 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति लुकि, सिध्यति रूपम् 'अदन्ति' इति। २–जघास–'अद्' धातोः लिटि तिपि णलि 'लिट्यन्यतरस्याम्' इति अदो 'घस्लृ' आदेशे 'घस् अ' इति स्थितौ द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'कुहोश्चु' रिति घकारस्य कत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'अत उपधायाः' इति उपधावृद्धौ सिध्यति रूपं 'जघास' इति। ३–जक्षतुः– 'अद्' धातोर्लिटि तसोऽतुसि अदो 'घस्लृ' आदेशे द्वित्वेभ्यासकार्ये 'ज घस् अतुस्' इति स्थितौ 'गम-हने' ति उपधालोपे 'खरि चे' ति घस्य कत्वे 'शासिवसिघसीनां च' इति सस्य षत्वे कषसंयोगे 'क्षः' अतुसः सकारस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'जक्षतुः' इति। ४– 'घस' इत्यस्य तासि प्रयोगाभावात् 'उपदेशेऽत्वतः' इति निषेधाभावेन क्रादिनियमात् (क्राद्यन्यो लिटि सेट् भवेदित्युक्तेः) नित्यमिट्। ५–'घस्लृ' आदेशाभावपक्षे रूपाणि।

५५३—अद् धातु को घस्लृ आदेश होता है विकल्प से लिट् परे रहते।

५५४—इण् कवर्ग से परे शास् वस् और घस् धातु के स को ष होता है।

५५५अद्, ऋ और व्येञ धातुओं से परे थल को नित्य इट् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५५६—हु धातु और झलन्त धातु से परे हि को धि आदेश होता है।

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि, अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम।

५५७ अदः सर्वेषाम् ७।३।१००।

अदः परस्यापृक्त-सार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन। आदत् आत्ताम्, आदन्। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म। अद्यात्। अद्याताम् अद्युः। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः।

५५८ लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७।

अदो-घस्लृ स्याल्लुङि सनि च। लृदित्त्वादङ्। [1]अघसत्। आत्स्यत्। हन हिंसागत्योः। २। हन्ति।

५५९ अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे। यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-[2]मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः। तनु-क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तृणु-घृणु-वनु-मनु-तनोत्यादयः। हतः। [3]घ्नन्ति। हंसि। हथः। हथ। हन्मि। हन्वः। हन्मः। [4]जघान। [5]जघ्नतुः। जघ्नुः।

१—अघसत्—'अद्' धातोर्लुङि तिपोकारलोपे 'लुङ्सनोर्घस्लृ' इति 'घस्लृ' आदेशेऽटि 'अ घस् त्' इति स्थिते मध्ये च्लौ 'पुषादी' ति च्लेरङि सिध्यति रूपम् 'असघत्' इति २—षड्धातवः। ३—घ्नन्ति—'हन्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने झि, झेरन्तादेशे 'हन् अन्ति' इति स्थितौ शपि, शपो लुकि 'गम-हने'ति उपधालोपे 'होहन्तेर्ञ्-णिऽन्नेषु' इति हस्य घत्वे सिध्यति रूपं 'घ्नन्ति' इति। ४—जघान-लिटि द्वित्वे हलादिशेषे 'हहन् + अ' अभ्यासस्य 'कुहोश्चुः' इति चुत्वम्। 'हो हन्ते...' इति हस्य घत्वम्। 'अत उपधायाः' इति वृद्धिः। ५—'गमहन...' इति उपधालोपः। नकारे परे 'हो हन्ते...' इति घत्वम्।

५५७—अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक को अडागम होता है सब आचार्यों के मत में।

५५८—अद् को घस्लृ आदेश होता है लुङ् और सन परे रहते।

५५९—अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु तथा तनोत्यादि धातु के अनुनासिक का लोप होता है झलादि कित् ङित् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५६० अभ्यासाच्च ७ । ३ । ५५ ।

अभ्यासात् परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्। जघनिथ, जघन्थ। जघ्नथुः। जघ्न। जघान, जघन। जघ्निव। जघ्निम। हन्ता। [1]हनिष्यति। हन्तु, हतात्। हताम्। घ्नन्तु।

५६१ हन्तेर्जः ६ । ४ । ३६ ।

हौ परे।

५६२ असिद्धवदत्राभात् ६ । ४ । २२ ।

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयं समानाश्रये [2]तस्मिन्कर्तव्ये [3]तदसिद्धम्। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। [4]जहि। हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। [5]अहन् अहताम्, अघ्नन्,। अहन्, अहतम्, अहत। अहनम्, अहन्व, अहन्म। हन्यात्।

५६३ आर्धधातुके २ । ४ । ३५ ।

इत्यधिकृत्य।

५६४ हनो वध लिङि २ । ४ । ४२ ।

५६५ लुङि च २ । ४ । ४३ ।

१–'ऋद्धनोः स्ये' इति 'इट्'। २–आभीये। ३–'पूर्वकृतम् आभीयम्। ४–जहि–'हन्' धातोर्लोटि सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हि, 'हन्तेर्जः' इति जादेशे 'अतो हेः' इति हेर्लुक् प्राप्तः 'असिद्धवदत्राभात्' इति जस्यासिद्धत्वात् हेर्न लुक्, सिध्यति रूपं 'जहि' इति।—अत्र 'हल्ङ्याब्भ्य' इति तिपस्तकारस्य लोपः।

५६०—अभ्यास से परं हन् धातु के हकार को कुत्व होता है।

५६१—हन् धातु के स्थान पर जकारादेश होता है हि परे रहते।

५६२—'असिद्धवदत्राभात्' सूत्र से लेकर षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद तक आभीय कहलाते हैं। सामानाश्रय आभीय करने में पूर्वकृत आभीय असिद्ध होता है।

५६३—'आर्धधातुके' यह अधिकार सूत्र है।

५६४—हन् धातु को वध आदेश होता है लिङ् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५६५—हन् धातु को वध आदेश होता है लुङ् परे रहते।

वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुके इति विषयसप्तमी । तेनार्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वादतो लोपः । वध्यात् । वध्यास्ताम् । [1]अवधीत् । अहनिष्यत् । यु मिश्रणामिश्रणयोः । ३ ।

५६६ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७ । ३ । ८९ ।

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य । यौति, युतः, युवन्ति । यौषि, युथः, युथ । यौमि, युवः, युमः । युयाव । यविता । यविष्यति । यौतु, युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह उतो [2]वृद्धिर्न । भाष्ये 'पिच्च ङिन्न' 'ङिच्च पिन्न' इति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । [3]यूयात् । यूयास्ताम् । यूयासुः । [4]अयावीत् । अयविष्यत् । या [5]प्रपाणे । ४ । याति । यातः । यान्ति । [6]ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् ।

५६७ लङः शाकटायनस्यैव ३ । ४ । १११ ।

आदन्तात् परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् । [7]अयुः, अयान् । यायात् । याया-

---

१—**अवधीत्**—'हन्' धातोः लुङि तिपीकारलोपेऽटि 'लुङि च' इति हनो वधादेशे मध्ये च्लौ सिचि इटि ईटि 'इट ईटि' इति सकारलोपे 'अ वध ई त्' इति स्थितौ 'अतो लोपः' इति धकाराकारस्य लोपे सिध्यति रूपम् 'अवधीत्' इति । २–यासुटो ङित्त्वात् । तत्र पित्, साक्षादुक्तेन ङित्त्वेनाऽऽतिदेशिकस्य पित्त्वस्य बाधात् । ३–आशीर्लिङि 'अकृत्सार्वधातुकयोः' इति दीर्घः । ४–**अयावीत्**–'यु' धातोर्लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे 'अ यु त्' इति स्थितौ मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि, इटि, ईटि 'इट ईटि' इति सिचो लोपे 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ आवादेशे सिध्यति रूपम् 'अयावीत्' इति । ५–गमने प्रसिद्धः । ६—'आत औ णलः' इति णल औत्वम्—ययौ, ययतुः, ययुः । ययिथ-ययाथ, ययथुः इत्यादि । ७—**अयुः**–'या' धातोर्लङि प्रथमपुरुषबहुवचने लस्य झिः 'लङः शाकटायनस्यैव' इति वैकल्पिके जुसादेशे शपि लुकि अडागमे 'अ या उस्' इति स्थिते 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपे सस्य रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपम् 'अयुः' इति । जुसादेशाभावपक्षे झस्यान्तादेशे इतश्चेति इकारलोपे तकारलोपे दीर्घे 'अयान्' इति ।

५६६–लुक् के विषय में उकार को वृद्धि होती है हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते अभ्यस्त को नहीं ।

५६७–आदन्त धातुसे परे लङ् की झि को जुस् होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

ताम् । यायुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः । [1]अयासीत् । अयास्यत् । वा [2]गतिगन्धनयोः । ५ । भा दीप्तौ । ६ । ष्णा शौचे । ७ । श्रा पाके । ८ । द्रा कुत्सायां गतौ । ९ । प्सा भक्षणे । १० । रा दाने । ११ । ला आदाने । १२ । दाप् लवने । १३ । पा रक्षणे । १४ । ख्या प्रकथने । १५ । अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः । विद ज्ञाने । १६ ।

५६८ विदो लटो वा ३ । ४ । ८३ ।

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद, विदतुः विदुः, । वेत्थ, विदथुः, विद । वेद, विद्व, विद्म । पक्षे—वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ।

५६९ उष-विद-जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ३८ ।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि [3]न गुणः । [4]विदाञ्चकार । [5]विवेद । [6]वेदिता । वेदिष्यति ।

१—अयासीत्–'या' धातोः लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि 'यमरमनमातां सक् च' इति सूत्रेण सकि सिच इटि तकारस्य ईटि 'अ या स् इ स् ई त्' इति स्थितौ 'इट ईटि' इति सिचो लोपे सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपम् 'अयासीत्' इति । २—वाति । ववौ । भाति । बभौ । स्नाति । सस्नौ । श्राति । शश्रौ । द्राति । दद्रौ । प्साति । पप्सौ । राति । ररौ । लाति । ललौ । दाति । ददौ । पाति । पपौ । ख्याति । सर्वत्र लुङि 'यमरमनमातां सक् च' इति इट्सकौ, अवासीत्, अवासिष्टाम् अवासिषुः । इत्यादिरूपाणि ज्ञेयानि । 'स्ना-श्रा-द्रा-प्सा एषां चतुर्णाम् आशीर्लिङि 'वान्यस्य संयोगादेः' इति विकल्पेन इत्वम् स्नेयात्, स्नायात् । श्रेयात्, श्रायात् । द्रेयात्, द्रायात् । प्सेयात्, प्सायात् । इत्यादि । ३–लघूपधत्वाभावान्न गुणः । ४–विदाञ्चकार–'विद्' धातोः लिटि 'उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्' इत्यनेनामि तस्यार्धधातुकत्वेऽपि विदेरदन्तत्त्वप्रतिज्ञानात् 'पुगन्ते' ति गुणेन, 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयोगस्य' इति लिटपरकृञोऽनुप्रयोगे 'विदाम् कृ' इत्यतः लिटस्तिपि णलि 'कृ' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इति अत्वे रपरत्वे 'हलादिशेषः' इति रेफस्य लोपेऽभ्यासस्य श्चुत्वे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च 'विदाञ्चकार' इति सिध्यति । ५—आमोऽभावपक्षे रूपम् । ६–अनिट्कारिकासु तु श्यन्निर्देशेन सत्तार्थकस्य दिवादेर्विदो ग्रहणं, तेनाऽयं सेट् ।

५६८–विद् धातु से परे लट् सम्बन्धी परस्मैपद को णलादि आदेश विकल्प से होते हैं ।

५६९–उष्, विद्, जागृ धातु से परे आम् होता है विकल्प से लिट् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

५७० विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३ । १ । ४१ ।

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्त-करोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । [1]पुरुषवचने न विवक्षिते ।

५७१ तनादिकृञ्भ्य उः ३ । १ । ७९ ।

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः [2]विदाङ्करोतु ।

५७२ अत उत् सार्वधातुके ६ । ४ । ११० ।

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत् उत् सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । [3]विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । [4]अविदुः ।

५७३ दश्च ८ । २ । ७५ ।

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा । अवेः, अवेत् । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् । अस [5]भुवि । १७ । अस्ति ।

१–प्रथमपुरुषो बहुवचनं च न विवक्षितमित्यर्थः, 'इति' शब्दोपादानात् । सर्वस्मिन्नपि लोटि उक्तनिपातनमिति भावः । २—विदाङ्करोतु-'विद्' धातोर्लोटि 'विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्' इति सूत्रेण विदेरामि गुणाभावे लोटो लुकि लोट्परककृञोऽनुप्रयोगे च लोटो लस्य तिपि तस्य सार्वधातुकत्वात् शपि प्राप्ते तं बाधित्वा 'तनादिकृञ्भ्य उः' इति 'उ' विकरणे विदाम् कृ उ ति इति स्थितौ 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणे पुनस्तिपं निमित्तीकृत्य उकारस्य गुणे तिप इकारस्य च 'एरुः' इति उत्वे मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च सिध्यति रूपं 'विदाङ्करोतु' इति तातङ्पक्षे 'अत उत्सार्वधातुके' इति ककाराकारस्य उत्वे 'विदाङ्कुरुतात्' इति (पक्षे 'वेत्तु' इति च सिध्यति) । ३—'उतश्च' इति हेर्लुक् । ४—'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति झेर्जुस् । ५—सत्तायामित्यर्थः ।

५७०–विद् से आम् होता है और लोट् परे रहते तथा गुण का अभाव और लोट् का लुक् होता है और लोट् परक कृ धातु का अनुप्रयोग होता है विकल्प से ।

५७१–तनादि धातु और कृञ् धातु से परे उ-प्रत्यय होता है ।

५७२–उ-प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अ को उ. होता है सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

३७३–धातु के पदान्त दकार को विकल्प से रु होता है सिप् परे रहते ।

५७४ श्नसोरल्लोपः ६ । ४ । १११ ।

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति । [1]स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ।

५७५ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८ । ३ । ८७ ।

उपसर्गेणः प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम्—[2]अभिस्तः ।

५७६ [3]अस्तेर्भूः २ । ४ । ५२ ।

आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु, स्तात् । स्ताम् । सन्तु ।

५७७ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११९ ।

घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हौ परे अभ्यासलोपश्च । [4]एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । श्नसोरित्यल्लोपः । तातङ् पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात् । [5]एधि, स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । [6]आसीत् । आस्ताम् । आसन् ।

१—स्तः—'अस्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषद्विवचने तसि शपो लुकि 'अस् तस्' इति स्थिते 'सार्वधातुकमपित्' इति तसो ङित्त्वात् 'श्नसोरल्लोपः' इति अस्तेरकारस्य लोपे तसः सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'स्तः' इति । २—अभि-स्तः । ३—सर्वत्र आर्धधातुके (लिट्-लुट्-लृट्-आशीर्लिङ् लुङ्-लृङ्क्षु) अस्तेर्भूभावः । बभूव, इत्यादय एवं प्रयोगा इत्यर्थः । ४—आभीयत्वेनेति शेषः । ५—एधि—'अस्' धातोर्लोटि सिपि शपो लुकि 'सेर्ह्यपिच्च' इति से हिं आदेशे 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति अस्तेः सस्य एत्वम् 'अ ए हि' इति जाते एत्वस्यासिद्धत्वात् 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धि आदेशे अपिच्चेत्युक्तेः 'सार्वधातुकमपित्' इति । ङित्वेन 'श्नसोरल्लोपः' अकारलोपे सिध्यति रूपम् 'एधि' इति । ६—आसीत्—'अस्' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने तिपीकारलोपे शपो लुकि आटि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'आस् त्' इति जाते 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तकारस्य ईटि सिध्यति रूपम् 'आसीत्' इति ।

५७४—श्न और अस्ति के अकार का लोप होता है सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते।

५७३—उपसर्ग इण् से परे और प्रादुस् से परे अस्ति के स को ष होता है यकार और अच् परे रहते ।

५७६—अस् धातु को भू आदेश होता है आर्धधातुक परे रहते ।

५७७—घुसंज्ञक और अस् धातु को एत्व और अभ्यास का लोप होता है हि परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत्, अभविष्यत् । इण गतौ । १८ । एति । इतः ।

५७८ इणो यण् ६ । ४ । ८१ ।

अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति ।

५७९ अभ्यासस्याऽसवर्णे ६ । ४ । ७८ ।

इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । [1]इयाय ।

५८० दीर्घ इणः किति ७ । ४ । ६९ ।

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि । [2]ईयतुः । ईयुः । [3]इययिथ इयेथ । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । [4]आयन् । [5]इयात् । [6]ईयात् ।

५८१ एतेर्लिङि ७ । ४ । २४ ।

उपसर्गात् परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् । [7]अभीयात् । अणः किम्–[8]समेयात् ।

१–इ–इ+अ, वृद्धौ, आयादेशे, अभ्यासस्य 'इयङ्' । २–ईयतुः–'इण्' धातोर्लिटो तसोऽतुसि द्वित्वे 'इ इ अतुस्' इति स्थितौ 'इणो यण्' इति यणि 'दीर्घ इणः किति' इति सूत्रेणाभ्यासस्य दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपम् 'ईयतुः' इति । ३–थलि वेट्, उभयत्रापि गुणः, अभ्यासस्य 'इयङ्' । ४–इ+अन् । 'इणो यण्' इति यण्, तस्याभीयत्वेनाऽसिद्धत्वादाट् । आयन् । ऐः, ऐतम् ऐत । आयम्, ऐव, ऐम । ५–इयात् इयाताम्, इत्यादि । ६–'अकृत्सार्व...' इति दीर्घः । ७–अत्र सवर्णदीर्घस्य पूर्वान्तवद्भावे–इणोऽण् नास्ति, परादिवद्भावे उपसर्गस्वरूपं भज्येत, उभयत आश्रयणे च नान्तादिवद्भाव इति न ह्रस्वः । –सम्+आ+ईयात् गुणे कृते 'समेयात्' इत्यत्र एकारोऽण् नास्तीति न ह्रस्वः ।

५७८–इण् धातु को यण् होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

५७९–अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश होते हैं । असवर्ण अच् परे रहते ।

५८०–इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है कित् लिट् परे रहते ।

५८१–उपसर्ग से परे इण् धातु सम्बन्धी अण् को ह्रस्व होता है आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५८२ इणो गा लुङि २ । ४ । ४५ ।

गातिस्थेति सिचो लुक् । [1]अगात् । ऐष्यत् । शीङ् स्वप्ने । १९ ।

५८३ शीङः सार्वधातुके गुणः ७ । ४ । २१ ।

क्ङिति चेत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ।

५८४ शीङो रुट् ७ । १ । ७ ।

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् । [2]शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिश्यिरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । [3]शयिषीष्ट । [4]अशयिष्ट । अशयिष्यत् । इङ् अध्ययने । २० । [5]इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः । अधीते । [6]अधीयाते । अधीयते ।

१–अगाताम्, अगुः, इत्यादि । २–शेरते–'शीङ्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने झादेशे शपो लुकि 'शीङः सार्वधातुके गुणः' इति गुणे 'आत्मनेपदेष्वनतः' इति झस्य 'अत्' आदेशे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति टेरेत्वे 'शे अते' इति जाते 'शीङो रुट' इति रुडागमे सिध्यति रूपं 'शेरते' इति । ३–शयिषीष्ट–'शीङ्' धातोराशीर्लिङि प्रथम-पुरुषैकवचने लस्य तादेशे 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि तस्य इटि 'सुट् तिथोः' इति तकारस्य सुडागमे 'शी ई सीय् स् त' इति स्थितौ 'गुणेऽयादेशे सीयुटः सस्य षत्वे तकारस्य ष्टुत्वे सिध्यति रूपं 'शयिषीष्ट' इति । ४–अशयिष्ट–'शीङ्' धातोर्लुङि तादेशेऽडागमे च्लौ, च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे ईटि च 'अ शी इ स् त' इति स्थिते गुणे-ऽयादेशे सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे च सिद्धं रूपम् 'अशयिष्ट' इति । ५–इङ् अध्ययने, इक् स्मरणे, इति धातुद्वयम् 'अधि' उपसर्गपूर्वकमेव प्रयुज्यते सर्वत्रेत्यर्थः । ५—अधी-याते—'अधि' पूर्वकात् 'ईङ्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषद्विवचने लस्यातामादेशे टेरेत्वे शपो लुकि 'अधि इ अति' इति स्थिते इकारस्य 'इयङि' सवर्णदीर्घे 'अधीयाते' इति ।

(वार्तिक—उभयत आश्रयण में अन्तादिवद्भाव नहीं होता ।)

५८२–इण् धातु को गा आदेश होता है लुङ् परे रहते ।

५८३–शीङ् धातु को गुण होता है सार्वधातुक परे रहते ।

५८४–शीङ् धातु से पर झ-स्थानिक आदेश अ को रुट् का आगम होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

५८५ गाङ् लिटि २ । ४ । ४९ ।

इङो गाङ् स्याल्लिटि । [1]अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अधीष्व, अधीयाथाम्, अधीध्वम् । [2]अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै । अध्यैत, [3]अध्यैयाताम्, अध्यैत । अध्यैथाः, अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्, अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ।

५८६ विभाषा लुङ्लृङोः २ । ४ । ५० ।

इङो गाङ् वा स्यात् ।

५८७ गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १ । २ । १ ।

गाङादेशात् कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः ।

५८८ घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-सां हलि ६ । ४ । ६६ ।

एषामात ईत् स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके । [4]अध्यगीष्ट । अध्यैष्ट । अध्य-

---

१—अधिजगे–अधिपूर्वकात् 'इङ्' धातोर्लिटि लस्य तादेशे 'एशि' 'गाङ् लिटि' इति धातोः 'गाङ्' आदेशे 'अधि गाए' इति स्थिते 'गा' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वे 'कुहोश्चुः' इति श्चुत्वे 'आतो लोप इटि च' इति आकारलोपे 'अधिजगे' इति रूपम् । २—अध्ययै–अधि+इ+इ (आ+इ-ए-ऐ, अत्र गुणाऽयादेशयोः कृतयोरुपसर्गस्य यण् । अत्र यद्यपि पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते इत्यन्तरङ्गत्वाद् गुणात्पूर्वं सवर्णदीर्घः प्राप्तः तथापि 'णेरध्ययने वृत्तम्' इति निर्देशान्न भवति, इदम्—एकदेशिपक्षे । 'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण' इति सिद्धान्तपक्षे तु नास्त्येव दोषः । ३—परत्वात्पूर्वम् इयङ्, तत आट् ततो वृद्धिः ४—अध्यगीष्ट–अध्यैष्ट–अधिपूर्वकात् 'इङ्' धातोर्लुङि लस्य तादेशे 'विभाषा-लुङ्लृङोः' इति इङो वा गाङादेशेऽडागमे यणि मध्ये च्लौ, तस्य सिचि अनुबन्धलोपे 'अ गा स् त' इति जाते 'गाङ्कुटादिभ्यः'...इति सिचो ङित्वे 'घुमा-स्थे'ति सूत्रेणाकारस्य इत्वे सस्य षत्वे ष्टुत्वे सिध्यति रूपम् 'अध्यगीष्ट' पक्षे

५८५—इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है लिट् परे रहते ।

५८६—ईङ् धातु को गाङ् आदेश होता है विकल्प से लुङ् लृङ् परे रहते ।

५८७—गाङादेश और कुटादि से परे ञित् णित् से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होता है ।

५८८—घुसंज्ञक, मा, स्था, गा, पा, हा, और षोऽन्तकर्मणि धातुके आकार को ईकार होता है हलादि कित्, ङित्, आर्धधातुक परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गीष्यत। अध्यैष्यत। दुह प्रपूरणे। २१। दोग्धि। दुग्धः। दुहन्ति। [1]धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे दुह्महे। दुदोह। दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति। धोक्ष्यते। दोग्धु, दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि, दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। [1]अधोक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुहीत।

५८९ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १। २। ११।

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट।

५९० शल इगुपधादनिटः क्सः ३। १। ४५।

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात्। [2]अधुक्षत्।

५९१ लुग्वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये। ७। ३। ७३।

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि। अदुग्ध, अधुक्षत।

'गाङ्'—आदेशाभावे आटि वृद्धौ 'अधि ऐ स् त' इति स्थितौ यणि षत्वे–'अध्यैष्ट' इति रूपम्।

१–धोक्षि–दुह+सि (प्), गुणः 'दादेर्धातो....' इति हस्य घत्वम् 'एकाचो बशो....' इति दस्य धः। सस्य षत्वं कषसंयोगे क्षः। अधोक्—'दुह्' धातोर्लङि तिपि इकारलोपेऽटि शपो लुकि 'अ दुह् त्' इति स्थितौ 'पुगन्ते' ति गुणे 'हल्ङ्याब्भ्यिति' तिपस्तकारलोपे 'अदोह' इत्यत्र 'दादेर्धातोर्घः इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशो भष्' इति दकारस्य धकारादेशे जश्त्वेन घस्य गकारे चर्त्वे 'अधोक्' इति रूपम्। २—अधुक्षत्—'दुह' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने लस्य तिबादेशेऽटि 'अ दुह् त्' इति स्थिते च्लौ, च्लेः 'शल इगुपधादनिटः क्स' इति क्सादेशेऽनुबन्धलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो....' इति दकारस्य धकारे धकारस्य जश्त्वेन गकारे तस्य चर्त्वेन ककारे सस्य षत्वे कषोः संयोगे 'क्षः' सिध्यति रूपम् 'अधुक्षत्' इति।

५८९—इक्समीप हल् से झलादि लिङ्-सिच् कित् होते हैं तङ् परे रहते।

५९०—इगुपध शलन्त जो धातु उससे परे अनिट् च्लि को क्स आदेश होता है।

५९१—दुह, दिह, लिह और गुह धातु के क्स का लुक् होता है विकल्प से दन्त्य प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५९२ क्सस्याचि ७ । ३ । ७२ ।

यजादौ तङि क्सस्य लोपः। (२१) अलोन्त्यस्येत्यकारलोपः। अधुक्षाताम्। अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्। अधुग्ध्वम्। अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। [1]अदुह्वहि अधुक्षावहि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं दिह [2]उपचये। २२। लिह आस्वादने। २३। लेढि। [3]लीढः। लिहन्ति। [4]लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह। लिलिहे। लेढासि। लेढासे। लेक्ष्यति। लेक्ष्यते। लेढु। लीढाम्। अलेट्, अलेड्। अलीढ। अलिक्षत्, अलक्षित, अलीढ। अलेक्ष्यत्। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। २४।

५९३ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३ । ४ । ८८ ।

ब्रुवो [5]लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः। [6]आह। आहतुः आहुः।

५९४ आहस्थः ८ । २ । ६५ ।

झलि परे। [7]चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

१—लुङि आत्मनेपदे 'वहि' प्रत्यये 'क्से' अधुक्षावहि, 'लुग्वा दुहदिह......' इति क्सस्य लुक्, पक्षे अदुह्वहि। २—उपचयो वृद्धिः। ३—लीढः—'लिह्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषद्विवचने तसि शपो लुकि 'लिह् तस्' इति जाते 'होढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तकारस्य धकारे धस्य ष्टुत्वेन ढकारे 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारलोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोणः' इति इकारस्य दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'लीढः' इति। ४—लिह्+सि (प्) गुणे, ढत्वे 'षढोः कः सि' इति सस्य षत्वे, क-ष संयोगे क्षः। ५—तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्, एषां पञ्चानां क्रमेण 'णल्-अतुस्-उस्-थल्-अथुस्' एते पञ्च आदेशाः स्युः। ६—आह—'ब्रूञ्' धातोर्लटि तिपि शपो लुकि 'ब्रूति' इति स्थितौ 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' इति तिपो णलादेशे ब्रुवश्चाहादेशेऽनुबन्धलोपे सिध्यति रूपम् 'आह' इति। ७—थकारस्य तकारः।

५९२—क्स का लोप होता है अजादि तङ् परे रहते।

५९३—ब्रूञ् से परे लट् सम्बन्धी तिबादि पाँच को णलादि पाँच आदेश विकल्प से होते हैं और ब्रूञ् धातु को आह आदेश होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५९४—आह् के थकार अन्तादेश होता है झल् परे रहते।

५९५ ब्रुव ईट् ७ । ३ । ९३ ।

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ।

५९६ ब्रुवो वचिः २ । ४ । ५३ ।

आर्धधातुके । [1]उवाच । [2]ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ, उवक्थ । ऊचे । वक्ता । वक्ष्यति । वक्ष्यते । ब्रवीतु ब्रूतात् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रवाणि । ब्रूताम् । ब्रवै । अब्रवीत् । अब्रूत । ब्रुवीत । उच्यात् । वक्षीष्ट ।

५९७ अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्योऽङ् ३ । १ । ५५ ।

एभ्यश्च्लेरङ्स्यात् ।

५९८ वच उम् ७ । ४ । २० ।

अङि परे । [3]अवोचत्, अवोचत । अवक्ष्यत्, । (चर्करीतं च) चर्करीतमिति यङ्लुगन्तं, [4]तददादौ बोध्यम् । ऊर्णुञ् आच्छादने । २५ ।

५९९ ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । ३ । ९० ।

१—'लिट्यभ्यासस्यो···' इति सम्प्रसारणम् । २—ऊचतुः—'ब्रूञ्' धातोर्लिटि तसि, अतुसि 'ब्रुवो वचिः' इति ब्रुवो वचादेशे 'वच् अतुस्' इति जाते 'वचि स्वपि-यजादीनां किति' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'उच्' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासकार्ये सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपम् 'ऊचतुः' इति । ३—अवोचत्—'ब्रूञ्' धातोर्लुङि तिपीकारलोपे ब्रुवो वचादेशेऽडागमे 'अवच् त्' इति स्थिते मध्ये च्लौ 'अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्योऽङ्' इति च्लेरङादेशे 'वच् उम्' इति उमागमे गुणे च सिध्यति रूपम् 'अवोचत्' इति । ४—यङ्लुगन्तक्रियायाम् अदादिगणकार्यम्=शब्लुगादिकं भवतीत्यर्थः । अत्रेदं बोध्यम्—प्राचीनानां चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा । एवं ण्यन्तस्य 'कारितम्' इति । सन्नन्तस्य 'चिकीर्षितम्' इति । यङन्तस्य 'चेक्रीतम्' इति ।

५९५–ब्रूञ् धातु से परे हलादि पित् को ईट् का आगम होता है ।

५९६–ब्रू धातु को वच् आदेश होता है आर्धधातुक के विषय में ।

५९७–अस् , वच् और ख्या धातु से परे च्लि को अङ् आदेश होता है ।

५९८–वच् को उम् का आगम होता है अङ् परे रहते ।

(वा०–यङ् लुगन्त को अदादि में जानना चाहिए ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५९९–ऊर्णुञ् धातु को विकल्प से वृद्धि होती है हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णुतः ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते। (ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम्[1])

६०० न न्‌-द्‌-राः संयोगादयः ६।१।३।

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। [2]नुशब्दस्य द्वित्वम्। [3]ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः।

६०१ विभाषोर्णोः १।२।३।

इडादिप्रत्ययो वा ङित् स्यात्। [4]ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति। ऊर्णोतु, ऊर्णौतु। ऊर्णवानि, ऊर्णवै।

६०२ गुणोऽपृक्ते ७।३।९१।

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके [5]वृद्ध्यपवादः। और्णोत्। और्णोः। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णूयात्। ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णविषीष्ट।

६०३ ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६।

१–'इजादेश्च गुरु....' इति प्राप्तं निषिद्ध्यते। २–णत्वस्याऽसिद्धत्वादित्यनुसन्धेयम्, अत एव नोत्तरखण्डे णत्वश्रवणम्। सर्वत्र धातुषु रेफात्परस्य णकारस्य नकारस्थानिकत्वमेव, तथैवोक्तम्—

नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु।
सकारजश्शकारश्चेषट्टवर्गस्तवर्गजः॥

३–ऊर्णुनाव–'ऊर्णुञ्' धातोर्लिटि तिपि णलि 'अजादेर्द्वितीयस्ये' ति नियमेन 'र्णु' शब्दस्य द्वित्वे प्राप्ते 'नन्द्रासंयोगादयः' इति रेफस्य द्वित्वनिषेधे णत्वस्य चासिद्धत्वात् 'नु' शब्दस्य द्वित्वे पूर्वनकारस्य 'रषाभ्याम्....' इति णत्वे 'ऊर्णुनु अ' इति जाते 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आवादेशे सिध्यति रूपम् 'ऊर्णुनाव' इति। ४–ङित्वपक्षे 'उवङ्' तदभावपक्षे गुणः। ५– निरवकाशत्वात्।

(वा–ऊर्णुञ् धातु से आम् प्रत्यय नहीं होता है)।

६००–अच् से परे संयोगादि न् द् र् को द्वित्व नहीं होता।

६०१–ऊर्णुञ् धातु से इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् होते हैं।

६०२–ऊर्णु धातु को गुण होता है अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते।

६०३–ऊर्णुञ् धातु को विकल्प से वृद्धि होती है इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः । पक्षे गुणः । [1]और्णावीत्, और्णवीत् । और्णुवीत् । और्णाविष्टाम्, और्णविष्टाम्, और्णुविष्टाम् । और्णविष्ट, और्णुविष्ट । और्णविष्यत् और्णुविष्यत् । इत्यदादयः ।

३—अथ जुहोत्यादयः

हु दानादनयोः । १ ।

६०४ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २ । ४ । ७५ ।

शपः श्लुः स्यात् ।

६०५ श्लौ ६ । १ । १० ।

धातोर्द्वेस्तः । [2]जुहोति । जुहुतः ।

६०६ अदभ्यस्तात् ७ । १ । ४ ।

झस्याऽत् स्यात् । (५०१) हुश्नुवोरिति यण् । जुह्वति ।

६०७ भी-ह्री-भृ-हुवां श्लुवच्च ३ । १ । ३९ ।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव [3]कार्यं च । [4]जुहवाञ्चकार,

---

१–और्णावीत्–ऊर्णञ् धातोर्लुङि तिपि इकारलोपे आटि 'आटश्चे' ति वृद्धौ 'और्णु-त्' इति स्थिते मध्ये च्लौ तस्य सिचि इटि ईटि 'इट ईटि' इति सिज्लोपे सवर्णदीर्घे 'और्णु ई त्' इति जाते ('विभाषोर्णोः' इति वैकल्पिके ङित्वे गुणाभावे उवङि 'और्णुवीत्') ङित्वाभावे गुणं बाधित्वा 'ऊर्णोतेर्विभाषा' इति वा वृद्धौ आवादेशे 'और्णावीत्' इति पक्षे गुणेऽवादेशे 'और्णवीत्' इति ।

इत्यदादयः ।

२–अभ्यासहकारस्य 'कुहोश्चुः' इति चुत्वम् । ३–द्वित्वादि । ४–जुहवाञ्चकार—

अथ जुहोत्यादयः

६०४–जुहोत्यादिगणपठित धातुओं से परे शप् को श्लु (लोप) होता है ।

६०५–धातु को द्वित्व होता है श्लु होने पर ।

६०६–अभ्यस्त से परे झ को अत होता है ।

६०७–भी, ह्री, भृ और हु धातु से आम् होता है विकल्प से लिट् परे रहते और आम् परे रहते धातु को श्लुवत् कार्य होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु, जुहुतात् । जुहुताम् । जुह्वतु । [2]जुहुधि । जुहवानि । अजुहोत् । अजुहुताम् ।

६०८ जुसि च ७ । ३ । ८३ ।

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि । अजुहवुः । जुहुयात् । हूयात् । [3]अहौषीत् । अहोष्यत् । ञिभी भये २ । बिभेति ।

६०९ भियोऽन्यतरस्याम् ६ । ४ । ११५ ।

इकारो वा स्याद्धलादौ ङिति सार्वधातुके । बिभीतः, बिभितः । बिभ्यति । [4]बिभयाञ्चकार, बिभाय । भेता । भेष्यति । बिभेतु, बिभितात्, [5]बिभीतात् । [6]अबिभेत् । बिभियात्, [7]बिभीयात् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् । ह्री

'हु' धातोर्लिटि 'भी-ह्री-भृ-हुवां श्लुवच्च' इति वैकल्पिके आमि श्लुवद्भावे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये (हस्य झत्वे झस्य जश्त्वेन दत्वे) गुणेऽवादेशे 'आमः' इति लिटो लुकि पुनः लिट्परक-कृञोऽनुप्रयोगश्च 'जुहवाम् कृ अ' इति स्थिते कृञो द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इति अरं रपरत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चु' इति चुत्वे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे मस्यानुस्वारे परसवर्णे सिध्यति रूपं 'जुहवाञ्चकार' इति । आमोऽभावे च 'जुहाव' इति

१—आमोऽभावपक्षे जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः इत्यादि । २–'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धिः । ३—अहौषीत्–'हु' धातोर्लुङि तिपीकारलोपेऽडागमे 'अ हु त्' इति जाते मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि इण्निषेधे तकारस्य इटि 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ सस्य षत्वे सिध्यति रूपम् 'अहौषीत्' इति । अहौषीत्, अहौष्टाम् अहौषुः । अहौषीः, अहौष्टम्, अहौष्ट । अहौषम्, अहौष्व, अहौष्म । ४—'भीह्रीभृहुवां···' इति सूत्रेणाऽऽम् श्लाविव कार्यं च । ५—बिभीतात्–'भी' धातोर्लोटि तिपि शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासस्य ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'एरुः' इति तिप इकारस्योत्वे 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' इति तातङादेशे 'भियोन्यतरस्याम्' इति दीर्घईकारस्य पाक्षिके ह्रस्वे इकारे 'बिभितात्' इति, पक्षे 'बिभीतात्' तातङभावे च गुणे कृते 'बिभेतु' इति रूपम् । ६–अबिभिताम्–अबिभी-ताम्, अबिभयुः ('जसि च' इति गुणः)। अबिभेः, अबिभितम्-अबिभीतम्, अबिभित-अबिभीत । अबिभयम्, अबिभिव-अबिभीव, अबिभिम-अबिभीम । ७–एवं सर्वत्रापि रूपद्वयम् ।

६०८–इगन्त अङ्ग को गुण होता है अजादि जुस् परे रहते ।

६०९–भी धातु को इकार आदेश होता है विकल्प से हलादि कित ङित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ह्री लज्जायाम् ।३। जिह्रेति । जिह्रीतः । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार । [1]जिह्राय । ह्रेता । ह्रेष्यति । जिह्रेतु । [2]अजिह्रेत् । जिह्रीयात् । ह्रीयात् । अह्रैषीत् । अह्रेष्यत् । पॄ पालनपूरणयोः । ४ ।

६१० अर्त्ति-पिपर्त्योश्च ७ । ४ । ७७ ।

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ । पिपर्ति ।

६११ उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७ । १ । १०२ ।

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात् ।

६१२ हलि च । २ । ७७ ।

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । [3]पिपूर्तः । [4]पिपुरति । पपार

६१३ श-द-प्रां ह्रस्वो वा ७ । ४ । १२ ।

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । [5]पप्रतुः ।

६१४ ॠच्छत्यृताम् ७ । ४ । ११ ।

१–जिह्राय, जिह्रियतुः, जिह्रियुः, इत्यादि-रूपाणि । २–अजिह्रेत्, अजिह्रीताम्, अजिह्रयुः इत्यादि । ३–पिपूर्तः–'पॄ' धातोर्लटि तसि शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'अर्ति-पिपर्त्योश्च' इति अभ्यासस्य ईकारान्तादेशे रपरे हलादिशेषे 'पि पॄ तस्' इति जाते 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इति उत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति उपधायाः दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'पिपूर्तः' इति । ४–अदभ्यस्तात् इति 'अत्' । ५–पप्रतुः-(पपरतुः)– 'पॄ' धातो लिंटि प्रथमपुरुषद्विवचनेऽतुसि द्वित्वे–अभ्यासस्य ह्रस्वेऽत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'श-द्द-प्रां ह्रस्वो वा' इति वैकल्पिके ह्रस्वे यणि सस्य रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'पप्रतुः' इति, पक्षे 'ॠच्छत्यॄताम्' इति गुणे 'पपरतुः' इति जातम् ।

६१०–ऋ धातु और पॄ धातु के अभ्यास को इकार अन्तादेश होता है श्लु में ।

६११–अङ्ग का अवयव ओष्ठ्य है पूर्व में जिसके, ऐसा जो ॠकार तदन्त अङ्ग को उकार आदेश होता है ।

६१२–रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है हल् परे रहते ।

६१३–श दॄ प धातु को ह्रस्व होता है लिट् परे रहते ।

६१४–तौदादिक ऋच्छ धातु और ॠकारान्त धातु को गुण होता है लिट् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ऋतां च गुणो लिटि। पपरतुः। पपरुः।

६१५ वृतो वा ७।२।३८।

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि। परिता, परीता। परिष्यति, परीष्यति। [1]पिपर्तु। [2]अपिपः। अपिपूर्ताम्। [3]अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्।

६१६ सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०।

अत्र इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरिष्यत्, अपरीष्यत्। [4]ओहाक् त्यागे। ५। जहाति।

६१७ जहातेश्च ६।४।११६।

इङ् वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः।

६१८ ई हल्यघोः ६।४।११३।

श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलि, न तु घोः। जहीतः।

६१९ श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२।

१—पिपूर्तात्, पिपूर्ताम्, पिपुरतु। पिपूर्हि-पिपूर्तात्, पिपूर्तम् पिपूर्त। पिपराणि, पिपराव, पिपराम। २—अपिपः-'पॄ' धातोर्लुङि तिपीकारलोपेऽटि शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'अति-पिपर्त्योश्च' इति रपरे इकारे हलादिशेषे 'अ पिपृ-त्' इति स्थितौ गुणे रपरत्वे 'हल्ङ्याब्·····' इति तकारलोपे रेफस्य विसर्गे सिध्यति रूपम् 'अपिपः' इति।। ३—'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति झेर्जुस्। अपिपः, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त। अपिपरम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म। ४—ओकारः (अनुनासिकत्वात्) ककारश्च इत्संज्ञकः।

६१५—वृङ्, वृञ् और ऋदन्त धातु से परे इट् को दीर्घ होता है विकल्प से लिट् परे नहीं।

६१६—परस्मैपद सिच् परे रहते इट् को दीर्घ नहीं होता।

६१७—जहाति धातु को इकार होता है विकल्प से हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते।

६१८—श्ना और अभ्यस्त के आकार को ईकार होता है हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते, घुसंज्ञकों को नहीं।

६१९—श्ना और अभ्यस्त के आकार का लोप होता है। कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके। [1]जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु, जहितात्, [2]जहीतात्।

६२० आ च हौ ६।४।११७।

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ। [3]जहाहि, जहिहि, जहीहि। अजहात्। अजहीताम्। अजहुः।

६२१ लोपो यि ६।४।११८।

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। (४९०) एर्लिङि। हेयात्। अहासीत्। अहास्यत्। माङ् माने [4]शब्दे च। ६।

६२२ भृञामित् ७।४।७५।

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत् स्यात् श्लौ। [5]मिमीते। मिमाते। [6]मिमते। ममे। माता। मास्यते। मिमीताम्। [7]अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। [8]अमास्त। अमास्यत। ओहाङ् गतौ। ७। जिहीते।

१—झस्य 'अत्' आलोपः। जहासि, जहिथः–जहीथः, जहिथ–जहीथ। जहामि, जहिवः-जहीवः, जहिमः–जहीमः। जहौ, जहतुः, जहुः। जहिथ-जहीथ, जहथुः, जह। जहौ, जहिव, जहिम। २—जहिताम्, जहीताम्। जहतु। ३—जहाहि–'हा' धातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपो 'हि'–आदेशे शपः श्लौ अभ्यासस्य ह्रस्वे श्चुत्वे जश्त्वेन जकारे 'ज हा ति' इति जाते 'आ च हौ' इति आत्वपक्षे 'जहाहि' इत्वपक्षे 'जहिहि' ईत्वपक्षे 'जहीहि' इति रूपत्रयम्। ४—अजा बिडालादिशब्दे इत्यर्थः। ५—मिमीते–'मा' धातोर्लटि तादेशे टेरेत्वे शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'म मा ते' इति स्थिते 'भृञामित्' इति अभ्यासाकारस्य इत्वे धातोरकारस्य 'ई हल्यघोः' इति ईत्वे सिध्यति रूपं 'मिमीते' इति। ६– श्नाभ्यस्तयोरातः' इति आलोपः। ७–अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत। अमिमीथाः, अमिमाथाम्। अमिमीध्वम्। अमिमि, अमिमीवहि, अमिमीमहि। ८–अमास्त, अमासाताम्, अमासत। अमास्थाः, अमासाथाम्, अमाध्वम्। अमासि, अमास्वहि, अमास्महि।

६२०—जहाति धातु को आकार, इकार, ईकार आदेश होते हैं हि परे रहते।

६२१—जहाति के आकार का लोप होता है यकारादि सार्वधातुक परे रहते।

६२२—भृञ्, माङ्, ओहाङ् धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश होता है श्लु के विषय में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जिहाते। जिहते। जहे। हाता। हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त। अहास्यत। डुभृञ् धारणपोषणयोः।८। बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृते। बिभ्राते [1]बिभ्रते। [2]बिभराञ्चकार, बभार। बभर्थ। बभृव। बिभराञ्चक्रे, बभ्रे। भर्ता। भरिष्यति, भरिष्यते। बिभर्तु। बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः। अबिभृताम्। अबिभरुः। अबिभृत। बिभृयात्, बिभ्रीत। [3]भ्रियात्, [4]भृषीष्ट। अभार्षीत्, [5]अभृत। अभरिष्यत् अभरिष्यत। डुदाञ् दाने।९। ददाति। [6]दत्तः। ददति। दत्ते। ददाते। ददते। [7]ददौ, [8]ददे। दाता। दास्यति, दास्यते। ददातु।

६२३ दा धा घ्वदाप् १।१।२०।

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्-दैपौ विना। (५७७) घ्वसोरित्येत्वम्। [9]देहि। दत्ताम्। अददात्। अदत्त। दद्यात्। ददीत। [10]देयात्। दासीष्ट। [11]अदात्। अदाताम् [12]अदुः।

६२४ स्थाघ्वोरिच्च १।२।१७।

१–बिभ्रते–'भृञ्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने झादेशे शपः श्लौ द्वित्वे 'भृञामित्' इति अभ्यासस्य रपरे इकारे हलादिशेषे भस्य बत्वेऽभ्यस्तसंज्ञायाम् 'अदभ्यस्तात्' इति झस्य अति टेरेत्वे यणि च कृते बिभ्रते इति, परस्मैपदे च 'बिभ्रति' इति। २—'भीह्रीभृ....' इत्याम्। ३–'रिङ्शयग्लिङ्क्षु' इति रिङ्। अत्र रिङ् इति ह्रस्वविधान-सामर्थ्यान्न दीर्घः। ४–'उश्च' इति कित्वान्न गुणः। ५–'ह्रस्वादङ्गात्' सिचो लोपः। ६–'श्नाभ्यस्तयोरातः' इति आलोपः। अघोरिति निषेधात् 'ई हल्यघोः' इति-ईत्वं न। ७–'आत औ णलः' इति–'औत्वम्' ८–'आतो लोप इटि च' इत्याकारलोपः। ९–देहि–'दा' धातोर्लोटि सिपि सेर्हौ शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे च कृते 'द दा हि' इति स्थितौ 'दाधा घ्वदाप्' इति घुसंज्ञत्वे 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति एत्वेऽभ्यासलोपे सिध्यति रूपं 'देहि' इति। १०–'एर्लिङि'। ११–'गातिस्थाघुपा...' इति सिचो लुक्। १२–'आतः' इति जुस् 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपम्।

६२३–दारूप धारूप धातु की घु संज्ञा होती है दाप् दैप् धातु को छोड़कर।

६२४–स्था धातु और घुसंज्ञक धातु को इकार अन्तादेश होता है और सिच् कित् होता है आत्मनेपद परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित् स्यादात्मनेपदे। [1]अदित। अदास्यत्, अदास्यत। [2]डुधाञ् धारण-पोषणयोः। १०। दधाति।

६२५ दधस्तथोश्च ८। २। ३८।

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः परयोः स्ध्वोश्च परतः। [3]धत्तः। दधति। दधासि। धत्थः। धत्थ। धत्ते। दधाते। दधते। धत्से। धद्ध्वे। (५७७) ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च। धेहि। अदधात्। अधत्त। दध्यात्। दधीत। धेयात्, धासीष्ट। अधात्। अधित। अधास्यत्, अधास्यत। णिजिर् शौचपोषणयोः। ११। (इर इत्संज्ञा वाच्या)।

६२६ णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७। ४। ७५।

णिज्-विज्-विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ। [4]नेनेक्ति। नेनिक्तः नेनिजति। नेनिक्ते। निनेज। निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते। नेनेक्तु नेनिग्धि।

१—ह्रस्वादङ्गात्' सिचो लोपः। अदित, अदिषाताम्, अदिषत। अदिथाः, अदिषाथाम्, अदिढ्वम्। अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि। २—अस्य चोपसर्गयोगे एवमर्थविशेषः—

'विपूर्वो धा करोत्यर्थे अभिपूर्वस्तु भाषणे।
मेलने चापि संपूर्वो निपूर्वः स्थापने मतः॥ १॥

यथा—कार्यं विदधाति (इति करोत्यर्थे) मधुरमभिदधाति। (भाषणे)। कुण्डले संदधाति (मेलने)। पादं निदधाति (स्थापने)। ३—यथा 'दत्तः' इति। ४—नेनेक्ति—'णिजिर्' धातोर्णस्य नत्वे इर इत्संज्ञायां लोपे च लटि तिपि शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'निनिज् ति' इति स्थितौ 'णिजां त्रयाणाम्' इति अभ्यासस्य गुणे परस्य च 'पुगन्ते' ति गुणे जस्य कुत्वे चर्त्वे 'नेनेक्ति' इति रूपम्।

६२५—द्विरुक्त झषन्त धातु के बश् को भष् होता है त-थ और स-ध्व परे रहते। (वा०—इर् की इत्संज्ञा होती है)।

६२६—णिज्, विज्, और विष् धातु के अभ्यास को गुण होता है श्लु के विषय में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६२७ [1]नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७ । ३ । ८७ ।

लघूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात् निज्यात् । नेनिजीत । [2]निक्षीष्ट ।

६२८ इरितो वा ३ । १ । ५७ ।

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु । [3]अनिजत्, [4]अनैक्षीत्, [5]अनिक्त । अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत । इति जुहोत्यादयः ।

४—अथ दिवादयः

दिवु क्रीडा [6]विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु । १ ।

६२९ दिवादिभ्यः श्यन् ३ । १ । ६९ ।

शपोऽपवादः । (६१२) हलि चेति दीर्घः । दीव्यति । [7]दीव्यन्ति । दिदेव ।

१–अजादौ पिति सार्वधातुके अभ्यस्तस्य लघूपधगुणो न स्यात् इत्यर्थः २–'लिङ् सिचावात्मनेपदेषु' इति कित्त्वान्न गुणः । ३–अनिजत्, अनिजताम्, अनिजन् । अङभावे–अनैक्षीत्, अनैक्ताम्, अनैक्षुः । ४–अनैक्षीत्–निज् धातोर्लुङि तिपीकार-लोपेऽडागमे 'अ निज् त्' इति स्थिते मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इण्निषेधे ईडागमे 'वद-व्रजे' ति जस्य गत्वे कत्वे सस्य षत्वे च कषोः संयोगे 'क्षः' सिध्यति रूपम् 'अनैक्षीत्' । ५–आत्मनेपदे च अनिक्त, अनिक्षाताम्, अनिक्षत ।

इति जुहोत्यादयः ।

६–विजयाभिलाषः । ७–दीव्यन्ति—'दिव्' धातोर्लटि झौ झेरन्तादेशे शपोऽपवादे 'दिवादिभ्यः श्यन्' इति श्यनि अनुबन्धलोपे 'दिव् य अन्ति' 'हलि चे' ति दीर्घे 'अतो गुणे' इति पररूपे सिध्यति रूपं 'दीव्यन्ति' इति ।

६२७–अभ्यस्त को लघूपध गुण नहीं होता अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

६२८–इरित् धातु से परे च्लि को अङ् होता है विकल्प से परस्मैपद में ।

इति जुहोत्यादयः

अथ दिवादयः

६२९–दिवादिगणपठित धातुओं से परे श्यन् होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्। एवं षिवु [1]तन्तुसन्ताने। २। नृती [2]गात्रविक्षेपे। ३। नृत्यति। ननर्त। नर्तिता।

६३० सेऽसिचि कृत-चृत-छृद-तृद-नृतः ७। २। ५७।

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा। [3]नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत् नृत्यात्। [4]अनर्तीत्। अनर्तिष्यत्। अनर्त्स्यत्। त्रसी [5]उद्वेगे। ४। (४८५) वा भ्राशेति श्यन् वा। त्रस्यति, त्रसति। तत्रास।

६३१ वा जॄ-भ्रमु-त्रसाम् ६। ४। १२४।

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा [6]त्रेसतुः, तत्रसतुः। त्रेसिथ-तत्रसिथ। त्रसिता। शो तनूकरणे। ५।

६३२ ओतः श्यनि ७। ३। ७१।

१—वस्त्रादिसीवने इत्यर्थः। सीव्यति। सिषेव। सेविता। सेविष्यति। सीव्यतु। असीव्यत्। सीव्येत्। सीव्यात्। असेवीत्। असेविष्यत्। २–नर्त्तने। ३–नर्तिष्यति-नर्त्स्यति–'नृत्' धातोर्लृटि तिपि स्यतासी लृलुटोः इति मध्ये 'स्य' प्रत्यये 'सेऽसिचि'–इति वा इटि सस्य षत्वे 'पुगन्ते' ति गुणे रपरत्वे 'नर्तिष्यति' इति, इडभावे 'नर्त्स्यति' इति रूपम्। ४–'वदव्रज' इति प्राप्ताया वृद्धेः–'नेटि' इति निषेधः। 'पुगन्त' इति गुणे अनर्तीत्, अनर्तिष्टाम्, अनर्तिषुः। इत्यादि। ५–उद्वेगो=भयम्। लिटि तत्रास, त्रेसतुः-तत्रसतुः-त्रेसुः तत्रसुः। त्रेसिथ-तत्रसिथ, त्रेसथुः-तत्रसथुः, त्रेस तत्रस। तत्रास-तत्रस, त्रेसिव-तत्रसिव, त्रेसिम-तत्रसिम। लुडादौ-त्रसिता। त्रसिष्यति। त्रस्यतु, त्रसतु। अत्रस्यत्-अत्रसत्। त्रस्येत्-त्रसेत्। त्रस्यात्। अत्रासीत्-अत्रसीत्। अत्रसिष्यत्। इति। ६–त्रेसतुः 'त्रस्' धातोर्लिटि ततोऽतुसि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'त त्रस् अतुस्' इति स्थिते 'वाजॄभ्रमुत्रसाम्' इति एत्वेऽभ्यासलोपे सिध्यति रूपं 'त्रेसतुः' इति।

६३०–कृत-चृत-छृद-तृद-नृत धातुओं से परे सिच्भिन्न सादि आर्धधातुक को इडागम होता है विकल्प से।

६३१–जॄ-भ्रमु-त्रस् धातुओं को एत्व होता है और अभ्यास का लोप होता है विकल्प से कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते।

६३२–ओकार का लोप होता है श्यन् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]लोपः स्यात् श्यनि। श्यति। श्यतः। श्यन्ति। [2]शशौ। शशतुः। शाता। शास्यति।

६३३ विभाषा घ्रा-धेट्-शा-च्छासः २।४।७८।

एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदे परे। अशात्। अशाताम्। [3]अशुः। इट्सकौ। अशासीत्। अशासिष्टाम्। छो छेदने। ६। [4]छ्यति। षोऽन्तकर्मणि। ७। [5]स्यति। [6]ससौ। दोऽवखण्डने। ८। द्यति। ददौ। [7]देयात्। अदात्। व्यध [8]ताडने। ९।

६३४ ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६।

एषां सम्प्रसारणं स्यात् किति ङिति च। [9]विध्यति। [10]विव्याध। विविधतुः। विविधुः। विव्यधिथ, [11]विव्यद्ध। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत्। पुष् पुष्टौ। १०। पुष्यति। पुपोष। पुपोषिथ। पोक्ष्यति। (५०७)

१–ओकारस्य लोप इत्यर्थः। २–शशौ–'आदेच उपदेशेऽशिति' इति 'आत्वे' णल औत्वम्। ३–'आतः' इति झेर्जुस्। 'उस्यपदान्तात्' इति पररूपम्, अशुः। ४–छ्यति। चच्छौ। छाता। छास्यति। छ्यतु। अच्छ्यत्। छ्येत्। छायात्। अच्छात्। अच्छासीत्। अच्छास्यत इति रूपाणि। ५–'धात्वादेः षः सः' इति सत्वम्। ६–आशीर्लिङि–सेयात् (मास्थादिष्वस्य पाठात् 'एर्लिङि' इति एत्वम्), लुङि-'विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः' इति सिचो लुग् वा, असात्, पक्षे 'यमरमनमे' ति–इट्सकौ-असासीत्, असासिष्टाम्, असासिषुः, इत्यादि। ७–'एर्लिङि' इत्येत्वम्। लुङि घुसंज्ञायां 'गातिस्थेति' सिचो लुक्, अदात्। ८–वेधने प्रसिद्धः। ९–विध्यति–'व्यध्' धातोर्लटि तिपि श्यनि अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकमपित्' श्यनो ङित्वेन 'ग्रहि-ज्ये' ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे सिध्यति रूपं 'विध्यति' इति। १०–'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' इति-अभ्यासस्य सम्प्रसारणम्। ११–'झषस्तथोर्धोऽधः' इति थस्य धत्वम्, पूर्वधकारस्य जश्त्वम् (दः)। इडभावे (रूपमिदम्) लुङि–'वद-व्रजेति' वृद्धिः, खरि चेति चर्त्वम्। अव्यात्सीत, अव्याद्धाम्, अव्यात्सुः-इत्यादिरूपाणि।

६३३–घ्रा-धेट्-शो-छो-षो धातु से परे सिच् का लुक् होता है विकल्प से परस्मैपद परे रहते।

६३४–ग्रह्यादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् ङित् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुषादीत्यङ्। अपुषत्। शुष् शोषणे। ११। शुष्यति। शुशोष। अशुषत्। णश [1]अदर्शने। १२। नश्यति। ननाश। [2]नेशतुः।

६३५ रधादिभ्यश्च ७। २। ४५।

रध् नश् तृप दृप् द्रुह् मुह् ष्णुह् ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात्। नेशिथ।

६३६ मस्जि-नशोर्झलि ७। १। ६०।

नुम् स्यात्। [3]ननंष्ठ। नेशिव, नेश्व, नेशिम, नेश्म। नशिता, नंष्टा। नशिष्यति, [4]नंक्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। [5]अनशत्। षूङ् प्राणिप्रसवे। १३। सूयते। क्रादिनियमादिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे। [6]सोता, सविता। दूङ् परितापे। १४। दूयते। दीङ् क्षये। १५। दीयते।

६३७ दीङो युडचि क्ङिति। ६। ४। ६३।

१–अभावे=नाशे। २–'अत एक हल्मध्ये...' इति एत्वाभ्यासलोपौ। ३–ननंष्ठ–'नश्' धातोर्लिटि सिपस्थलि णस्य 'णोनः' इति नत्वे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'न नश् थ' इतिस्थितौ ('रधादिभ्यश्चे' ति वैकल्पिके इटि 'थलि च सेटि' इति एत्वेऽभ्यासलोपे 'नेशिथ' इति)। इडभावपक्षे 'मस्जि-नशोर्झलि' इति नुनि, तस्यानुस्वारे 'न नंश् थ' इति जाते 'व्रश्चभ्रस्जे...'ति शस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते सिध्यति रूपं 'ननंष्ठ' इति। ४–अनशत्–'नश्' धातोर्लुङि तिपीकारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ 'पुषादि-द्युतादि...'इति 'अङि' सिध्यति रूपम् 'अनशत्' इति। (अङो ङित्त्वेन वृद्धेरभावे)। ५–इडभावे 'व्रश्चभ्रस्ज'....इति शस्य षत्वम्, 'षढोः कः सि-' इति कत्वे, परस्य सस्य षत्वे, कषसंयोगे क्षः। नुम्। ६–'स्वरतिसूतिसूयति...'इति वेट्। लुङादौ-सोष्यते सविष्यते। सूयताम्। असूयत। सूयेत। सोषीष्ट। सविसीष्ट, असोष्ट, असविष्ट। असोष्यत, असविष्यत इति रूपाणि।

६३५–रधादि धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् होता है।

६३६–मस्जि और नश् धातु को नुम् होता है झल् परे रहते।

६३७–दीङ् धातु से परे अजादि कित् ङित् आर्धधातुक को युट् का आगम होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वा० उवङ् और यण् के विधान में वुक्-युट् सिद्ध हो रहते हैं।)

दीङः परस्याजादेः क्ङिति आर्धधातुकस्य युट्। ([1]वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ) [2]दिदीये।

६३८ मीनाति-मिनोति-दीङां ल्यपि च ६। १। ५०।

एषामात्वं स्यात् ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते। दाता। दास्यते। (स्थाध्वोरित्त्वे दीङः [3]प्रतिषेधः) [4]अदास्त। डीङ् विहायसा [5]गतौ। १६। डीयते। डिड्ये। डयिता। पीङ् पाने। १७। पीयते। पेता। अपेष्ट। माङ् माने। १८। मायते [6]ममे। [7]जनी प्रादुर्भावे। १९।

६३९ ज्ञा-जनोर्जा ७। ३। ७९।

अनयोर्जादेशः स्यात् शिति। [8]जायते। [9]जज्ञे। जनिता। जनिष्यते।

१–युट आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वात्। 'एरनेकाच....' इति यण् प्राप्तः, स माभूदित्येतदर्थमिदं वार्तिकम्। २–दिदीये–'दीङ्' धातोर्लिटि प्रथमपुरुषैकवचने आत्मनेपदे लस्य तादेशे द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे तकारस्यैशादेशे 'दीङो युडचि' इति 'युटि' सिध्यति रूपं 'दिदीये' इति। (ननु युटः आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वेन परत्वात् 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' इति यण् स्यादिति चेन्न 'वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ' इति युटोऽसिद्धत्वाभावबोधनात्)। ३–'स्थाध्वोरिच्च' इति प्राप्तमित्वं न स्यादित्यर्थः। ४–अदास्त–'दीङ्' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने आत्मनेपदे लस्य तादेशेऽडागमे च्लौ च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'अ दी स् त' इति जाते 'मीनाति-मिनोति-दीङां ल्यपि च' इति 'आत्वे' सिध्यति रूपम् 'अदास्त' इति। (ननु 'दाधाध्वदाप्' इति घुसंज्ञायां 'स्थाध्वोरिच्चे' ति इत्वं स्यादिति चेन्न, 'स्थाध्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः' इति वचनात्। ५–पक्षिविमानादिगमने इत्यर्थः। लिटि–'एरनेकाचो....' इति यण् 'डिड्ये'। लुङि–अडयिष्ट, अडयिषाताम्, अडयिषत। अडयिष्ठाः। इत्यादयः। ६–लुङि अमास्त, अमासाताम्। अमासत। इत्यादि। ६–ईकार इत्। ८–जायते–'जन्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषैकवचने लस्य तादेशे टेरेत्वे शपोऽपवादे श्यनि अनुबन्धलोपे 'जन् य ते' इति स्थितौ 'ज्ञाजनोर्जा' इति जनेर्जादेशे सिध्यति रूपं 'जायते' इति। ९–द्वित्वे हलादिशेषे 'जजन् +(त) ए' इत्यत्र। 'गमहनजन' इति उपधालोपे श्चुत्वेन नस्य ञत्वे जञोर्ज्ञः जज्ञे।

६३८–मीञ्, मिञ् और दी धातु को आत्व होता है ल्यप् परे रहते। चकार से शित् भिन्न एच्निमित्तक प्रत्यय परे रहते भी आत्व होता है।

(पा०—'स्थाध्वोरिच्च' से प्राप्त इत्व दीङ् को नहीं होता)।

६३९–ज्ञा और जन धातु को जा आदेश होता है शित् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६४० दीप-जन-बुध-पूरि-तायि-प्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ६१ ।

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यात् एकवचने तशब्दे परे ।

६४१ चिणो लुक् ६ । ४ । १०४ ।

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ।

६४२ जनि-वध्योश्च ७ । ३ । ३५ ।

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । [1]अजनि, अजनिष्ट । दीपी दीप्तौ । २० । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि, अदीपिष्ट । पद गतौ । २१ । पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ।

६४३ चिण् ते पदः ३ । १ । ६० ।

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । [2]अपादि । अपत्साताम्, [3]अपत्सत । विद सत्तायाम् । २२ । विद्यते । वेत्ता । अवित्त । बुध अवगमने । २३ । बुध्यते [4]बोद्धा । [5]भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । [6]अबोधि, अबुद्ध । अभुत्साताम् । युध

१–अजनि—'जन्' धातोर्लुङि आत्मनेपदे लस्य तादेशेऽडागमे च्लौ, च्लेः 'दीपजने' ति वा चिणि अनुबन्धलोपे 'अजन् इति' स्थितौ 'अत उपधाया' इति सूत्रेण प्राप्ताया वृद्धेः 'जनि-वध्योश्चे' ति निषेधे 'चिणो लुक्' इति तलोपे सिध्यति रूपम् 'अजनि' इति । चिण-भावपक्षे च च्लेः सिचि इटि षत्वे ष्टुत्वे च 'अजनिष्ट' इति रूपम् ।

२–अपादि—'पद्' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने लस्य तादेशेऽटि मध्ये च्लौ 'चिण् ते पदः' च्ले 'श्चिणि' 'अ पद इ त' इति स्थितौ 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'अत उपधायाः' इति उपधावृद्धौ सिध्यति रूपम् 'अपादि' इति । ३–अपत्थाः, अपत्साथाम्, अपद्ध्वम् । अपत्सि, अपत्स्वहि, अपत्स्महि । ४–लघूपधगुणः, तकारस्य धत्वम् । ५–'भोत्स्यते' 'एकाचो बशो भष्....' इति बस्य भत्वम् । ६–'दीपजनबुध....' इति च्लेः–चिण् (विकल्पेन) ।

६४०–दीपादि धातुओं से परे च्लि को चिण् विकल्प से होता है एकवचन तशब्द परे रहते ।

६४१–चिण् से परे तशब्द का लुक् होता है ।

६४२–जन् वध के उपधाभूत अच् को वृद्धि नहीं होती चिण् और ञित् णित् कृत् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६४३–पद धातु से परे च्लि को चिण् होता है त शब्द परे रहते ।

सम्प्रहारे । २४ । युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध । सृज विसर्गे । २५ । सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे ।

६४४ सृजि-दृशोर्झल्यमकिति ६ । १ । ५८ ।

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति । [1]स्रष्टा । स्रक्ष्यते । [2]सृक्षीष्ट । असृष्ट । [3]असृक्षाताम् । मृष् [4]तितिक्षायाम् । २६ । मृष्यति, मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिथ । मम्रृषिषे । मर्षितासि, मर्षितासे । मर्षिष्यति, मर्षिष्यते । णह बन्धने । १७ । [5]नह्यति, नह्यते । ननाह । ननद्ध, नेहिथ । नेहे । नद्धा । [6]नत्स्यति । [7]अनात्सीत्, अनद्ध ।

इति दिवादयः ।

१—स्रष्टा—अमो मित्त्वाद् ऋकारात्परत्वम्, 'जकारस्य व्रश्चभ्रस्ज' इति षत्वम्, तकारस्य ष्टुत्वम्, यण् । २—'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति लिङः कित्वाद् अम् न । एवम् 'असृष्ट' इत्यत्रापि सिचः कित्वाद् अम् न । ३—असृक्षाताम्—'सृज्' धातोर्लुङि आत्मनेपदे प्रथमपुरुषद्विवचने लस्यातामादेशेऽटि मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'असृज् स् आताम्' इति स्थिते 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति सिचः कित्वे गुणाभावे 'व्रश्च-भ्रस्जे' ति जकारस्य षत्वे 'षढोः कः सि' इति कत्वे सस्य षत्वे च कषोः संयोगे 'असृक्षाताम्' इति । ४—सहने इत्यर्थः । ५—णो नः । लिटि-ननाह, नेहतु, नेहुः । नेहिथ, ननद्ध, नेहथुः, नेह । ननाह, ननह, नेहिव नेहिम । आत्मनेपदे—नेहे, नेहाते, नेहिरे । इत्यादि । ६—'नहो धः' इति हस्य धत्वे चर्त्वम् । लुङि—अनात्सीत्, अनाद्धाम् अनात्सुः अनात्सीः, अनाद्धम् । अनाद्ध । अनात्सम्, अनात्स्व, अनात्स्म । आत्मनेपदे अनद्ध, अनत्साताम् अनत्सत । इत्यादि । ७—अनात्सीत्—'नह्' धातोर्लङि तिपीकारलोपे च्लौ सिचि अटि 'अनह् सत्' इति जाते तकारस्य ईटि 'नहो धः' इति हस्य धत्वे तस्य चर्त्वेन तकारे 'वद-व्रजे··' ति वृद्धौ 'अनात्सीत्' इति रूपम् ।

इति दिवादयः ।

६४४—सृज् धातु को अमागम होता है कित् भिन्न झलादि प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति दिवादयः

५—अथ स्वादयः

षुञ् [1]अभिषवे। १।

६४५ स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३।

शपोऽपवादः। सुनोति। सुनुतः (५०१) हुश्नुवोरिति यण्। सुन्वन्ति। [2]सुन्वः, सुनुवः। सुन्वाते। सुन्वते। सुन्वहे, सुनुवहे। सुषाव। सुषुवे। सोता। सुनु। सुनवानि, सुनुवै। सुनुयात्। सूयात्।

६४६ स्तु-सु-धूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२

एभ्यःसिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु। असावीत्। असोष्ट। चिञ् चयने। २। चिनोति। चिनुते।

६३७ विभाषा चेः ७।३।५८।

अभ्यासात् परस्य कुत्वं वा स्यात् सनि लिटि च। [4]चिकाय, चिचाय। चिक्ये। चिच्ये। अचैषीत्' अचेष्ट। स्तृञ् आच्छादने। ३ [5]स्तृणोति, स्तृणुते।

१—अभिषवः=स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासन्धानं च। २—'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' इति उकारस्य वा लोपः। ३—असावीत्—'षुञ्' धातोर्लुङि परस्मैपदे। तिपी-कारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि 'अ सु स् त्' इति जाते 'स्तु सु-धूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' इति सिचः सस्य इटि 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इति तकारस्य ईटि 'इटईटि' इति सलोपे 'सिचि वृद्धि' रिति वृद्धौ आवादेशे सवर्णदीर्घे सिध्यति रूपम्। 'असावीत्' (आत्मनेपदे 'असोष्ट' इति)। ४—चिकाय—'चिञ्' धातोर्लिटि परस्मैपदे तिपि णलि द्वित्वेऽभ्या-सत्वे 'चि चि अ' स्थितौ 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आयादेशे 'विभाषा चे' इति अभ्या-सोत्तरस्य चकारस्य कुत्वे रूपं 'चिकाय' इति (कुत्वाभावपक्षे 'चिचाय' इति रूपम्। आत्मनेपदे 'चिक्ये' 'चिच्ये' इति रूपद्वयम्)। ५—ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।

अथ स्वादयः

६४५—कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते स्वादिगणपठित धातुओं से श्नु होता है।

६४६—स्तु-सु-धूञ् धातुओं से परे सिच् को इट् होता है परस्मैपद परे रहते।

६४७—अभ्यास से परे चिञ् धातु को कुत्व होता है विकल्प से सन् और लिट् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६४८ शर्पूर्वाः खयः ७ । ४ । ६१ ।

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते । [1]तस्तार । [2]तस्तरतुः तस्तरुः । तस्तरे । (४९८) गुणोऽर्तीति गुणः । स्तर्यात् ।

६४९ ऋतश्च संयोगादेः ७ । २ । ४३ ।

ऋदन्तात् संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि । स्तरिषीष्ट, । [3]स्तृषीष्ट, [4]अस्तरिष्ट, । अस्तृत । धूञ् कम्पने । ४ । धूनोति, धूनुते । दुधाव । (४७६) स्वरतीति वेट् । दुधविथ, दुधोथ ।

६५० [5]श्र्युकः किति ७ । २ । ११ ।

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न । [5]परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा [6]पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुविव । दुधुवे । अधावीत् । [7]अधविष्ट, । अधोष्ट ।

१—तस्तार—'स्तृञ् धातोर्लिटि परस्मैपदे तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'शर्पूर्वाः खयः' इति अभ्यासस्य तकारेऽवशिष्टे 'त स्तृअ' इति स्थिते 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' इति गुणे उपधायाः वृद्धौ 'तस्तार' इति रूपम् । २—'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' इति गुणे तस्तरतुः । ३—क्श्चेति कित्त्वान्न गुणः । ४—अस्तरिष्ट—'स्तृञ्' धातोर्लुङि आत्मनेपदे लस्य तादेशे, अटि च्लौ, च्लेः सिचि 'ऋतश्च संयोगादे' रिति वैकल्पिके 'इटि' गुणे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च 'अस्तरिष्ट' इति रूपम् । (इडभावपक्षे च 'ह्रस्वादङ्गात्' इति सिज्लोपे 'अस्तृत' इति रूपम् ।) ५–'स्वरतिसूतिसूयति...'इति विकल्पो यद्यपि परः, तथापि 'आर्धधातुकस्ये...७ । २ । ३५ ।' इति विधिकाण्डारम्भात् प्रागेव 'नेड् वशि कृति ७ । २ । ८ ।' 'श्र्युकः किति ७ । २ । ११ ।' इत्यादि प्रतिषेध-(निषेध)-काण्डारम्भसामर्थ्यात् अयं श्र्युकः किति इति निषेधः स्वरत्यादिविकल्पं बाधते । एतं निषेधं च क्रादिनियमो बाधते (इति नित्यमिट्) । विधिप्रकरणात्प्रागेव निषेधप्रकरणाऽऽरम्भसामर्थ्यादित्यर्थः । ७–अधविष्ट–'धूञ्' धातोर्लुङि आत्मनेपदे लस्य तादेशेऽडागमे मध्ये च्लौ च्लेः

६४८–अभ्यास के शर्पूर्वक खय् शेष रहते हैं अन्य हल् का लोप होता है ।

६४९–ऋदन्त संयोगादि धातु से परे लिङ् और सिच् को इडागम होता है तङ् परे रहते ।

६५०–श्रिञ् और एकाच उगन्त धातु को इट् नहीं होता गित् कित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति स्वादयः ।

अधविष्यत्, अधोष्यत्। अधविष्यताम्, अधोष्यताम्। अधविष्यत, अधोष्यत। ह्रस्वान्तोऽप्ययं धुनोतीत्यादि। इति स्वादयः।

६—अथ तुदादयः

तुद व्यथने। १।

६५१ तुदादिभ्यः शः ३। १। ७७।

शपोऽपवादः। [1]तुदति, तुदते। तुतोद। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्, अतुत्त। णुद प्रेरणे। २। नुदति, नुदते। नुनोद। [2]नोत्ता। भ्रस्ज पाके। ३। (६३४) सम्प्रसारणम्। सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः। [3]भृज्जति, भृज्जते।

६५२ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६। ४। ४७।

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके। मित्वादन्त्यादचः परः। [4]स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः। [5]बभर्ज। बभर्जतुः।

सिचि 'स्वरतिसूती'ति वैकल्पिके इटि 'अ धू इ स् त' इति जाते 'सार्वधातुकार्धधातुकयो'-रिति गुणेऽवादेशे षत्वे ष्टुत्वे 'अधविष्ट' इति रूपम् (इडभावपक्षे 'अधोष्ट' इति।)

इति स्वादयः।

१-'श' इत्यस्य 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वान्न लघूपगुणः। तुदति। लुङि-अतौत्सीत्, वदव्रजेति वृद्धिः। अतौत्ताम् ('झलो झलि' सिचो लोपः) अतौत्सुः इत्यादि। आत्मनेपदे-अतुत्त, अतुत्साताम्, अतुत्सत। अतुत्थाः, अतुत्साथाम्, अतुद्ध्वम्। अतुत्सि, अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि २-अनौत्सीत्, अनुत्त (लुङि)। ३-भृज्जति-'भ्रस्ज्' धातोर्लटि शपोऽपवादे 'श' विकरणे 'ग्रहि-ज्ये'ति सम्प्रसारणं सस्य श्चुत्वेन 'श:' शस्य जश्त्वेन 'ज:' सिध्यति रूपं 'भृज्जति' इति। (आत्मनेपदे 'भृज्जते' इति रूपम्।) ४-रमागमोऽयं रेफस्य-उपधायाश्च स्थाने आदेशो भवतीत्यर्थः तथा चागमत्वमादेशत्वं चास्य सिद्ध्यति। ६-भ्रस्ज्+अ, रमागमे उपधायाः (सस्य) रेफस्य च निवृत्तौ 'भर्ज+अ' इति स्थितौ द्वित्वे हलादिशेषे अभ्यासकार्ये च 'बभर्ज' इति सिद्ध्यति।

अथ तुदादयः

६५१-तुदादिगणपठित धातुओं में श होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते।

६५२-भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम होता है विकल्प से आर्धधातुक परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बभर्जिथ, [1]बभर्ष्ठ। [2]बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। (३०९) स्कोरिति सलोपः (३०७) व्रश्चेति षः। [3]बभ्रष्ठ। बभर्ज, बभ्रज्जे। भ्रर्ष्टा, भ्रष्टा। भ्रक्ष्यति, भर्क्ष्यति। ([4]क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं [5]पूर्वविप्रतिषेधेन) भृज्ज्यात्। भृज्ज्यास्ताम्। भृज्ज्यासुः। भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट। [6]अभार्क्षीत्, [7]अभ्राक्षीत्, अभर्ष्ट, अभ्रष्ट। कृष विलेखने। कृषति, कृषते। चकर्ष। चकृषे।

६५३ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ३।१।५९।

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम् वा स्याज्झलादावकिति। क्रष्टा, कर्ष्टा। कृक्षीष्ट। (स्पृश-मृश-कृष-तृप-दृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः)। [8]अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्।

१—इडभावे व्रश्चेति षत्वे, थस्य ष्टुत्वे रूपमू। २—रमागमाऽभावपक्षे इमानि रूपाणि। ३—बभ्रष्ठ—'भ्रस्ज्' धातोर्लिटि परस्मैपदे सिपस्थलि इडभावपक्षे रमागमाभावे च द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'बभ्रस्ज् थ' इति स्थितौ 'स्को' रिति सलोपे 'व्रश्चे' ति षत्वे ष्टुत्वे 'बभ्रष्ट' इति रूपम्। इटपक्षे 'बभ्रज्जिथ' इति रूपम्। इटि रमागमे च 'बभर्ज्जिथ' इडभावे रमागमे 'बभर्ष्ठ' इति रूपम्। ४—वार्त्तिकमिदम्। ५—तुल्यबलविरोधे अपरं कार्यमिति विच्छिद्य पूर्वं कार्यमिति नियमेनेत्यर्थः। ६—अभार्क्षीत्—'भ्रस्ज्' धातोर्लुङि तिपीकारलोपेऽडागमे च्लौ, सिचि तकारस्य 'ईटि' 'अ भ्रस्ज स् ई त्' इति जाते 'भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम्' इत्यनेन रेफस्य उपधायाश्च स्थाने 'रमि' हलन्तलक्षणायां वृद्धौ 'व्रश्चे'—ति षत्वे षस्य 'षढोः कः सि' इति कत्वे सस्य षत्वे कषोः संयोगे क्षत्वे 'अभार्क्षीत्' पक्षे रमागमाभावे 'अभ्राक्षीत्' आत्मनेपदे 'अभ्रष्ट-अभर्ष्ट' इति रूपद्वयम्। ७—लुङि-अभ्राक्षीत् अभ्राष्टाम्, अभ्राक्षुः। अभ्राक्षीः, अभ्राष्टम्, अभ्राष्ट। अभ्राक्षम्, अभ्राक्ष्व, अभ्राक्ष्म। पक्षे अभार्क्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्क्षुः, इत्यादिरूपाणि। आत्मनेपदे—अभर्ष्ट, अभर्क्षाताम्, अभर्क्षत। अभर्ष्ठाः अभर्क्षाथाम्, अभर्ढ्वम्। अभर्क्षि, अभर्क्ष्वहि, अभर्क्ष्महि। पक्षे अभ्रष्ट, अभ्रक्षाताम्, अभ्रक्षत। अभ्रष्ठाः—इत्यादि। ८—अक्राक्षीत्—'कृष्' धातोर्लुङि तिपी-

---

(वा—कित् लिङ् परे रहते रमागम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध से संप्रसारण ही होता है)।

६५३ उपदेश में अनुदात्त जो ऋदुपधधातु, उसको अम् का आगम होता है विकल्प से कृत्भिन्न झल परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वा०—स्पृश्, मृष्, कृष्, तृप् और दृप् से परे च्लि को सिच् विकल्प से होता है)।

[1]अकृक्षत् । [2]अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । क्सपक्षे-अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । मिल सङ्गमे । ५ । मिलति, मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत् । मुच्लृ मोचने । ६ ।

६५४ शे मुचादीनाम् ७ । १ । ५९ ।

मुच-लिप्-विद्-लुप्-सिच्-कृत्-खिद्-पिशां नुम् स्यात् शे परे । मुञ्चति, मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । [3]अमुञ्चत्, अमुक्त । अमुक्षाताम् । लुप्लृ छेदने । ७ । लुम्पति । लुम्पते । लोप्ता । [4]अलुपत्, अलुप्त । [5]विद्लृ लाभे । ८ । विन्दति, विन्दते । विवेद, विविदे । [6]व्याघ्रभूतिमते सेट् । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् । [7]परिवेत्ता । षिच क्षरणे । ९ । सिञ्चति, [8]सिञ्चते ।

६५५ लिपि-सिचि ह्वश्च ३ । १ । ५३ ।

कारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि तकारस्य ईडागमे 'अकृष् स् ई त्' इति जाते 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' इति अमागमे यणि 'अ क्र ष् ई त्' इति स्थितौ हलन्तलक्षणायां वृद्धौ 'षढोः कः सि' इति षस्य कत्वे कषोः संयोगे क्षत्वे, अमागमाभावे 'अकार्क्षीत्' (अत्र हि 'स्पृश्–मृशे' ति सिज् वैकल्पिकः, तेन सिजभावपक्षे च्लेः क्सादेशे 'अकृक्षत्' इति रूपम् ।)

१–सिजभावपक्षे च्लेः क्सः । २–तङि 'लिङ्सिचावात्मने पदे' इति कित्त्वादम् न । ३–अमुञ्चत्–'मुच्' धातोर्लङि प्रथमपुरुषैकवचने तिपीकारलोपेऽडागमे 'तुदादिभ्यः शः' इति शपोऽपवादे 'श'–विकरणे 'अ मु च् अ त्' इति स्थितौ 'शे मुचादीनाम्' इति धातोर्नुमागमेऽनुबन्धलोपे नकारस्यानुस्वारे परसवर्णे सिध्यति रूपम् 'अमुञ्चत्' इति । ४–लृदित्वादङ् । ५–चत्वारो विद्धातवः तत्रैवं रूपभेदः—

'वेत्ति' रूपं विद ज्ञाने, 'विन्ते' विद विचारणे ।
'विद्यते' विद सत्तायाम्, विद्लृ लाभे च 'विन्दति' ॥ इति ॥

६–विन्दतिश्चान्द्रदौर्गादेरिष्टा भाष्येऽपि दृश्यते ।
व्याघ्रभूत्यादयस्त्वेनं नेह पेठुरिति स्थितम् ॥ १ ॥ इत्युक्तेः

७–परिपूर्वकाद्विद्धातोस्तृचि इडभावे गुणो च परिवेत्ता=ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्य दाराग्निहोत्रादिपरिग्रहीता । ८–सेक्ता । सेक्ष्यति इत्यादि ।

६५४—मुचादियों को नुमागम होता है श परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६५५—लिप् सिच् और ह्वेञ् से परे च्लि को अङ् होता है ।

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। [1]असिचत्।

६५६ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४।

लिपि-सिचि-ह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि। [2]असिचत्, असिक्त। लिप [3]उपदेहे। १०। उपदेहो=वृद्धिः। लिम्पति, लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्, अलिपत, अलिप्त। इति-उभयपदिनः।

कृती छेदने। ११। कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, [4]कर्त्स्यति। अकर्तीत्। खिद परिघाते। १२। खिन्दति। चिखेद। खेत्ता। पिश अवयवे।१३। पिंशति। पेशिता। [5]ओव्रश्चू छेदने।१४। वृश्चति। [6]वव्रश्च। वव्रश्चिथ, [7]वव्रष्ठ। व्रश्चिता, व्रष्टा। व्रश्चिष्यति, [8]व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत्, अव्राक्षीत्। व्यच व्याजीकरणे। १५। [9]विचति। विव्याच। विविचतुः। व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्, [10]अव्यचीत्। व्यचेः कुटादित्वमनसि इति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति [11]पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्। उछि उञ्छे। १६।

१—असिचत् 'षिच्' धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने परस्मैपदे लस्य तिपि इकारलोपे धातोरादेः षस्य सत्वेऽडागमे 'अ सिच् त्' इति स्थितौ मध्ये च्लौ, 'लिपि-सिचिह्वश्च' इति च्लेरङि ङित्वात् गुणाभावे सिध्यति रूपम् 'असिचत्' इति। २—असिचत, असिचेताम्, असिचन्त। असिचथाः असिचेथाम्, असिचध्वम्। असिचे, असिचावहि, असिचामहि। ३—लेपने इत्यर्थः। ४—'सेऽसिचिकृतचृत....' इति इट् वा। ५—ओकारोऽनुनासिकत्वादित्संज्ञकः। ६—णलि द्वित्वे अभ्यासस्य सम्प्रसारणे उरदत्वे हलादिशेषे रूपम्। ७—'स्कोः संयो...' इति सलोपः, 'व्रश्चभ्रस्ज....' इति अन्त्यस्य (चकारस्य) षत्वम्। ८—ऊदित्त्वादयं वेट्, इडभावे रूपमिदम्, चकारस्थानिकस्य चकारस्य 'षढोः कः सि' इति कत्वे परस्य (सस्य) षत्वे कषसंयोगे क्षः। ९—'ग्रहिज्या' इति सम्प्रसारणम्। १०—'अतो हलादेर्लघोः' इति वा वृद्धिः। ११—द्विविधो हि नञ्—यथा चोक्तम्—

'नञौ तु द्वौ समाख्यातौ पर्युदास-प्रसज्यकौ।
पर्युदासः सदृग्ग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत्॥''

अत्र हि समस्तत्वात् पर्युदासो नञ्, पर्युदासो हि सदृशग्राही तेन असभिन्नेऽ-

---

६५६—तङ् परे रहते लिप्, सिच् और ह्वेञ् से परे च्लि को अङ् होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]उञ्छति। उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः। ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु। १७। ऋच्छति। (६१४) ऋच्छत्यॄतामिति गुणः। द्विहल्ग्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्।[2] आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। ऋच्छिता।[4] उज्झ उत्सर्गे। १८। उज्झति। लुभ विमोहने। १९। लुभति।

६५७ तीष-सह-लुभ-रुष-रिषः ७। २। ४८।

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। लोभिता, लोब्धा। लोभिष्यति[6]। तृप तृम्फ तृप्तौ। १२। तृपति ततर्प। तर्पिता। अतर्पीत्। [7]तृम्फति। (शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः) आदिशब्दः प्रकारे। तेन येऽत्र

सूसदृशे कृत्प्रत्यये (उद्विचिता, उद्विचितुम्) इत्यादौ एव कुटादित्वेन ङित्वप्रयुक्तं सम्प्रसारणं भवति। तिङ्विषये 'व्यचिता' इत्यादौ (लुटि) तु न।

१–उञ्छाञ्चकार। उञ्छिता। उञ्छिष्यति। उञ्छतु। औञ्छत्। उञ्छेत्। उञ्छ्यात् (इदित्वान्नलोपो न)। औञ्छीत्। औञ्छिष्यत्। इति रूपाणि। २–'तस्मान्नुड् द्विहलः' इति सूत्रे इत्यर्थः। उपलक्षणत्वात्=परकत्वात्। ३–आनर्च्छ–'ऋच्छ' धातोर्लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे 'उरत्' इति अभ्यासस्य ऋवर्णस्यात्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'अत आदेः' इति दीर्घे च 'आ ऋच्छ अ' इति स्थितौ 'तस्मान्नुड् द्विहलः' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणे सिध्यति रूपम् 'आनर्च्छ' इति। 'इजादेश्च....' इति सूत्रे 'अनृच्छः' निषेधात् आम् न। 'आनर्च्छतुः' इत्यत्र 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणः। ४— लुङि—आर्च्छीत्, आर्च्छिष्टाम्, आर्च्छिषुः इत्यादि। ५—लिङादौ—उज्झाञ्चकार। उज्झिता। औज्झीत् (लुङि)। ६–लुङि अलोभीत्। ७–'श' इत्यस्य 'सार्वधातुकमपित्' इत्यनेन ङित्त्वात् 'अनिदिताम्' इति नलोपः। नन्वात्र नकारो नास्ति किन्तु मकार इति वाच्यम्, नकारस्यैव स्थानेऽनुस्वारे परसवर्णे च मकारस्य जातत्वात्। (अनिदितामिति नलोपदृष्टौ अनुस्वारपरसवर्णयोरसिद्धत्वाद् लोपदृष्टौ नकार एवेति) तथा चोक्तम्—

नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु।
सकारजः शकारश्चेत्षाट्टवर्गस्तवर्गजः ॥ १ ॥ इति ॥

६५७—इच्छत्यादि से परे तादि आर्धधातुक को इट् होता है विकल्प से। (वा०—श परे रहते तृम्फादियों को नुम् होता है)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। ततृम्फ। [2]तृफ्यात्। मृड पृड सुखने[3]।२३। मृडति। पृडति। शुन गतौ। २४। [4]शुनति। इषु इच्छायाम्। २५। [5]इच्छति एषिता, [6]एष्टा। एषिष्यति। एष्यात्। एषीत्। [7]कुट कौटिल्ये।२६। (५८७) गाङ्कुटादिति ङित्वम्। चुकुटिथ चुकोट, चुकुट। कुटिता। पुट संश्लेषणे।१७। पुटति। पुटिता। स्फुट विकसने।२८। स्फुटति। स्फुटिता। स्फुर स्फुल संचलने। ३०। स्फुरति। स्फुलति।

६५८ स्फुरति-स्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८। ३। ७६।

षत्वं वा स्यात्। निष्फुरति, निष्फुलति। णू स्तवने। ३१। [8]परिणूतगुणोदयः। नुवति। नुनाव। [9]नुविता। टुमस्जो शुद्धौ। ३२। मज्जति। ममज्ज। (६३६) मस्जि-नशोरिति नुम्। ([10]मज्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्यः) [11]संयोगादिलोपः। [12]ममङ्क्थ, ममज्जिथ। मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्।

१—शे तृम्फादीनाम्....' इत्यत्र आदिशब्दः प्रकारे (सादृश्ये) तथा च ये धातवः तृम्फधातुरिव (तृम्फधातुर्यथा नकारयुक्तः तथा) नकारानुषक्ताः=नकारयुक्ताः (नकारस्थानिकजायमानानुस्वारपरसवर्णा अपि लोपदृष्टौ नकारानुषक्ताः) तेषु सर्वत्र श प्रत्यये परतः 'नुम्' स्यादित्यर्थः। २—आशिषि यासुटः कित्वाद् 'अनिदिताम्....' इति 'न'-लोपः। ३—सुखीकरणे। ४—शुशोन। शोनिता। शोनिष्यति। शुनतु। अशुनत्। शुनेत्। शुन्यात्। अशोनीत्। अशोनिष्यत्। इति रूपाणि। ५—'इषुगमियमां छः' इति छः, लिटि—इयेष, ईषतुः, ईषुः,। इयेषिथ ईषथुः, ईष। इयेष, ईषिव, ईषिम। ६—'तीषसह' इति' वेट्। ७—कुटति। चुकोट (णलो णित्वात्) गाङ्कुटादीति न ङित्वम्, चुकुटतुः, चुकुटुः। चुकुटिथ (गाङ्कुटादीति ङित्वेन गुणाभावः) चुकुटथुः, चुकुट। चुकोट, चुकुट (उत्तमस्य णलो वा णित्वात्) णित्वाभावे ङित्वे न गुणः, परत्र गुणः। चुकुटिव, चुकुटिम। कुटिता, कुटिष्यति। इत्यादि। ८—(दीर्घ) ऊकारान्तत्वबोधनायेदम्। अत्र 'श्र्युकः किति' इति इण्निषेधः। परिणूतः=स्तुतो गुणोदयो यस्य सः। ९—नुविष्यति। नुवतु। अनुवत्। नुवेत्। नूयात्। अनुवीत्। अनुविष्यत्। १०—सस्य श्चुत्वेन शः। शस्य जश्त्वेन जः। 'मित्' हि अन्त्यादचः परो भवतीति नियमेन मकारस्थाऽकारात्परो मा भूत् किन्तु सकारजकारयोर्मध्ये स्यादित्यर्थः। ११—'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इत्यनेन सलोप इत्यर्थः। १२—ममङ्कथ—'मस्ज्' धातोर्लिटि सिपि थलि

६५८—निर्, नि और वि उपसर्ग से पर स्फुर स्फुल् के स को षत्व होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमाङ्क्ताम् । [1]अमाङ्क्षुः । रुजो भङ्गे । ३३ । रुजति रोक्ता । रोक्ष्यति । [2]अरौक्षीत् । भुजो कौटिल्ये । ३४ । रुजिवत् । विश प्रवेशने । ३५ । [3]विशति । [4]मृश आमर्शने । ३६ । आमर्शनं=स्पर्शः । (६५३) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । [5]अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत् । अमृक्षत् । षद्ऌ विशरणगत्यवसादनेषु । ३७ । [6]सीदतीत्यादि । शद्ऌ शातने । ३८ ।

६५९ शदेश्शितः १ । ३ । ६० ।

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः । [7]शीयते । शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शशाद । शत्ता । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् । कॄ विक्षेपे । ३९ ।

द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे 'ममरुज्थ' इति स्थितौ श्चुत्वेन सस्य शत्वे तस्य जश्त्वेन बत्वे भारद्वाजनियमाद् वैकल्पिके इटि सति 'ममज्जिथ' इडभावपक्षे च 'मस्जिनशोर्झलि' इति 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम्' इति सकारात् परे नुमि 'स्को' रिति सलोपे 'चोः कुः' इति गत्वे 'खरि चे' ति कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे सिध्यति रूपं 'ममङ्क्थ' इति ।

१—अमाङ्क्षीः, अमाङ्क्तम् अमाङ्क्त । अमाङ्क्षम्, अमाङ्क्ष्व, अमाङ्क्ष्म । अमङ्क्ष्यत् (लृङि)। २-अरौक्षीत्-'रुज्' धातोः लुङि तिपि इकारलोपे इडागमे च्लौ, च्लेः सिचि तकारस्य इडागमे 'अ रुज् स् ई त्' इति जाते जस्य 'चोः कु,' रिति गत्वे 'खरि चे'ति कत्वे सस्य षत्वे हलन्तलक्षणायां वृद्धौ सिध्यति रूपम् 'अरौक्षीत्' इति । अरौक्षीत्, अरौक्ताम्, अरौक्षुः । अरौक्षीः, अरौक्तम्, अरौक्त । अरौक्षम् .अरौक्ष्व, अरौक्ष्म । अरौक्ष्यत् । ३-विशति । विवेश । विविशतुः, विविशुः । वेष्टा (व्रश्चेति षत्वम् पुगन्तेति गुणः) । वेक्ष्यति । विशतु । अविशत् । विशेत् । विश्यात् । अविक्षत् ('शल इगुपधादनि...' इति च्लेः 'क्सः') । अवेक्ष्यत् । इति रूपाणि । ४-एतस्य रूपाणि-मृशति । ममर्श । मर्ष्टा । मर्क्ष्यति । मृशतु । अमृशत् । मृशेत् मृश्यात् । ५-लुङि अमूपक्षे क्सं बाधित्वा 'स्पृश-मृश-कृष-तृप-दृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः' इति वार्तिकेन पाक्षिके सिचि वदव्रजेति वृद्धौ अम्राक्षीत्, अम्राष्टाम्, अम्राक्षुः, अम्राक्षीः, इत्यादि । अमभावपक्षे सिचि च सति अमार्क्षीत्, अमार्ष्टाम्, अमार्क्षुः, अमार्क्षीः, अमार्ष्टम् इत्यादि । ६-पाघ्राध्मेति सीदादेशः । सीदति । ससाद, सेदतुः । सत्ता । सत्स्यति । सीदतु । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । असदत्—(लृदित्वात् 'पुषादि....' इत्यङ्) । असत्स्यत् । ७-शीयते 'सद्ऌ' धातोर्लटि प्रथम-

---

(वा०—मस्ज धातु को अन्त्य से पूर्व नुम् होता है) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६५९—शिद्भावी शद् धातु से आत्मनेपद होता है ।

६६० ऋत इद्धातोः ७ । १ । १०० ।

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । [1]चकरतुः । चकरुः । [2]करीता, करिता । [3]कीर्यात् ।

६६१ किरतौ लवने ६ । १ । १४० ।

उपात् किरतेः सुट् छेदने । उपस्किरति (अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम्) । उपास्किरत् । [4]उपचस्कार ।

६६२ हिंसायां प्रतेश्च ६ । १ । १४१ ।

उपात् प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति । गॄ निगरणे । ४० ।

६६३ अचि विभाषा । ८ । २ । २१ ।

गिरते रेफस्य लोऽजादौ प्रत्यये वा । [5]गिरति, गिलति । जगार, जगाल । जगरिथ, जगलिथ । गरिता, [6]गरीता । गलिता । गलीता । प्रच्छ [7]ज्ञीप्सायाम् । ४१ । (६३४) ग्रहिज्या० इति सम्प्रसारणम् । पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः ।

पुरुषैकवचने लस्य तादेशे 'श'-विकरणे टेरेत्वे 'शद् अ ते' इति स्थिते 'पा घ्रा-ध्मे' ति 'शीय'-आदेशे 'शीयते' इति रूपम् ।

१—'ऋच्छत्यॄताम्'-इत्यनेन गुणः । २—'वॄतो वा' इति वा दीर्घः । ३—कीर्यात्, कीर्यास्ताम्, कीर्यासुः, ('ऋतइद्धातोः' इति 'इर्' 'हलि च' इति दीर्घः) । ४—उपचस्कार—'उप' पूर्वकात् 'कॄ' धातोर्लिटि तिपि णलि, धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इत्यत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इत्यभ्यासस्य श्चुत्वे वृद्धौ 'उपचकार' इति स्थितौ 'किरतौ लवने' इति विधीयमानः सुट् 'अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट्कात् पूर्व इति वक्तव्यम्' इति वार्तिकबलात् ककारात् पूर्वं सुडागमः अनुबन्धलोपे सिध्यति रूपम् 'उपचस्कार' इति । 'ऋत इद्धातोः' इति-'इर्' । ६—वॄतो वा इति वा दीर्घः । ७—ज्ञीप्सा = प्रश्नकरणम् ।

६६०—ऋदन्त धातु के अङ्ग को इत् होता है ।

६६१—उप से परे कृधातु को सुट् होता है छेदन अर्थ में ।
(वा० अट् और अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से पूर्व सुट् होता है ।)

६६२—उप और प्रति से परे कृधातु को सुट् होता है हिंसा अर्थ में ।

६६३—गॄ धातु के रेफ को लकार होता है अजादि प्रत्यय परे रहते विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पप्रच्छुः । [1]प्रष्टा । [2]प्रक्ष्यति । [3]अप्राक्षीत् । मृङ् प्राणत्यागे । ४२ ।

६६४ म्रियतेर्लुङ्-लिङोश्च १ । ३ । ६१ ।

लुङ्-लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् [4]नान्यत्र । [5]रिङ् । इयङ् । [6]म्रियते । ममार । मर्ता । [7]मरिष्यति । मृषीष्ट । [8]अमृत । पृङ् व्यायामे । ४३ । प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् । जुषी प्रीतिसेवनयोः । ४४ । जुषते । [9]जुजुषे । ओविजी भयचलनयोः : । ४५ । प्रायेणायमुत्पूर्वः । [10]उद्विजते ।

६६५ विज इट् १ । २ । २ ।

विजः पर इडादिप्रत्ययो [11]ङिद्वत् । [12]उद्विजिता ।

इति तुदादयः ।

१—'व्रश्च…' इति छस्य षत्वम् । २–व्रश्चेति षत्वे 'षढोः कः सि' इति कः, कषसंयोगे क्षः, प्रक्ष्यति । ३–अप्राक्षीत् ('वदव्रज…' इति वृद्धिः) । अप्राष्टाम्, अप्राक्षुः । अप्राक्षीः, अप्राष्टाम्, अप्राष्ट । इत्यादि । ४–एवं चात्र विवेकः–लट्-लोट्-लङ् विधिलिङ्-आशीर्लिङ् लुङ्क्षु आत्मनेपदम् । लिट् लुट्-लृङ्क्षु परस्मैपदम् तथैवोदाहरणानि मूले । ५–'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' इति 'रिङ्' । 'अचि श्नुधातु…' इति इयङ् । ६–म्रियते–'मृङ्' धातोर्लटि तादेशे टेरेत्वे 'श'–विकरणे 'रिङ् श-यग्लिङ्क्षु' इति रिङादेशे 'अचि-श्नु' रिति इयङि सिध्यति रूपं 'म्रियते' इति । ७–'ऋद्धनोः स्ये:' इति इट् । ८–अमृत ('ह्रस्वादङ्गात्' इति सूत्रेण सिचो लुक्) अमृषाताम्, अमृषत । अमृथाः, अमृषाथाम्, अमृढ्वम् । अमृषि, अमृष्वहि, अमृष्महि । ९–जोषिता । जोषिष्यते । जुषताम्, अजुषत । जुषीत । जोषिषीष्ट । अजोषिष्ट । अजोषिष्यत । इति रूपाणि । १०–विविजे । विजिता । विजिष्यते । विजिताम् । अविजत । विजीत । विजिषीष्ट । अविजिष्ट । अविजिष्यत ११–तेन न लघूपधगुणः । १२–उद्विजिता–उदुपसर्गः 'विज' धातोर्लुटि तिपि तिपो डादेशे मध्ये तासि इटि 'पुगन्ते' ति उपधागुणे प्राप्ते 'विज ईट्' इति ङिद्वत्त्वेन 'क्ङिति चे' ति गुणनिषेधे सिध्यति रूपं 'उद्विजिता' इति ।

इति तुदादयः ।

६६४–मृङ् धातु से आत्मनेपद हो केवल लुङ् लिङ् और शित् परे रहते अन्यत्र नहीं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६६५–विज् से परे इडादि प्रत्यय ङिद्वत् होता है। इति तुदादयः ।

७–अथ रुधादयः

रुधिर् आवरणे । १ ।

६६६ रुधादिभ्यः श्नम् ३ । १ । ७८ ।

शपोऽपवादः । रुणद्धि (५७६) श्नसोरल्लोपः । [1]रुन्धः । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्धः । रुन्ध । रुणध्मि । रुन्ध्वः । रुन्ध्मः । रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । रुरोध, रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति रोत्स्यते । रुणद्धु, रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । [2]रुन्धि । [3]रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । रुन्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम् । रुन्त्स्व । रुणधै । रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत्, अरुणद् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत्, [4]अरुणः । अरुन्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्धत । अरुन्धाः । रुन्ध्यात् । रुन्धीत । रुध्यात्, [5]रुत्सीष्ट [6]अरुधत्, अरौत्सीत्, अरुद्ध । अरुत्साताम् अरुत्सत । अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत । [7]भिदिर विदारणे । २ । [8]छिदिर द्वैधीकरणे । ३ । [9]युजिर योगे । ४ । रिचिर विरेचने । ५ । रिणक्ति, रिङ्क्ते । रिरेच ।

अथ रुधादयः

१—णत्वस्याऽसिद्धत्वादनुस्वारे परसवर्णे च जाते तस्य (परसवर्णेभ्यः) असिद्धत्वान्नस्य णत्वं न । 'झरो झरि' इति विकल्पेन धलोपः रुन्धः । पक्षे–'रुन्द्ध' इति । २—झलन्तत्वाद् 'हुझल्भ्यो...' इति हेर्धिः, हेरपित्त्वेन ङित्त्वात् 'श्नसो—'रिति-अलोपः । ३—रुणधानि—'आडुत्तमस्य पिच्च' इति आडागमः । ४—सिपि 'दश्च' इति रुर्वा । ५—'लिङ्सिचावात्मने....' इति कित्त्वान्न गुणः । ६—इरितो वा इत्यङ्, अरुधत्, अरुधताम्, अरुधन्, इत्यादि । अङभावे अरौत्सीत् (वदव्रजेति वृद्धिः), अरौद्धाम् (झलो झलीति सिचः सलोपः), अरौत्सुः अरौत्सीः, इत्यादि । अरुद्ध (आत्मनेपदे, झलो झलीति सलोपः) । ७—भिनत्ति-भिन्ते । बिभेद । भेत्तासि-भेत्तासे । भेत्स्यति-भेत्स्यते । भिनत्तु-भिन्ताम् । अभिनत्-अभिन्त । भिन्द्यात्, भिन्दीत । भिद्यात्, भित्सीष्ट । अभिदत् अभैत्सीत्, अभित्त । अभेत्स्यत्-अभेत्स्यत । सिद्धिस्तु रुधिवत् । ८—चिच्छेद, चिच्छिदे । अच्छिदत्, अच्छैत्सीत्, इत्यादि । भिदिवत् । ९—लुङि अयुजत्-अयौक्षीत्-अयुक्त ।

अथ रुधादयः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६६६–रुधादिगणपठित धातुओं से श्नम् होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते ।

रेक्ता। रेक्ष्यति। [1]अरिणक्। अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त। विचिर् पृथग्भावे। ३। विनक्ति, [2]विङ्क्ते। क्षुदिर् सम्पेषणे। ७। क्षुणत्ति, क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त। उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। ८। छृणत्ति, छृन्ते, चच्छर्द। (६३०) सेऽसिचीति वेट्। चच्छृत्से, चच्छृदिषे। छर्दिता। छर्दिष्यति, छर्त्स्यति। अच्छृदत्, अच्छर्दीत्। अच्छर्दिष्ट। उतृदिर् हिंसानादरयोः। ९। तृणत्ति। [3]तृन्ते। कृती वेष्टने। १०। [4]कृणत्ति। तृह हिसि हिंसायाम्। ११-१२।

६६७ तृणह इम् ७। ३। ९२।

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति। [5]तृणेढि। [6]तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। [7]अतृणेट्।

६६८ श्नान्नलोपः ६। ४। २३।

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात्। [8]हिनस्ति। जिहिंस। हिंसिता।

१—अरिणक्, अरिङ्क्ताम्, अरिञ्चन्। अरिणक्। अरिङ्क्तम्। अरिङ्क्त। अरिणवम्, अरिञ्च्व, अरिञ्च्म। २—अस्य रिचिवद्रूपाणि। ३—तर्दिता। तर्दिष्यति। लुङि अतृदत् अतर्दीत्, अतर्दिष्ट। ४—कर्तिता। अकर्तीत्। अयं परस्मैपदी। ५—तृन इ ह+ति, गुणे, ऋवर्णान्नस्य णत्वे, तृणेह्+ति' '२५१ होढः' इति हस्य ढत्वे '५४९ झषस्तथोर्धोधः' इति तकारस्य धकारे ष्टुत्वे पूर्वढस्य लोपः तृणेढि। ६—अल्लोपः, अनुस्वारपरसवर्णौ। तृण्ढः तृंहन्ति। तृणेक्षि, तृण्ढः, तृण्ढ। तृणेह्मि, तृंह्वः, तृंह्मः। ७—अतृणेट्—'तृह्' धातोर्लङि तिपि इकारलोपेऽटि शपोऽपवादे 'श्नमि' 'अ तृ न ह् त्' इति जाते 'तृणह इम्' इति इमागमेऽनुबन्धलोपे ऋवर्णान्नस्य णत्वे 'आद्गुणः' इति गुणे 'अतृणेह् त्' इति जाते 'हल्ङ्याब्....' इति तलोपे 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे, ढस्य जश्त्वे चर्त्वेन टत्वे च सिध्यति रूपम् 'अतृणेट्' इति। लङि—अतृणेट् अतृण्ढाम्, अतृंहन्। अतृणेट्। (ड्), अतृण्ढम्, अतृण्ढ। अतृणहम्, अतृंह्व अतृंह्म। वि० लि० तृंह्यात्। आ० लि० तृह्यात्। लु० अतर्हीत्, अतर्हिष्टाम्। अतर्हिष्यत्। ८—हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति। हिंनस्सि, हिंस्थः हिंस्थ। हिनस्मि, हिंस्वः,

---

६६७—तृह धातु से श्नम् करने पर इम् का आगम होता है हलादि पित् परे रहते।
CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection
६६८—श्नम् से परे न् का लोप होता है।

६६९ तिप्यनस्तेः ८ । २ । ७३ ।

पदान्तस्य सस्य दः स्यात् तिपि न त्वस्तेः । (१०५) ससजुषोरुरित्यस्यापवादः । अहिनत्, अहिनद् । अहिंस्ताम् । अहिंसन् ।

६७० सिपि धातो रुर्वा ८ । २ । ७४ ।

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद् वा । पक्षे (६७) 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वम् । [1]अहिनः, अहिनत्, अहिनद् । उन्दी क्लेदने । १३ । उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । [2]उन्दाञ्चकार । औनत् । औन्ताम्, औन्दन् । औनः, औनत् । औनदम् । अञ्जू व्यक्ति-म्रक्षण-कान्ति-गतिषु । १० । अनक्ति । अङ्क्तः अञ्जन्ति । [3]आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्थ । [4]अञ्जिता, अङ्क्ता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् ।

६७१ अञ्जेः सिचि ७ । २ । ७१ ।

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । [5]आञ्जीत् । तञ्चू संकोचने । १५ ।

हिंस्मः । जिहिंस, जिहिंसतुः, जिहिंसुः । जिहिंसिथ, जिहिंसथुः । हिंसिष्यति । हिनस्तु-हिंस्तात्, हिंस्ताम् हिंसन्तु । हिन्धि (हौ श्नमि नुमि कृते 'श्नान्नलोपः' इति नुमोलोपः हेरपित्त्वेन ङित्त्वात् श्नसोरित्यल्लोप इति 'यि चे' ति सलोपे रूपम्) हिंस्तात् हिंस्तम्, हिंस्त । हिनसानि, हिनसाव, हिनसाम । अहिनत् (द), अहिंस्ताम्, अहिंसन्..., अहिनसम्, अहिंस्व, अहिंस्म । हिंस्यात् । (किति इदित्त्वान्नलोपो न) हिंस्यात्, हिंस्यास्ताम् । अहिंसीत् । अहिंसिष्यत् ।

१—अहिनः—'हिसि' धातोर्लङि सिपि 'इदितो नुम् धातोः' इति 'नुमि' अडागमे शपोऽपवादे श्नमि अनुबन्धलोपः 'श्नान्नलोपः' इति श्नमः परस्य नुमः नकारलोपे 'इतश्चे'-ति सिप इकारलोपे सकारलोपे 'अहिन स' इति जाते 'सिपि धातो रुर्वा' इति वैकल्पिके रुत्वे विसर्गे च 'अहिनः' इति रूपम् । रुत्वाभावपक्षे सस्य जश्त्वेन दकारे वा चर्त्वे 'अहिनत्' 'अहिनद्' इति रूपद्वयम् । २-(लुटि) उन्दिता । उन्दिष्यति । उनत्तु, उन्तात् । उन्धि । उनदानि । वि० लि० उन्द्यात् । आ० लि० उद्यात् । लुङि औन्दीत् । औन्दिष्यत् । ३-'तस्मान्नुड्द्विहलः' इति नुट् । ४-उदित्त्वात् वेट् । ५-वदव्रजेति वृद्धिर्न,

---

६६९-पदान्त स् को द् होता है तिप् परे रहते अस् धातु को छोड़ कर ।

६७०-धातु के पदान्त सकार को रु होता है विकल्प से सिप् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६७१-अञ्जि धातु से परे सिच् को नित्य इट् का आगम होता है ।

तनक्ति। तङ्क्ता, तञ्चिता। ओविजी भयचलनयोः। १६। विनक्ति (६६५) विज इडिति ङित्वम्। विविजिथ। विजिता। अविनक्। अविजीत्। शिष्लृ विशेषणे। १७। शिनष्टि। शिंष्टः। शिंषन्ति। शिनक्षि। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। [1]हेर्धिः। [2]शिण्ढि। शिनषाणि। [3]अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। [4]अशिषत्। एवं [5]पिष्लृ संचूर्णने। १८। भञ्जो आमर्दने। १९। (६६८) श्नान्नलोपः। भनक्ति। बभञ्जिथ। [6]बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्। भुज पालनाभ्यवहारयोः। २०। भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। [7]अभुनक्।

६७२ भुजोऽनवने १। ३। ६६।

तङानौ स्तः। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्—महीं [8]भुनक्ति। ञिइन्धी दीप्तौ। २१। इन्धे। इन्धाते। इन्धते। इन्त्से। इन्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धाताम्। इनधै। ऐन्ध। ऐन्धाताम्। [9]ऐन्धाः। विद विचारणे। २२। विन्ते [10]वेत्ता।

इति रुधादयः।

नेटीति निषेधात्, आटा सह तु आटश्चेति वृद्धिः। आञ्जीत् तेन मा भवानञ्जीत्, इति। लृङि आञ्जिष्यत्, आङ्क्ष्यत्।

१—'हुझल्भ्यो हेर्धिः'। २—शिनष्+धि, इति स्थितिः। 'श्नसोरल्लोपः' इति 'अ' लोपे। जश्त्वम्, ष्टुत्वम्। झलो झलीति वा ढलोपः, अनुस्वारपरसवर्णौ शिण्ढि-शिण्ड्ढि। ३—अशिनट्, अशिंष्टाम्, अशिंषन्। अशिनट् (ड), अशिंष्टम्, अशिंष्ट। अशिनषम्, अशिंष्व, अशिंष्म। ४—लृदित्वात् पुषादीत्यङ्। ५—पिनष्टि। पिपेष। पेष्टा। पेक्ष्यति। पिनष्टु। पिण्ढि। अपिनट्। पिंष्यात्। पिष्यात्। अपिषत्। अपेक्ष्यत् ६—क्रादिनियमाद् वेट् (थलि)। ७—अभुनक्, अभुङ्क्ताम्, अभुञ्जन्, इत्यादि। भुञ्ज्यात्। भुज्यात्। अभौक्षीत्, अभौक्ताम्, अभौक्षुः। इत्यादि। ८—पालयतीत्यर्थः। ९—वि० लि० इन्धीत। आ० लि०—इन्धिषीष्ट। ऐन्धिष्ट। लृङि ऐन्धिष्यत्। १०—वेत्स्यते। विन्ताम्। अविन्त। विन्दीत। वित्सीष्ट। अवित्त। अवेत्स्यत।

इति रुधादयः

६७२—पालनभिन्न (खाने) अर्थ में भुज् धातु से तङ् और आन होते हैं। इति रुधादयः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ तनादयः

तनु विस्तारे।

६७३ तनादिकृञ्भ्यः उः ३ । १ । ७९ ।

शपोऽपवादः। [1]तनोति, तनुते। ततान, तेने। तनितासि, तनितासे। तनिष्यति, तनिष्यते। [2]तनोतु, तनुताम्। अतनोत्, अतनुत। तनुयात्, तन्वीत। तन्यात्, तनिषीष्ट। अतनीत्, [3]अतानीत्।

६७४ [4]तनादिभ्यस्तथासोः २ । ४ । ७९ ।

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् त-थासोः। [5]अतत, अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्, अतनिष्यत। षणु दाने।।२। [6]सनोति, सनुते।

१—तनोति—'तन्' धातोर्लटि तिपि 'तनादिकृञ्भ्य उः' इति शपोऽपवादे उप्रत्यये 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणे सिध्यति रूपं 'तनोति' इति। २—सिपि तनु ('उतश्च प्रत्यया'··' हिलोपः), तनुतात्, तुनुतम्, तनुत। तनवानि, तनवाव, तनवाम। ३—'अतो हलादेर्लघोः' इति विकल्पेन वृद्धिः। ४—'थास्—' साहचर्यात् (आत्मनेपदे भवति) प्रथमपुरुषैकवचनः 'त'—शब्दो गृह्यते, नतु 'थ'—स्थानिकः तेनेह न—यूयमतनिष्ट। 'सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणम्' इति नियमात्। ५—अतत—'तन्' धातोः लुङि आत्मनेपदे लस्य तादेशेऽडागमे मध्ये च्लौ सिचि 'अतन् स् त' इति स्थितौ 'तनादिभ्यस्तथासोः' वा सिचो लुकि अनुदात्तोपदेशे 'वनति····' इत्यादिना नकारलोपे रूपम् 'अतत'। सिचो लोपाभावे इटि षत्वे ष्टुत्वे 'अतनिष्ट' इति रूपम्। परस्मैपदे च 'अतो हलादेर्लघो' रिति वा वृद्धौ 'अतानीत्' 'अतनीत्' इति। ६—ससान, सेनतुः, सेनुः,। सेनिथ, सेनथुः। आत्मनेपदे—सेने, सेनाते, सेनिरे। इत्यादि। सनितासि, सनितासे। सनिष्यति, सनिष्यते। सनोतु। सिपि·सनु-सनुताम्। असनोत्, असनुत। वि० लि०-सनुयात्, सन्वीत्। सायात् सन्यात्, सनिषीष्ट।

अथ तनादयः

६७३—तनादिगणपठित धातु तथा कृञ् धातु से उ विकरण होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६७४—तनादि से परे सिच् का विकल्प से लुक् होता है त और थास् परे रहते।

६७५ ये विभाषा ६ । ४ । ४३ ।

जन-सन-खनामात्वं वा यादौ क्ङिति [1]सायात् । सन्यात् । असानीत्, असनीत् ।

६७६ जन-सन-खनां सञ्झलोः ६ । ३ । ४२ ।

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति । [2]असात्, असनिष्ट । असाथाः, असनिष्ठाः । क्षणु हिंसायाम् । ३ । क्षणोति, [3]क्षणुते । (४६६) ह्म्यन्तेति न [4]वृद्धिः । अक्षणीत्, [5]अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः । क्षिणु च । ४ । उप्रत्यये[6] लघूपधस्य गुणो [7]वा । क्षिणोति [8]क्षेणोति । क्षेणिता । अक्षेणीत्, अक्षित, अक्षेणिष्ठ । तृणु अदने । ५ । तृणोति, तर्णोति ।

१—सायात्—'षण' धातोराशीर्लिङि तिपि इकारलोपे 'धात्वादेः षः सः,' इति सत्वे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति णस्य नत्वे यासुटि च 'सन् या स् त्' इति जाते 'स्को.....' रिति सलोपे 'ये विभाषा' इति नस्य वैकल्पिके आत्वे सवर्णदीर्घे 'सायात्' इति आत्वाभावपक्षे 'सन्यात्' इति रूपम् । २—असात—'सन्' (षणु) धातो लुंङि लस्यात्मनेपदे तादेशेऽटि च्लौ, च्लेः सिचि, 'तनादिभ्यस्तथासोः' इति वा सिज्लुकि 'अ सन् त' इति स्थितौ 'जन सन्-खनां सञ्झलोः' इति नकारस्यात्वे सवर्णदीर्घे 'असात्' इति रूपम् । सिज्लुगभावपक्षे 'असनिष्ट' इति रूपम् । परस्मैपदे च 'असानीत्—असनीत्' इति रूपद्वयम् । ३—लिटि—चक्षाण, चक्षणे । क्षणितासि, क्षणितासे । इत्यादि । ४—वदव्रजेति प्राप्ता वृद्धिर्नेटीत्यनेन निषिद्धयते । पुनश्च अतो हलादेर्लघोः, इति विकल्पेन प्राप्ताया वृद्धेः 'ह्म्यन्त...' इति निषेधे इत्यर्थः । ५—तनादिभ्यस्तथासोः इति वा सिचो लुक् । अत्र गणे सर्वत्रापि–इदं सूत्रं प्रवर्तते, इति बोध्यम् । ६—'पुगन्तलघूपधस्य च' इति उपधासंज्ञानिमित्तत्वात्संज्ञापूर्वकोऽयं विधिर्नित्यः' इति न गुण इत्यात्रेयः । ७—संज्ञा पूर्वकस्य भाष्यानुक्तत्वात् भवत्येव गुण इत्यन्ये तथा चोक्तं 'गुणो वा' इति । ८—लिटि-चिक्षेण, चिक्षणतुः, चिक्षणुः । चिक्षेणिथ, चिक्षिणथुः, चिक्षिण । चिक्षिण, चिक्षिणिव, चिक्षिणिम । आत्मनेपदे—चिक्षिणे, चिक्षिणाते, चिक्षिणिरे । चिक्षिणिषे, इत्यादि ।

६७५—जन्, सन्, खन् धातुओं को आत्व होता है यादि कित, ङित् परे रहते ।

६७६—जन्, सन्, खन् धातुओं को आकारान्तादेश होता है सन् परे रहते और झलादि कित् ङित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृणुते, [1]तर्णुते। डुकृञ् करणे। ६। करोति।

६७७ अत उत् सार्वधातुके ६।४।११०।

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति। कुरुतः।

६७८ न [2]भ कुर्छुराम् ।८।२।७९।

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया न दीर्घः। [3]कुर्वन्ति।

६७९ नित्यं करोतेः ६।४।१०८।

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः। कुर्वः। कुर्मः। कुरुते। चकार, चक्रे। कर्तासि, कर्तासे। करिष्यति, [4]करिष्यते। [5]करोतु, कुरुताम्। अकरोत्, अकुरुत।

६८० ये च ६।४।१०९।

१—ततर्ण, ततृणे। तर्णितासि, तर्णितासे। तर्णिष्यति, तर्णिष्यते। तृणोतु, तर्णोतु। तृणुताम्, तर्णुताम्। अतृणोत्, अतर्णोत्, अतृणुत, अतर्णुत। तृणुयात्, तर्णुयात्, तृण्वीत, तर्ण्वीत। तृण्यात्, तर्णिषीष्ट। अतर्णीत् अतर्णिष्ट अतृत। अतर्णिष्यत्, अतर्णिष्यत। २—'हलि च' इति दीर्घः प्राप्तः, तन्निषेधार्थमिदम्। ३—कुर्वन्ति—'कृ' धातोः लटि झौ, झस्य अन्तादेशे 'तनादि कृञ्भ्य उः' इति शपोऽपवादे 'उ' विकरणे 'कृउ अन्ति' इति स्थिते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे 'करु अन्ति' इति जाते ककारगताकारस्य 'अत उत् सार्वधातुके' इत्युत्वे 'कुरु अन्ति' इति दशायाम् 'इको यणचि' इति यणि सिध्यति रूपं 'कुर्वन्ति' इति। (ननु 'हलि चे' ति दीर्घः स्यादिति चेन्न, 'न भकुर्छुराम्, इति तन्निषेधात्।) ४—'ऋद्धनोः स्ये' इति इट्। ५—करोतु-कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु। कुरु-कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत। करवाणि, करवाव, करवाम। आत्मनेपदे—कुरुताम्, कुर्वाताम्, कुर्वताम्। कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुध्वम्। करवै, करवावहै, करवामहै।

६७७—उप्रत्ययान्त कृञ् के अ को उत् होता है सार्वधातुक कित्, ङित् परे रहते।

६७८—भसंज्ञक कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता।

६७९—कृधातु के प्रत्यय के उकार का नित्य लोप होता है वकार, मकार परे रहते।

६८०—कृञ् के उकार का लोप होता है यादि प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कृञ उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये परे। [1]कुर्यात्, कुर्वीत। [2]क्रियात्, [3]कृषीष्ट [4]अकार्षीत्, अकृत। अकरिष्यत् अकरिष्यत।

६८१ सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६। १। १३७।

६८२ समवाये च ६। १। १३८।

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे। संस्करोति = अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति = सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिद् आभूषणेऽपि सुट्। 'संस्कृतं भक्षाः' इति [5]ज्ञापकात्।

६७३ उपात् प्रतियत्न-वैकृत-वाक्याध्याहारेषु च ६। १। १३९।

उपात् कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात् प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो = गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं = विकारः। वाक्याध्याहारः = आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। [6]उपस्कृता कन्या। [7]उपस्कृताः ब्राह्मणाः। एधो[8]दकस्योपस्कुरुते।

१—कुर्यात्—'कृञ्' धातोर्विधिलिङि तिपि इकारलोपे शरोऽपवादे 'उ'-विकरणे यासुटि 'कृ उ या त्' इति स्थितौ 'अत उत् सार्वधातुके' इत्युत्वे रपरत्वे 'कुरुयात्' इति जाते 'ये च' इति विकरणलोपे सिध्यति रूपं 'कुर्यात्' इति (आत्मने पदे 'कुर्वीत' इति। १-'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' इति रिङ्। ३—'उश्च' इति कित्वान्न गुणः। ४—अकार्षीत्—'कृ' धातोर्लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ, च्लेः सिचि तिप ईटि 'अ कृ स् ई त्' इति जाते 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ रपरत्वे सति सस्य षत्वे सिध्यति रूपम् 'अकार्षीत्' इति। अकार्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्षुः। अकार्षीः, इत्यादि। आत्मनेपदे- अकृत- ('तनादिभ्यस्तथासोः' इति सिचो लोपे), लोपाभावेऽपि ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपे 'अकृत' इति। अकृषाताम्, अकृषत। अकृथाः, अकृषाथाम्, अकृढ्वम्। अकृषि, अकृष्वहि, अकृष्महि। ५-तेन 'अन्नं संस्करोति' इत्यादि सिद्धम्। ६-अलङ्कृता, इत्यर्थः। ७-सङ्घीभूता इत्यर्थः। ८-एधः = काष्ठं, दकस्य = जलस्य उपस्कुरुते = गुणान् आधत्ते इत्यर्थः।

६८१-६८२-सम् परि-पूर्वक कृञ् धातु को सुट् होता है भूषण और संघात अर्थ में।
६८३—उप से परे कृञ् धातु को सुट् होता है प्रतियत्न वैकृत और वाक्याध्याहार अर्थ में, चकार से पूर्व कहे गए अर्थों में भी सुट् होता है। इति तनादयः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]उपस्कृतं भुङ्क्ते। [2]उपस्कृतं ब्रूते। वनु याचने। ७। वनुते। [3]ववने। मनु अवबोधने। ८। मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ट। अमनिष्ट। अमत। अमनिष्यत। इति तनादयः।

९—अथ क्र्यादयः

डुक्रीञ् [4]द्रव्यविनिमये। १।

६८४ क्र्यादिभ्यः श्ना ३। १। ८१।

शपोऽपवादः। क्रीणाति (६१८) ई हल्यघोः। क्रीणीतः। (६१९) श्नाभ्यस्तयोरातः। [5]क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्रीणीथः। क्रीणीथ। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे। चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रेथ, चिक्रयिथ। चिक्रीये। क्रेता। क्रेष्यति, क्रेष्यते। क्रीणातु, क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। [6]अक्रीणात्, [7]अक्रीणीत। [8]क्रीणीयात्-क्रीणीत। क्रीयात्, क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्, अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्, अक्रष्यत। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। २। [9]प्रीणाति, प्रीणीते। श्रीञ् पाके। ३। श्रीणाति। श्रीणीते। मीञ् हिंसायाम्। ४।

६८५ हिनु-मीना ८। ४। १५।

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्यैतयो [10]र्नस्य णः स्यात्। प्रमीणाति, प्रमी-

---

१—विकृतमित्यर्थः। २—वाक्याध्याहारपूर्वकं ब्रूते इत्यर्थः। ३-'न शसददवादिगुणानाम्' इति निषेधात् एत्वाभ्यासलोपौ न। लुङि-अवत, अवनिष्ट। इति तनादयः।

४—क्रयणे इत्यर्थः। ५—क्रीणन्ति 'क्रीञ्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने झौ 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्ना विकरणे झेरन्तादेशे 'क्री ना अन्ति' इति स्थितौ 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इत्याकारलोपे नस्य णत्वे सिध्यति रूपं 'क्रीणन्ति' इति। ६—अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन्। अक्रीणाः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत। अक्रीणाम्, अक्राणीव, अक्रीणीम। ७—अक्रीणीत, अक्रीणाताम्, अक्रीणत। अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि। ८—क्रीणीयात्—'क्री' धातोर्विधिलिङि तिपि इकारलोपे 'श्ना' विकरणे यासुटि स लोपे 'क्री ना या त' इति जाते 'ई हल्यघोः' इत्याकारस्य 'ई' त्वे नस्य णत्वे 'क्रीणीयात्' इति रूपम्। ९—पिप्राय, पिप्रये। इत्यादि, क्रीञ्वत्। १०—हिनोतेः—मीनातेश्च।

अथ क्र्यादयः

६८४—क्र्यादि धातुओं से श्ना विकरण होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते।

६८५—उपसर्गस्थनिमित्त र-ष से परे हिनु और मीनाति के न को ण होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

णीते। (६३८) [1]मीनातीत्यात्वम्। [2]ममौ। मिम्यतुः। [3]ममिथ, ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्। मासीष्ट। [4]अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। षिञ् बन्धने। ५। सिनाति, सिनीते। सिषाय, सिष्ये। [5]सेता। स्कुञ् आप्लवने। ६।

६८६ [6]स्तन्भु-स्तुन्भु-स्कन्भु-स्कुन्भु-स्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३। १। ८२।

एभ्यः श्नुप्रत्ययः स्यात् चात् श्ना। स्कुनोति, स्कुनाति। स्कुनुते, स्कुनीते। [7]चुस्काव, चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्, अस्कोष्ट। स्तन्भ्वादयश्चत्वारः [8]सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः।

६८७ हलः श्नः शानज्झौ ३। १। ८३।

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद् हौ परे। [9]स्तभान।

६८८ जॄ-स्तन्भु-म्रुचु-म्लुचु-ग्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-श्विभ्यश्च। ३।१।५८।

१—एतत्सूत्रवृत्तौ—'अशिति—एज्निमित्ते' इत्युक्तत्वात् तिप्-सिप्-मिप्सु (गुणवृद्धि-योग्येषु) अस्य प्रवृत्तिर्नान्यत्र। २—ममौ 'मीञ्' धातोः लिटि तिपि णलि 'मी णल्' इत्यत्र 'मीनाति—मीनोति—दीङां ल्यपि च' इति धातोरात्वे 'मा' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासह्रस्वे 'आत औ णलः' इति णलः औत्वे 'म मा औ' इति जाते वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'ममौ' इति। ३—'आतो लोप इटि च' आकारलोपः। अजन्तत्वात् थलि वेट्, पक्षे ममाथ। ४—आत्वे कृते 'यमरमनमातां सक् च' इति सक्, सिच इट् च। ५—लुङि-असैषीत्, असैष्टाम्, असैपुः। इत्यादि। आत्मनेपदे-असेष्ट, असेषाताम्, असेषत। असेष्ठाः, असेषाथाम्, असेढ्वम्। असेषि, असेष्वहि, असेष्महि। ६—स्तभ्नोति, स्तभ्नाति। तस्तम्भ। स्तम्भिता। स्तम्भिष्यति। स्तभ्नोतु, स्तभ्नातु, स्तभ्नुहि—(उतश्च प्रत्ययादिति सूत्रे असंयोगपूर्वादित्युक्तेर्न हेर्लुक्) अस्तभ्नोत्, अस्तभ्नात्। स्तभ्नुयात्, स्तभ्नीयात्। स्तभ्यात्। अस्तभत्। अस्तम्भीत्। अस्तम्भिष्यत्। प्राय एवं शेषाणां त्रयाणामपि रूपाणि। ७—'शर्पूर्वाः खयः'। ८—सूत्र एव पठिताः, न पुनर्गणे इत्यर्थः। ९—स्तभान—'स्तन्भु' धातोर्लोटि सिपि शपोऽपवादे 'श्ना' विकरणेऽनुबन्धलोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्ह्यादेशे 'स्तम्भ् ना

६८६—स्तन्भु आदि से परे श्नु प्रत्यय होता है और श्ना प्रत्यय भी।

६८७—हल से परे श्ना को शानच आदेश होता है हि परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६८८—जॄ आदि धातुओं से च्लि को अङ् विकल्प से होता है।

च्लेरङ् वा स्यात्।

६८९ स्तन्भेः ८ । ३ । ६७ ।

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। [1]व्यष्टभत्, अस्तम्भीत्। युञ् बन्धने। ७। [2]युनाति, युनीते। योता। क्नूञ् शब्दे। ८। क्नूनाति, [3]क्नूनीते। क्नविता। दृञ् हिंसायाम्। ९। दृणाति, [4]दृणीते। द्रूञ् हिंसायाम्। १०। द्रूणाति, [5]द्रूणीते। पूञ् पवने। ११।

६९० प्वादीनां ह्रस्वः ७ । ३ । ८० ।

पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ॠ गॄ ज्या री ली व्ली प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः। पुनाति, पुनीते। पविता। लूञ् छेदने। १२। लुनाति, लुनीते। स्तॄञ् आच्छादने। १३। स्तृणाति। (६४८) शर्पूर्वाः खयः। तस्तार। [6]तस्तरतुः। तस्तरे। स्तरिता, [7]स्तरीता। स्तृणीयात्, स्तृणीत। [8]स्तीर्यात्।

हि' इति जाते 'हलः श्नः शानज्झौ' इति 'ना' इत्यस्य शानजादेशेऽनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वेन 'अनिदिताम्' इति धातोर्नकारलोपे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि सिध्यति रूपं 'स्तभान' इति।

१—व्यष्टभत्—'स्तन्भ' धातोर्लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे च्लौ सिचं बाधित्वा 'जृ-स्तन्भु....' इत्यादिना वा च्लेरङि 'अ स्तन्भ् अ त्' इति जाते 'अनिदिताम्....' इति न लोपे 'अस्तभत्' इति रूपम्। ततः 'वि'–उपसर्गे च 'स्तन्भे' इति षत्वे ष्टुत्वे यणि 'व्यष्टभत् इति रूपम्। अङभावे च च्लेः सिचि इटि ईटि सिचो लोपे सवर्णदीर्घे नकारस्यानुस्वारे परसवर्णे 'अस्तम्भीत्' इति जातम्। २–लुङि–अयौषीत्, अयौष्टाम्, इत्यादि। आत्मनेपदे–अयुत, अयुषाताम् इत्यादि। ३–चुक्नाव। चुक्नुवे। लुङि–अक्नावीत्, अक्नविष्ट। ४–दर्ता। दरिष्यति, दरिष्यते। लुङि-अदार्षीत्; अदृत। ४–दुद्राव। द्रविता। अद्रावीत्। ६–अत्र गुणः, 'ऋच्छत्यॄताम्' इत्यनेन। ७–'वृतो वा' इति वा दीर्घः। ८–'ॠत इद्धातोः' इति 'इर्' हलि चेति दीर्घः।

६८९—सौत्र स्तम्भ धातु के स को ष होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६९०—पूजादि २४ धातुओं को ह्रस्व होता है शित् परे रहते।

६९१ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७ । २ । ४२ ।

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि ।

६९२ न लिङि ७ । २ । ३९ ।

वॄत इटो लिङि न दीर्घः । [1]स्तरिषीष्ट । (५४४) उश्चेत्यनेन कित्वम् । स्तीर्षीष्ट, (६१६) सिचि च परस्मैपदेषु । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषुः । अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट अस्तीर्ष्ट । कॄञ् हिंसायाम् । १४ । कृणाति, कृणीते । चकार, [2]चकरे । वॄञ् वरणे । १५ । वृणाति, वृणीते । ववार, ववरे । वरिता, वरीता । (६११) उदोष्ठ्येत्युत्वम् । वूर्यात् । वरिषीष्ट, [3]वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । [4]अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवूर्ष्ट । धूञ् कम्पने । १६ । धुनाति, धुनीते । धोता, [5]धविता । [6]अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट । ग्रह [7]उपादाने । १७ । [8]गृह्णाति, गृह्णीते । [9]जग्राह, जगृहे ।

१–स्तरिषीष्ट-स्तीर्षीष्ट–'स्तॄञ्' धातोराशीर्लिङि आत्मनेपदे तादेशे सीयुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'स्तॄ सी त्' इति स्थितौ 'सुट् तिथोः' इति सुटि 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति वा इटि गुणे रपरत्वे 'स्तरि सी स् त' इति जाते 'वॄतो वा' इति विकल्पेन प्राप्तस्य दीर्घस्य 'न लिङि' इति निषेधे द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे च 'स्तरिषीष्ट' इति रूपम् (इडभावपक्षे च 'उश्च' इति कित्वेन गुणाभावे 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'स्तीर्षीष्ट' इति रूपम्)। २–'ॠच्छत्यॄताम्' इति गुणः। ३–वूर्षीष्ट, इडभावपक्षे उश्चेति कित्वम्, 'उदोष्ठ्य' इति 'उर्', हलि चेति दीर्घः। ३–अवरिष्ट–'वॄञ्' धातोर्लुङि आत्मनेपदे तादेशे इटि च्लेः सिचि 'अ वॄ स् त' इति स्थिते 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति वा भवति इट्, इडभावपक्षे 'उदोष्ठ्यपूर्वस्ये' त्युत्वे रपरत्वे 'हलि चे'ति दीर्घे षत्वे ष्टुत्वे च सिध्यति रूपम् 'अवूर्ष्ट' इति। ('इट्' पक्षे च 'अवरिष्ट' 'अवरीष्ट' 'वॄतो वे' ति इटो वा दीर्घो गुणश्च। ५–'स्वरतिसूतिसूयति····' इति वेट्। ६–'स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' इति नित्यमिट्। ७—ग्रहणे इत्यर्थः। ८—सम्प्रसारणम् 'ग्रहिज्या···' इति सूत्रेण। ९—जग्राह—'ग्रह्'

६९१—वृङ्, वृञ् और ॠदन्त से परे लिङ्, सिच् को इट् विकल्प से होता है तङ् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६९२—वृङ्, वृञ् और ॠदन्त के इट् को दीर्घ नहीं होता लिङ् परे रहते ।

६९३ ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७ । २ । ३७ ।

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि ग्रहीता । गृह्णातु । (६८७) हलः श्नः शानज्झौ । [1]गृहाण । गृह्यात् । गृहीषीष्ट । (४६५) ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । कुष निष्कर्षे । १८ । कुष्णाति । कोषिता । अश भोजने । १९ । अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । [2]अशान । मुष स्तेये । २० । मोषिता । [3]मुषाण । [4]ज्ञा अवबोधने । १२ । जज्ञौ । वृङ् संभक्तौ । २२ । वृणीते । वव्रृषे । वव्रृढ्वे । वरिता, वरीता । अवरीष्ट, अवरिष्ट, अवृत ।

इति क्र्यादयः ।

१०—अथ चुरादयः

चुर स्तेये । १ ।

६९४ सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ३ । १ । २५ ।

एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे

धातोः लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'कुहोश्चु' इति जकारे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ सिध्यति रूपं 'जग्राह' इति । (आत्मनेपदे 'जगृहे' इति) ।

१—गृहाण—'ग्रह्' धातोः लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सिपि सेर्ह्यादेशे शपोपवादे 'श्ना' विकरणेऽनुबन्धलोपे तस्य शित्त्वेन सार्वधातुकत्वात् 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वे 'ग्रहि—ज्ये' ति संप्रसारणे पूर्वरूपे च 'हलः श्नः शानज्झौ' इति शानजादेशेऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे 'अतो हे' रिति हेर्लुक् सिध्यति रूपं 'गृहाण' इति । (एवम् अशान—मुषाणेत्यादयः) २—'हलः श्नः शानज्झौ' इति । अशान, लुङि—आशीत् , आशिष्टाम्, आशिषुः इत्यादि । ३—लुङि-अमोषीत् , नेटीति वृद्धिनिषेधः । ४—'ज्ञाजनोर्जा' इति जादेशे जानाति, जानीतः, जानन्ति । इति क्रयादयः ।

६९३—एकाच् ग्रह धातु से विहित इट् को दीर्घ होता है, लिट् परे रहते नहीं ।

इति क्रयादयः ।

अथ चुरादयः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६९४—सत्यापपाशादि और चुरादिगणपठित धातुओं से णिच् होता है स्वार्थ में ।

तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। (४५१) पुगन्तेति गुणः। (४६८) सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्। तिप् शबादि। गुणायादेशौ। [1]चोरयति।

६९५ णिचश्च १। ३। ७४।

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। [2]चोर्यात्। चोरयिषीष्ट (५१८) णिश्रीति चङ्। (५३०) णौ चङीति ह्रस्वः। (५३१) चङीति द्वित्वम्। (३९६) हलादिः शेषः। (५३४) दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः। [3]अचूचुरत्। अचूचुरत। कथ वाक्यप्रबन्धे। २। [4]अल्लोपः।

६९५ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ। १। १। ५७।

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इति [5]स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः। [6]कथयति। अग्लोपित्वा-

---

१—चोरयति—'चुर' धातोः 'सत्यापपाशे'-ति स्वार्थे णिचि 'पुगन्ते' ति गुणे 'चोरि' इत्यस्य 'सनाद्यन्ता धातवः' इति पुनर्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणे अयादेशे सिध्यति रूपं 'चोरयति' इति। २—चोर्यात्—'चुर्' धातोर्णिचि गुणे 'चोरि' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायामाशीर्लिङि तिपि इकारलोपे यासुटि अनुबन्धलोपे 'चोरि यास् त्' इति जाते 'स्को' रिति सकारलोपे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'चोर्यात्' इति रूपम्। ३—अचूचुरत्—'चुर' धातोः स्वार्थे मध्ये च्लौ 'णि श्रि, द्रु-स्रुभ्यः' इति च्लेश्चङि 'णेरनिटि' इति णि लोपे 'अचोर् अ त्' इति स्थितौ 'णौ चङ् युपधायाः' इति उपधाह्रस्वे 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'सन्वल्लघुनि' इति सन्वद्भावे 'दीर्घोलघोः' इत्यभ्यासदीर्घे सिध्यति रूपम् 'अचूचुरत्'। ४—णिचि 'अतो लोपः' इति अन्त्यावयवस्याऽकारस्य लोपः। ५—अल्लोपस्येत्यर्थः। कथयति—अदन्तात् 'कथ' धातोः स्वार्थे णिचि 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' इत्यल्लोपस्य स्थानिवद्भावे 'अतः उपधायाः' इति वृद्ध्यभावे 'कथि' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि गुणेऽयादेशे सिध्यति रूपं 'कथयति' इति।

६९५—णिजन्त धातुओं से आत्मनेपद होता है कर्तृगामी क्रियाफल में।

६९६—पर को निमित्त मान कर होनेवाला जो अच् उसके स्थान में जो आदेश, वह स्थानिवत् होता है स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट को विधि करने में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दीर्घसन्वद्भाव न। [1]अचकथत्। [2]गण संख्याने। ३। गणयति।

६९७ ई च गणः ७। ३। ९७।

गणयतेरभ्यासस्य ईत् स्याच्चङ्-परे णौ चादत्। [3]अजीगणत्। अजगणत्।

इति चुरादयः।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

६९८ स्वतन्त्रः कर्ता १। ४। ५४।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

६९९ तत्प्रयोजको हेतुश्च १। ४। ५५।

कर्तुः [4]प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

७०० हेतुमति च ३। १। २६।

१—अचकथत्—अदन्तात् 'कथ' धातोः स्वार्थे णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवद्भावेनोपधा-वृद्ध्यभावे 'कथि' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लुङि तिपि इकारलोपेऽडागमे च्लौ, च्लेश्चङि 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे श्चुत्वे अग्लोपित्वात् सन्वद्भावात् दीर्घाभावे सिध्यति रूपम् 'अचकथत्' इति। २—अयमपि अग्लोपी। ३—अजीगणत्—अदन्तात् 'गण' धातोः स्वार्थे णिचि अल्लोपेऽस्य स्थानिवद्भावेन वृद्ध्यभावे पुनर्धातुत्वात् लुङि तिपि इकारलोपे अडागमे मध्ये च्लौ, च्लेश्चङि णेर्लोपे 'अगण् अ त्' इति स्थिते 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे श्चुत्वे 'अ ज गण् अत्' इति जातेऽग्लोपित्वेन सन्वद्भावाद् दीर्घाभावे 'ई च गणः' इति वैकल्पिके ईत्वे 'अजीगणत्' इति रूपम् पक्षेऽति 'अजगणत्' इति। इति चुरादयः।

४—प्रेरकः।

६९७—गण धातु के अभ्यास को इकार होता है। चकार से अकार भी होता है चङ् परक णि परे रहते। इति चुरादयः।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

६९८—क्रिया में स्वतन्त्रता से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है।

६९९—कर्त्ता का प्रयोजन हेतु संज्ञक और कर्तृसंज्ञक होता है।

७००—प्रयोजक के व्यापार = प्रेषणा, अन्वेषणा और अध्येषणा आदि के वाच्य होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोजक [1]व्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति [2]भावयति।

७०१ ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०।

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत् स्यात् पवर्ग-यण्-जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। [3]अबीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ।

७१२ अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ ७।३।३६।

[4]स्थापयति।

७०३ तिष्ठतेरित् ७।४।५।

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ् परे णौ। [5]अतिष्ठिपत्। घट चेष्टायाम्।

१—(स्वनिष्ठाधारतानिरूपिताधेयतासम्बन्धेन) हेतुर्यत्रास्ति स हेतुमान् व्यापारः। प्रेषणादिः (अध्येषणानुमत्युपदेशाः) तस्मिन् वाच्ये। १—भावयति—'भू' धातो र्हेतुमति च' इति प्रेरणार्थके णिचि अनुबन्धलोपे वृद्धौ आवादेशे 'भावि' इत्यस्य 'सनाद्यन्ताः धातवः' इति पुनर्धातुसंज्ञायां लिटि तिपि शपि गुणेऽयादेशे सिध्यति रूपं 'भावयति' इति। 'णिचश्च' इति कर्तृगे फले-आत्मनेपदम्। भावयते, भावयेते, भावयन्ते, इत्यादिरपि। इत्थमत्र कर्तृयोजनाप्रकारः—देवदत्तो भवति, भवन्तं तं यज्ञदत्तः प्रेरयति, इति यज्ञदत्तो देवदत्तं भावयति (भावयते वा)। लिडादौ-भावयाञ्चकार, भावयाञ्चक्रे, इत्यादिरूपाणि। ३—भूधातोर्ण्यन्ताल्लुङि अडागमे च्लेश्चङि 'णिचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्त्तव्ये' इति पूर्ववृद्धय भावे 'भू' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासकार्ये (भस्य बत्वे ह्रस्वे च) अबू भू + इ + अ त् इति स्थितौ (परस्य) वृद्धौ आवादेशे 'णौ चङ् युपधाया····' इति ह्रस्वे सन्वद्भावे अभ्यासोकारस्य इत्वे (णिलोपे) 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घे, अबीभवत्। ४—स्थापयति=तिष्ठन्तं प्रेरयति इत्यर्थे 'स्था' धातोर्णिचि आदन्तत्वात् 'अर्ति ह्री' इति पुकि 'स्थापि' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि गुणेऽयादेशे सिध्यति रूपं 'स्थापयति' इति। ५—अ स्थाप् + इ + अ त्' स्थितौ द्वित्वे, 'शर्पूर्वा खयः' इति 'अथास्थाप् + इ + अत्' अभ्यासस्य ह्रस्वे चर्त्वे उपधाह्रस्वे च अभ्यासस्य 'सन्यतः' इतीत्वे, णिलोपे, षत्वे ष्टुत्वे अतिष्ठप् अत् इति स्थिते उपधाया (अकारस्य) ईत्वे, अतिष्ठिपत।

७०१—सन् परे रहते जो अङ्ग उसके अवयव अभ्यास को इकारादेश होता है अवर्ण-परक पवर्ग, यण् जकार परे रहते।

७०२—अर्ति, ह्री आदि धातुओं को पुक् का आगम होता है णि परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७०३—स्था धातु की उपधा को इकार आदेश होता है चङ् परक णि परे रहते।

७०४ [1]मितां ह्रस्वः ६ । ४ । ९२ ।

घटादीनां च उपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ । [2]घटयति । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञपयति, [3]अजिज्ञपत् ।

इति ण्यन्तप्रक्रिया ।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

७०५ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३ । १ । ७ ।

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि ।

७०६ सन्यङोः ६ । १ । ९ ।

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । (५३३) सन्यतः । पठितुमिच्छति [4]पिपठिषति । कर्मणः किम्–[5]गमनेनेच्छति ।

१—घटादयो ज्ञपादयश्च मितः । २—लुङि–'अजीघटत्' । ३–अजिज्ञपत्—'ज्ञप्' धातोः प्रेरणार्थे णिचि वृद्धौ 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'ज्ञपि' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लुङि तिपि इकारलोपेऽटि मध्ये च्लौ 'णि-श्रि-द्रु स्रु-भ्यः' इति च्लेश्चङि 'अ ज्ञप् इ अ त्' इति जाते णिलोपे 'चङि' इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति सूत्रेण इत्वे सिध्यति रूपं 'अजिज्ञपत्' इति ।

४—पिपठिषति—पठितुमिच्छति इति इच्छार्थे 'पठ्' धातोः 'धातोःकर्मणः समान-कर्तृकादिति' सनि इटि 'पठ् इ स' इत्यत्र 'सन्यङोः' इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे अभ्यासस्य 'सन्यतः' इति इत्वे सनः सस्य षत्वे 'पिपठिष' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि पररूपे सिध्यति रूपं 'पिपठिषति' इति । पिपिठिषाञ्चकार । लुङि—अपि-पठिषीत् । ५—नात्र गमनम्–इच्छायाः कर्म ।

---

७०४ घटादि और ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है णि परे रहते ।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

८०५–इच्छा के कर्मीभूत और इच्छा के साथ एक कर्त्तावाले व्यापार के वाचक धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

७०६–सन्नन्त और यङन्त धातुओं के प्रथम एकाच अवयव को द्वित्व होता है, अजादि धातुओं के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'समानकर्तृकात्' किम्–शिष्याः [1]पठन्त्वितीच्छति गुरुः। वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। (५५८) लुङ्सनोर्घस्लृ।

७०७ सस्यार्धधातुके ७। ४। ४९।

सस्य तः स्यात् सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति [2]जिघत्सति। (४७५) एकाच इति नेट्।

७०८ अज्झनगमां सनि ६। ४। १६।

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि।

७०९ इको झल् १। २। ९।

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। (६६०) ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति [3]चिकीर्षति।

७१० सनि ग्रह-गुहोश्च ७। २। १२।

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात्। [4]बुभूषति। इति सन्नन्ताः।

१—पठनकर्त्तारः शिष्याः, इच्छायाः कर्त्ता तु गुरुः। २—जिघत्सति–'अद्' धातोरिच्छायां सनि 'लुङ्सनोर्घस्लृ' इति 'घस्लृ' आदेशोऽनुबन्धलोपे इण्निषेधे द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति श्चुत्वेन घस्य झत्वे चर्त्वेन झस्य जत्वे 'सन्यत' इत्यभ्यासस्य इत्वे 'सस्यार्धधातुके' इति सकारस्य तकारे 'जि घत् स' इत्यस्य 'सनाद्यन्ताः' इति धातुत्वे लटि तिपि शपि सिध्यति रूपं 'जिघत्सति' इति। ३—चिकीर्षति–'कृ' धातोः 'कर्त्तुमिच्छति' इति विग्रहे 'सनि' अनुबन्धलोपे 'एकाच उपदेशे' इति इण् निषेधे 'अज्झनगमां सनि' इति दीर्घे 'इको झल्' इति कित्वाद् गुणाभावे 'ऋत इद्धातोः' इति रपरत्वे 'हलि चे' ति दीर्घे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये सस्य षत्वे 'चिकीर्ष' इत्यस्य धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि सिध्यति रूपं 'चिकीर्षति' इति। ४—बुभूषति–'भू' धातोरिच्छार्थे सनि 'सनि ग्रहगुहोश्च' इति इण् निषेधे 'इको झल्'

७०७–सकार को तकारादेश होता है सादि आर्धधातुक परे रहते।

७०८–अजन्तधातु, हन् और अजादेश गम् धातुको दीर्घ होता है झलादि सन् परे रहते।

७०९–इगन्त धातु से परे झलादि सन् कित् होता है।

७१०—ग्रह गुह् और उगन्त धातु से परे सन् को इट् नहीं होता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति सन्नन्तप्रक्रिया।

अथ यङन्तप्रक्रिया

७११ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३ । १ । २२ ।

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये [1]धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ।

७१२ गुणो यङ्-लुकोः ७ । ४ । ८२ ।

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति—[2]बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट ।

७१३ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ ।

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यात्, न तु क्रियासमभिहारे ।

७१४ दीर्घोऽकितः ७ । ४ । ८३ ।

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङि यङ्लुकि च । कुटिलं व्रजति—[3]वाव्रज्यते ।

इति कित्वाद्गुणाभावे द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासह्रस्वेऽभ्यासभकारस्य बत्वे सस्य षत्वे 'बुभूष' इत्यस्य पुनर्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि सिध्यति रूपं 'बुभूषति' इति ।

इति सन्नन्ताः ।

१–अजादेरनेकाचश्च न यङित्यर्थः । २–बोभूयते–भूधातोः पुनः पुनः अतिशयेन वा भवतीति विग्रहे 'धातोरेकाचो हलादेः' इत्यादिना यङि 'सन्यङो' रिति द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे बत्वे च 'गुणो यङ्लुको' रिति अभ्यासस्य गुणे 'बोभूय' इत्यस्य 'सनाद्यन्ताः' इति धातु संज्ञायां लटि ङित्वादात्मनेपदे लस्य तादेशे शपि पररूपे टेरेत्वे सिध्यति रूपं 'बोभूयते' इति । ३–वाव्रज्यते–'कुटिलं व्रजति' इति विग्रहे 'व्रज' धातोः 'नित्यं कौटिल्ये' इत्यनेन यङि द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'वाव्रज्य' इत्यस्य धातुत्वे लटि तादेशे शपि पररूपे टेरेत्वे 'वाव्रज्यते' इति रूपम् ।

अथ यङन्तप्रक्रिया

७११–पौनःपुन्य और भृशार्थ के द्योत्य होने पर एकाच् हलादि धातु से यङ् होता है ।

७१२–अभ्यास को गुण होता है यङ् परे रहते और यङ्लुक् के विषय में ।

७१३–गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में ही यङ् होता है; क्रियासमभिहार अर्थ में नहीं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७१४–किद्भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् परे रहते और यङ्लुक् के विषय में ।

७७५ यस्य हलः ६ । ४ । ४९ ।

यस्येति सङ्घातग्रहणम् । हलः परस्य यशब्दस्य लोप आर्धधातुके । आदेः परस्य । (४७०) अतो लोपः वाव्रजाञ्चक्रे । [1]वाव्रजिता ।

७७६ रीगृदुपधस्य च । ७ । ४ । ९० ।

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङि यङ्लुकि च । [2]वरीवृत्यते । वरीवृताञ्चक्रे । वरीवृतिता ।

७१७ क्षुभ्नादिषु च ८ । ४ । ३९ ।

णत्वं न । [3]नरीनृत्यते , [4]जरीगृह्यते । इति यङन्तप्रक्रिया ।

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया

७१८ यङोऽचि च २ । ४ । ७४ ।

१–वाव्रजिता-'व्रज' धातोः कौटिल्ये यङि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये दीर्घे च 'वाव्रज्य' इत्यस्य पुनर्धातुत्वे लुटि तप्रत्ययस्य डादेशे मध्ये तासि इटि च 'यस्य हलः' इति यकाराकारस्य लोपे 'वाव्रजिता' इति रूपम् । २–'वृत्' धातुः । ३–नरीनृत्यते–पुनः पुनः अतिशयेन वा नृत्यति इति विग्रहे 'नृत्' धातोः 'धातोरेकाचो' इति यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे उरत्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'ननृत् य' इत्यत्र 'रीगृदुपधस्य च' इत्यभ्यासस्य रीगागमे 'नरीनृत्य' इत्यस्य धातुत्वात् लटो लस्य तादेशे शपि पररूपे एत्वे च 'क्षुम्नादिषु चे' ति णत्वनिषेधे सिध्यति रूपं 'नरीनृत्यते' इति । ४–जरीगृह्यते– पुनः पुनरतिशयेन वा गृह्णाति इति विग्रहे 'ग्रह' धातोर्यङि सम्प्रसारणे 'गृह्' इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासत्वे उरदत्वे हलादिशेषे 'ज गृह्' इत्यत्र 'रीगृदुपधस्य चे' ति अभ्यासस्य

७१५–हल् से परे 'य' का लोप होता है आर्धधातुक परे रहते ।

७१६–ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है यङ् परे रहते और यङ्लुक् के विषय में ।

७१७–क्षुम्नादिगण-पठितों के न को ण नहीं होता है । इति यङन्तप्रक्रिया ।

अथ यङ्लुक्प्रक्रिया

७१८–यङ् प्रत्यय का लुक् होता है अच्प्रत्यय परे रहते । कहीं अच् प्रत्यय के बिना भी लुक् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याच्चाकारात्तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयम् अन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः [1]प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वमभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। (३८०) शेषात्कर्तरीति [2]परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।

७१९ यङो वा ७। ३। ९४।

यङ्लुगन्तात् परस्य हलादेः पितः सर्वधातुकस्येड् वा स्यात्। (४४०) भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। बोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि [3]निपातनात्। [4]बोभवीति, बोभोति। बोभूतः (६०६) अदभ्यस्तात्, बोभुवति। [5]बोभवाञ्चकार, बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु,

---

रीगागमे 'जरीगृह्य' इत्यस्य पुनर्धातुत्वे लटो लस्य तादेशे शपि पररूपे टेरेत्वे च सिध्यति रूपं 'जरीगृह्यते' इति।

इति यङन्तप्रक्रिया

१—'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इत्यनेनेत्यर्थः। २—यङो ङित्त्वमाश्रित्यात्मनेपदं तु न भवति, ङित्त्वस्य प्रत्ययसाधारणत्वेन प्रत्ययलक्षणाप्रवृत्तेः, यत्र हि प्रत्ययस्यासाधारणं रूपमाश्रीयते तत्रैव प्रत्ययलक्षणमिति नियमः। ३–अनेनैव गुणनिषेधे निपातनमिदं 'भवतेश्छन्दस्येव गुणनिषेधो न तु लोके' इति नियमार्थमित्यर्थात्। ४—बोभवीति–भूधातोः पुनः पुनरतिशयेन वा भवतीति विग्रहे 'धातोरेकाच' इति यङि 'यङोऽचि चे' ति द्वित्वात्पूर्वं यङ् लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् द्वित्वेऽभ्यासत्वे भस्य बत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासस्य गुणे 'बो भू' इत्यस्य धातुत्वाल्लटि परस्मैपदे तिपि शपि 'चर्करीतं चे' त्यदादौ पाठाच्छपो लुकि 'यङो वा' इति पाक्षिके ईडागमे 'भूसुवोस्तिङि' इति गुणनिषेधस्य भाषायां यङ्लुकि 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् अप्रवृत्ते, गुणेऽवादेशे सिध्यति रूपं 'बोभवीति' इति। ईडभावपक्षे 'बोभोति' इति रूपम्। ५—बोभवाञ्चकार—भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन पुनर्यङन्तत्वाद् द्वित्वेऽभ्यासत्वे गुणे भस्य बत्वे बोभूव इत्यस्य पुनर्धातुत्वाल्लिटि 'कास्यनेकाचोराम् वक्तव्यो लिटि' इति आमि 'आमः' इति लिटो लुकि कृञोऽनुप्रयोगे लिटो लस्य तिपि णलि

७१९–यङ् लुगन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् विकल्प से होता है।

इति यङ्लुक्प्रक्रिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु । बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभुवुः । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयुः । बोभूयात् । बोभूयास्ताम् । बोभूयासुः (४३९) । गातिस्थेति सिचो लुक् । (७१९) यङो वेतीट्-पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक् । [1]अबोभूवीत्, अबोभोत् अबोभूताम् । अबोभूवुः । अबोभविष्यत् ।

इति यङ्लुगन्ताः

अथ नामधातवः

७२० सुप आत्मनः क्यच् ३ । १ । ८ ।

इषिकर्मण [2]एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात् ।

७२१ सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः २ । ४ । ७१ ।

एतयोरवयवस्य सुपो लुक् ।

७२२ क्यचि च ७ । ४ । ३३ ।

गुणेऽवादेशे 'बोभवाम् कृअ' इति स्थितौ द्वित्वेऽभ्यासे उरदत्वे रपरे हलादिशेषे श्चुत्वे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ मस्यानुस्वारे परसवर्णे च सिध्यति रूपं 'बोभवाञ्चकार' इति ।

१—अबोभूवीत्—भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वेभ्यासकार्ये 'बोभू' इत्यस्य धातुत्वाल्लुङि तिपीकारलोपेऽडागमे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि 'गाति-स्थे'ति सिज्लुकि 'यङो वा' इति ईडागमे 'अ बो भू ई त्' इति स्थितौ प्रकृति ग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणमिति न्यायात् 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः' इति वुगागमे सिध्यति रूपम् 'अबोभूवीत्' इति । इति यङ्लुगन्ताः ।

२—इच्छाकर्तुः ।

अथ नामधातवः

७२०–इष् धातु के कर्म और इच्छा कर्ता के सम्बन्धी के वाचक सुबन्त से इच्छा अर्थ में क्यच् होता है विकल्प से ।

७२१–धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है ।

७२२–अवर्ण को ईकारादेश होता है क्यच् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अवर्णस्य ईः। आत्मनः पुत्रमिच्छति [1]पुत्रीयति।

७२३ नः क्ये १। ४। १५।

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत्। [2]नलोपः। [3]राजीयति। नान्तमेवेति किम्—[4]वाच्यति (६१२) हलि च। [5]गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव। नेह—दिवमिच्छति। [6]दिव्यति।

७२४ क्यस्य विभाषा ६। ४। ५०।

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके। आदेः[7] परस्य। अतो लोपः। [8]तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न। [9]समिधिता, समिध्यिता।

७२५ काम्यच्च ३। १। ६।

१–पुत्रीयति–'पुत्रमात्मन इच्छति' इति विग्रहे 'पुत्र अम्' इति सुबन्तात् 'सुप आत्मनः क्यच्' इति क्यचि अनुबन्धलोपे 'पुत्र अम् य' इत्यस्य 'सनाद्यन्ताः' इति धातुत्वे 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इति अमो लुकि 'क्यचिच' इति ईत्वे 'पुत्रीय' इत्यस्माल् लटि तिपि शपि पररूपे सिध्यति रूपं 'पुत्रीयति' इति। पुत्रीयाञ्चकार, पुत्रीयिता। लुङि–अपुत्रीयीत्। २–'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इत्यनेन। ३–राजीयति–'राजानमात्मन इच्छति' इति विग्रहे 'राजन्' शब्दात् द्वितीयान्तात् क्यचि सुपो लुकि 'नः क्ये' इति पदत्वेन 'नलोपः' इत्यादिना नलोपे 'क्यचि चे' ति ईत्वे 'राजीय' इत्यस्माद् धातुत्वाल्लटि तिपि शपि पररूपे सिध्यति रूपं 'राजीयति' इति। ४–अन्यथाऽत्र चोः कुरिति कुत्वं, 'झलां जलोऽन्ते' इति जश्त्वं च स्यात्। ५–गीर्यति–गिरमात्मन इच्छतीति विग्रहे द्वितीयान्तात् 'गिर्' शब्दात् क्यचि सुपो लुकि 'हलि चे' ति दीर्घे 'गीर्य' इत्यस्य धातुत्वात् लटि तिपि शपि पररूपं सिध्यति 'रूपं गीर्यति' इति। ६–नात्र दिव धातुः, किन्तु सुबन्तम्। तेन नात्र हलि चेति दीर्घः। ७–इति 'य्'–मात्रस्य लोपः, ततोऽवशिष्टस्य 'अ' इत्यस्य 'अतो लोपः' इत्यनेन लोपः। ८–अल्लोपस्य। ९–समिधिता–समिधमात्मन इच्छतीति विग्रहे द्वितीयान्तात् 'समिध' शब्दात्

७२३–क्यच् और क्यङ् परे रहते नान्त की ही पद संज्ञा होती है अन्य की नहीं।

७२४–हल् से परे क्यच् और क्यङ्का लोप होता है विकल्प से आर्धधातुक परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७२५–उक्त विषय में काम्यच् प्रत्यय होता है।

उक्तविषये [1]काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति-पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता।

७२६ उपमानादाचारे ३।१।१०।

उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्। पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति छात्रम्। [2]विष्णूयति द्विजम्। (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः [3]क्विब्वा वक्तव्यः)। (२७४) अतो गुणे। कृष्ण इव आचरति कृष्णति। [4]स्व इवाचरति स्वति। [5]सस्वौ।

७२७ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६।४।१५।

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति = [6]इदामति। राजेव = राजानति। पन्था इव = पथीनति।

क्यचि सुपो लुकि 'नः क्ये' इति नान्तस्येव पदत्वनियमेनात्र पदत्वाभावाद् जश्त्वाभावे 'समिध्य' इत्यस्माल् लुटि तिपि तस्य डादेशे तासि इटि 'समिध्यइता' इत्यत्र 'क्यस्य विभाषा' इति यलोपे 'अतो लोपः' इति अल्लोपे 'अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वात् लघूपधगुणाभावे सिध्यति रूपं' 'समिधिता' इति।

१–उच्चारणसामर्थ्यात्कस्य नेत्वम्। २–विष्णुमिवाचरति। अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घः। ३–अयं क्विप् आचारेऽर्थे, कर्त्तरि उपमानवाचकाद् भवति। ४–कृष्णति–कृष्ण इव आचरतीति विग्रहे प्रथमान्तात् कृष्णशब्दात् 'सर्वप्रातिपादिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः' इति क्विपि सुपो लुकि क्विपश्चापि सर्वापहरे 'कृष्ण' इत्यस्य धातुत्वे लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे पररूपे सिध्यति रूप' 'कृष्णति' इति। ५-णलि 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ 'आत औ णल' इति औत्वम् ६ इदामति–इदमिवाचरतीति विग्रहे प्रथमान्तादिदम्-शब्दात् 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः' इत्यादिना क्विपि सुपो लुकि क्विपश्चापि सर्वापहारे 'इदम्' इत्यस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि 'अनुनासिकस्य क्विझलोः' इत्युपधादीर्घे सिध्यति रूपम् 'इदामति' इति। एवं 'राजानति' 'पथीनती' त्यादयः।

७२६–उपमानवाचक कर्मसंज्ञक सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच् होता है।

(वा०-प्रातिपदिक मात्र से क्विप होता है विकल्प से आचार अर्थ में।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६२७–अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ होता है क्वि और झलादि कित् ङित् परे रहते।

७२८ कष्टाय क्रमणे ३ । १ । १४ ।

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्। कष्टाय क्रमते = [1]कष्टायते। पापं कर्तुमुत्सहते, इत्यर्थः।

७२६ शब्द वैर-कलहाभ्र-कण्व-मेघेभ्यः करणे ३ । १ । १७ ।

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। शब्दं करोति = [2]शब्दायते। तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्। (प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च)=प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य [3]पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्र-स्थ-स्फाद्यादेश-भसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः। [4]इस्यलोपः घटं करोत्याचष्टे वा [5]घटयति।

इति नामधातवः

१–कष्टम् = पापम्। कष्टायते–चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दात् 'कष्टाय क्रमणे' इति क्यङि सुपो लुकि 'अकृत्सार्वधातुकयो' रिति दीर्घे 'सनाद्यन्ताः' इति 'कष्टाय' इत्यस्य धातुत्वे ङित्त्वादात्मनेपदे लटि तादेशे शपि टेरेत्वे पररूपे च सिध्यति रूपं 'कष्टायते' इति।
२–शब्दायते–'शब्दं करोति' इति विग्रहे द्वितीयान्तात् 'शब्द'–शब्दात् करोत्यर्थे 'शब्दवैरकलहाभ्र' इत्यादिना क्यङि प्रत्यये सुपो लुकि 'अकृत् सार्वधातुकयो'-रिति दीर्घे 'शब्दाय' इत्यस्मात् लटि तादेशे शपि टेरेत्वे पररूपे सिध्यति रूपं 'शब्दायते'।
३–पुवद्भावो यथा–पट्वीमाचष्टे पटयति, (भस्याऽढे तद्धिते, इत्यनेन)। रभावो यथा–दृढं करोति द्रढयति। टिलोपो यथा–पटुमाचष्टे पटयति। विनो लुग् यथा–स्रग्विणम् आचष्टे स्रजयति। मतुपो लुग्यथा–श्रीमन्तं करोति श्राययति। यणादिपरलोपो यथा–स्थूलमाचष्टे स्थवयति, प्रादेशो यथा–प्रियमाचष्टे प्रापयति। स्थादेशो यथा–स्थिरं करोति स्थापयति। स्फादेशो यथा–स्फिरमाचष्टे स्फापयति! भसंज्ञा यथा–पट्वीमाचष्टे पटयति। ४–टिसंज्ञकस्य-अकारस्य लोपः। ५–घटयति–'घटं करोत्याचष्टे' वेति विग्रहे द्वितीयान्ताद् 'घट' शब्दात् 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इति णिचि इष्ठवद्भावे च सुपो लुकि इष्ठवद्भावाट्टिलोपेऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाद् उपधावृद्ध्यभावे 'घटि' इत्यस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि गुणेऽयादेशे सिध्यति रूपं 'घटयतो' ति।

इति नामधातुप्रकरणम्।

७२८–चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् होता है।
CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७२६–कर्मवाचक शब्द-वैरादि शब्दों से क्यङ् होता है करोति अर्थ में।

अथ कण्ड्वादयः

७३० कण्ड्वादिभ्यो यक् ३ । १ । २७ ।

एभ्यो [1]धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे । [2]कण्डूञ् गात्रविघर्षणे ।१।
[3]कण्डूयति, कण्डूयते । इत्यादि । इति कण्डवादयः ।

अथात्मनेपदप्रक्रिया

७३१ कर्तरि कर्मव्यतिहारे १ । ३ । १४ ।

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम् । [4]व्यतिलुनीते = अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः ।

१–धातुग्रहणं प्रातिपदिकनिवृत्य र्म-द्विविधा हि कण्ड्वादयो धातवः, प्रातिपदिकानि च, तत्र धातुभ्य एव स्यादित्यर्थः । यकः कित्वेन धातवः (कण्ड्वादयः) इति ज्ञायते । कण्डूञ् इति दीर्घपाठेन प्रातिपदिकान्यपीति, यदि तु धातव एव स्युस्तर्हि ह्रस्वान्ते पठितेऽपि यकि परे 'अकृत्सार्वधातुकयोः' इति दीर्घेण 'कण्डूयते' इति सिद्धेः किं दीर्घपाठेन । २–ञित्वादुभयपदी । ३–कण्डूयति–'कण्डूञ्' धातोः 'कण्ड्वादिभ्यो-यक्' इति यकि 'कण्डूय' इत्यस्य पुनर्धातुत्वे लटि तिपि शपि सिध्यति रूपं 'कण्डूयति' आत्मनेपदे 'कण्डूयते' इति । ४–व्यतिलुनीते-व्यतिपूर्वकात् 'लूञ्' धातोः ञित्वादुभयपदे प्राप्ते 'कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे' इति 'अन्यस्य योग्यं लवनं करोति' इत्यर्थे आत्मनेपदमेव आत्मनेपदे च लटस्तादेशे शपोऽपवादे 'श्ना' विकरणे 'ई हल्यघो' रिति अकारस्य ईत्वे सिध्यति रूपं 'व्यतिलुनीते' इति ।

(वा०–(१) करोति और आचष्टे अर्थ में णिच् होता है । (२) प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् होता है बहुलता से वह इष्ठवत् होता है ।)

इति नामधातवः ।

अथकण्ड्वादयः

७३०–कण्ड्वादिगणपठित धातुओं से नित्य यक् होता है स्वार्थ में । इति कण्ड्वादयः ।

अथ आत्मनेपदक्रिया

७३१–क्रिया का विनिमय (अदलावदली) द्योत्य हो तो धातु से आत्मनेपद होता है कर्ता में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७३२ न [1]गतिहिंसार्थेभ्यः १ । ३ । १५ ।

व्यतिगच्छन्ति । [2]व्यतिघ्नन्ति ।

७३३ नेर्विशः १ । ३ । १७ ।

[3]निविशते ।

७३४ [4]परिव्यवेभ्यः क्रियः १ । ३ । १८ ।

परिक्रीणीते । [5]विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

७३५ वि-पराभ्यां जेः १ । ३ । १९ ।

[6]विजयते । पराजयते ।

७३६ समव-प्र-विभ्यः [7]स्थः १ । ३ । २२ ।

[8]सन्तिष्ठते । [9]अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ।

१–गत्यर्थेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः पूर्वसूत्रप्राप्तम् आत्मनेपदं न स्यादित्यर्थः । २–**व्यतिघ्नन्ति**–'व्यति' पूर्वकाद् 'हन्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषबहुवचने 'अन्यस्य योग्यं हननं करोती' त्यर्थे 'कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे' इत्यात्मनेपदे प्राप्ते 'न गतिहिंसार्थेभ्यः' इति तन्निषेधे परस्मैपदमेव । ३–**निविशते**–'नि' पूर्वकाद् 'विश्' धातोः 'नेर्विशः' इत्यात्मनेपदनियमे 'निविशते' इत्येव रूपम् । ४–'परि–वि अव'–इत्येतदुपसर्गपूर्वस्य क्रीणातेः—आत्मनेपदमित्यर्थः–सूत्रस्य । ५–**विक्रीणीते**–विपूर्वकात् 'क्रीञ्' धातोः ञित्वादुभयपदे प्राप्ते 'परिव्यवेभ्यः क्रियः' इत्यात्मनेपदनियमे 'विक्रीणीते' इत्येव रूपम् । ६–**विजयते**–विपूर्वकात् 'जि' धातोः सामान्यतः शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते 'वि–पराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम् । ७–स्थः = 'ष्ठा' (गतिनिवृत्तौ) इति धातोः 'सम्, अव, प्र, वि' इत्येतदुपसर्गपूर्वकादात्मनेपदमित्यर्थः । ८—**सन्तिष्ठते** । सन्तस्थे । संस्थाता । संस्थास्यते । सन्तिष्ठताम् । समतिष्ठत । सन्तिष्ठेत । संस्थासीष्ट । समस्थित ('स्थाघ्वोरिच्च' 'ह्रस्वादङ्गात्' इति सिचो लुक्) । समस्थास्यत । (इति रूपाणि) । ९–**अवतिष्ठते**–'अव 'पूर्व-

---

७३२–कर्मव्यतिहार अर्थमें गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से आत्मनेपद नहीं होता ।

७३३–नि उपसर्गपूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद होता है ।

७३४–परि-वि-अवपूर्वक क्रीञ् धातु से आत्मनेपद होता है ।

७३५–वि और परापूर्वक जि धातु से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७३६–सम्-अव-प्र-विपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता है ।

७३७ [1]अपह्नवे ज्ञः १ । ३ । ४४ ।

शतमपजानीते[2] = अपलपतीत्यर्थः ।

७३८ अकर्मकाच्च १ । ३ । ४५ ।

सर्पिषो जानीते = सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः ।

७३९ उदश्चरः सकर्मकात् १ । ३ । ५३ ।

[3]धर्ममुच्चरते = उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ।

७४० [4]समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ ।

[5]रथेन सञ्चरते ।

७४१ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १ । ३ । ५५ ।

संपूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं [6]स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । [7]दास्या [8]संयच्छते कामी ।

कात् 'स्था' धातोः सामान्यतः शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते 'समव-प्र-विभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदे 'अवतिष्ठते' इति रूपम् ।

१–अपह्नवे = अपलापे, गोपने इति यावत् । २—अपजानीते–'अप्' पूर्वकात् 'ज्ञा' धातोः स्वरितेतः उभयपदे प्राप्ते 'अपह् नवे ज्ञः' इति सूत्रेणापलापेऽर्थे आत्मनेपदमेवेति 'शतमपजानीते' इत्येव । ३–लिटि उच्चेरे । लुङि उदचरिष्ट । ४–संपूर्वकात् चरधातोः तृतीयान्तेन योगे आत्मनेपदमित्यर्थः । ५–रथेन सञ्चरते–तृतीयान्तयुक्तात्–'सम्' पूर्वकात् 'चर्' धातोः स्वरितेतः उभयपदे प्राप्ते 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदनियमे 'रथेन सञ्चरते' इत्येव । ६–आत्मनेपदम् । ७—'दास्या संयच्छते कामी'–अत्र 'दास्या' इति 'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' इति वार्तिकेन चतुर्थ्यर्थे तृतीयास्ति । तथाच 'दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे' इति सूत्रेण 'संयच्छते' इत्यात्मनेपदम् । ८- पाघ्राध्मेति दाणो 'यच्छ' आदेशः ।

७३७–छिपाने अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है ।

७३८–अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है ।

७३९–उत्पूर्वक सकर्मक चर् धातु से आत्मनेपद होता है ।

७४०–तृतीयान्त से युक्त संपूर्वक चर् धातु से आत्मनेपद होता है ।

७४१–तृतीयान्त से युक्त सम-पूर्वक दाण धातु से आत्मनेपद होता है यदि तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७४२ पूर्ववत् सनः १ । ३ । ६२ ।

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । [1]एदिधिषते।

७४३ हलन्ताच्च १ । २ । १० ।

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् । [2]निविविक्षते ।

७४४ गन्धनावक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु [3]कृञः १ । ३ । ३२ ।

गन्धनं = सूचनम् । [4]उत्कुरुते = सूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं = भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते = भर्त्सयतीत्यर्थः हरिमुपकुरुते = सेवत इत्यर्थः । परदारान् प्रकुरुते = तेषु सहसा प्रवर्तते । [5]एधोदकस्योपस्कुरुते=गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते = कथयतीत्यर्थः । शतं प्रकुरुते = धर्मार्थं विनियुङ्क्ते । एषु

१-एदिधिषते-'एध्' धातोः सन्नन्ताद् द्वित्वेऽभ्यासत्वे जश्त्वे षत्वे 'एदिधिष' इत्यस्य धातुत्वे लटि 'पूर्ववत् सनः' इत्यनेन सनः प्रकृते 'एध' धातोरात्मनेपदित्वात् सन्नन्तादपि तस्मादात्मनेपदमेवेति लटि तादेशे शपि पररूपे टेरेत्वे 'एदिधिषते' । २-निविविक्षते-नि-विश् धातुः, सनः कित्वान्नोपधागुणः शस्य षत्वे (षढोः कः सि-इति षस्य कत्वे परस्य षत्वे क्षः) । 'निर्विशः' इति शुद्धादात्मनेपदम् , सन्नन्ताच्च 'पूर्ववत्सनः' इति सूत्रेण । ३-एषु अर्थेषु कृञ आत्मनेपदमेवेत्यर्थः । ४-उत्कुरुते उत् पूर्वकात् 'कृञ' धातोः ञित्वादुभयपदे प्राप्ते 'गन्धनावक्षेपण' इत्यादिना सूत्रेण गन्धने= सूचनेऽर्थे आत्मनेपदनियमः । ५-एधोदकस्योपस्कुरुते-एधश्च दकं च एधोदकम् (एधः = इन्धनम्, दकं = जलम्) तस्य एधोदकस्य उपस्कुरुते = ('उपात्प्रतियत्न' इति सुट् 'कृञः प्रतियत्ने' इति षष्ठी) = गुणमाधत्ते इत्यर्थः । अत्र एधशब्दोऽदन्तो निपातितः । 'उपस्कुरुते' इत्यत्र गुणाधानेऽर्थे 'गन्धनावक्षेपण' इत्यनेनात्मनेपदम् । एधस्य=काष्ठस्य शोषणादि गुणाधानम् । दकस्य=जलस्य तु गन्धद्रव्यसम्पर्क-जनित-गन्धाधानम् ।

७४२-सन् से पूर्व धातु के तुल्य सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है ।

७४३-इक्समीप हल् से परे झलादि सन् कित् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७४४-गन्धनादि अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद होता है। इत्यात्मनेपदिनः ।

किम्—कटं करोति। (६७२) भुजोऽनवने। ओदनं [1]भुङ्क्ते। अनवने किम्—महीं [2]भुनक्ति। इत्यात्मनेपदप्रक्रिया।

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

७४५ अनुपराभ्यां कृञः १। ३। ७६।

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च [3]परस्मैपदं स्यात् [4]अनुकरोति। पराकरोति।

७४६ अभि-प्रत्यतिभ्यः क्षिपः १। ३। ८०।

क्षिप प्रेरणे। स्वरितेत्। [5]अभिक्षिपति।

७४७ प्राद्वहः १। ३। ८१।

प्रवहति।

७४८ परेर्मृषः १। ३। ८२।

परिमृष्यति।

७४९ व्याङ्परिभ्यो रमः १। ३। ८३।

रमु क्रीडायाम्। [6]विरमति।

१–भुङ्क्ते=भक्षयति। २–पालयतीत्यर्थः। इत्यात्मनेपदप्रक्रिया।

३–परस्मैपदमित्यनुवर्त्तते। ४–अनुकरोति–'कृञ्' धातोः ञित्वादुभयपदे प्राप्ते 'अनुपराभ्यां कृञः' इति परस्मैपदनियमः। ५–अभिक्षिपति–'क्षिप्' धातुः स्वरितेत् तस्मादुभयपदप्राप्तौ 'अभि–प्रत्यतिभ्यः क्षिपः' इति परस्मैपदम्। ६–विरमति 'रम्' धातुरनुदात्तेत्, ततः आत्मनेपदे प्राप्ते 'व्याङ्–परिभ्यो रमः इति परस्मैपदं तद्बाधकं विधीयते।

अथ परस्मैपदिनः

७४५–क्रिया का फल यदि कर्ता को प्राप्त होता हो और गन्धादि अर्थ द्योत्य हों वो अनु और परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से परस्मैपद होता है।

७४६–अभि-प्रति-अतिपूर्वक क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है।

७४७–परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

७४८-परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

७४९-वि-आङ्-परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७५० उपाच्च १ । ३ । ८४ ।

यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।

इति पदव्यवस्था ।

अथ भावकर्मप्रक्रिया

७५१ भावकर्मणोः १ । ३ । १३ ।

भावे कर्मणि च धातोः लस्यात्मनेपदम् ।

७५२ सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ ।

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । भावः = क्रिया । सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन [1]द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, [2]किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः । त्वया मया [3]अन्यैश्च [4]भूयते । बभूवे ।

७५३ स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६ । ४ । ६२ ।

तेन 'वि' पूर्वकाद् रमेः 'विरमति' इत्येव । लुङि = व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, इत्यादि यमरमेति इट् सकौ ।

इति परस्मैपदप्रकरणम् ।

१—द्रव्य एव सङ्ख्याद्यन्वयो नाऽद्रव्ये । २—स्वभावत एकवचनं, न सङ्ख्यापेक्षीत्यर्थः । ३—कर्त्तुरनभिहितत्वात्तृतीया । ४—भूयते इत्यत्र 'लः कर्मणि च...' इति भावे लकारः । भूयते—'भू' धातोः भावेऽर्थे लटि 'भावकर्मणो' रित्यात्मनेपदे लटस्तादेशे 'सार्वधातुके यक्' इति यकि टेरेत्वे यकः कित्वाद् गुणाभावे सिध्यति रूपं 'भूयते' इति । 'अनुभूयते आनन्दः' इत्यत्र कर्मणि लकारः । पूर्वत्र कर्ताऽनुक्तः, उत्तरत्रापि । कर्म (आनन्दः) उक्तम् । एतद्विषये विशेषस्तु 'लः कर्मणि' इति सूत्रविवृतौ द्रष्टव्यः ।

७५०—उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है । इति परस्मैपदप्रक्रिया ।

अथ भावकर्मप्रक्रिया

७५१—भाव और कर्म में धातु के लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है ।

७५२—धातु से यक् प्रत्यय होता है भावकर्मवाची सार्वधातुक परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७५३—उपदेश में जो अच्, तदन्त जो धातु और हन्-ग्रह-दृश्-धातु, इनको

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिण्वदङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च । चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट् । चिण्वद्भावाद् वृद्धिः । [1]भाविता, भविता । भाविष्यते, भविष्यते, । भूयताम् । अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट, भविषीष्ट, ।

७५४ चिण् भावकर्मणोः ३ । १ । ६६ ।

च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे [2]अभावि । अभाविष्यत, अभविष्यत । [3]अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः । अनुभूयते [4]आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम् । णिलोपः–[5]भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । चिण्वदिट् । भाविता । [6]आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः । भावयिता । भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम् । अभावयिषाताम् । [7]बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषि-

---

१—भाविता–'भू' धातोर्भावे लुटि आत्मनेपदे लुटस्तकारे तासि डादेशे टेर्लोपे 'स्य-सिच् इत्यादिना वा चिण्वद्भावे इटि च वृद्धौ आवादेशे 'भाविता' इति चिण्वद्भावाभावपक्षे 'भविता' इति रूपम् । २—अभावि–,भू धातोर्भावे लुङि आत्मनेपदे लुङस्तकारेऽटि च मध्ये च्लौ, च्लेश्च 'चिण् भावकर्मणो' रिति चिणि 'चिणो लुक्' इति तलोपे वृद्धौ आवादेशे सिध्यति रूपम् 'अभावि' इति । ३—अर्थभेदात्, तथा चोक्तम्—

'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते । प्रहाराऽऽहार-संहार-विहार-परिहारवत्' ।

४—कर्मण उक्तत्वात् प्रथमा । ५—ण्यन्तस्य 'भू' धातोः कर्मणि प्रत्यये एतानि रूपाणि । 'णेरनिटि' इति णिलोपः । ६—चिण्वदिटः–आभीयत्वात् 'णेरनिटि' इति सूत्रदृष्ट्याऽसिद्धत्वात् सत्यपि–इटि, णिलोप इत्यर्थः । ७—सन्नन्तस्य 'भू' धातोः भावे रूपाणि ।

चिण् के समान अङ्गकार्य विकल्प से होता है; स्य-सिच्-सीयुट् और तास् परे रहते, भाव और कर्म की गम्यमानता में; साथ ही स्यादियों को इडागम भी होता है ।

७५४–च्लि के स्थान पर चिण् होता है भावकर्मवाची तशब्द परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ष्यते। [1]बोभूय्यते। [2]बोभूयते। (४८३) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः। [3]स्तूयते विष्णुः। स्ताविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते। [4]अस्तावि। अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्। ऋ गतौ। (४९८) 'गुणोर्ति' इति गुणः। [5]अर्यते। स्मृ स्मरणे। स्मर्यते। सस्मरे। [6]उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता, अर्ता। [7]स्मारिता, स्मर्ता। (३३४) अनिदितामिति नलोपः। स्रस्यते। इदितस्तु नन्द्यते। [8]सम्प्रसारणम्। [9]इज्यते।

७५५ तनोतेर्यकि ६।४।४४।

आकारान्तादेशो वा स्यात्। तायते, तन्यते।

७५६ तपोऽनुतापे च ६।१।६५।

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च। [10]अन्वतप्त पापेन।

१—यङन्तस्य भावे रूपम्। २—इदं यङ्लुगन्तस्य। ३—स्तूयते—'स्तु' धातोः कर्मणि लटि आत्मनेपदे लटस्तकारे 'सार्वधातुके यक्'—इति यकि 'अकृत्—सार्वधातुकयो'-रिति दीर्घे टेरेत्वे 'स्तूयते' इति रूपम्। ४—अस्तावि—'स्तु' धातोः कर्मणि लुङि आत्मनेपदे लुङस्तादेशेऽटि मध्ये च्लौ च्लेश्चिणि 'चिणो लुक्' इति तलोपे वृद्धौ आवादेशे 'अस्तावि' इति रूपम् ५—अर्यते—'ऋ' धातोः कर्मणि लटि आत्मनेपदे लटस्तादेशे 'सार्वधातुके यक्' इति यकि 'गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः' इति गुणे रपरत्वे च सिध्यति रूपम् 'अर्यते' इति। लिटि-आरे। ६—'स्यसिच्....' इति सूत्रे उपदेशेऽजन्तग्रहणात्साम्प्रतम् 'अर्' इत्यत्राऽऽजन्तत्वाभावेऽपि भवति 'चिण्वदिट्'। ७—स्मारिता—'स्मृ' धातोः कर्मणि लुटि आत्मनेपदे लुटस्तादेशे तासि तकारस्य डादेशे तासः टिलोपे 'चिण्वदिटि' 'अचोञ्णिती' ति वृद्धौ रपरत्वे 'स्मारिता' 'इति। पक्षे 'स्मर्ता' इति। ८—'वचिस्वपियजा..' इत्यनेन सम्प्रसारणम्। ९—इज्यते—'यज्' धातोः कर्मणि लटि आत्मनेपदे लटस्तादेशे यकि टेरेत्वे 'वचिस्वपी' ति सम्प्रसारणे सिध्यति रूपम् 'इज्यते' इति। १०—अन्वतप्त पापेन—अत्र पापेनेति कर्त्तरि तृतीया 'पुंसा' इति विशेष्यम्। अनुपूर्वकस्य तपः शोकोऽर्थः। 'पापेन पुंसा अशोचि' इति वाक्यार्थः। तथाचैवं सिद्धिः 'अनु' पूर्वकात

७५५—तन् धातु को आकार अन्तादेश होता है विकल्प से यक् परे रहते।

७५६—तप् धातु को च्लि को चिण् आदेश नहीं होता कर्म कर्ता में अनुताप अर्थ की गम्यमानता में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

(५८८) घुमास्थेतीत्वम्। [1]दीयते। धीयते। ददे।

७५७ आतो युक् चिण्-कृतोः ७। ३। ३३।

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। दायिता, दाता। दायिषीष्ट, दासीष्ट। अदायि [2]अदायिषाताम्। भज्यते।

७५८ भञ्जेश्च चिणि ६। ४। ३३।

नलोपो वा स्यात्। [3]अभाजि, अभञ्जि। लभ्यते।

७५९ विभाषा चिण्णमुलोः ७। १। ६९।

लभेर्नुमागमो वा स्यात् [4]अलम्भि, अलाभि। इति भावकर्मप्रक्रिया।

'तप् धातोः भावे लुङि तादेशेऽटि यणि च्लौ 'चिण् भावकर्मणो' रिति च्लेश्चिणि प्राप्ते 'तपोऽनुतापे चे'ति तन्निषेधे, च्लेः सिचि, 'झलो झलि' इति सिचः सस्य लोपे सिध्यति रूपम् 'अन्वतप्त' इति। (अथवा 'अनु' पूर्वकस्य तपेः अभिहननमर्थः। तेन सकर्मकत्वात् कर्मणि लकारः। पापं कर्तृ तेनाभिहतः पुरुष इति)।

१-दीयते-'दा' धातोः कर्मणि लटि तादेशे यकि 'घुमास्थे' ति ईत्वे टेरेत्वे सिध्यति रूपं 'दीयते' इति। २-चिण्वदिडभावपक्षे-अदिषाताम्, इत्यादि। ३-अभाजि-'भञ्ज्' धातोः कर्मणि लुङि आत्मनेपदे तादेशेऽटि मध्ये च्लौ 'चिण्भावकर्मणो' रिति च्लेश्चिणि 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'भञ्जेश्च चिणि' इति वैकल्पिके नकारलोपे 'अत उपधाया' इति वृद्धौ 'अभाजि' इति रूपम्। नलोपाभावपक्षे 'अभञ्जि' इति। ४-अलम्भि-'लभ' धातोः कर्मणि आत्मनेपदे लुङि तादेशेऽटि च्लौ 'चिण् भावकर्मणो' रिति च्लेश्चिणि 'अ लभ इ त' इति स्थितौ 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'विभाषा चिण् णमुलोः' इति वा नुमि अनुबन्धलोपे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च 'अलम्भि' इति रूपं, नुमभावे उपधावृद्धौ 'अलाम्भ' इति रूपम्।

इति भावकर्मप्रक्रिया।

७५७-आदन्त धातुओं को युक् का आगम होता है चिण्, णित्, कृत् परे रहते।

७५८-भञ्ज् धातु के न का लोप होता है विकल्प से चिण् परे रहते।

७५९-लभ् धातु को नुम् का आगम होता है विकल्प से चिण् और णमुल् परे रहते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति भावकर्मप्रक्रिया।

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन [1]विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः।

७६० कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३ । १ । ८७ ।

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। [2]तेन यगात्मनेपदचिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। [3]भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे तु भिद्यते काष्ठेन। इति कर्मकर्तृप्रक्रिया।

अथ लकारार्थप्रक्रिया

७६१ अभिज्ञावचने लृट् ३ । २ । ११२ ।

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। वस निवासे। [4]स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। एवं बुध्यसे, चेतयसे इत्यादिप्रयोगेऽपि।

१—सौकर्यातिशयं द्योतयितुं प्रसिद्धकर्तृव्यापारकस्याऽविवक्षिततया कर्मणः स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात्तस्य (कर्मणः) कर्तृत्वविवक्षा भवतीति भावः। २—यथा कर्मणि (लकारे) यगादयस्तथाऽत्रापीत्यर्थः। ३—भिद्यते काष्ठम्—'देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति देवदत्तस्य कर्तृत्वाविवक्षायां कर्मणः काष्ठस्यैव कर्तृत्वविवक्षायां 'भिद्' धातोः कर्तरि लटि 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' इति कर्मवद्भावाद् 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे लस्य तादेशे टेरेत्वे यकि च सिध्यति रूपं 'भिद्यते काष्ठम्' इति। 'देवदत्तः किं काष्ठं भिनत्ति काष्ठं स्वयमेव भिद्यते' इत्यर्थः। एवं 'पच्यते फलम्' इत्यत्रापि देवदत्तः किं फलं पचति फलं स्वयमेव पच्यते इत्यर्थः। इति कर्मकर्तृप्रक्रिया।

४—स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। 'वस्' धातोः भूतानद्यतने लङि प्राप्ते 'अभिज्ञावचने लृट्' इति तदपवादे लृटि उत्तमपुरुषे बहुवचने लस्य मसादेशे मध्ये

अथ कर्मकर्तृप्रतिक्रिया

७६०—कर्मस्था क्रिया के साथ तुल्य क्रियावाला कर्ता कर्मवत् होता है।

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया।

अथ लकारार्थप्रक्रिया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७६१—स्मृतिबोधक उपपद रहते अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् होता है।

७६२ न यदि ३ । २ । ११३ ।

यद्योगे उक्तं न । अभिजानासि कृष्ण । यद्वने अभुञ्ज्महि ।

७६३ लट् स्मे ३ । २ । ११८ ।

[1]लिटोऽपवादः । [2]यजति स्म युधिष्ठिरः ।

७६४ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा ३ । ३ । १३१ ।

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः । [3]कदाऽऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि; अयमागमं वा । कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ।

७६५ [4]हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३ । ३ । १५६ ।

स्यप्रत्यये 'सस्यार्धधातुके' इति वसः सकारस्य तकारे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे मसः सकारस्य रुत्वे विसर्गे च 'वत्स्यामः' इति रूपम् ।

१—'परोक्षे लिट्' इत्यस्यापवादः । २—यजति स्म युधिष्ठिरः-'यज्' धातोः परोक्षभूतानद्यतनेऽर्थे लिटि प्राप्ते 'लट् स्मे' इति स्मयोगे लटि तिपि 'यजति स्म' इति रूपम् । ३—कदाऽऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि । अत्र आङ् पूर्वकाद् 'गम्' धातोः भूते लुङि प्राप्ते—तं बाधित्वा 'वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद् वा' इति वैकल्पिके वर्त्तमानवद्भावे लटि उत्तमपुरुषैकवचने मिपि शपि छत्वे तुकि श्चुत्वे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे 'आगच्छामि' इति रूपम् । (वर्त्तमानवद्भावाभावपक्षे 'अयमागमम्' इति रूपम्) ४—कार्यकारणभावे द्योत्ये लिङ् इत्यर्थः ।

७६२—स्मृति बोधक उपपद रहते यत् शब्द के योग में धातु से लृट् लकार नहीं होता ।

७६३—स्म के योग में लिट् के विषय में धातु से लट् लकार होता है ।

७६४—'वर्तमाने' के अधिकार में जिस प्रकृति से जो प्रत्यय कहे गये हैं वे सब उसी प्रकृति से वर्तमानसमीप-भूत और भविष्यत् अर्थ में भी विकल्प से होते हैं ।

७६५—हेतु-हेतुमद्भाव (कारण-कार्यभाव) अर्थ में वर्तमान धातु से भविष्यत् अर्थ में लिङ् होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति लकारार्थेन तिङन्तं समाप्तम् ।

वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह–हन्तीति पलायते। (४२५) विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः=प्रेरणं = भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्, यजेत। निमन्त्रणं=नियोगकरणमावश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्, इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं = कामचाराऽनुज्ञा, इहासीत। अधीष्टः=सत्कारपूर्वको व्यापारः, पुत्रमध्यापयेद्भवान्। सम्प्रश्नः=सम्प्रधारणम्, किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थनं=याच्ञा, भो भोजनं लभेय। एवं लोट्। इति लकारार्थप्रक्रिया।

इति तिङन्तम्।

अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया

७६६ धातोः ३।१।९१।

आतृतीयाध्यायसमाप्ति ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। (३०२) कृदतिङिति कृत्संज्ञा।

७६७ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ७।१।९४।

अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना[1]।

१–तेन 'अचो यत्' 'ऋहलोर्ण्यत्' इत्याद्यपवादविषये उत्सर्गाः (सामान्याः) तव्यदादयोऽपि प्रवर्तन्ते, भव्यम्-भवितव्यम्, कार्यम्–कर्त्तव्यम्। वाच्यम्-वक्तव्यमित्यादि। न समानं रूपं यस्य सोऽसरूपः (असारूप्ये एवायं वैकल्पिको बाधः।) सरूपस्तूत्सर्गस्य नित्यं बाधको भवति यथा–'कर्मण्यण्' इत्युत्सर्गस्य 'आतोनुपसर्गे कः' इत्यपवादो नित्यं बाधकः–गोदः, कम्बलदः, (अण् (अ) क (अ) इत्युभौ हि सरूपौ)। स्त्र्यधिकारे नेयं परिभाषा (सूत्रं) प्रवर्तते, तेन 'स्त्रियां क्तिन्' इत्युत्सर्गस्य 'अप्रत्ययात्' इत्यपवादो नित्यं बाधकः–चिकीर्षा, जिहीर्षा।

कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया

७६६–'धातोः' सूत्र से लेकर तृतीयाध्यायसमाप्ति पर्यन्त तव्यादि प्रत्यय धातु से परे होते हैं।

७६७–'धातोः' इस सूत्र के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प से होता है 'स्त्रियाम्' इस अधिकार को छोड़कर।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७६८ कृत्याः ७ । १ । ९५ ।

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ।

७६९ कर्तरि कृत् ३ । ४ । ६७ ।

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् । इति प्राप्ते ।

७७० तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः ३ । ४ । ७० ।

एतो भावकर्मणोरेव स्युः ।

७१ [1]तव्यत्तव्यानीयरः ३ । २ । ९६ ।

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । [2]एधितव्यम् , एधनीयं त्वया, भावे-औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वञ्च । [3]चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया । (केलिमर उपसंख्यानम्) पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः । [4]कर्मणि प्रत्ययः ।

७७२ कृत्यलुटो बहुलम् ३ । ३ । ११३ ।

[5]क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति । १ ।

१–तव्यत्, तव्यः, अनीयर् इति प्रत्ययत्रयम् , तव्यत्तव्ययोः 'तित्स्वरितम्' इति स्वरे भेदः । किञ्च 'पूरणगुण' इति सूत्रे तव्यप्रत्ययान्तस्य समासनिषेधः—यथा-ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् ; तव्यत्–प्रत्ययान्तस्य तु भवत्येव समासो यथा-स्वकर्तव्यम् । २–एधितव्यम्–'एध' धातोः 'तयोरेव कृत्यक्त–खलर्थाः' इति नियमेन 'तव्यत्तव्यानीयरः' इति भावे तव्यप्रत्ययः 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि 'एधितव्य' इत्यस्य 'कृत्तद्धित-समासाश्च' इति प्रातिपदिकत्वे सौ, भावे औत्सर्गिकक्लीबत्वेन सोरमि पूर्वरूपे सिध्यति रूपम् 'एधितव्यम्' इति । ३–कर्मणि प्रत्ययः । ४–केचित्कर्मकर्तरीति वदन्ति । ५–क्वचित्प्रवृत्तिः, अप्राप्तस्यापीति शेषः, यथा–स्नानीयं चूर्णम् इत्यत्र करणेऽप्राप्तस्यापि

७६८-'ण्वुल्तृचौ' सूत्र से पूर्व प्रत्यय-की कृत्यसंज्ञा होती है ।

७६९–कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्ता में होता है ।

७७०–कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं ।

७७१ धातु से तव्यत् , तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy. Kathmandu Collection

(वा०–धातु से केलिमर् प्रत्यय होता है) ।

७७२–कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुलता से होते हैं ।

स्नात्यनेनेति [1]स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै [2]दानीयो विप्रः।

७७३ अचो यत् ३।१।९७।

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। [3]चेयम्।

७७४ ईद्यति ६।४।६५।

यति परे आत ईत् स्यात् [4]देयम्। [5]ग्लेयम्।

७७५ पोरदुपधात् ३।१।९८।

पवर्गान्तादुपधाद्यत् स्यात्। [6]ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। [7]लभ्यम्।

७७६ एति-स्तु-शास्वृ-दृ-जुषः क्यप् ३।१।१०९।

एभ्यः क्यप् स्यात्।

७७७ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।४।३४।

अनीयर् प्रत्ययस्य प्रवृत्तिः। क्वचिदप्रवृत्तिः, प्राप्तस्यापीति शेषः, यथा = अग्रसरः, इत्यत्र पूर्वपदस्यैदन्तत्वाप्रवृत्तिर्बाहुलकात्। क्वचिद् विभाषा = विकल्पः, यथा—'मघवा बहुलम्' इति विकल्पः। क्वचिदन्यदेव = (विकल्पप्राप्तस्यापि) नित्यत्वादिकम्, यथा—उन्मत्तगङ्गम् इत्यत्र नित्यममूभावः। तृतीयासप्तम्योर्बहुलमिति बहुलग्रहणात्।

१—'स्ना' धातोः करणे 'अनीयर्'। २—सम्प्रदाने प्रत्ययः। ३—'सार्वधातुकार्धधा....' इति गुणः। ४—**देयम्**—'दा' धातोः 'अचो यत्' इति 'यत्' प्रत्यये 'ईद्यति' इत्याकारस्य ईत्वे गुणे कृते कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात् क्लीबे प्रथमैकवचने 'देयम्' इति। ५—**ग्लेयम्**—'ग्लै' धातोः 'अचोयत्' इति यति 'आदेच उपदेशेऽशिति' इत्यात्वे 'ईद्यति' इतीत्वे गुणे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वे नपुंसके सोरमि पूर्वरूपे 'ग्लेयम्' इति सिध्यति। ६—'ऋहलोर्ण्यत्' इत्यस्यापवादः। ७—**लभ्यम्**—लब्धुं योग्यं लभ्यम्। लभ् धातोः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति प्राप्ते 'पोरदुपधाद्' इति तदपवादे यति अनुबन्धलोपे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वे सोरमि पूर्वरूपे सिध्यति रूपं 'लभ्यम्' इति।

७७३—अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है।

७७४—यत् प्रत्यय परे रहते आदन्त धातु के आ को ई होता है।

७७५—अदुपध पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय होता है।

७७६—इणादि धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७७७—ह्रस्व को तुगागम होता है पित् कृत् प्रत्यय परे रहते।

[1]इत्यः । स्तुत्यः । शासु—अनुशिष्टौ ।

७७८ शास इदङ्हलोः ६ । ४ । ३४ ।

शास उपधाया इत् स्यादङि हलादौ क्ङिति । [2]शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । [3]जुष्यः ।

७७९ मृजेर्विभाषा ३ । १ । ११३ ।

मृजेः क्यब्वा । मृज्यः ।

७८० ऋहलोर्ण्यत् ३ । १ । १२४ ।

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् । कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ।

७८१ चजोः कु घिण्यतोः ७ । ३ । ५२ ।

चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे ।

७८२ मृजेर्वृद्धिः ७ । २ । ११४ ।

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः । [4]मार्ग्यः ।

इत्यः—स्तुत्यः—'इण्' धातोः 'स्तु' धातो श्च 'एति स्तु-शास्' इत्यादिना 'क्य' प्रत्यये ह्रस्वस्य-पिति किति-तुक्' इति तुगागमे प्रातिपदिकत्वेन सौ रुत्वे विसर्गे च 'इत्यः = स्तुत्यः' इति रूपद्वयम् । २—शिष्यः—'शास्' धातोः कर्मणि 'एति-स्तु-शास्' इत्यादिना क्यपि 'शास इदंहलोः' इत्युपधाया ईत्वे 'शासि-वसि-घसीनां चे' ति षत्वे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये (शासितुं योग्यः) 'शिष्य' इति रूपम् । ३—'जुषी' प्रीतिसेवनयोः । ४—मृज्यः—मार्गः—'मृज्' धातोः 'मृजेर्विभाषा' इति वैकल्पिके क्यपि कित्वाद् गुणाभावे विभक्तिकार्ये 'मृज्यः' इति । क्यपोऽभावपक्षे च 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति 'चजोः कु घिण्यतोः' इति जस्य कुत्वे 'मृजेर्वृद्धिः' इति वृद्धौ कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात् विभक्तिकार्ये (मार्जितुं योग्यः) मृज्यः मार्ग्यो वा ।

७७८—शास् धातु की उपधा को ईकार आदेश होता है अङ् परे रहते और कित् , ङित् परे रहते ।

७७९—मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

७८०—ऋवर्णान्त और हलन्त धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है ।

७८१—जकार और चकार को कुत्व होता है घित् और ण्यत् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७८२—मृज् धातु के इक् को वृद्धि होती है सार्वधातुक और आर्धधातुक परे रहते ।

७८३ भोज्यं भक्ष्ये ७ । ३ । ६९ ।

भोग्यमन्यत् । इति कृत्यप्रक्रिया ।

अथ पूर्वकृदन्तम्

७८४ ण्वुल्-तृचौ ३ । १ । १३३ ।

धातोरेतौ स्तः । (७६९) कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

७८५ युवोरनाकौ ७ । १ । १ ।

यु वु एतयोरनाकौ स्तः । [2]कारकः । कर्ता ।

७८६ नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ । १ । १३४ ।

नन्द्यादेर्ल्युः; ग्रह्यादेर्णिनिः; पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति[3] नन्दनः ।

कित्त्वाद् गुणाभावे विभक्तिकार्ये 'मृज्यः' इति । क्यपोऽभावपक्षे च 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति 'च्जोः कु घिण्यतोः' इति जस्य कुत्वे 'मृजेर्वृद्धिः' इति वृद्धौ कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकत्वाद् विभक्तिकार्ये (मार्जितुं योग्यः) मृज्यः मार्ग्यो वा ।

१–भोज्यम्–भोक्तुं योग्यं भोज्यम् । 'भुज्' धातोः 'ऋ-हलोर्ण्यत्' इति 'ण्यत्' प्रत्यये उपधागुणे भक्ष्यार्थे 'भोज्यं भक्ष्ये' इति कुत्वाभावनिपातनेन 'चजोः कु घिण्यतो' रित्यस्याप्रवृत्तौ विभक्तिकार्ये 'भोज्यम्' इति रूपम् । (भक्ष्यादन्यत्र भोगयोग्ये वस्तुनि वाच्ये तु 'भोग्यम्' इति ।) इति कृत्यप्रक्रिया ।

२–कारकः–करोतीति कारकः । 'कृ' धातोः 'ण्वुल्-तृचौ' इति सूत्रेण कर्त्तरि 'ण्वुल्' अनुबन्धलोपे 'वु' इत्यस्य 'युवोरनाकौ' इत्यनेन 'अक्' आदेशे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ विभक्तिकार्ये 'कारकः' इति रूपम् । ३–नन्दनः–'टुनदि' धातोः 'टु' इत्यस्य इकारस्य च लोपे णिजन्ताद् 'इदितो नुम् धातोः' इति 'नुम्' सहितात् 'नन्दि' इत्यस्मात् कर्त्तरि 'नन्दि-ग्रहिपचादिभ्यः' इति सूत्रेण 'नन्द्यादेर्ल्यु' रिति 'ल्यु' प्रत्यये लकारस्येत्संज्ञायां लोपे 'यु' इत्यस्यानादेशे णिलोपे विभक्तिकार्ये 'नन्दनः' इति ।

७८३–भक्ष्यार्थ में 'भोज्यम्' ऐसा निपातन होता है । इति-कृत्यप्रक्रिया ।

अथ पूर्वकृदन्तम्

७८४–धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं ।

७८५–यु और वु को अन और अक आदेश होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७८६–नन्द्यादि से ल्यु, ग्रह्यादि से णिनि और पचादि से अच् प्रत्यय होते हैं ।

जनमर्दयतीति जनार्दनः। [1]लवणः। [2]ग्राही। स्थायी। मन्त्री। [3]पचादिराकृतिगणः।

७८७ इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः कः ३।१।१३५।

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। [4]ज्ञः। [5]प्रियः। [6]किरः।

७८८ आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६।

प्रज्ञः। सुग्लः।

७८९ गेहे कः ७।१।१४४।

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। [8]गृहम्।

७९० कर्मण्यण् ३।२।१।

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः[9]।

१–नन्द्यादिगणे निपातनाण्णत्वम्। २–ग्राही–'ग्रह' धातोः 'नन्दि-ग्रहि' इत्यादिना सूत्रेण 'ग्रह्यादेर्णिनिः' इति णिनिप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'इन्' इति शिष्यते। उपधावृद्धौ 'ग्राहिन्' शब्दात् कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकात् सौ सुलोपे उपधादीर्घे नलोपे च सिध्यति रूपं 'ग्राही' इति। ३–पचः। नदः (ट्)। चोरः (ट्)। इत्यादि, (अत्र टित्त्वं ङीबर्थं गणे निपात्यते, तेन स्त्रियां नदी, चोरी, देवी)। ४–'आतो लोप इटि च' इत्यालोपः। ५–'अचि श्नु....' इति इयङ्। ६–'ऋत इद् धातोः' इति 'इर्'। ७–उपसर्गसहिताद् धातोः कः प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। ८–अयम् अर्धर्चादित्वादुभयलिङ्गः, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। परं पुंल्लिङ्गस्तु बहुवचनान्त एव 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः। गृहम्–'ग्रह्' धातोः गेहे कर्त्तरि 'गेहे कः' इति 'क' प्रत्यये 'ग्रहि-ज्या' इत्यादिना सम्प्रसारणे पूर्वरूपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'गृहम्' इति। ९—कुम्भकारः—कुम्भोपपदात् 'कृ' धातोः 'कर्मण्यण्' इति 'अण्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे वृद्धौ 'कर्तृकर्मणोः कृती' ति कर्मणि षष्ठयां 'कुम्भ-अस् कार' इत्यलौकिकविग्रहे 'उपपदमतिङ्' इति समासे सुब्लुकि प्रातिपदिकत्वात् विभक्तिकार्ये 'कुम्भकारः' इतिरूपम्।

७८७–इगुपध धातु और ज्ञा-प्री-कृ धातु से क-प्रत्यय होता है।

७८८–उपसर्ग पूर्वक आदन्त धातु से कप्रत्यय होता है।

७८९–ग्रहधातु से क-प्रत्यय होता है यदि गेह कर्ता हो।

७९०–कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

७९१ आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ ।

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। आतो लोपः। गोदः। [1]धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्-गोसंदायः[2]। (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। [3]कुध्रः।

७९२ चरेष्टः ३ । २ । १६ ।

अधिकरणे उपपदे। [4]कुरुचरः।

७९३ भिक्षा-सेनाऽऽदायेषु च । ३ । २ । १७ ।

भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति [5]ल्यबन्तम्। आदायचरः।

७९४ कृञो हेतु-ताच्छील्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० ।

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्।

७९५ अतः कृ-कमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६।

आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु

१–धनदः–'धनं ददाति' इति विग्रहे 'कर्मणि अण्' इत्यणि प्राप्ते तं बाधित्वा 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्यये 'आतो लोप इटि च' इत्यालोपे विभक्तिकार्ये 'धनदः' इति। २–'कर्मण्यण्' इति 'अण्' प्रत्ययः 'आतो युक् चिण्' इति युक्। ३–धृञः कप्रत्यये 'यण्' कुध्रः=पर्वतः। ४–स्त्रियां 'टिड्ढाणञ्....' इति ङीप् (टित्वात्) कुरुचरी। ४–ल्यप्-प्रत्ययान्तम्।

७९१–उपसर्गभिन्न कर्म उपपद रहते आदन्त धातु से क-प्रत्यय होता है।

७९२–अधिकरण उपपद रहते चर् धातु से ट-प्रत्यय होता है।

७९३–भिक्षा, सेना और आदाय कर्म उपपद रहते चर् धातु से ट-प्रत्यय होता है।

७९४–हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ द्योत्य होने पर कृधातु से ट-प्रत्यय होता है।

७९५–अवर्ण से उत्तर अव्ययभिन्न विसर्ग को नित्य सकारादेश होता है समास में कृ-कमि आदि परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परेषु। [1]यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः।

७९६ एजेः खश् ३ । २ । २८।

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्।

७९७ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ।

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य। शित्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति [2]जनमेजयः।

७९८ प्रियवशे वदः खच् ३ । २ । ३८।

[4]प्रियंवदः। वशंवदः।

७९९ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३ । २ । ७५।

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः।

८०० नेड् वशि कृति ७ । २ । ८।

१–यशस्करी–यशः करोति विग्रहे 'कृ' धातोः 'कृञो हेतु-ताच्छील्यानुलोम्येषु' इति प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे गुणे 'यशः कर' इति स्थिते 'अतः कृ-कमि' इत्यादिना विसर्गस्य सत्वे स्त्रीत्वे 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीपि 'यस्येतिचे' त्यकारलोपे विभक्तिकार्ये 'यशस्करी' इति रूपम्। २–जनमेजयः–णिजन्ताद् 'एज्' धातोः 'एजेः खश्' इति खश् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे खशः शित्वात् सार्वधातुकत्वे शपि गुणेऽयादेशे कर्मणि षष्ठ्यां 'जन+अस् एजय' इत्यलौकिकविग्रहे उपपदसमासे सुपो लुकि 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमि विभक्तिकार्ये रूपं 'जनमेजयः' इति। ३–प्रियपूर्वाद् वशपूर्वाच्च 'वद्' धातोः 'खच्' स्यादिति सूत्रार्थः। ४–प्रियंवदः–प्रियं वदतीति विग्रहे 'प्रियवशे वदः खच्' इति 'खच्'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे कर्मषष्ठ्यां सुबुत्पत्तेः प्रागेव समासे सुपो लुकि 'अरुर्द्विष' इत्यादिना मुमि अनुस्वारे विभक्तिकार्ये 'प्रियंवदः' इति रूपम्।

७९६–ण्यन्त एज धातु से खश् प्रत्यय होता है।

७९७–अरुष्, द्विषत् और अजन्त को मुम् होता है खिदन्त परे रहते अव्यय को छोड़कर।

७९८–प्रिय और वश उपपद रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है।

७९९–मनिन्, क्वनिप्, वनिप और विच प्रत्यय धातु से होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८००–वशादि कृत् को इट् का आगम नहीं होता।

वशादेः कृतः इण् न स्यात्। शृ हिंसायाम्। सुशर्मा। [1]प्रातरित्वा।

८०१ विड्-वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१।

अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात्। विजायत इति [2]विजावा। ओणृ अपनयने। [3]अवावा। विच्-रुष्-रिष् हिंसायाम्। [4]रोट्, रेट्, सुगण्।

८७२ क्विप् च ३।२।७६।

अयमपि दृश्यते। [5]उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

८०२ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८।

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। [6]उष्णभोजी।

८०४ मनः ३।२।८२।

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

८०५ आत्ममाने खश् च ३।२।८३।

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्। चाण्णिनिः। पण्डित-मात्मानं मन्यते [7]पण्डितंमन्यः। पण्डितमानी।

१—प्रातः पूर्वकाद् 'इण् धातोः' 'क्वनिप्' प्रत्यये लुकि रूपम्। प्रातरेति-इति 'प्रातरित्वा' इति विग्रहः। प्रातरित्वन्शब्दस्य यज्वन्-शब्दवत् रूपाणि। २—वि-जन्+वनिप्, नस्याऽऽत्वे रूपम्। ३—ओण्+वनिप्, णस्यात्वे ओकारस्याऽवादेशे रूपम्। ४—रुष-रिष्धातोः विच् प्रत्यये पुगन्तेति गुणे रूपम्। ५—क्रमेण स्रंस-ध्वंस्-भ्रंश्-धातवः 'अनिदितां...' इति नलोपः। 'वसु—स्रंसु—ध्वंसु...' इति दत्वे चर्त्वम्। 'वाहभ्रट्' इत्यत्र तु 'व्रश्चभ्रस्ज....' इति शस्य षत्वे जश्त्वम् (डत्वम्), चर्त्वम्। ६—उष्णं भुङ्क्ते तच्छील उष्णभोजी—'उष्ण' पूर्वकाद् 'भुज्' धातोस्ताच्छील्येऽर्थे 'सुप्यजातौ' इति सूत्रेण णिनि प्रत्यये लघूपधगुणे उपपदसमासे कृदन्तत्वेन प्रातिपादिकत्वाद् विभक्तिकार्ये 'उष्णभोजी' इति। ७—'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुम्।

८०१—अनुनासिक के स्थान में आकारादेश होता है विट्, वन् प्रत्यय परे रहते।

८०२—धातु से क्विप् प्रत्यय होता है।

८०३—जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है। ताच्छील्य द्योत्य रहते।

८०४—सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

८०५—स्वकर्मक मनन में वर्तमान मन् धातु से खश् प्रत्यय होता है सुबन्त उपपद रहते। चकार से णिनि प्रत्यय भी होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८०६ खित्यनव्ययस्य ६ । ३ । ६६ ।

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः नत्वव्ययस्य । ततो मुम् । [1]कालिंमन्या ।

८०७ करणे यजः ३ । २ । ८५ ।

करणे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः कर्तरि । सोमेनेष्टवान् [2]सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ।

८०८ दृशेः क्वनिप् ३ । २ । ९४ ।

[3]कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान् [4]पारदृश्वा ।

८०९ राजनि युधि [5]कृञः ३ । २ । ९५ ।

क्वनिप् स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । [6]राजकृत्वा ।

८१० सहे च ३ । २ । ९६ ।

१—कालिंमन्या—कालीमात्मानं मन्यते इति विग्रहे 'आत्ममाने खश्च' इति खशि तस्य शित्त्वेन सार्वधातुकत्वे श्यनि 'अतोगुणे' इति पररूपे कर्मषष्ठ्यामुपपदसमासे सुब्लुकि 'खित्यनव्ययस्य' इति ह्रस्वे 'अरुर्द्विषद' इत्यादिना मुमि स्त्रीत्वे टापि विभक्तिकार्ये 'कालिंमन्या' इति रूपम् । २—'अत उपधायाः' इति-उपधावृद्धिः । ३—कर्मणि उपपदे भूते-काले इत्यर्थः । ४—पारदृश्वा—पारं दृष्टवानिति विग्रहे पारोपपदाद् 'दृश्' धातोः 'दृशेः क्वनिप्' इति 'क्वनिप्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'पारदृश्वन्' इत्यस्य कृदन्तत्वेन प्रतिपदिकसंज्ञायां प्रथमैकवचने सौ उपधादीर्घे सोर्लोपे नलोपे सिध्यति रूपं 'पारदृश्वा' इति । स्त्रियां 'वनो र च' इति सूत्रेण नस्य रेफः ङीप् च पारदृश्वरी, एवं राजयुध्वरी राजकृत्वरी । इत्यादि । ५—राजनि (राजशब्दे) उपपदे युध्-कृञोः क्वनिप् ६–'ह्रस्वस्य पिति कृति' इति तुक् ।

८०६—अव्ययभिन्न पूर्व पद को ह्रस्व होता है खिदन्त परे रहते ।

८०७—करण उपपद रहते यज् धातु से भूतार्थ में क्वनिप् प्रत्यय होता है कर्ता में ।

८०८—कर्म उपपद रहते दृश् धातु से भूतार्थ में क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

८०९—कर्मसंज्ञक राजन् शब्द उपपद रहते युध् और कृञ् धातु से भूतार्थ में क्वनिप् प्रत्यय होता है ।

८१०—सह उपपद रहते युध से क्वनिप होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कर्मणीति निवृत्तम्। सह योधितवान् = सहयुध्वा। सहकृत्वा।

८११ सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७।

८१२ तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४।

ङेरलुङ्। [1]सरसिजम्। सरोजम्।

८१३ उपसर्गे च संज्ञायाम्। ३।२।९९।

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।

८१४ क्त-क्तवतू निष्ठा १।१।२६।

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

८१५ निष्ठा ३।२।१०२।

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा[2] स्यात्। तत्र (७७०) तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः। (७६९) कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं [3]कृतवान् विष्णुः।

८१६ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः। ८।२।४२।

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्। (६६०) ऋत इत्। रपरः। णत्वम्। [4]शीर्णः। भिन्नः। [5]छिन्नः।

१–सरसि–जन् + डः, डित्त्वात् टिलोपः बहुलं ङेरलुक्। २—क्त-क्तवतु (उभौ)। ३—क्तवतुप्रत्यये उगित्त्वात् 'नुम्' 'अत्वसन्तस्य' इति दीर्घः। ४—'हलि च' इति दीर्घः। 'श्र्युकः क्किति' इति इट्निषेधः। ५—छिन्नः—'छिद्' धातोः कर्मणि 'निष्ठा' इति 'क्त' प्रत्यये तस्य कित्त्वाद् गुणाभावे 'रदाभ्याम्' इत्यादिना निष्ठातकारस्य धातोस्तकारस्य च नत्वे प्रातिपदिकत्वाद् विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'छिन्नः' इति।

८११—सप्तम्यन्त उपपदक जन् धातु से ड प्रत्यय होता है।

८१२—कृदन्त उत्तर पद परे रहते सप्तमी का लुक् होता है बाहुल्यसे तत्पुरुष में।

८१३—उपसर्ग उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय होता है संज्ञा में।

८१४—क्त और क्तवतु की निष्ठा संज्ञा होती है।

८१५—भूतार्थ वृत्ति धातु से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

८१६—रेफ-दकार से परे निष्ठा के त को न आदेश होता है और निष्ठा की अपेक्षा पूर्व धातु के द को भी न होता है।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८१७ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः[1] ८ । २ । ४३ ।

निष्ठातस्य नः स्यात् । द्राणः । ग्लानः ।

८१८ ल्वादिभ्यः ८ । २ । ४४ ।

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः [2]प्राग्वत् । लूनः । ज्याधातुः । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ।

८१९ हलः ६ । ४ । २ ।

अङ्गावयवाद्धलः परं यत् सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः । [3]जीनः ।

८२० [4]ओदितश्च ८ । २ । ४५ ।

भुजो-भुग्नः । टुओश्वि-[5]उच्छूनः ।

८२१ शुषः कः ८ । २ । ५१ ।

निष्ठातस्य कः । [6]शुष्कः ।

८२२ पचो वः ८ । २ । ५२ ।

[7]पक्वः । क्षै हर्षक्षये ।

१—संयोगादेरादन्तात् यण्वतो धातोर्निष्ठातकारस्य नकारः, इत्यर्थः । २—निष्ठातकारस्य नत्वम् । ३—जीनः-'ज्या' धातोः 'निष्ठे' ति क्तप्रत्यये 'संयोगादेरातोधातो' रिति नत्वे 'ग्रहि-ज्ये'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'हलः' इति दीर्घे सिध्यति रूपं 'जीनः' इति । ४—ओदितश्च धातोर्निष्ठातकारस्य नत्वमित्यर्थः । ५—उद्-श्वि + त (:), यजादित्वात्सम्प्रसारणम्, इकारस्य च 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपम्, 'हलः' इति दीर्घः । 'श्वीदितः' इति इडभावः 'उच्छूनः' । ५—शुष्कः —'शुष्' धातोः क्तप्रत्यये 'शुषः कः' इति तस्य ककारे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'शुष्कः' इति रूपम् । ७—पक्वः—'पच्' धातोः 'निष्ठे' ति सूत्रेण 'क्त' प्रत्यये 'पचो वः' इति तकारस्य वत्वे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'पक्वः' इति रूपम् ।

८१७—संयोगादि यण्वान् आदन्त धातु से परे निष्ठा के त को न होता है ।

८१८—इक्कीस लूञादियों से परे निष्ठा के त को न होता है ।

८१९—अङ्ग के अवयव हल् से परे जो संप्रसारण, तदन्त को दीर्घ होता है ।

८२०—ओदित् धातु से परे निष्ठा के त को न होता है ।

८२१—शुष् धातु से परे निष्ठा के त को क होता है ।

८२२—पच् धातु से परे निष्ठा के त को व होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८२३ क्षायो मः ८ । २ । ५३ ।

क्षामः ।

८२४ निष्ठायां सेटि ६ । ४ । ५२ ।

णेर्लोपः । [1]भावितः । भावितवान् । दृह्-हिंसायाम् ।

८२५ [2]दृढः स्थूल-बलयोः ७ । २ । २० ।

स्थूले बलवति च निपात्यते ।

८२६ दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२

तादौ किति । [3]हितम् ।

८२७ दो दद्घोः ७ । ४ । ४६ ।

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात् तादौ किति । चर्त्वम् । [4]दत्तः ।

८२८ लिटः कानज् वा ३ । २ । १०६ ।

८२९ क्वसुश्च ३ । २ । १०७ ।

लिटः कानच्क्वसुश्च वा स्तः । तङानावात्मनेपदम् । [5]चक्राणः ।

१—भावितः—णिजन्ताद् 'भू' धातोः 'निष्ठे' ति 'क्त'-प्रत्यये 'भावित' इत्यत्र इटि 'निष्ठायां सेटि' इति णेर्लोपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'भावितः' इति २—दृढः—दृह्+त (ः) इडभावे ढत्व-धत्व-ष्टुत्व-ढलोपाः । ३—हितम्—'धा' धातोः 'क्त' प्रत्यये 'दधातेर्हिः' इति ह्यादेशे प्रातिपादिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'हितम्' इति रूपम् । ४—दत्तः—'दा' धातोः 'निष्ठे' ति क्तप्रत्यये 'दो दद्घोः' इत्यनेन 'दा' इत्यस्य ददादेशे चर्त्वे विभक्तिकार्ये 'दत्तः' इति रूपम् । ५—कानचो लिट्स्थानिकत्वाद् द्वित्वादिकम्, चक्+आन (ः), यण् णत्वम् ।

८२३—क्षै धातु से परे निष्ठा के त को म होता है ।

८२४—सेट् निष्ठा परे रहते णि का लोप होता है ।

८२५—स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ शब्द निपातन से सिद्ध होता है ।

८२६—धा धातु को हि आदेश होता है तादि कित् परे रहते ।

८२७—घुसंज्ञक दा धातु को दद् आदेश होता है तादि कित् परे रहते ।

८२८—लिट् के स्थान में कानच् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८२९—लिट् के स्थान में क्वसु प्रत्यय होता है ।

८३० म्वोश्च ८ । २ । ६५ ।

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः । [1]जगन्वान् ।

८३१ लटः शतृ-शानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ ।

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः शबादि । [2]पचन्तं चैत्रं पश्य ।

८३२ आने मुक् ७ । २ । ८२ ।

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे । [3]पचमानं चैत्रं पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । [4]सन् द्विजः ।

८३३ विदेः शतुर्वसुः ७ । १ । ३६ ।

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् । [5]विद्वान् ।

१—गम् धातोः लिटः क्वसौ रूपम् । द्वित्वादिकं पूर्ववत्, जगन्वस्शब्दः, उगित्वान्नुम् 'सान्तमहतः....' इति दीर्घः । जगन्वान्, जगन्वांसौ, जगन्वांसः, जगन्वांसम्, जगन्वांसौ, जग्मुषः, ('वसोः सम्प्रसारणम्' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपम्) जग्मुषा, जगन्वद्भ्याम् ('वसुस्रंसु....' दत्वम्) स्त्रियां जग्मुषी । २, ४—पचन्तं = पचमानम्–'पच्' धातोर्लटि । 'लटः शतृ-शानचौ' इति सूत्रेण परस्मैपदे । लटः शतृ, आत्मनेपदे च लटः शानजादेशः । शतृशानचोः शित्वेन सार्वधातुके शपि पररूपे आत्मनेपदे च शानचि 'आनेमुग्' इति मुगागमे उभयत्र प्रादिपदिकत्वे विभक्तिकार्ये द्वितीयैकवचने रूपद्वयमिदं पचन्तं पचमानं वा पश्य । ४—अस्तीति 'सन्' 'श्नसोरल्लोपः' इति अकारलोपः । ५—विद्वान्—'विद' धातो 'वेत्ति' इति विग्रहे 'लटः शतृ-शानचौ' इति लटः शत्रादेशे शतुश्च 'विदेः शतुर्वसुः' इति वा वस्वादेशे 'विद्वस्' शब्दात् प्रातिपदिकत्वेन सौ उगित्त्वात् नुमि 'सान्त-महतः' इत्युपधादीर्घे 'हलङ्याप्' इति सुलोपे संयोगान्तलोपे च 'विद्वान्' इति । (वस्वादेशाभावपक्षे शतरि शपि लुकि 'विदत्' शब्दात् सौ नुमि सुलोपे 'संयोगान्ते' ति तलोपे च 'विदन्' इति रूपम्) ।

८३०—मान्त धातु को नकार आदेश होता है मकार-वकार परे रहते ।

८३१—अप्रथमान्त के साथ समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं ।

८३२—अदन्त अङ्ग को मुक का आगम होता है आन परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८३३—विद् धातु से परे शतृ के स्थान में वसु आदेश होता है विकल्प से ।

८३४ तौ सत् ३ । २ । १२७ ।

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

८३५ लृटः सद्वा ३ । ३ । १४ ।

[1]व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ।

८३६ आ क्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु ३ । २ । १३४ ।

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

८३७ तृन् ३ । २ । १३५ ।

कर्ता[2] कटान् ।

८३८ जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ।

८३९ षः प्रत्ययस्य १ । ३ । ६ ।

प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात् । जल्पाकः । [3]भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः, [4]वराकी ।

१–विशेषे (क्वचित् प्रयोगे) अवस्थितौ विधिनिषेधौ यस्याः सा व्यवस्थिता सा चासौ विभाषा व्यवस्थितविभाषा । यद्वा व्यवस्था सञ्जाता अस्या इति व्यवस्थिता, क्वचिद् विधिरेव क्वचिद् निषेध एव क्वचिदुभयमेवेति यावत् । (सेयं व्यवस्थितविभाषा) २–'कर्तृकर्मणोः कृति' इति षष्ठी प्राप्ता, 'न लोकाव्ययनिष्ठा-खलर्थतृनाम्' इति निषिध्यते । कर्मणि द्वितीया । ३–भिक्षाकः—'भिक्ष्' धातोः कर्त्तरि 'जल्प-भिक्ष...' इत्यादिना 'षाकन्' प्रत्ययः । 'षः प्रत्ययस्ये'ति षस्येत्संज्ञालोपेऽन्तनकारस्यापीत्संज्ञायां लोपे विभक्तिकार्ये 'भिक्षाकः' इति रूपम् । ४–स्त्रियाम् 'षिद् गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् । एवं जल्पाकीत्यादयः ।

८३४–शतृ और शानच् सत्संज्ञक होते हैं ।

८३५–लृट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

८३६–क्विप् प्रत्यय पर्यन्त कहे गये प्रत्यय तच्छील आदि अर्थों में होते हैं ।

८३७–धातु से तृन् प्रत्यय होता है तच्छीलादि अर्थों में ।

८३८–जल्पादि धातुओं से परे षाकन् प्रत्यय होता है तच्छीलादि अर्थों में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८३९–प्रत्यय के आदिभूत षकार की इत्संज्ञा होती है ।

८४० [1]सनाशंस-भिक्ष उः ३ । २ । १६८ ।

[2]चिकीर्षुः । आशंसु । भिक्षुः ।

८४१ भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७७ ।

बिभ्राट् । भाः ।

८४२ राल्लोपः । ६ । ४ । २१ ।

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । [3]ऊर्क् । [4]पूः । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः[5] । जूः । [6]ग्रावस्तुत् । ([7]क्विब्वचि-प्रच्छ्यायतस्तु-कटप्रु-जु-श्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च) वक्तीति वाक् ।

८४३ च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६ । ४ । १९ ।

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । पृच्छतीति-प्राट् । आयतं स्तौति-आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जूरुक्तः । श्रयति हरिं-श्रीः ।

१–सन्नन्तेभ्य आशंसेर्भिक्षेश्च–उप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । २–चिकीर्षुः–सन्नन्तात् 'कृ धातोः' चिकीर्ष इत्यस्मात् 'सनाशंस-भिक्ष उः' इत्युप्रत्यये 'अतो लोपः' इति सनोऽकारलोपे विभक्तिकार्ये रूपं 'चिकीर्षुः' इति । ३–'रात्सस्य' इति नियमात् संयोगान्तलोपो न । ४–'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इत्युत्वं रपरत्वम् 'र्वोरुपधायाः' इति दीर्घः । ५–'अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ३ । २ । १७८ ।' इति सूत्रे दृशिग्रहणस्य (दृश्यते इत्यस्य) विध्यन्तरविशेष-समर्पकतया इहापि तदपकर्षाद्दीर्घः, तथा च वार्तिकम्-'क्विब्वचि'···इत्यादि । ६–'७७७ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' । ७–पूर्वेण वार्तिकेन दीर्घः सम्प्रसारणाभावश्च, व्रश्चेति षत्वे जश्त्वं चर्त्वं च ।

८४०–सन्नन्त, आशंस् और भिक्ष धातु से उ प्रत्यय होता है ।

८४१–भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है ।

८४२–रेफ से परे छ व का लोप होता है क्विप् और झलादि कित्, ङित् परे रहते ।

(वा०–वच्यादि से क्विप् होता है, दीर्घ होता है, और संप्रसारण का अभाव भी होता है)

८४३–तुक सहित छ और व को क्रम से श और ऊठ होते हैं अनुनासिक और क्विप् तथा झलादि आदेश कित्, ङित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८४४ दाम्-नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे ३ । २ । १८२ ।

दावादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे । दात्यनेन—[1]दात्रम् । नेत्रम् ।

८४५ ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु च ७ । २ । ९ ।

[2]एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न । [3]शस्त्रम् । योत्रम् । स्तोत्रम् । तोत्त्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । [4]दंष्ट्रा । नद्ध्री ।

८४६ अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चर इत्रः ३ । २ । १८४ ।

अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । [5]चरित्रम् ।

८४७ पुवः संज्ञायाम् ३ । २ । १८५ ।

पवित्रम् ।

इति पूर्वकृदन्तम् ।

१–दा (प्) लवने धातुः, स्त्रियां षित्वाद् ङीष्, दात्री नेत्रीत्यादयः । २–ति= क्तिन्-क्तिच् (१) तु तुन् (२) । त्र=ष्ट्रन् (३) । त = तन् (४) थ = कथन् (५) सि = क्सि (६) । सु (७) । सर, सरन् (८) । क=कन् (९) । स (१०) इति दश । ३–दाप् दात्रम् । नी-नेत्रम् । शस्–शस्त्रम् । यु–योत्रम् । युज्–योक्त्रम् । स्तु–स्तोत्रम् । तुद्–तोत्त्रम् । सि–सेत्रम् । सेच्–सेक्त्रम् । मिह–मेढ्रम् ढत्वध-त्वष्टुत्वलोपाः । पत्–पत्त्रम् । दंश–दंष्ट्रा, अत्र न ङीष् , अनित्यः षितां ङीष्, मातामहीशब्दस्य गौरादिषु पाठात्, मातरि षिच्चेति ङीषः सिद्धेः । नह्–नद्ध्री (अत्र नहो धः) इति क्रमेणोदाहरणानि । ४–दंष्ट्रा—'दंश्' धातोः 'दाम्नी-शस्' इत्यादिना करणे 'ष्ट्रन् प्रत्यये षस्येत्संज्ञालोपयोः धातोः शस्य 'व्रश्चे···' ति षत्वे प्रातिपदिकत्वेन स्त्रियामजादिगण-पठितत्वाट् टापि विभक्तिकार्ये 'दंष्ट्रा' इति रूपम् सिध्यति । ५–चरित्रम्–'चर्' धातोः 'अर्ति-लू-धू···' इत्यादिना 'इत्र' प्रत्यये प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'चरित्रम्' इति रूपम् ।

इति पूर्वकृदन्तम् ।

८४४–दाप् आदि धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है करण अर्थ में ।

८४५–ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-स-इन दस कृत्प्रत्ययों को इट् नहीं होता ।

८४६–ऋ लू धू सू खन् सह चर धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है करण अर्थ में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८४७–करण अर्थ में पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय होता है संज्ञा में ।

इति पूर्वकृदन्तम् ।

अथोणादयः

कृ-वा-पा-जि-मि-स्वादि-साध्यशूभ्य उण्। करोतीति-कारुः। वातीति [1]वायुः। पायुर्गुदम्। जायुरौषधम्। मायुः=पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्यमिति साधुः। आशु = शीघ्रम्।

८४८ उणादयो बहुलम् ३। ३। १।

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः।

[2]संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद् विद्यादनूबन्ध[3]मेतच्छास्त्रमुणादिषु॥

इत्युणादयः।

अथोत्तरकृदन्तम्

८४९ तुमुन्-ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३। ४। १०।

क्रियार्थायां [4]क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। [5]मान्तत्वाद-

---

१—'आतो युक्' इति युक्। २—संज्ञासु इति, संज्ञासु = यदृच्छाशब्देषु धातुरूपाणि=सम्भवन्तस्ते ते धातवः कल्पनीयाः। ततश्च परे यथासम्भवं प्रत्ययाः उण्-आदयः कल्पनीयाः, तेषु कार्यात्=कार्यानुरूपमित्यर्थः, गुणवृद्धिसम्प्रसारणादिकार्यानुसारमिति यावत् ३—अनुबन्धम्=अनुबन्धं णकार-ककारादिकम्। विद्यात्=जानीयात्, उणादिषु एतत्=पूर्वोक्तं शास्त्रम्=शासनम्। यथा 'दारु' दृधातोः ञुण्प्रत्ययः। ४–क्रियोद्देश्यीभूतक्रियावृत्तिधातौ उपपदे इत्यर्थः। ५–'तुमन्' इत्यस्य तुम् इति शिष्यते अयं हि मकारान्तः कृत्प्रत्ययोऽतः 'कृन्मेजन्तः' इति सूत्रेणास्याऽव्ययसंज्ञा, ततश्च 'अव्ययकृतो भावे' इति वचनात् 'तुमुन्' भावे भवति। ण्वुल् तु कर्तर्येव।

अथ उणादयः

(कृ-वा-पा-जि-मि-स्वादि-साधि-अश् धातुओं से उण् प्रत्यय होता है।)

८४८–उणादि प्रत्यय वर्तमान काल में बाहुल्य से होते हैं। इत्युणादयः।

अथ उत्तरकृदन्तम्

८४९–क्रियार्थक क्रिया उपपद रहते भविष्यदर्थ में धातु से तुमुन् ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

व्ययत्वम् । कृष्णं [1]द्रष्टुं याति । कृष्णं [2]दर्शको याति ।

८५० काल-समय-[3]वेलासु तुमुन् ३ । ३ । १६७ ।

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् ।

८५१ भावे ३ । ३ । १८ ।

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । [4]पाकः ।

८५२ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३ । ३ । १९ ।

कर्तृ-भिन्ने कारके घञ् स्यात् ।

८५३ घञि च भावकरणयोः ६ । ४ । २७ ।

रञ्जेर्नलोपः स्यात् । [5]रागः । अनयोः किम्–[6]रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ।

१–दृश + तुम् 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति', इति सूत्रेण 'अम्' आगमः, ऋकारस्य यण् रेफः, व्रश्चेति शस्य षत्वं ष्टुत्वम्, द्रष्टुम् । कृष्णकर्मकभविष्यद्दर्शनार्थं यानं (गमनम्) इत्यर्थः । अत्र यातीत्युपपदम् । 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थ....' इति षष्ठीनिषेधः । २–अत्र 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' इति षष्ठीनिषेधः । ३–पर्यायग्रहणमर्थोपलक्षणार्थम्, तथैवाह वृत्तौ कालार्थेष्विति । ४–पाकः—'पच्' धातोः 'भावे' इति सूत्रेण भावार्थे 'घञ्' प्रत्ययः अनुबन्धलोपे 'अत उपधाया' इति वृद्धौ 'चजोः कु घिण्यतो' रिति चकारस्य ककारे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पाक' इति । ५–रञ्जनं = रागः । रज्यतेऽनेन इति वा विग्रहः । ६–रागः–'रञ्ज्' धातोः 'भावे' इति सूत्रेण भावे 'अकर्त्तरि च कारके....' इत्यादिना करणे वा घञि अनुबन्धलोपे 'घञि च भावकरणयो' रिति रञ्जेर्नलोपे 'चजोः कु...' इत्यादिना कुत्वे उपधावृद्धौ विभक्तिकार्ये 'रागः' इति रूपम् । ८–अत्राधिकरणे घञ् । रङ्गो = नाट्यशाला ।

८५०–कालार्थक उपपद रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है ।

८५१–सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ वाच्य रहते धातु से घञ् प्रत्यय होता है ।

८५२–घञन्त से संज्ञा गम्य रहते कर्तृभिन्न कारक में घञ् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८५३–रञ्ज धातु के न का लोप होता है भाव और करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय परे रहते ।

८५४ [१]निवास-चिति-शरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३ । ३ । ४१ ।

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः । उपसमाधानं = राशीकरणम् । निकायः । [२]कायः । गोमयनिकायः ।

८५५ एरच् ३ । ३ । ५६ ।

इवर्णान्तादच् । चयः । [३]जयः ।

८५६ ऋदोरप् ३ । ३ । ५७ ।

ऋदन्तादुवर्णान्तादप् स्यात् । करः । गरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः । (घञर्थे [४]कविधानम्) [५]प्रस्थः । विघ्नः ।

८५७ [६]ड्वितः क्त्रिः ३ । ३ । ८८ ।

८५८ क्त्रेर्मम् नित्यम् ३ । ३ । २० ।

१–निवासे यथा–काशी निकायः । चितौ आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरे यथा- चोद्यतेऽस्थ्यादिकमत्रेति कायः = शरीरम् । समूहे गोमयनिकायः । २–कायः—'चिञ्' धातोः शरीरे वाच्ये 'निवासचिति' इत्यादिना सूत्रेण घञि प्रत्यये चकारस्य ककारे च 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आयादेशे विभक्तिकार्ये 'कायः' इति रूपम् । ३–जयः—'जि' धातोः 'एरच्' इति सूत्रेण 'अच्' प्रत्यये 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणेऽयादेशे विभक्तिकार्ये 'जयः' इति रूपं सिध्यति । ४–यस्मिन्नर्थे घञ् भवति, तस्मिन्नर्थे 'क'–प्रत्ययोऽपीत्यर्थः । ५–प्र-स्था+(क) अ (ः) कित्त्वादालोपः । 'विघ्नः' इत्यत्र गमहनेति उपधालोपः, हो हन्तेरिति कुत्वम् । ६–यस्य धातोः 'डु' इत् स्यात्तस्मात् 'क्त्रि'–प्रत्ययः स्यादित्यर्थः ।

८५४–निवास चिति, शरीर और उपसमाधान अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है, और आदि के च को क आदेश होता है ।

८५५–इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है ।

८५६–ऋवर्णान्त धातु और उवर्णान्त धातु से अप् प्रत्यय होता है ।

(वा०–घञर्थ में क प्रत्यय होता है ।)

८५७–ड जिसका इत् हो ऐसे धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८५८–क्त्रि-प्रत्ययान्त धातु से मप् प्रत्यय होता है निर्वृत्त अर्थ में ।

क्त्रिप्रत्ययान्तात् [1]मम् निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं [2]पक्त्रिमम्। डुवप-[3]उप्त्रिमम्।

८५९ ट्वितोऽथुच्[4] ३।३।८९।

टुवेपृ कम्पने। [5]वेपथुः।

८६० यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ् ३।३।९०।

[6]यज्ञः। [7]याच्ञा। यत्नः। [8]विश्नः। [9]प्रश्नः। रक्ष्णः।

८६१ स्वपो नन् ३।३।९१।

स्वप्नः।

८६२ उपसर्गे घोः [10]किः ३।३।९२।

प्रधिः। [11]उपधिः।

१–मप्। २–पक्त्रिमम्—'पाकेन निर्वृत्तम्' इति विग्रहे 'पच्' धातोः 'ड्वितः क्त्रिः' इति 'क्त्रि' प्रत्यये ककारस्येत्संज्ञायां लोपे च 'क्त्रेर्मम् नित्यम्' इति मपि अनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पक्त्रिमम्' इति। ३–डुवप् धातुः, 'वचिस्वपियजा–' इति सम्प्रसारणम्। एवम् डुलभष्–लप्त्रिमम्, डुधाञ्–हित्रिमम् (दधातेर्हिः) डुकृञ्-कृत्रिमम्। डुदाञ्—दत्त्रिमम्, 'दो दद्घोः' इति दत्। ४–'टु' इत्–यस्य स ट्वित्, तस्मात् (धातोः) भावे–'अथुच्' प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। ५–एवं-टुओश्वि—श्वयथुः। टुभ्राजृ–भ्राजथुः। टुनदि–नन्दथुः। टु ओस्फूर्जा–स्फूर्जथुः। ६–नस्य श्चुत्वेन ञः। जञोर्ज्ञः ७–याच्ञा—'याच्' धातोः भावेऽर्थे 'यजयाच' इत्यादिना नङ् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे नकारस्य श्चुत्वे ञकारे स्त्रीत्वे टापि विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'याच्ञा' इति। ८–विच्छधातुः, 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इति शत्वम्। विश्नः=प्रतापः ९–प्रच्छ+न (ङ्) (:) 'प्रश्ने चासन्नकाले' इति निर्देशात् 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणं न। १०–उपसर्गपूर्वकात् 'घु'–संज्ञकाद् धातोः किप्रत्ययः। अत्रेदं बोध्यम्–सर्वेऽपि कि-प्रत्ययान्ताः पुंल्लिङ्गा भवन्ति। ११–एवम्–उपाधिः, व्याधिः, आधिः, समाधिः, विधिः,

---

८५९–टु जिसका इत् हो ऐसे धातु से अथुच्-प्रत्यय होता है भाव में।

८६०–यज्-याच्-यत्-विच्छ्-प्रच्छ-रक्ष धातुओं से नङ् प्रत्यय होता है।

८६१–स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८६२–उपसर्ग उपपद रहते घुसंज्ञक धातु से कि प्रत्यय होता है भाव आदि में।

८६३ स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४ ।

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः । (ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) तेन नत्वम् । [1]कीर्णिः । लूनिः । [2]धूनिः । पूनिः । (सम्पदादिभ्यः क्विप्) सम्पत् । विपत् । आपत् । क्तिन्नपीष्यते । सम्पत्तिः । विपत्तिः । आपत्तिः ।

८६४ [3]ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्तयश्च ३ । ३ । ९७ ।

[4]एते निपात्यन्ते ।

८६५ ज्वर-त्वर-स्रिव्यवि-मवामुपधायाश्च ६ । ४ । २० ।

सन्धिः, अभिसन्धिः, इत्याद्याः कि-प्रत्ययान्ताः पुंल्लिङ्गाः । सर्वत्र 'आतो लोपः' इत्यालोपः । १–कीर्णिः—कॄ (विक्षेपे), ॠत, इत् , हलि चेति दीर्घः, निष्ठावद्भावे 'रदाभ्याम्....' इति नत्वम्, णत्वम् । २–विनाशः । पवित्रतायान्तु पूतिः 'पूञो विनाशे' इति विनाशे एवं नत्वविधानात् । ३–अवधातोः क्तिनि ज्वरत्वरेति उपधावकारयोरूठ्, उदात्तस्वरो निपातनप्रयोजनम्, ऊतिः = अवनम् । यूतिः, जूतिः, उभयत्र दीर्घनिपातनम् । सातिः (षोऽन्तकर्मणि) इत्यस्य, अत्र 'द्यतिस्यति...' ईत्वे प्राप्ते तदभावो निपात्यते, 'आदेच उपदेशे' इत्यात्वम् । हेतिः—हन् धातोः क्तिन्, अनुदात्तेति नलोपः अकारस्य एत्वं च निपात्यते । कीर्तिः—कॄ धातोः ण्यासश्रन्थेति युच् प्राप्तः, क्तिन् निपात्यते, 'उपधायाश्च' इतीत्वे रपरत्वम् । ४–क्विन् प्रत्ययान्ताः ।

८६३–धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है स्त्रीलिंग भाव में ।

(वा०–(१) ऋकारान्त तथा ल्वादि धातु से किया गया क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के सदृश होता है । (२) संपदादियों से क्विप् प्रत्यय होता है । (३) संपदादियों से क्तिन् प्रत्यय भी होता है भाव में और कर्ता से भिन्नकारक में) ।

८६४–ऊतियूति आदि शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

८६५–ज्वरादि धातुओं की उपधा और वकार को ऊठ् होता है अनुनासिक क्वि तथा झलादि कित् ङित् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च। [1]अतः क्विप्। [2]जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः।

८६६ [3]इच्छा ३।३।१०१।

इषेर्निपातोऽयम्।

८६७ अ प्रत्ययात् ३।३।१०२।

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। [4]चिकीर्षा। [5]पुत्रकाम्या।

८६८ गुरोश्च हलः ३।३।१०३।

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः स्यात्। ईहा।

८६९ [6]ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७।

अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा।

८७० नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४।

८७१ ल्युट् च ३।३।११५।

१–अतः = सम्पदादेराकृतिगणत्वात् 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' इत्यनेन 'क्विप्' इत्यर्थः। २–ज्वर (रोगे) जूः, जूरौ, जूरः। (ञि) त्वरा (सम्भ्रमे) तूः, तूरौ, तूरः। स्रिवि (गतौ) स्रूः, स्रुवौ, स्रुवः। अवि अव (रक्षणे)-ऊः, उवौ, उवः। मव (बन्धने) मूः, मुवौ, मुवः। ३–इषेः 'श'-प्रत्ययान्तोऽयं निपातः, स्त्रियां टाप्। ४–सन्नन्तात्कृधातोः 'चिकीर्ष' इत्यस्मात् 'अ' प्रत्यये 'अतो लोपः' स्त्रियां टाप्। ५–काम्यच्प्रत्ययान्तात् 'पुत्रकाम्य'–धातोः 'अ' प्रत्यये, स्त्रियां टाप्। ६–ण्यन्तेभ्यः-आस्धातोः श्रन्थेश्च युच् स्यादित्यर्थः। ण्यन्ताद् यथा–कारणा, हारणा, धारणा, (णिलोपः 'युवोरनाकौ' इत्यनः) आस-आसना, श्रन्थ-श्रन्थना।

८६६–इष् धातु से भाव में श-प्रत्यय होता है। यक् का अभाव भी निपातन से होता है।

८६७–प्रत्ययान्त धातुओं से अकार प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में।

८६८–गुरुमान् हलन्त धातुओं से अकार प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में।

८६९–ण्यन्त, आस्, श्रन्थ धातुओं से युच् प्रत्यय होता है।

८७०–धातु से क्त प्रत्यय होता है नपुंसकलिङ्ग भाव में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८७१–धातु से ल्युट् प्रत्यय भी होता है नपुंसकलिङ्ग भाव में।

हसितम् । हसनम् ।

८७२ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३ । ३ । ११८ ।

८७३ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६ । ४ । ९६ ।

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति [1]'दन्तच्छदः । [2]आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः ।

८७४ अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३ । ३ । १२० ।

अवतारः कूपादेः । अवस्तारो=जवनिका ।

८७५ हलश्च ३ । ३ । १२१ ।

हलन्ताद् घञ् । घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति [3]रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः[4] ।

८७६ ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३ । ३ । १२६ ।

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् (७७०) तयोरेवेति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे—दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे—ईषत्करः । [5]सुकरः ।

१–ण्यन्तात् 'छादि' इत्यस्मात् 'घ' णिलोपः, ह्रस्वश्च । २–अत्र (अधिकरणे) 'घः' प्रत्ययः । ३–रामः—'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति विग्रहे' 'रम्' धातोः 'पुंसि संज्ञायां घः' इति सूत्रेण घप्रत्यये प्राप्ते, तं बाधित्वा 'हलश्चे'ति अधिकरणेऽर्थे घञि प्रत्यये उपधावृद्धौ विभक्तिकार्ये 'रामः' इति रूपम् । ४–अपामार्गः—('उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' दीर्घः, 'चजोः कु घिण्यतोः' इति कुत्वम्) ओषधिभेदः । 'ऊंगा' इति भाषायाम् (पुठकण्डा इति पाञ्चालीभाषायाम्) । ५–सुकरः—सुपूर्वकात् 'कृञ्' धातोः 'ईषद्दुस्सुषु....' इत्यादिना 'खल्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणे विभक्तिकार्ये 'सुकरः' इति ।

८७२–धातु से घ प्रत्यय होता है पुंलिङ्ग में, संज्ञा में बहुलता से ।

८७३–द्विप्रभृति उपसर्गरहित छादि धातु को ह्रस्व होता है घ परे रहते ।

८७४–अव उपपद रहते तॄ धातु और स्तॄ धातु से करण और अधिकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है संज्ञा में पुंलिङ्ग में ।

८७५–हलन्त धातुओं से घञ् प्रत्यय होता है करण और अधिकरण अर्थ में ।

८७६–दुःखार्थक और सुखार्थक ईषत्-दुस्-सु उपपद रहते कृच्छ्र और अकृच्छ्र अर्थ में धातु से खल् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८७७ आतो युच् ३ । ३ । १२८ ।

खलोऽपवादः ईषत्पानं सोमो भवता । दुष्पानः । [1]सुपानः ।

८७८ अलं-खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३ । ४ । १८ ।

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं [2]पूजार्थम् । अमैवाऽव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः (८२७) दो दद् घोः । अलं दत्त्वा । घुमास्थेतीत्वम् । पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम्—मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम्-[3]अलंकारः ।

८७९ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ ।

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । [4]भुक्त्वा व्रजति । [5]द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

८८० न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ ।

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । [6]शयित्वा । सेट् किम्-कृत्वा ।

८८१ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १ । २ । २६ ।

१–सुपानः—'सु' पूर्वकात् 'पा' धातोः 'ईषद्दुस्सुषु···' इत्यादिना प्राप्तं खलं बाधित्वा 'आतो युच्' इति 'युचि' प्रत्यये चकारस्येत्संज्ञायां लोपे च 'युवोरनाकौ' इति यकारस्य अनादेशे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'सुपानः' इति रूपम् । २–आदरार्थम्, धन्यास्ते प्राचीना येषां मतं पाणिनिना गृहीतमिति । ३–नात्र प्रतिषेधार्थोऽलम् । ४–'भुक्त्वा व्रजति' 'भुज्' धातोः 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इति 'क्त्वा'–प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'चोःकुः' इति कुत्वे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ 'क्त्वा-तोसुन्-कसुनः' इत्यव्ययत्वात् सुपो लुकि 'भुक्त्वा' इति रूपम् । ५–सूत्रे द्विवचनं न विवक्षितमित्यर्थः तेनाधिकानामपि । ६–कित्वाभावाद् गुणः ।

८७७–आदन्त धातु से युच् प्रत्यय होता है, ईषदादि उपपद रहते ।

८७८–निषेधवाची अलं और खलु उपपद रहते धातुओं से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

८७९–समानकर्तृक धात्वर्थों में पूर्वकालिक क्रिया में विद्यमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

८८०–सेट् क्त्वा कित् नहीं होता ।

८८१–इवर्णोपध उवर्णोपध हलादि रलन्त धातुओं से परे सेट् क्त्वा और सन् विकल्प से कित् होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात्किम्—वर्तित्वा। रलः किम्—सेवित्वा। हलादेः किम्—एषित्वा। सेट् किम्—भुक्त्वा।

८८२ उदितो वा ७। २। ५६।

उदितः परस्य क्त्वा इड् वा। शमित्वा, [1]शान्त्वा। देवित्वा, [2]द्यूत्वा। दधातेर्हिः। हित्वा।

८८३ जहातेश्च [3]क्त्वि ७। ४। ४३।

[4]हित्वा। हाङ्स्तु-हात्वा।

८८४ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७। ३। ३७।

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्, [5]प्रकृत्य। अनञ् किम्—अकृत्वा।

८८५ [6]आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३। ४। २२।

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

८८६ नित्य-वीप्सयोः ८। ३। ४।

१–'अनुनासिकस्य क्वि···' इति दीर्घः २–अत्र 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इति 'ऊठ्'। ३–इत्वमिति शेषः। ४–हित्वा–'ओहाक्' धातोरनुबन्धलोपे 'हा' इत्यस्मात् 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इति 'क्त्वा' प्रत्यये 'जहातेश्च क्त्वि' इत्यनेनाकारस्य इत्वे 'हित्वा' इति रूपम्। 'धा' धातोरपि 'क्त्वा' 'दधाते हिः' इति ह्यादेशे 'हित्वा' इति रूपं भवति। ५–प्रकृत्य—'प्र' पूर्वकात् 'कृ' धातोः 'समानकर्तृकयोः—' इत्यादिना 'क्त्वा' प्रत्यये प्रशब्देन समासे 'समासेऽनञ् पूर्वे···' इत्यादिना क्त्वो ल्यबादेशेऽनुबन्धलोपे 'ह्रस्वस्य पिति कृति·····' इत्यादिना तुगागमेऽव्ययत्वे 'प्रकृत्य' इति रूपम्। ६–आभीक्ष्ण्यम् = पौनःपुन्यम् भृशार्थश्च।

८८२–उदित धातु से परे क्त्वा को इट् होता है। विकल्प से।

८८३–ओहाक् धातु को 'हि' आदेश होता है क्त्वा प्रत्यय परे रहते।

८८४–अव्यय पूर्वपद रहते नञ् भिन्न समास में क्त्वा को ल्यप् होता है।

८८५–आभीक्ष्ण्य अर्थ द्योत्य होने पर भी क्त्वा के विषय में णमुल् होता है।

८८६–आभीक्ष्ण्य और वीप्सा अर्थ द्योत्य होने पर पद को द्वित्व होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]आभीक्ष्ण्ये [2]वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं [3]तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु। [4]स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। [5]पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावं श्रावम्।

८८७ अन्यथैवं-कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३। ४। २७।

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ्। अर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवंकारम्। [6]कथंकारम्। इत्थंकारं भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्-शिरोऽन्यथा [7]कृत्वा भुङ्क्ते।

इत्युत्तरकृदन्तम्।

अथ विभक्त्यर्थाः

८८८ प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन-मात्रे प्रथमा २। ३। ४६।

१—नैरन्तर्य्ये पौनःपुन्ये वा। २—आधिक्येच्छायाम्। ३—तिङन्तेषु यथा—पठति पठति ४—स्मारं स्मारम्—'स्मृ' धातोः आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वकाले 'क्त्वा' प्रत्ययं बाधित्वा आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' इति वैकल्पिके 'णमुलि' अनुबन्धलोपे 'स्मृ अम्' इति स्थितौ 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ 'कृन्मेजन्तः' इत्यव्ययत्वे 'नित्यवीप्सयो' रिति द्वित्वे 'स्मारं स्मारम्' इति। (णमुलोऽभावपक्षे 'स्मृत्वा स्मृत्वा' इति रूपम्)। ५—'आतो युक् चिण्कृतोः' इति युक्। ६—कथंकारम्—'कथम्' पूर्वकात् 'कृ' धातोः 'अन्यथैवं कथमित्थम्....' इत्यादिना णमुलि अनुबन्धलोपे 'अचो-ञ्णिति' इति वृद्धौ अव्ययत्वे 'कथंकारम्' इति रूपम्। ७—नात्र कृञः प्रयोगेऽन्यथासिद्धिः, किन्तु आवश्यकः। अतो न णमुल्।

इत्युत्तरकृदन्तप्रकरणम्।

८८७—अन्यथा, एवं, कथम्, उपपद रहते कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, कृञ् के प्रयोग के व्यर्थ होने पर।

इत्युत्तरकृदन्तप्रकरणम्।

अथ विभक्त्यर्थाः

८८८—प्रतिपदिकार्थ मात्र से, लिङ्गमात्र के आधिक्य में, परिमाणमात्र में और संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। प्रातिपदिकार्थमात्रे–उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। [2]ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे–तटः। तटी। [3]तटम्। परिमाणमात्रे—द्रोणो [4]व्रीहिः। वचनं=संख्या। एकः। द्वौ। बहवः।

८८९ सम्बोधने च २।३।४७।

प्रथमा स्यात्। हे राम!

८९० कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं [5]कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

८९१ कर्मणि द्वितीया २।३।२।

[6]अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। [7]हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मादौ [8]प्रथमा। हरिः [9]सेव्यते। लक्ष्म्या [10]सेवितः।

८९२ अकथितं च १।४।५१।

१—यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः सोऽत्र प्रातिपदिकार्थो विवक्षितः, इत्यर्थः। २–अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकमात्रस्योदाहरणानि। ३–अनियतलिङ्गाश्च लिङ्गमात्राद्याधिक्यस्य। ४–द्रोणपरिमाणपरिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः। ५–'कारके' इत्यधिकारादिदं लभ्यते। कारकम् =क्रियाजनकम्। कारकाणि षट्—कर्ता, कर्म, करणम्, सम्प्रदानम्, अपादानम्, अधिकरणं चेति। ६–अनभिहिते इति, यस्मिन्नर्थे प्रत्ययः स उक्तः = अभिहितः, तद्भिन्नोऽनुक्तः = अनभिहितः, यथा–'हरिं भजति' इत्यत्र कर्त्तरि तिङ्प्रत्यय इति कर्म (हरिः) अनुक्तम् = अनभिहितम्। ७–हरिं भजति—अत्र भजनक्रियायाः कर्म हरिः। भजतीत्यत्र कर्त्तरि प्रत्ययाद् उक्तः कर्त्ता, कर्म चानुक्तम्। 'कर्मणि द्वितीया' इति सूत्रेण 'हरि' शब्दाद् द्वितीया विभक्तिः। ८–परिशेषात्प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा। ९–अत्र कर्मणि प्रत्ययः। १०–अत्र कर्मणि क्तः।

८८९–सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

८९०–कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिये इष्टतम कारक की कर्म संज्ञा होती है।

८९१–अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

८९२–अपादानादि विशेषों से अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

[1]दुह्याच्-पच्-दण्ड्-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ्-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-हृ-कृष्वहाम्। १।

[2]गां दोग्धि पयः। [3]बलिं याचते वसुधाम्। [4]तण्डुलानोदनं पचति। [5]गर्गान् शतं दण्डयति। [6]व्रजमवरुणद्धि गाम्। [7]माणवकं पन्थानं पृच्छति। [8]वृक्षमवचिनोति फलानि। [9]माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति [10]देवदत्तम्। सुधां [11]क्षीरनिधिं मथ्नाति। [12]देवदत्तं शतं मुष्णाति। [13]ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। [14]अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि।

८९३ स्वतन्त्रः कर्ता १। ४। ५४।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

८९४ साधकतमं करणम् १। ४। ४२।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

८९५ कर्तृकरणयोस्तृतीया २। ३। १८।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। [15]रामेण बाणेन हतो वाली।

१–दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां धातूनां कर्मणा यद् युज्यते तदेवाऽकथितं कर्मेति परिगणनं कर्त्तव्यमित्यर्थः। २–गां दोग्धि पयः—अत्रापादानत्वाविवक्षायाम् 'अकथितं चे' ति गोः कर्मसंज्ञा। 'कर्मणि द्वितीया' इत्यनेन च द्वितीयाविभक्तौ 'गां दोग्धि पयः' इति रूपम्। ३–बलेः (पं०)। ४–तण्डुलैः। ५–गर्गेभ्यः (पं०)। ६–व्रजे। ७–माणवकेन। ८–वृक्षात्। ९–माणवकाय। १०–देवदत्तात्। ११–क्षीरनिधेः। १२–देवदत्तात्। १३–ग्रामे-इत्यर्थः। इत्येतेषां पूर्वोपात्तानामपादानादेरविवक्षायामकथितकर्मत्वम्। एषामुदाहरणानां वाक्यार्थबोधादिविशेषस्तु मत्कृतमध्यकौमुदीटीकायां द्रष्टव्यः। १४–अर्थाश्रितेत्यर्थः, दुहादिपरिगणितधातूनाम् अर्थो गृह्यते, नतु दुहादयो धातव एव, तेन तदर्थकान्यधातुयोगेऽपि। १५–रामेण बाणेन हतो वाली—अत्र रामस्य 'स्वतन्त्रः

८९३—क्रिया में स्वातन्त्र्य से विवक्षित अर्थ की कर्तृसंज्ञा होती है।

८९४—क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट उपकारक की करणसंज्ञा होती है।

८९५—अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

८९६ कर्मणा यमभिप्रैति स [1]सम्प्रदानम् १ । ४ । ३२ ।

दानस्य कर्मणा [2]यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ।

८९७ चतुर्थी सम्प्रदाने २ । ३ । १३ ।

[3]विप्राय गां ददाति ।

८९८ नमः स्वस्ति-स्वाहा-स्वधाऽलं-वषड्योगाच्च २ । ३ । १६ ।

एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि ।

८९९ ध्रुवमपायेऽपादानम् १ । ४ । २४ ।

अपायो = विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये यद्[4] ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात् ।

९०० अपादाने पञ्चमी २ । ३ । २८ ।

ग्रामादायाति । [5]धावतोऽश्वात् पततीत्यादि ।

कर्त्ता' इति कर्तृसंज्ञा बाणस्य च 'साधकतमं करणम्' इति करणसंज्ञा । उभयत्रापि 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इति तृतीयाविभक्तिः 'रामेण बाणेन हतो वाली ।'

१–दानपात्रम् । २–अभिप्रैति = सम्बद्धु मिच्छति–इत्यर्थः । ३–विप्राय गां ददाति–अत्र विप्रस्य 'कर्मणा यमभिप्रैति···' इत्यादिना सम्प्रदानसंज्ञा 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इति चतुर्थी । ४–ध्रुवमित्यस्याऽवधिभूतमित्यर्थः । ५–धावतोऽश्वात् पतति–'अपादाने पञ्चमी' इति पञ्चमी विभक्तिः (अत्र धावन्नप्यश्वः पतनक्रियायाः अवधिभूतोऽस्ति 'अतोऽपादानत्वे बाधाभावः' ध्रुवमित्यस्यावधिभूतमित्यर्थत्वात्) ।

८९६–कर्ता दा धातु के कर्म से जिसका सम्बन्ध करने की इच्छा करे उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

८९७–सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

८९८–नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा-अलं और वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

८९९–अपाय (विश्लेष) की सिद्धि में ध्रुव (अवधिभूत) कारक की अपादान संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९००–अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है ।

९०१ षष्ठी शेषे २ । ३ । ५० ।

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् । [1]राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । [2]मातुः स्मरति । एधो दकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः ।

९०२ आधारोऽधिकरणम् १ । ४ । ४५ ।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ।

९०३ सप्तम्यधिकरणे च २ । ३ । ३६ ।

अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । [3]कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति [4]मोक्षे इच्छाऽस्ति । [5]सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा ।

इति [6]विभक्त्यर्थाः ।

१–'द्विष्ठो यद्यपि सम्बन्धः षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात्' । २–मातुःस्मरति—अत्र कर्मत्वाविवक्षायां सम्बन्धमात्रविवक्षायां 'षष्ठी शेषे' इति सूत्रेण 'मातृ' शब्दे षष्ठी । कर्मत्वविवक्षायां 'मातरं स्मरति' इति भवत्येव । ३–कटे आस्ते, स्थाल्यां पचति, द्वयमिदम् औपश्लेषिकाऽऽधारस्योदाहरणम् । ४–मोक्षे इच्छाऽस्ति—इच्छायाः विषयो मोक्षः । मोक्षो वैषयिकाधारः । तथाच 'अधारोऽधिकरणम्' इत्यधिकरणसंज्ञायां 'सप्तम्यधिकरणे च' इत्यनेन सप्तमी । ५—अभिव्यापकाधारस्येदमुदाहरणम् । इति कारकाणि । ६–अत्रायं सप्त-विभक्ति-प्रयोगसंग्रहश्लोकः—

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमस्याम्यहम् ।
कृष्णेनाऽमरशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः ॥
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम्
कृष्णे तिष्ठति सर्वमेतदखिलं हे कृष्ण ! रक्षस्व माम् ॥ १ ॥ (कुलशेखरस्य)

९०१–कारक और प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त स्व-स्वामिभाव, जन्य-जनकभावादि सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है ।

९०२–कर्तृ-कर्म द्वारा तन्निष्ठक्रिया के आधार की अधिकरण संज्ञा होती है ।

९०३–अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है और दूर एवं अन्तिकार्थ में भी ।

©Digital: Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति विभक्त्यर्थाः ।

अथ समासाः

समासः पञ्चधा। तत्र [1]समसनं समासः। स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः [2]केवलसमासः प्रथमः। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो [3]द्वितीयः। प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः[4]। तत्पुरुषभेदः [5]कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो [6]द्विगुः। प्रयेणान्यपदार्थप्रधानो [7]बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो [8]द्वन्द्वः पञ्चमः।

९०४ [9]समर्थः पदविधिः २।१।१।

पदसम्बन्धी यो विधिः सः समर्थाश्रितो बोध्यः।

९०५ प्राक्कडारात् समासः २।१।३।

'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते।

९०६ सह सुपा २।१।४।

सुप् सुपा सह वा समस्यते। समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन [10]सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धित-समासैकशेष-सनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च [11]लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूतः—इति लौकिकः। 'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिक। भूतपूर्वः। भूतपूर्वे

१—अनेकपदानामेकीभवनमित्यर्थः। २—यथा 'भूतपूर्वः' ३—यथा—'अधिहरि'। ४—यथा—'राजपुरुषः'। ५–यथा—'नीलोत्पलम्'। ६–यथा–'पञ्चगवम्'। ७–यथा–'लम्बकर्णः' 'पीताम्बरः'। ८—यथा—'रामलक्ष्मणौ' 'धवखदिरौ'। ९—सामर्थ्यं द्विविधं, व्यपेक्षा–(रूपम्) एकार्थीभावश्चेति। आकाङ्क्षादिवशात्पदानां परस्परसम्बन्धो व्यपेक्षा, सा च वाक्ये भवति, यथा—'राज्ञः पुरुषः'। एकार्थीभावस्तु (अपृथगुपस्थितिविषयत्वमेकार्थीभावत्वम्) 'राजपुरुषः' इत्यादौ वृत्तौ (समासादौ) एव। १०—कृत्तद्धितसमासाश्च' इति प्रातिपदिकत्वम्। ७२१ 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इत्यनेन सुपो लुक्। ११—प्रयोगयोग्यो लौकिकः, तद्भिन्नोऽलौकिकः।

अथ समासाः। तत्रादौ केवलसमासः

९०४—पदसम्बन्धी विधि को समर्थाश्रित जानना चाहिये।

९१५—'कडाराः कर्मधारये' सूत्र से पहले समास का अधिकार है।

९०६—सुबन्तों का सुबन्तों के साथ समास होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः। (इवेन समासो बिभक्त्यलोपश्च) वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इति केवलसमासः प्रथमः

अथ अव्ययीभावः

९०७ अव्ययीभावः २। १। ५।

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात्।

९०८ अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्यया- सम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्त-वचनेषु २। १। ६।

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, [1]प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ-'हरि ङि अधि' इति स्थिते।

९०९ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १। २। ४३।

[2]समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

९१० उपसर्जनं पूर्वम् २। २। ३०।

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक् प्रयोगः। सुपो लुक्।

१-अस्वपदविग्रहः=न स्वपदैर्विग्रहो यत्र। २-समासविधायकसूत्रे इत्यर्थः।

(वा०-इव के साथ समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता है)।

इति केवलसमासः।

अथ अव्ययीभावः

९०७-'अव्ययीभाव' इसका तत्पुरुष तक अधिकार है।

९०८-विभक्त्यादि अर्थों में अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है वह अव्ययीभाव कहलाता है।

९०९-समास शास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट की उपसर्जन संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९१०-समास में उपसर्जन का पूर्वनिपात होता है।

[१]एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। (३७१) अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो [२]लुक्। अधिहरि।

९११ अव्ययीभावश्च २।४।१८।

अयं नपुंसकं स्यात्।

९१२ नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २।४।८३।

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना आदेशः स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम्[३]।

९१३ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४।

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। कृष्णस्य समीपम् [४]उपकृष्णम्, उपकृष्णेन। मद्राणां समृधिः-सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा संप्रति न युज्यते-इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सा-पदार्थानतिवृत्ति-सादृश्यानि [५]यथार्थाः। रूपस्य

१-सुब्विशिष्टस्यैव समासत्वेन प्रातिपदिकसंज्ञाविधानात् लुका सुपो लुप्तत्वेन कथमत्र प्रातिपदिकत्वं ततः सुबुत्पत्तिश्च, अत आह-एकदेशेति। २-'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण। ३-अधिगोपम्-'गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नधिगोपम्'। अलौकिकविग्रहे 'गोपा ङि अधि' इति स्थिते 'अव्ययं विभक्ति' इत्यादिना समासे कृते 'अधि' इत्यस्य 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्युपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति पूर्वनिपाते समासत्वेन प्रातिपदिकत्वात् सुब्लुकि 'अव्ययीभावश्च' इति नपुंसकत्वे 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वे सौ अव्ययत्वेन सौर्लुकि प्राप्ते 'नाव्ययीभावादम्' इत्यादिना सोरमादेशे 'अधिगोपम्' इति रूपम्। ४-उपकृष्णम्-'कृष्ण+ङस् उप' इत्यलौकिकविग्रहे 'अव्ययं विभक्ति'-इत्यादिना समासे उपसर्जनसंज्ञायां पूर्वनिपाते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि 'उपकृष्ण' इत्यस्मात् 'टा' विभक्तौ 'तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्' इत्यमादेशे 'उपकृष्णम्' इति रूपम्। ५-'यथा शब्दस्यार्था इत्यर्थः।

९११-अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग में होता है।

९१२-अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता, किन्तु उसको अमादेश हो जाता है पञ्चमी विभक्ति को छोड़ कर।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९१३-अदन्त अव्ययीभाव से तृतीया और सप्तमी को बहुलता से अम्भाव होता है

योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

९१४ अव्ययीभावे चाकाले ६ । ३ । १८ ।

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं [1]सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् । सदृशः सख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः—सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते–साग्नि ।

९१५ नदीभिश्च २ । १ । २० ।

[2]नदीभिः सह सङ्ख्या समस्यते । (समाहारे चायमिष्यते) [3]पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ।

९१६ तद्धिताः ४ । १ । ७६ ।

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

९१७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५ । ४ । १०७ ।

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । (जराया जरस्) [4]उपजरसमित्यादि ।

१—सहरि—'हरेः सादृश्यं सहरि' । 'हरि+ङस् सह' इत्यलौकिकविग्रहे सादृश्यार्थकसहशब्देन 'अव्ययं विभक्ति..' इत्यादिना समासे उपसर्जनत्वे पूर्वनिपाते ङसो लुकि 'अव्ययीभावे चाकाले' इति 'सह' शब्दस्य सादेशे प्रातिपदिकत्वेन सौ अव्ययत्वात् तस्य लुकि 'सहरि' इति रूपम् । २—नदीवाचकैः । ३—पञ्चगङ्गम्—'पञ्चानां गङ्गानां समाहारः' 'पञ्चन्+आम् गङ्गा+आम्' इत्यलौकिकविग्रहे समाहारेऽर्थे 'नदीभिश्चे'ति समासे सुब्लुकि नलोपे उपसर्जनत्वात् 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति'ति 'गङ्गा' शब्दस्य ह्रस्वे समुदितात् प्रातिपदिकत्वेन सौ अव्ययत्वेन प्राप्तं सुब्लुकं 'नाव्ययीभावाद ' इत्यादिना निषिध्य सोरमि पूर्वरूपे सिध्यति रूपं 'पञ्चगङ्गम्' इति । ४—उपजरसम्—

९१४—सह को स आदेश होता है अव्ययीभाव में काल को छोड़ कर ।

९१५—संख्यावाचक शब्द नदीवाचक समर्थ सुबन्तों के साथ समस्त होते हैं ।

(वा०—यह समाहार में ही इष्ट है)

९१६—पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक 'तद्धिताः' का अधिकार जाता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९१७—अव्ययीभाव में शरदादिगणपठित शब्दों में समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

९१८ अनश्च ५ । ४ । १०८ ।

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात् ।

९१९ नस्तद्धिते ६ । ४ । १४४ ।

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते । उपराजम् । [1]अध्यात्मम् ।

९२० नपुंसकादन्यतरस्याम् ५ । ४ । १०९ ।

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । [2]उपचर्मम्, उपचर्म ।

९२१ झयः ५ । ४ । १११ ।

झयन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपसमिधम्, उपसमित् ।

इत्यव्ययीभावः ।

अथ तत्पुरुषः

९२२ तत्पुरुषः २ । १ । २२ ।

'जरायाः समीपम् उपजरसम्' । 'जरा + ङस् उप' इत्यलौकिकविग्रहे—'अव्ययं विभक्ती'ति सूत्रेण समासे प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि उपसर्जनत्वेनोपशब्दस्य पूर्वनिपाते सोरमि पूर्वरूपे 'उपजरसम्' इति रूपं सिध्यति ।

अध्यात्मम्—आत्मनीत्यध्यात्मम् 'आतमन् + ङि अधि' इत्यलौकिकविग्रहे 'अव्ययं विभक्ति...' इत्यादिना समासे 'अधि' इत्यस्योपसर्जनत्वे पूर्वनिपाते समासत्वेन प्रातिपदिकसंज्ञायां सुब्लुकि यणि 'अध्यात्मन्' इत्यस्मात् 'अनश्चे'ति 'टच्' प्रत्यये 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे सौ 'नाव्ययीभावादि' ति सोरमि पूर्वरूपे सिध्यति रूपम् 'अध्यात्मम्' इति ।

२—टच्पक्षे टिलोपे रूपम् । अदन्तत्वात् '९१२ नाव्ययीभावादिति'—'अम्' ।

---

९१ —अन्नन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय होता है ।

९१९—नान्त भसंज्ञक की टि का लोप होता है तद्धित परे रहते ।

९२०— अनन्त जो क्लीब, तदन्त अव्ययीभाव से टच् होता है विकल्प से ।

९२१—झयन्त अव्ययीभाव से टच् होता है । इत्यव्ययीभावः ।

अथ तत्पुरुषः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९२२—'शेषो बहुव्रीहिः' सूत्र से पूर्व तक 'तत्पुरुषः' का अधिकार जाता है ।

अधिकारोऽयम्। प्राग्बहुव्रीहेः।

६२३ द्विगुश्च २। १। २३।

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।

६२४ [1]द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः २।१।२४।

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः—[2]कृष्णश्रितः, इत्यादि।

६२५ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २। १। ३०।

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृत-गुणवचनेनार्थेन च सह वा [3] प्राग्वत्। शङ्कुलया खण्डः [4]शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः। तत्कृतेति किम्-अक्ष्णा [5]काणः।

६२६ कर्तृकरणे कृता बहुलम् २। १। ३२।

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन [6]बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो [7]हरित्रातः नखैर्भिन्नो नखभिन्नः। (कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्याऽपि ग्रहणम्)। नखनिर्भिन्नः।

१—द्वितीया हि प्रत्ययरूपा, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्, तदाह—द्वितीयान्तम्। २-कृष्णश्रितः—'कृष्ण+अम् श्रित+सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'द्वितीया श्रितातीतः…' इत्यादिना समासे प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि पुनः सौ सो रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'कृष्णश्रितः' इति। ३—समस्यते इत्यर्थः। ४—शङ्कुलाखण्डः—'शङ्कुला+टा खण्ड+सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'तृतीया तत्कृतार्थेन' इत्यादिना समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि पुनः सौ रुत्वे विसर्गे 'शङ्कुलाखण्ड' इति। ५—नहि अक्ष्णा काणत्वं कृतम्, किन्तु पूर्वकृतदुष्कृतकर्मणैव। 'येनाङ्गविकारः' इति सूत्रेण तृतीया। ६—बहुलग्रहणात् क्वचिन्न समासः, सत्यपि समासनिमित्ते। ७—हरित्रातः-'हरि+टा त्रात+सु' इत्यलौकिकविग्रहे

६२३—द्विगुकी भी तत्पुरुष संज्ञा होती है।

६२४—द्वितीयान्त का श्रितादि प्रकृतिक सुबन्त समर्थ के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

६२५—तृतीयान्त का तृतीयान्तार्थ से किए (कृत) गुण वचन के साथ और अर्थ शब्द के साथ समास होता है।

६२६—कर्ता में और करण में तृतीया का कृदन्त के साथ बहुलता से समास होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६२७ चतुर्थी तदार्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः २ । १ । ३६ ।

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना, अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु [1] यूपदारु । (तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः) तेनेह न [2] रन्धनाय स्थाली । (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्) द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

६२८ पञ्चमी भयेन २ । १ । ३७ ।

चोराद्भयं [3] चोरभयम् ।

६२९ स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छ्राणि [4] क्तेन २ । १ । ३९ ।

६३० पञ्चम्याः [5] स्तोकादिभ्यः ६ । ३ । २ ।

'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' इति समासे प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि पुनः सौ 'हरित्रातः' इति सिध्यति ।

१—यूपदारु--'यूप + ङे दारु + सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'चतुर्थी—तदर्थार्थ...' इत्यादिना वैकल्पिके समासे प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि समुदायात् पुनः सौ नपुंसकत्वात् सोर्लुकि सिध्यति रूपं 'यूपदारु' इति । २--नात्र स्थाल्या विकृतिभावः (विपरिणामः) । ३—चोरभयम् 'चोर + ङसि भय सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'पञ्चमी भयेन' इति सूत्रेण समासे प्रादिपदिकत्वेन सुपो लुकि समुदायात् पुनः सौ नपुंसकत्वात् सोरमि पूर्वरूपे 'चोरभयम्' इति रूपम् । ४ क्तेन = क्तप्रत्ययान्तेनेत्यर्थः । ५ - स्तोकादिशब्देभ्यः पञ्चम्या अलुक् उत्तरपदे परतः, 'उत्तरपद' शब्दः समासस्य चरमावयवे रूढः ।

(वा०—कृत् के ग्रहण में गति-कारकपूर्वक शब्दों का भी ग्रहण होता है ।)

६२७--चतुर्थ्यन्तार्थ के लिये जो पदार्थ, तद्वाचक शब्द के साथ और अर्थादियों के साथ चतुर्थ्यन्त का समास होता है विकल्प से ।

वा०--(१) तदर्थ से प्रकृति-विकृतिभाव ही लिया जाता है । (२) अर्थ के साथ नित्य समास होता है और विशेष्यलिङ्गता भी होती है ।)

६२८--पञ्चम्यन्त भयवाचक शब्द सुबन्त समर्थ के साथ समस्त होते हैं विकल्प से ।

६२९--स्तोकाद्यर्थक और कृच्छ्रप्रकृतिक पञ्चम्यन्त क्तान्तप्रकृतिक के साथ समस्त होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६३०—स्तोकादि से परे पञ्चमी का अलुक् होता है उत्तरपद परे रहते ।

अलुगुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

९३१ [1]षष्ठी २। २। ३७।

सुबन्तेन प्राग्वत्। [2]राजपुरुषः।

९३२ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे। २। २। १।

अवयविना सह [3]पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासापवादः। पूर्वं [4]कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकाधिकरणे किम् [5]पूर्वश्छात्राणाम्।

९३३ अर्धं नपुंसकम् २। २। २।

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः, [6]अर्धपिप्पली।

९३४ सप्तमी शौण्डैः २। १। ४०।

१–षष्ठ्यन्तं समर्थेन सुबन्तेन समस्यते–इत्यर्थः। २–राजपुरुषः–'राजन् + ङस् पुरुष – सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'षष्ठी' इत्यनेन समासे प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि अन्तर्वर्तिनीं लुप्तां विभक्तिमाश्रित्य पदत्वान्नलोपे समुदायात् पुनः सौ रुत्वे विसर्गे 'राजपुरुषः' इति रूपं सिध्यति। ३–अवयववाचकाः शब्दाः इत्यर्थः। ४–पूर्वकायः, इत्यादौ 'षष्ठी' इति समासप्राप्तावपि सूत्रान्तरविधानं पूर्वादिशब्दस्य पूर्वनिपातार्थम्। अन्यथा 'षष्ठी' इति समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टत्वेन षष्ठ्यन्तस्य (कायादिशब्दस्य) पूर्वनिपातः स्यात्। ५–छात्राणां बहुत्वेन नात्राधिकरणैकत्वमिति न समासः। ६–पिप्पलीशब्दस्य षष्ठ्यन्तत्वात् 'एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्' इति उपसर्जनत्वाभावेन गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति न ह्रस्वः।

९३१–षष्ठ्यन्त का प्रातिपदिक सुबन्त के साथ समास होता है विकल्प से।

९३२–अवयवी के साथ पूर्वादि शब्द समस्त होते हैं यदि वह अवयवी एकत्व संख्या विशिष्ट हो।

९३३–नपुंसकलिंग में नित्य वर्तमान समांशवाची अर्ध शब्द अवयविवाचक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होता है विकल्प से।

९३४–सप्तम्यन्त शब्द शौण्डादिक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः-अक्षशौण्डः। इत्यादि द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।

९३५ दिक्संख्ये संज्ञायाम् २ । १ । ५० ।

[1]संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। [2]पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। तेनेह न-उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः।

९३६ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ ।

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत् पूर्वस्यां शालायां भवः पूर्वशाल इति, समासे जाते (सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः)।

९३७ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ४ । २ । १० ।

अस्माद्भवार्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्।

९३८ तद्धितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ ।

ञिति णिति च तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। (२३६) यस्येति च। [3]पौर्वशालः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्)।

१–'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इत्यनेन सिद्धावपि विधिरयं संज्ञायामेवेति नियमाय। २–पूर्वः + इषुकामशमी, इति विग्रहः। 'इषुकामशमी' इति ग्रामविशेषस्य संज्ञा। ३–पौर्वशालः–'पूर्वा + ङि शाला + ङि' इति अलौकिकविग्रहे 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चे'ति समासे–प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि सर्वनाम्नः पूर्वा शब्दस्य पुंवद्भावे 'दिक्-

---

९३५–दिग्वाचक और संख्यावाचक शब्दों का केवल संज्ञा में ही तत्पुरुष समास होता है।

९३६–तद्धितार्थ के विषय में उत्तरपद परे रहते और समाहार के वाच्य होने पर दिग्वाचक और संख्यावाचक शब्द समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होते हैं।

९३७–दिक्पूर्वपद समास से भवार्थ में ञ प्रत्यय होता है असंज्ञा में।

९३८–ञित्, णित् तद्धित परे रहते अचों के आदि अच् को वृद्धि होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वा०–उत्तरपद परे रहते द्वन्द्व और तत्पुरुष समास नित्य होता है।)

६३९ गोरतद्धितलुकि ५ । ४ । ९२ ।

गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। [1]पञ्चगवधनः।

९४० तत्पुरुषः समानाधिकरणः [2]कर्मधारयः २ । १ । ४२ ।

९४१ संख्यापूर्वो द्विगुः २ । १ । ५२ ।

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ।

९४२ द्विगुरेकवचनम् २ । ४ । १ ।

द्विग्वर्थः समाहार [3]एकवत् स्यात् ।

९४३ स नपुंसकम् २ । १ । ५७ ।

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्। पञ्चानां गवां समाहारः—पञ्चगवम्[4] ।

पूर्वपदादि'ति सूत्रेण ण प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'यस्येतिचे' त्याकारलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धौ पुनः सौ रुत्वे विसर्गे 'पौर्वशालः' इति रूपं सिध्यति ।

१–**पञ्चगवधनः**– 'पञ्चन् + जस् गो + जस् धन + सु' इत्यलौकिकविग्रहे त्रिपदे बहुव्रीहौ मध्ये पञ्चन्-गोशब्दयोः 'तद्धितार्थे' ति वा समासे प्राप्ते 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' इति नित्ये समासे प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि अन्तर्वर्त्तिनीं लुप्तां विभक्तिमाश्रित्य पदत्वेन नकारलोपे 'पञ्चगो' इत्यस्मात् 'गोरद्धितलुकि' इति 'टच्' प्रत्यये अनुबन्धलोपे 'ओ' कारस्यावादेशे 'पञ्चगवधन' इति समुदायात् पुनः सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति 'पञ्चगवधनः' इति रूपम् । २–समानविभक्त्यन्तपदविषयकस्तत्पुरुषः 'कर्मधारय'–संज्ञक इत्यर्थः । ३–एकवचनान्त 'इत्यर्थः । ४–**पञ्चगवम्**–'पञ्चन् + आम् गो + आम्' इत्यलौकिकविग्रहे समाहारेऽर्थे 'तद्धितार्थोत्तरपदे....' इत्यादिना समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि अन्तर्वर्त्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वे नलोपे 'गोरतद्धितलुकि' इति

९३९–गोशब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, तद्धित के लुक् में नहीं ।

९४०–समानाधिकरण तत्पुरुष की कर्मधारय संज्ञा होती है ।

९४१–संख्यापूर्व तत्पुरुष की द्विगु संज्ञा होती है ।

©C-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९४२–द्विग्वर्थ समाहार एकवत् होता है ।

९४३–समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक होते हैं ।

९४४ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २ । १ । ५७ ।

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं-नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम् । कृष्णसर्पः । क्वचिन्न-रामो जामदग्न्यः ।

९४५ उपमानानि [1]सामान्यवचनैः २ । १ । ५५ ।

घन [2]इव श्यामो[3] घनश्यामः । शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् । शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणो[4] देवब्राह्मणः ।

९४६ नञ् २ । २ । ६ ।

नञ् सुपा सह समस्यते ।

९४७ नलोपो नञः ६ । ३ । ७३ ।

नञो नस्य लोप उत्तरपदे । न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ।

'टच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपेऽवादेशे संख्यापूर्वत्वाद् द्विगुसंज्ञायां 'द्विगुरेकवचनम्' इत्येकवद्भावे 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकत्वे सोरमि पूर्वरूपे 'पञ्चगवम्' इति रूपम् ।

१–उपमानवाचकानि समानधर्मवाचकैः समस्यन्ते, इत्यर्थः । २–इवशब्दोपादानं स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थम् । ३–घनश्यामः– 'घन इव श्यामः' इति विग्रहः । 'घन+सु श्याम+सु' इत्यत्र 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि समुदायात् पुनः सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'घनश्यामः' इति । (मेघवत् श्याम इत्यर्थः) । ४–देवब्राह्मणः–'देवपूजक + सु ब्राह्मण + सु' इति स्थितौ 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपे समुदायात् सौ रुत्वे विसर्गे च 'देवब्राह्मणः' इति रूपम् ।

९४४–भेदक (विशेषण) समानाधिकरण भेद्य (विशेष्य) के साथ बाहुल्य से समस्त होता है ।

९४५–उपमानवाचक शब्दों का समान धर्मवाचक शब्दों के साथ समास होता है । (वा० शाकपार्थिवादि की सिद्धि के लिये उत्तरपद का लोप होता है) ।

९४६–'नञ्' समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९४७-नञ् के न का लोप होता है उत्तरपद परे रहते ।

९४८ तस्मान्नुडचि ६ । ३ । ७४ ।

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्। [1]अनश्वः । नैकधे-त्यादौ तु 'न'-शब्देन (६०६) सह सुप्सुपेति समासः ।

९४९ कुगतिप्रादयः २ । १ । १८ ।

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः ।

९५० [2]ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च १ । ४ । ६१ ।

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । [3]शुक्लीकृत्य । [4]पटपटाकृत्य । सुपुरुषः । (प्रादयो गताद्यर्थे [5]प्रथमया) प्रगत आचार्यः--प्राचार्यः (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे [6]द्वितीयया) अतिक्रान्तो माला-मिति विग्रहे--

९५१ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १ । २ । ४४ ।

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः ।

९५२ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १ । २ । ४८ ।

१—अनश्वः —'न अश्वः' इति विग्रहे 'अश्व + सु न' इत्यत्र 'नञ' इति समासे 'न' इत्यस्योपसर्जनत्वेन पूर्वनिपाते प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि 'न लोपो नञः' इति नलोपे 'अ अश्व' इति जाते 'तस्मान्नुडचि' इति नुडागमेऽनुबन्धलोपे सौ रुत्वे विसर्गे 'अनश्वः' इति रूपं सिध्यति । २—ऊरी, उररी, तन्त्री इत्यादयः । ३ – अशुक्लं शुक्लं कृत्वा इति विग्रहः--च्व्यन्तमिदम् । ४—डाजन्तम् । ५—प्रादयः प्रथमान्तेन समर्थेन गत इत्याद्यर्थेषु समस्यन्ते, इत्यर्थः । ६—द्वितीयान्तेनेत्यर्थः ।

९४७--लुप्तनकार नञ् से उत्तर अजादि शब्द को नुट् का आगम होता है ।

९४९—कु और गतिसंज्ञक प्रादि समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होते हैं ।

९५० ऊर्यादि च्व्यन्त और डाजन्त की गति संज्ञा होती है क्रिया के योग में ।

(वा०—(१) प्रादि गत्याद्यर्थ में प्रथमान्त के साथ समस्त होते हैं । (२) अत्यादि क्रान्ताद्यर्थ में द्वितीयान्त के साथ समस्त होते हैं ।)

९५१ – विग्रह में नियतविभक्तिक की उपसर्जन संज्ञा होती है पर उसका पूर्वनिपात नहीं होता । CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९५२—उपसर्जन जो गोशब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त, तदन्तप्रातिपदिक को ह्रस्व होता है ।

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। [1] अतिमालः। (अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया) अवक्रुष्टः कोकिलया—अवकोकिलः। (पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या) परिग्लानोऽध्ययनाय—पर्यध्ययनः (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या) निष्क्रान्तः [2]कौशाम्ब्याः—निष्कौशाम्बिः।

९५३ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३। १। ९२।

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्।

९५४ उपपदमतिङ् २। २। १९।

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति [3]कुम्भकारः। अतिङ् किम्—मा भवान् भूत्, माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्। [4] गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। [5]व्याघ्री। [6] अश्वक्रीती। [7]कच्छपीत्यादि।

१—अतिमालः —'माला + अम् अति' इत्यलौकिकविग्रहे 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति वार्त्तिकेन समासे 'अति' इत्यस्योपसर्जनसंज्ञा पूर्वनिपाते सुब्लुकि 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इति मालेत्यस्योपसर्जनत्वे 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वे समुदितात् सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'अतिमालः' इति। २—कौशाम्बी = नगरी विशेषः। ३—कुम्भकारः—'कुम्भं करोति' इत्यर्थे कर्मण्यणि वृद्धौ 'कुम्भ + अस् कार' इति षष्ठ्यन्तेनालौकिकविग्रहे 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' इति कुम्भशब्दस्योपपदसंज्ञायाम् 'उपपदमतिङ्' इति समासे प्रातिपदिकत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे 'कुम्भकारः' इति सिध्यति। ४—इयं परिभाषा। ५—व्याजिघ्रतीति व्याघ्री—'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः। व्याङः (सुबुत्पत्तेः प्राक्) घ्रशब्देन गतिसमासः, ततः स्त्रियां जातिलक्षणे ङीष्। अन्यथा न स्यात्; (सुबन्तेर समासे तु) केवलस्य 'घ्र' शब्दस्य जातिवाचकत्वाऽभावात् जातिलक्षणे ङीष न स्यात्; किन्तु टाप् स्यात्। ६—अश्वेन क्रीता, इति विग्रहः, 'क्रीतात्करणपूर्वात्' इति ङीष्। अत्रापि सुबुत्पत्तेः प्रागेव समासः। सुबन्तेन समासे तु टाप् स्यात्; नतु ङीष्। ७—कच्छेन पिबतीति कच्छपी, 'कः' प्रत्ययः जातिलक्षणे ङीष्, व्याघ्रीवत्।

९५३—सप्तम्यन्त पद 'कर्मणि' इत्यादि में वाच्य रूप से स्थित कुम्भादि पद की उपपद संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९५४—उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है।

९५५ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः ५ । ४ । ८६ ।

संख्याऽव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम् । निर्गतमङ्गुलिभ्यो-निरङ्गुलम् ।

९५६ अहः-सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः ५ । ४ । ८७ ।

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात् संख्याऽव्ययादेः अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ।

९५७ रात्राह्नाहाः पुंसि २ । ४ । २९ ।

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः[१] । [२]सर्वरात्रः । संख्यातरात्रः । संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ।

९५८ राजाहःसखिभ्यष्टच् ५ । ४ । ९१ ।

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् । [३]परमराजः ।

९५९ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६ । ३ । ४६ ।

१-अहोरात्रः-अहश्च रात्रिश्चेत्यर्थे-'अहन्+सु रात्रि+सु' इति विग्रहे द्वन्द्वसमासे-सुब्लुकि 'अहः सर्वैकदेशः' इत्यादिनाऽच्प्रत्यये भत्वे 'यस्येति च' इतीकारलोपे परवल्लिङ्गं बाधित्वा 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति पुंस्त्वे 'रूपरात्रिरथन्तरेषु' इति नस्य रुत्वे 'हशि चेत्युत्वे गुणे समुदायाद विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'अहोरात्रः' इति । २—सर्वा रात्र्यः, सङ्ख्याता रात्र्यः, इति विग्रहः । ३—एवं धर्मराजः, भोजराजः, तथा-उत्तमाहः, परमाहः, पुण्याहम्, एवं कृष्णसखः, परमसखः, विद्वत्सखः इत्यादि ।

९५५—संख्या और अव्यय हैं आदि में जिसके, ऐसे अंगुली-शब्दान्त तत्पुरुष से टच प्रत्यय होता है ।

९५६—अहन्, सर्व, एकदेश, संख्या और पुण्य से परे रात्रि शब्द से अच् प्रत्यय होता है । चकार से संख्याऽव्ययादिपूर्वक रात्रि शब्द से भी ।

९५७—रात्र, अह्न और अह ये हैं अन्त में जिस तत्पुरुष और द्वन्द्व के, वे पुंल्लिंग होते हैं ।

९५८ राजन्, अहन् और सखि शब्द ये हैं अन्त में जिसके, ऐसे तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है ।

९५९—महत् शब्द को आकार अन्तादेश होता है समानाधिकरण उत्तरपद परे रहते और जातीयर् प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। [1]महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्। महाप्रकारो = महाजातीयः।

९६० द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६। ३। ४७।

आत् स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः।

९६१ परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः २। ४। २६।

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। [2]अर्धपिप्पली (द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो [3]वाच्यः) पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः = पुरोडाशः।

९६२ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २। २। ४।

समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः अलं कुमार्यै [4]अलंकुमारिः। [5]अत एव ज्ञापकात् समासः। निष्कौशाम्बिः।

१–महाराजः–महांश्चासौ राजा=महाराजः 'महत्+सु राजन्+सु' इत्यलौकिकविग्रहे सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः इति सूत्रेण समासे सुब्लुकि 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति टचि भत्वे 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे 'आन्महतः....' इत्यादिना तकारस्यात्वे सवर्णदीर्घे सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'महाराजः' इति। २–अर्धपिप्पली–अर्धं पिप्पल्या–इति विग्रहे 'अर्ध+सु पिप्पली+ङस्' इत्यत्र 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासे सुपो लुकि 'परवल्लिङ्गं..' इत्यादि स्त्रीत्वे सौ तस्य लोपे 'अर्धपिप्पली' इति रूपं सिद्धम्। ३–परवल्लिङ्गस्येति शेषः। ४–अलंकुमारिः 'कुमारी+ङे अलम्' इति विग्रहे 'द्विगुप्राप्तापन्ना....' इत्यादि प्रातिषेधसामर्थ्यात् समासे सुब्लुकि परवल्लिङ्गत्वनिषेधे 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इति 'कुमारी' शब्दस्योपसर्जनत्वे 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये' ति ह्रस्वे सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'अलंकुमारिः' इति। ५–द्विगुप्राप्तापन्नेत्यादिप्रतिषेधादित्यर्थः।

९६०–द्वि और अष्टन् शब्द को आत्व होता है संख्या परे रहते, बहुव्रीहि और अशीति शब्द परे रहते नहीं।

९६१–द्वन्द्व और तत्पुरुष में पर पद के समान लिंग होता है।

(वा०–द्विगु, प्राप्त, आपन्न, अलंपूर्व और गति समास में पर पद के समान लिंग नहीं होता।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९६२–प्राप्त और आपन्न द्वितीयान्त के साथ समस्त होते हैं, अकार अन्तादेश भी होता है।

९६३ अर्धर्चाः पुंसि च २ । ४ । ३१ ।

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः, अर्धर्चम् । एवं ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः । सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ।

इति तत्पुरुषः ।

अथ बहुव्रीहिः

९६४ [1]शेषो बहुव्रीहिः २ । २ । २३ ।

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ।

९६५ अनेकमन्यपदार्थे २ । २ । २४ ।

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ।

९६६ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २ । २ । ३५ ।

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । [2]अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः ।

९६७ हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ६ । ३ । ९ ।

१–उक्तादन्यः शेषः, द्वितीया श्रितेत्यादिना (शास्त्रेण) यस्य त्रिकस्य (विभक्तेः) विशिष्यसमासो नोक्तः स शेषः, प्रथमान्तः इत्यर्थः । २–प्रथमान्तानामेव बहुव्रीहिरिति सप्तम्यन्तस्य तत्र सम्भव एव नास्तीति सप्तम्यन्तस्य 'सप्तमी विशेषणे....' इति सूत्रे पूर्वनिपातविधानं व्यर्थं सद् ज्ञापयति 'भवति व्यधिकरणपदोऽपि बहुव्रीहिः क्वचिदिति' । यथा—कण्ठेकालः । शरेभ्यो जन्म यस्य स शरजन्मा = षडाननः ।

९६३–अर्धर्चादिगणपठित शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में होते हैं ।

इति तत्पुरुषः ।

अथ बहुव्रीहिः

९६४–'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र तक बहुव्रीहि का अधिकार जाता है ।

९६५–अनेक प्रथमान्त अन्य पद के अर्थ में वर्तमान विकल्प से समस्त होते हैं, वह समास बहुव्रीहि कहलाता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९६६–सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पूर्वनिपात होता है ।

९६७–हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् होता है ।

हलन्ताददन्तात् सप्तम्या अलुक्। [1]कण्ठेकालः। प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। [3]ऊढरथोऽनड्वान्। [2]उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना = स्थाली। [4]पीताम्बरो = हरिः। वीरपुरुषको = ग्रामः। (प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः)। प्रपतितपर्णः [5]प्रपर्णः। (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः) अविद्यमानपुत्रोऽपुत्रः[6]।

९६८ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६ । ३ । ३४ ।

१–कण्ठेकाल.–कण्ठे कालो यस्येति विग्रहे 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' इति सप्तम्यन्तस्य समासे पूर्वनिपातविधानात् ज्ञापनाद् 'अनेकमन्यपदार्थे' इति व्यधिकरणे बहुव्रीहिसमासे 'कण्ठे' इत्यस्य पूर्वनिपाते च 'हलदन्तात् सप्तम्याः' इति सप्तम्या अलुकि प्रातिपदिकत्वेन सोर्लुकि समुदायात् पुनः सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'कण्ठेकालः' इति। २–ऊढो रथो येन। ३–उपहृतः पशुर्यस्मै, उद्धृत ओदनो यस्याः, पीतानि अम्बराणि यस्य, वीराः पुरुषा यस्मिन्, इति विग्रहाः। ४–पीताम्बरः–पीतानि अम्बराणि यस्येति विग्रहे 'पीत+जस् अम्बर+जस्' इति स्थितौ 'अनेकमन्यपदार्थे' इति बहुव्रीहौ समासे सुब्लुकि प्रातिपदिकत्वेन पुनः सौ रुत्वे विसर्गे च 'पीताम्बरः' इति रूपम्। ५–प्रपर्णः–प्रशब्दस्य पतितशब्देन 'प्रादयो गताद्यर्थे' इति समासे सिध्यति रूपं 'प्रपतितम्' इति। 'प्रपतित+सु पर्ण+सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्य ' इत्यादिना समासे प्रपतितेत्यत्र धातुजस्य 'पतित' इत्यस्योत्तरपदस्य लोपे च पुनः सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'प्रपर्णः' इति। ६–अपुत्रः–अविद्यमानः पुत्रो यस्येत्यत्र 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वाचोत्तरपदलोपः' इत्यनेन वार्त्तिकेन समासे सति 'विद्यमान' शब्दस्योत्तरपदस्य लोपे सति प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि पुनः समुदायात् सौ विभक्तिकार्ये 'अपुत्रः' इति रूपम्।

(वा०–(१) प्रादि से परे धातुज का अन्य पद के साथ समास होता है और उत्तरपद का लोप होता है विकल्प से। (२) नञ से परे अस्त्यर्थवाचक शब्द का अन्य पद के साथ समास होता है और उत्तरपद का लोप होता है विकल्प से)।

९६८–प्रवृत्तिनिमित्त के एक होने पर भाषितपुंस्क से परे ऊङ् के अभाववाले स्त्रीवाचक शब्द के पुंवाचक के समान रूप होते हैं, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग, उत्तरपद परे रहते, पूरणीप्रियादि परे रहते नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

उक्त पुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिर्निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे, न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। (९५२) गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। [1]चित्रगुः। [2]रूपवद्भार्यः। अनूङ्किम्-[3]वामोरूभार्यः।

९६९ अप्पूरणीप्रमाण्योः ५ । ४ । ११६ ।

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः [4]कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स [5]स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्-कल्याणीप्रियः, इत्यादि।

९७० बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५ । ४ । ११३ ।

स्वाङ्गवाचि सक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। [6]दीर्घसक्थः। [7]जल-

---

१-चित्रगुः-चित्रा गावो यस्येत्यत्र 'चित्रा + जस् गो + जस्' इति स्थिते 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुब्लुकि 'स्त्रियाः पुंवद्....' इत्यादिना चित्रेति शब्दस्य पुंवद्भावे टापो निवृत्तौ गोशब्दस्य उपसर्जनत्वे 'गोस्त्रियो....' इति ह्रस्वे 'चत्रगु' इत्यस्मात् समस्तात् पुनः सो रुत्वे विसर्गे च सिध्यति रूपं 'चित्रगुः' इति। -रूपवती भार्या यस्येति विग्रहः। ३-अत्र-ऊकारस्य न ह्रस्वः। ४-अत्र 'पञ्चमी' इति पूरणार्थप्रत्ययान्तत्वात् न पुंवद्भावः। अप्-प्रत्यये-'यस्येति च' इति इकारलोपः ५-स्त्रीप्रमाणः-स्त्री प्रमाणी यस्येति लौकिकविग्रहे 'स्त्री' शब्दस्य 'स्त्रियाः पुंवद् इति पुंवद्भावे प्राप्ते 'अप्पूरणी प्रियादिषु' इति तन्निषेधेऽन्यपदार्थस्य पुंस्त्वेन 'प्रमाणी' इत्यत्र स्त्रीप्रत्ययस्य निवृत्तौ स्त्रीप्रमाण' इत्यस्मात् समुदायात्सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'स्त्रीप्रमाणः' इति। ६-यस्येति च' इति इकारलोपः ७-जलजाक्षी-जलजे (इव) अक्षिणी यस्याः 'जलज + औ अक्षि + औ' इति स्थितौ अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुपो लुकि 'जलजाक्षि' इत्यस्मात् 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः ..' इत्यादिना 'षच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'यस्येति च' तीकारलोपे षचः षित्वात् स्त्रियां ङीषि प्रत्यये सौ तल्लोपे च रूपं 'जलजाक्षी' इति।

---

९६९ पूरणार्थक प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिंग, तदन्त से और प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि में अप् प्रत्यय होता है।

९७०—स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्ष्यन्त बहुव्रीहि से षच् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाती। स्वाङ्गात् किम्—[1]दीर्घसक्थि = शकटम्, स्थूलाक्षा=वेणुयष्टिः। (९९१) अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

९७१ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५।

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ [2]द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

९७२ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७। अप् स्यात्
अन्तर्लोमः बहिर्लोमः

९७३ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य [4]पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्—हस्तिपादः, कुसूलपादः।

९७४ संख्या-सु-पूर्वस्य ५।४।१४०।

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।

९७५ उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८।

लोपः स्यात्। [5]उत्काकुत्। [6]विकाकुत्

९७५ पूर्णाद् विभाषा ५।४।१४९।

१—प्राणिस्थस्यैवाङ्गसंज्ञेति न षच्। २—द्वौ मूर्धानौ यस्येति विग्रहः 'नस्तद्धिते' इत्यनेन टिलोपे द्विमूर्धः, एवं त्रिमूर्धः। अन्तर्लोमानि यस्येति विग्रहः 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः। एवं बहिर्लोमः। ४—अलोऽन्त्यस्येति तदन्तस्याकारस्य। ५—उद्गतं काकुदं = तालु यस्य। ४—विगतं काकुदं यस्येति विग्रहः।

९७१—द्वि-त्रि-शब्दपूर्वक मूर्धन् शब्दान्त से ष प्रत्यय होता है बहुव्रीहि समास में।

९९२—अन्तर् और बाहिर्-शब्दपूर्वक लोमन्-शब्दान्त से अप् प्रत्यय होता है बहुव्रीहि समास में।

९७३—हस्तादि से भिन्न उपमानवाचक शब्द से परे पादशब्द का लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

९७४—संख्या और सु-पूर्वक पाद शब्द का लोप होता है समासान्त बहुव्रीहि में।

९७५—उत् और वि-पूर्वक काकुद शब्द का लोप होता है बहुव्रीहि में।

९७६—पूर्ण-पूर्वक काकुद शब्द का लोप होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ।

९७७ सुहृद्-दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५ । ४ । १५० ।

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः ।

९७८ उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५ । ४ । १५१ ।

९७९ कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ ।

एभ्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः । इति सः । [1]व्यूढोरस्कः । [2]प्रियसर्पिष्कः ।

९८० निष्ठा २ । २ । ३६ ।

[3]निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । [4]युक्तयोगः ।

९८१ शेषाद् विभाषा ५ । ४ । १५४ ।

अनुक्तसमासान्तात् बहुव्रीहेः कप् वा । महायशस्कः । [5]महायशाः ।

इति बहुव्रीहिः ।

१-व्यूढोरस्कः-व्यूढम् उरो यस्येत्यत्र 'व्यूढ+सु उरस्+सु' इत्यत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुपो लुकि 'व्यूढोरस्' शब्दात् समस्तात् 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' इति 'कप्' प्रत्यये तस्य रुत्वे विसर्गे 'कस्कादिषु चे'ति विसर्गस्य सत्वे प्रातिपदिकत्वेन 'व्यूढोरस्क' शब्दात् सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'व्यूढोरस्क' इति । २-प्रियं सर्पिः (घृतं) यस्येति ५-उभयत्र 'आन्महत' इत्यात्वम् ।

९७७-सु, दुर् पूर्वक हृदय शब्द को हृद् आदेश होता है क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में ।

९७८-उरः प्रभृतिगणपठित शब्दों से कप् प्रत्यय होता है ।

९७९-कस्कादिगणपठित शब्दों में इण् से परे विसर्ग को ष होता है । अन्यत्र स होता है ।

९८०-निष्ठान्त का बहुव्रीहि में पूर्वनिपात होता है ।

९८१-अनुक्त समासान्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति बहुव्रीहिः ।

अथ द्वन्द्वः

९८२ चार्थे द्वन्द्वः २ । २ । २९ ।

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते; स द्वन्द्वः । [1]समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोग-समाहाराश्चार्थाः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः=समुच्चयः । 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात् समासो न । धवखदिरौ[2] छिन्धि इति मिलितानामन्वयः=इतरेतरयोगः । संज्ञापरिभाषम् (इति) समूहः = समाहारः ।

९८३ राजदन्तादिषु परम् २ । २ । ३१ ।

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा=[3]राजदन्तः । (धर्मादिष्वनियमः) अर्थधर्मौ, धर्मार्थावित्यादि ।

९८४ द्वन्द्वे घि २ । २ । ३२ ।

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च-हरिहरौ ।

९८५ [4]अजाद्यदन्तम् २ । २ । ३३ ।

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् ईशकृष्णौ ।

९८६ [5]अल्पाच्तरम् २ । २ । ३४ ।

१–एषु इतरेतरयोगे समाहारे च समासः, नान्यत्राऽसामर्थ्यात् । २–धवखदिरौ–अत्र 'छिन्धि' क्रियायाम् इतरेतरयोगरूपचकारार्थ 'धवश्च खदिरश्चेति' 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुब्लुकि समस्तादौ विभक्तौ वृद्धौ सिध्यति रूपं 'धवखदिरौ' इति । ३–अत्र 'षष्ठी' इति सूत्रेण समासः, दन्तशब्दस्य उपसर्जनत्वात् पूर्वनिपातो युक्त आसीत् । ४–अजादि अकारान्तम् । ५–इतरापेक्षया यस्मिन् न्यूना अचः स्युस्तस्य पूर्वप्रयोगः इत्यर्थः ।

अथ द्वन्द्वः

९८२–अनेक सुबन्त च के अर्थ में वर्तमान समस्त होते हैं विकल्प से ।

९८३–राजदन्तादिगणपठित पूर्वप्रयोग के योग्य शब्दों का पर प्रयोग हो ।

९८४–द्वन्द्व समास में अजादि अदन्त का पूर्वनिपात होता है ।

९८५–द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक का पूर्व निपात होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

९८६–द्वन्द्व समास में अल्पाच्तर का (थोड़े अच् वाले का) पूर्वनिपात होता है ।

शिवकेशवौ ।

९८७ पिता मात्रा १ । २ । ७० ।

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च [1]पितरौ, [2]मातापितरौ वा ।

९८८ द्वन्द्वश्च प्राणि-तूर्य-सेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ ।

एषां द्वन्द्व[3]एकवत् । [4]पाणिपादम् । [5]मार्दङ्गिकवैणविकम् । [6]रथिकाश्वारोहम् ।

९८९ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् [7]समाहारे ५ । ४ । १०६ ।

चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात् समाहारे । वाक् च त्वक् च-[8]वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम्-प्रावृट्शरदौ ।

इति द्वन्द्वः ।

अथ समासान्ताः

९९० ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५ । ४ । ७४ ।

१-पितरौ—माता च पिता चेत्यत्र 'मातृ+सु पितृ+सु' इति स्थितौ 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुपो लुकि 'पिता मात्रा' इति वा 'पितृ' शब्दस्यैकशेषे 'मातृ' शब्दस्य लोपे प्रातिपदिकत्वादौ विभक्तौ 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयो' रिति गुणे रपरत्वे 'पितरौ' इति रूपम् । एकशेषाभावपक्षे तु 'मातापितरौ' इति रूपम् । २—'पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते' इति अभ्यर्हितत्वात् (पूज्यत्वात्) मातृशब्दस्य पूर्वनिपातः, 'आनङ् ऋतः' इति आनङ् । ३-एकवचनान्तः । ४-प्राण्यङ्गोदाहरणम्—पाणी च पादौ चेति विग्रहः । ५-तूर्याङ्गोदाहरणम्-मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्चेति विग्रहः । ६-सेनाङ्गोदाहरणम्-रथिकाश्च-अश्वारोहाश्चेति विग्रहः । ७—दकार—षकार-हकारान्ताच्चेत्यर्थः । ८-वाक्त्वचम्-वाक् च त्वक् चेत्यत्र समाहारेऽर्थे 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुब्लुकि

९८७—मातृ शब्द के साथ कहा गया पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है ।

९८८—प्राणि-तूर्य-सेनाङ्ग का द्वन्द्व एकवत् होता है ।

९८९—चवर्गान्त, दान्त, षान्त, हान्त, समाहार द्वन्द्व से टच् प्रत्यय होता है ।

इति द्वन्द्वः ।

अथ समासान्ताः

९९०—ऋक्-पू-अप्-धू हैं अन्त में जिसके, ऐसे समास से अ प्रत्यय होता है, अक्षार्थक धू है अन्त में जिसके ऐसे को छोड़कर ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अ अनक्षे इति च्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य 'अ' प्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात्, अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। [1]अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। [2]विमलापं=सरः। [3]राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। [4]सखिपथः। [5]रम्यपथो देशः।

९९१ अक्ष्णोऽदर्शनात् ५। ४। ७६।

[6]अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्तः। गवामक्षीव—[7]गवाक्षः।

९९२ उपसर्गादध्वनः ५। ४। ८५।

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो=रथः।

९९३ न पूजनात् ५। ४। ६९।

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः। ([8]स्वतिभ्यामेव) सुराजा। अतिराजा।

इति समासान्ताः

अथ तद्धिताः

९९४ [9]समर्थानां प्रथमाद्वा ४। १। ८२।

एकवद्भावे 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्ताद्' इत्यादिना टचि नपुंसके सौ सोरमि सिध्यति रूपं 'वाक्त्वचम्' इति। इति द्वन्द्वः।

१-ऋचः अर्धम् इति विग्रहः 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासः। २-विमलाः = निर्मला आपो=जलानि यत्र। ३-राज्ञो धूः, राजधुरा, षष्ठीसमासः। ४-सख्युः पन्थाः= सखिपथः, भस्य टेर्लोपः। ५-रम्यः पन्था यस्मिन्। ६—चक्षुषोऽवाचकादित्यर्थः। ७-यस्येति च, इलोपः। ८-इष्टिरियम्। इति समासान्तप्रकरणम्।

९—समर्थानां मध्ये यः प्रथमः तस्मात्-अर्थात् सूत्रे प्रथमोच्चरित-शब्दबोध्यात् प्रत्ययो वा स्यादिति सूत्रार्थः।

९९१—चक्षुभिन्नवाचक अक्षि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

९९२—उपसर्गपूर्वक अध्वन् शब्द से अच् प्रत्यय होता है।

९९३—पूजार्थक से परे समासान्त प्रत्यय नहीं होते। इति समासान्ताः।

अथ तद्धितेषु साधारणप्रत्ययाः

९९४—इस सूत्र का प्राग्दिशो विभक्तिः से पूर्व तक अधिकार जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत्।

९९५ अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४।

एभ्योऽण् स्यात् [1]प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। अश्वपतेरपत्यादि [2]आश्वपतम्। गाणपतम्।

९९६ दित्यदित्यादित्य-पत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५।

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। [3]अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा (अपत्यम्)।

९९७ हलो यमां यमि लोपः ८।४।६४।

हलः परस्य यमो लोपः स्याद् वा यमि। इति यलोपः। [4]आदित्यः। [5]प्राजापत्यः (देवाद्यञञौ) दैव्यम्। दैवम्। (बहिषष्टिलोपो यञ् च) [6]बाह्यः। (ईकक् च) बाहीकः।

१—अपत्यादिषु। २-आश्वपतम्—अश्वपतेरपत्यमिति विग्रहे 'अश्वपति' शब्दाद् 'अश्वपत्यादिभ्यश्चे' त्यण् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि 'तद्धितेष्व-चामादेः' इति आदिवृद्धौ भत्वे 'यस्येति च' इतीकारलोपे 'कृत्तद्धितसमासाश्चे'ति प्रातिपदिकत्वेन सोरमि पूर्वरूपे 'आश्वपतम्' इति रूपम्। ३—'प्राग्दीव्यतोऽण्' इति सामान्यप्राप्तस्याऽणः, 'अश्वपत्यादिभ्यश्च' इति प्राप्तस्य चाऽणोऽपवाद इत्यर्थः। ४-आदित्यः-'अदितेरपत्यं पुमान्' इत्यर्थे 'अदिति' शब्दात् 'दित्यदित्यादित्य....' इत्यादिना 'ण्य' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ इकारलोपे च प्रातिपदिकत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे 'आदित्यः' इति रूपम्। (अथवा 'आदित्यस्यापत्यं पुमान्' इति विग्रहे 'आदित्य' शब्दात् 'ञ' आदिवृद्धौ अकारलोपे 'हलो यमां यमि लोपः' इति यलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'आदित्यः' इति। ५-प्रजापतेरपत्यं पुमान् प्राजापत्यः। ६-बहिर्भवो बाह्यः, बाहीकः, इति च।

९९५—अश्वपत्यादिगणपठित शब्दों से अण् प्रत्यय होता है प्राग्दीव्यतीय अर्थोंमें।

९९६—दिति-अदिति-आदित्य और पत्युत्तर पद से ण्य प्रत्यय होता है प्राग्दी-व्यतीय अर्थों में।

९९७—हल् से परे क्रम से यम् का लोप होता है यम् परे रहते विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वा०—(१) देव शब्द से यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं प्राग्दीव्यतीय अर्थों में।

९९८ किति च ७ । २ । ११८ ।

किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। वाहीकः। ('गोरजादिप्रसङ्गे यत्) गोरपत्यादि-गव्यम्[2]।

९९९ [3]उत्सादिभ्योऽञ् ४ । १ । ८६ ।

औत्सः। इत्यपत्यादिविकारान्तार्थाः साधारण-प्रत्ययाः।

अथापत्याधिकारः

१००० स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४ । १ । ८७ ।

धान्यानां भवने इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्-स्नञौ स्तः। [4]स्त्रैणः। [5]पौंस्नः।

१००१ तस्यापत्यम् ६ । १ । ९२ ।

षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

१-'अच्' आदिर्यस्य सः-अजादिः प्रत्ययः, अणादिः, 'तत्प्राप्तौ गोशब्दाद् यत् स्यादित्यर्थः। २—'वान्तो यि प्रत्यये' इत्यव्। ३-उत्स-महानस-पृथ्वी-इत्यादयः उत्सादयः। ४-स्त्रिया अपत्यम् पुमान्, स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूह इति वा विग्रहः, नञ् प्रत्ययः, णत्वम्, आदिवृद्धिश्च स्त्रैणः। ५-विग्रहः स्त्रैणवत्, स्नञ्प्रत्यये स्वादिष्विति पदत्वात् संयोगान्तस्येति सलोपः। आदिवृद्धिश्च 'पौंस्नः'।

---

(२) बहिष् शब्द की टि का लोप होता है और यञ् प्रत्यय भी होता है। (३) बहिष् शब्द से ईकक् प्रत्यय होता है और टि का लोप भी होता है)।

९९८—अचों के मध्य में आदि अच् को वृद्धि होती है कित् तद्धित परे रहते।

(वा०-अजादि प्रत्ययों के प्रसंग में गोशब्द से यत् होता है प्राग्दीव्यतीय अर्थोंमें।)

९९९—उत्सादिगणपठितशब्दों से अञ् प्रत्यय होता है।

अथापत्याधिकारः

१०००-'धान्यानां भवने क्षेत्रे' से पूर्व अर्थों में स्त्री और पुंस् शब्द से नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।

१००१-कृतसन्धि षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से कहे गये और वक्ष्यमाण प्रत्यय अपत्य अर्थ में विकल्प से होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१००२ ओर्गुणः ६ । ४ । १४६ ।

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। उपगोरपत्यमौपगवः[1]। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

१००३ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४ । १ । १६२ ।

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्।

१००४ एको गोत्रे ४ । १ । ९३ ।

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः।

१००५ गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ।

गोत्रापत्ये। गर्गस्य गोत्रापत्यं [3]गार्ग्यः, [4]वात्स्यः।

१००६ यञञोश्च २ । ४ । ६४ ।

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे; न तु स्त्रियाम्। गर्गाः। वत्साः।

१००७ जीवति तु वंश्ये युवा ४ । १ । १६३ ।

१–औपगवः–'उपगोरपत्यं पुमान्' इत्यर्थे 'उपगु' शब्दात् षष्ठ्यन्तात् 'तस्यापत्यम्' इत्यण्प्रत्यये सुब्लुकि आदिवृद्धौ 'ओर्गुणः' इति गुणेऽवादेशे विभक्तिकार्ये 'औपगवः' इति रूपम्। २–अत्र उपगुशब्द एव प्रत्ययं लभते न तु पुनः 'औपगव' शब्दः, अर्थात् गोत्रापत्येऽण् एव भवति न तु तदन्तात्पुनः 'इञ्'। ३–आदिवृद्धिः, 'यस्येति च' इत्यलोपः। एवं 'वात्स्य' इत्यत्रापि। ४–वात्स्यः–वत्सस्य गोत्रापत्यं पुमानित्यर्थे षष्ठ्यन्ताद् 'वत्स'—शब्दात् 'गर्गादिभ्यो यञ्' इति यञि सुब्लुकि मत्वे 'यस्येति चे' त्यकारलोपे आदिवृद्धौ प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'वात्स्यः' इति (बहुवचने तु 'यञिञोश्च' इति यञो लुकि यञ्निमित्तकवृद्धेरप्यभावे विभक्तिकार्ये 'वत्साः' इति)।

१००२–उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण होता है तद्धित प्रत्यय परे रहते।

१००३–अपत्यरूप से विवक्षित पौत्रादि की गोत्र संज्ञा होती है।

१००४–गोत्र अर्थ में एक ही अपत्यसंज्ञक प्रत्यय होता है।

१००५–गर्गादिगणपठित षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से यञ् प्रत्यय होता है गोत्र अर्थमें।

१००६–गोत्र अर्थ में जो यञन्त और अञन्त, उसके अवयव यञ् और अञ् का लुक् होता है बहुवचन में, स्त्रीलिङ्ग में नहीं।

१००७–वंश में पित्रादि के जीवित रहने पर पौत्रादि के जो अपत्य चतुर्थादि, उनकी युवा संज्ञा होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि [1]तद्युवसंज्ञमेव स्यात् ।

१००८ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४ । १ । ९४ ।

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात्, स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ।

१००९ यञिञोश्च ४ । १ । १०१ ।

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात् ।

१०१० आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-छ-घां प्रत्ययादीनाम् ७ । १ ।२।

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय्, स्युः । गर्गस्य युवापत्यं[2] गार्ग्यायणः । [3]दाक्षायणः ।

१०११ अत इञ् ४ । १ । ९५ ।

अपत्येऽर्थे[4] । दाक्षिः ।

१०१२ बाह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ९६ ।

[5]बाहविः । [6]औडुलोमिः ।

(लोम्नोऽपत्येषु [7]बहुष्वकारो वक्तव्यः) [8]उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् ।

१–ननु गोत्रसंज्ञमित्यर्थः । २–गार्ग्यायणः–यञन्तात् गर्गशब्दात् (गार्ग्यात्) युवापत्येऽर्थे 'यञिञोश्चेति' फकि 'आयनेयी....' इत्यादिना फस्यायनादेशे भत्वे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे णत्वे प्रातिपदिकत्वात् विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'गार्ग्यायणः' इति । ३–इञन्ताद् 'दक्ष' शब्दात् (दाक्षेः) फक् । ४–इञ् स्यादित्यर्थः । ५–'ओर्गुणः' इति गुणोऽवादेशः, आदिवृद्धिश्च । ६–उडूनीव (=नक्षत्राणीव) लोमानि यस्य स 'उडुलोमा' उडुलोम्नोऽपत्यं पुमान्-औडुलोमिः । 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः ७–बहुवचनेषु । ८–औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः । औडुलोमिम्, उडुलोमान् । इत्यादि ।

१००८–गोत्रप्रत्ययान्त से ही युवापत्य अर्थ में प्रत्यय होता है, स्त्रीलिङ्ग में युव संज्ञा नहीं होती ।

१००९–गोत्र अर्थ में यञन्त और इञन्त से फक् प्रत्यय होता है युवापत्य अर्थ में ।

१०१०–प्रत्यय के आदि स्थित फ-ढ-ख-छ-घ के स्थान में क्रम से आयन्-एय्-ईन्-ईय्-इय् आदेश होते हैं ।

१०११–अदन्त से इञ् प्रत्यय होता है अपत्य अर्थ में ।

१०१२–बाह्वादिगणपठित शब्दों से इञ् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०१३ अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ ।

ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे। बिदस्य गोत्रं—बैदः। बैदौ, बिदाः । [1]पुत्रस्यापत्यं—पौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ।

१०१४ शिवादिभ्योऽण् ४ । १ । ११२ ।

अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ।

१०१५ ऋष्यन्धक-वृष्णि-कुरुभ्यश्च[2] ४ । १ । ११४ ।

ऋषिभ्यः—वासिष्ठः, वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः—वासुदेवः । कुरुभ्यः—नाकुलः, साहदेवः ।

१०१६ मातुरुत् संख्या-सं-भद्र-पूर्वायाः ४ । १ । ११५ ।

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । [4]द्वैमातुरः [5]षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ।

१०१७ स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० ।

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । [6]वैनतेयः ।

१–बहुवचने 'यञञोश्च' इति अञ् प्रत्ययस्य लुक् । २–नात्र गोत्रे प्रत्ययः इति न अञो लुक् । ३–अण् स्यादित्यर्थः । ४–द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान्–द्वैमातुरः, एवं षाण्मातुरः, इत्यादि । ५–षाण्मातुरः–षण्णां मातॄणामपत्यमित्यर्थे 'तद्धितार्थोत्तर' इत्यादिना समासे षस्य उत्वे 'यरोऽनुनासिके इति णत्वे 'मातुरुत्संख्ये'ति सूत्रेणाण्प्रत्यये ऋकारस्य उदादेशे रपरत्वे चादिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'षाण्मातुरः' इति रूपम् । ५–विनताया अपत्यम् , ढस्य एय, किति चेत्यादिवृद्धिः वैनतेयः = गरुडः ।

(वा० लोमन् शब्द से अपत्यार्थ में अकार प्रत्यय होता है । बहुत्व अर्थ में) ।

१०१३—बिदादिगणपठित ऋषिभिन्न शब्द से अपत्यार्थ में और ऋषिवाचक शब्द से गोत्रार्थ में अञ् प्रत्यय होता है ।

१०१४—शिवादिगणपठित शब्दों से अण् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में ।

१०१५—ऋष्यादिवाचक शब्दों से अण् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में ।

१०१६—संख्यादिपूर्वक मातृ शब्द को उत् आदेश होता है, और अण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०१७—स्त्रीप्रत्ययान्तों से ढक् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में ।

१०१८ कन्यायाः [1]कनीन च ४ । १ । ११६ ।

चादण् । [2]कानीनो=व्यासः, कर्णश्च ।

१०१९ राज-श्वशुराद् यत् ४ । १ । १३७ ।

(राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्) ।

१०२० ये चाऽभावकर्मणोः ६ । ४ । १६८ ।

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । [3]राजन्यः । [4]श्वशुर्यः । जातावेवेति किम्—

१०२१ अन् ६ । ४ । १६७ ।

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । [5]राजनः ।

१०२२ क्षत्राद् [6]घः ४ । १ । १३८ ।

१—कन्याशब्दस्याऽपत्यार्थे 'कनीन' इत्यादेशो भवति 'अण्' प्रत्ययश्चेत्यर्थः । २—कानीनः—कन्यायाः अपत्यमिति विग्रहे षष्ठ्यन्तात् 'कन्या' शब्दात् 'कन्यायाः कनीन च' इत्यण्प्रत्यये कनीनादेशे आदिवृद्धौ 'अ' कारलोपे विभक्तिकार्ये 'कानीनः' इति । ३—राजन्यः—'राजन्' शब्दाद् 'राज्ञोऽपत्यमिति' विग्रहे जात्यर्थे 'राज-श्वशुराद् यत्' इति 'यत्' प्रत्यये 'नस्तद्धिते' टेर्लोपे प्राप्ते 'ये चाभावकर्मणोः' इति प्रकृतिभावेन टिलोपाभावे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'राजन्यः' इति । ४—श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः=श्यालः । 'यस्येति च' इति 'अ' लोपः । ५—जात्यतिरिक्तेऽर्थे; राज्ञोऽपत्यं पुमान्—राजनः । अण्प्रत्ययः प्रकृतिभावः । ६—'आयने…' इति सूत्रेण घस्य 'इय्' ।

१०१८—कन्या शब्द से अण् प्रत्यय होता है और कन्या को 'कनीन' आदेश होता है ।

१०५९—राजन् और श्वशुर शब्द से यत् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में ।

(वा०—राजन् शब्द से जाति में ही यत् होता है) ।

१०२०—तद्धित यादि प्रत्यय परे रहते अन् को प्रकृतिभाव होता है भावकर्म को छोड़कर ।

१०२१—अन् प्रकृतिवत् होता है अण् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०२१—क्षत्र शब्द से घ प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में जातिवाच्य होने पर ।

क्षत्त्रियः। जाताविव्येव। [1]क्षात्त्रिरन्यत्र।

१०२३ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४। १। १४६।

१०२४ ठस्येकः ७। ३। ५०।

अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः स्यात्। [2]रैवतिकः।

१०२५ जनपदशब्दात् क्षत्त्रियादञ् ४। १। १६८।

जनपदक्षत्त्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये। पाञ्चालः (क्षत्त्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्) पञ्चालानां राजा=[3]पाञ्चालः। (पूरोरण् वक्तव्यः) पौरवः। (पाण्डोर्ड्यण्) [4]पाण्ड्यः।

१०२६ [5]कुरुनादिभ्यो ण्यः ४। १। १७२।

कौरव्यः। नैषध्यः।

१०२७ ते तद्राजाः ४। १। १७४।

१–अजाताविव्युक्तेः न घः किन्तु इञ् प्रत्ययः। २–रैवतिकः–रेवत्या अपत्यमित्यर्थे षष्ठ्यन्ताद् रेवतीशब्दाद् 'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' इति 'ठक्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि 'ठस्येकः' इति इकारादेशे 'किति च' इति आदिवृद्धौ 'यस्येति चे' तीकारलोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'रैवतिकः'। ३–पाञ्चालः–'पञ्चालानां राजा' इत्यर्थे 'जनपद' वाचकात् पञ्चालशब्दात्, 'क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्' इति वार्त्तिकेन 'अञ्' प्रत्यये चादिवृद्धौ अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पाञ्चालः' इति। ४-डित्वात् टिलोपः। ५–कुरुशब्दान्नकारादिशब्दाच्चाऽपत्ये राजनि–अर्थे वा 'ण्य' प्रत्ययः स्यादित्यर्थः।

१०२३–रेवत्यादिगणपठित शब्दोंसे ठक् प्रत्यय होता है।

१०२४–अंग से परे ठ को इक आदेश होता है।

१०२५–जनपदवाची जो क्षत्रियवाची शब्द, उससे अञ् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में।

(वा०–(१) क्षत्रिय समान जो जनपदवाचक शब्द, उससे राजा अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय होते हैं। (२) पूरुशब्द से अण् प्रत्यय होता है। (३) पाण्डु शब्द से ड्यण् प्रत्यय होता है अपत्य अर्थ में।)

१०२६–कुरु शब्द और नकारादि शब्दों से ण्य प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०२७–जनपदवाची शब्द से विहित अञ् आदि प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है।

अन्नादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ।

१०२८ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २ । ४ । ६२ ।

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्; तदर्थकृते बहुत्वे; न तु स्त्रियाम् । इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः, इत्यादि ।

१०२९ कम्बोजाल्लुक् ४ । १ । १७४ ।

अस्मात्तद्राजस्य लुक् । [1]कम्बोजः । कम्बोजौ (कम्बोजादिभ्यः इति वक्तव्यम्) चोलः । शकः । केरलः । यवनः ।

इत्यपत्याधिकारः ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

१०३० तेन [2]रक्तं रागात् ४ । २ । १ ।

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति [3]रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं–[4]काषायम् ।

१०३१ नक्षत्रेण युक्तः कालः ४ । २ । ३ ।

१–कम्बोजस्याऽपत्यं पुमान् इति विग्रहः । इत्यपत्याधिकारः ।

२–तेन नाम तृतीयान्तात् रागवाचकात् शब्दात् रक्तमित्यस्मिन्नर्थे अण् स्यादित्यर्थः । एवं सर्वत्रैवंविधेषु स्थलेषु–अर्थाः कल्पनीयाः ३–रागः = रक्त-पीत-कषायादिवर्ण इत्यर्थः । ४–काषायम्—कषायेण रक्तमिति विग्रहे 'तेन रक्तं रागात्' इति सूत्रेणाण्प्रत्यये चादिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'काषायम्' इति ।

१०२८–बहुत्वार्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है । प्रत्ययार्थकृत बहुत्व होने पर, स्त्रीलिंग को छोड़कर ।

१०२९–कम्बोज शब्द से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है ।

इत्यपत्याधिकारः ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

१०३०–तृतीयान्त रागवाचक शब्द से रक्त अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

१०३१–नक्षत्रवाचक शब्द से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

(वा०–नक्षत्रवाचक तिष्य-पुष्य शब्द के यकार का लोप होता है अण् प्रत्यय परे रहते) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अण् स्यात् ([1]तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्) पुष्येण युक्तं=[2]पौषमहः ।

१०३२ लुबविशेषे ४ । २ । ४ ।

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ।

१०३३ दृष्टं साम ४ । २ । ७ ।

[3]तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं-वासिष्ठं साम ।

१०३४ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४ । २ । ९ ।

वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यम् ।

१०३५ परिवृतो रथः ४ । २ । १० ।

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो-वास्त्रो रथः ।

१०३६ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः[4] ४ । २ । १४ ।

शरावे उद्धृतः [5]शाराव ओदनः ।

१–नक्षत्राणि = नक्षत्रवाचकाद्विहिते–अणि प्रत्यये, इत्यर्थः । २–पौषम्–पुष्येण युक्तमित्यर्थे पुष्यशब्दात् 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यणप्रत्यये 'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः' इति यलोपे चादिवृद्धौ 'यस्येतिचे' त्यकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पौषम्' (अहः) इति । अहः = दिनम् । ३–तेन दृष्टं सामेत्यर्थेण् स्यादित्यर्थः । ४–पात्रवाचकशब्देभ्यः तत्रोद्धृतमित्यर्थेऽण् स्यादित्यर्थः । ५–शारावः–'शरावे उद्धृतः' इत्यर्थे 'शराव' शब्दात् 'तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः' इत्यणि चादिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'शारावः' इति ।

१०३२–पूर्वसूत्र से कृत प्रत्यय का लुप् होता है, यदि २४ घण्टे के बीच का विशेष काल गम्यमान न हो ।

१०३३–तृतीयान्त शब्द से दृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय होता है वह दृष्ट यदि साम हो ।

१०३४–वामदेव शब्द से ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं ।

१०३५–परिवृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, रथ के परिवृत होने में ।

१०३६–सप्तम्यन्त अमत्र (पात्र) वाचक शब्द से उद्धृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०३७ संस्कृतं भक्षाः ४ । २ । १६ ।

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे यत् संस्कृतं [1]भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः–[2]भ्राष्ट्राः = यवाः ।

१०३८ साऽस्य [3]देवता ४ । २ । २४ ।

इन्द्रो देवता अस्येति [4]ऐन्द्रं = हविः । पाशुपतम् । [5]बार्हस्पतम् ।

१०३९ शुक्राद् घन् ४ । २ । २६ ।

[6]शुक्रियम् ।

१०४० सोमाट्ट्यण् ४ । २ । ३० ।

[7]सौम्यम् ।

१०४१ वाय्वृतुपित्रुषसो [8]यत् ४ । २ । ३१ ।

१–भक्ष्यन्ते इति भक्षाः । कर्मणि घञ् (बाहुलकात्) भक्ष्यभूता इत्यर्थः । २–भ्राष्ट्राः–(यवाः)–भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः इत्यर्थे 'भ्राष्ट्र'–शब्दात् 'संस्कृतं भक्षाः' इत्यणि 'यस्येति चे' त्यकारलोपे जसि विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'भ्राष्ट्राः' इति । ३–प्रथमान्ताद् देवतावाचकात् शब्दात्-अस्येत्यर्थेऽण् इत्यर्थः । ऐन्द्रम् (हविः)–इन्द्रो देवता अस्येत्यर्थे 'इन्द्र' शब्दात् प्रथमान्तात् 'सास्यदेवता' इत्यणि सुब्लुकि आदिवृद्धौ 'यस्येति चे' त्यकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'ऐन्द्रम्' इति । ५–बृहस्पतिर्देवता अस्येति विग्रहः) आदिवृद्धिः । ६–शुक्रो देवताऽस्येति-शुक्रियम् = हविः घस्य 'इय्' । नित्त्वं स्वरार्थम् (स्वरितार्थम्) ७–सोमो देवताऽस्येति विग्रहः । ८–'साऽस्य देवता इत्यर्थे' इति शेषः ।

१०३७–सप्तम्यन्त शब्द से 'संस्कृत' अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, संस्कृत पदार्थ यदि भक्ष्य हो ।

१०३८–'इसका देवता यह है' इस अर्थ में प्रथमान्त देवतावाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है ।

१०३९–शुक्र शब्द से 'अस्य देवता' अर्थ में घन् प्रत्यय होता है ।

१०४०–सोम शब्द से 'अस्य देवता' अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है ।

१०४१–वायु-ऋतु-पितृ और उषस् शब्द से 'अस्य देवता' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]वायव्यम् । ऋतव्यम् ।

१०४२ रीङ् ऋतः ७ । ४ । २७ ।

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः । (२६६) यस्येति च । [2]पित्र्यम् । उषस्यम् ।

१०४३ पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहाः ४ । २ । ३६ ।

एते निपात्यन्ते । पितुर्भ्राता=[3]पितृव्यः । मातुर्भ्राता=मातुलः । मातुः-पिता=मातामहः, पितुः पिता=पितामहः ।

१०४४ तस्य [4]समूहः ४ । २ । ३७ ।

काकानां समूहः-काकम् ।

१०४५ भिक्षादिभ्योऽण् ४ । २ । ३८ ।

भिक्षाणां समूहो-भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो—[5]गार्भिणम् । इह ([6]भस्याढे तद्धिते) इति पुंवद्भावे कृते—

१–वायुर्देवताऽस्येति विग्रहः, ओर्गुणः 'वान्तो यि···' इत्यवादेशः । एवं ऋतुर्देवताऽस्येति–ऋतव्यम् । २–पित्र्यम्–पितरो देवता अस्येति विग्रहे 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' इति 'यत्'–प्रत्यये 'रीङ् ऋतः' ऋकारस्य रीङादेशे 'यस्येति चे'–ईकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पित्र्यम्' इति । उषा देवताऽस्येति 'उषस्यं' हविः । ३–'पितुर्भ्रातरि व्यत्' पितृव्यः मातुः (भ्रातरि) डुलच्' मातुलः । 'मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्' इति डामहच् डिति टिलोपः मातामहः, पितामहः । ४–षष्ठ्यन्तात् 'समूह' इत्यर्थेऽण् । ५–गार्भिणम्–गर्भिणीनां समूहः इत्यर्थे 'गर्भिणी' शब्दात् 'भिक्षादिभ्योऽण्' इत्यणि 'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावे (ङीप् निवृत्तौ) 'गर्भिन् अ' इति स्थितौ 'इनण्यनपत्ये' इति प्रकृतिभावात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपाभावे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'गार्भिणम्' इति । ६–वार्तिकमिदम्, भसंज्ञाप्रयोजके ढभिन्ने तद्धिते पुंवद्भाव इत्यर्थः ।

१०४२–कृत्‌भिन्न और सार्वधातुकभिन्न यकार परे रहते, और च्वि प्रत्यय परे रहते ऋदन्त अंग को रीङ् आदेश होता है ।

१०४३–पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

१०४४–समूहार्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१०४५–भिक्षादिगणपठित शब्दों से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०४६ इनण्यनपत्ये ६ । ४ । १६४ ।

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात् । तेन (९१९) 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न, युवतीनां समूहो–[1]यौवनम् ।

१०४७ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्[2] ४ । २ । ४३ ।

तलन्तं स्त्रियाम् । ग्रामता । जनता । बन्धुता । ([3]गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्) गजता । सहायता । (अह्नः खः [4]क्रतौ) अहीनः ।

१०४८ अचित्त-हस्ति-[5]धेनोष्ठक् ४ । २ । ४७ ।

१०४९ इसुसुक्तान्तात् कः ७ । ३ । ५१ ।

इस्-उस्-उक्-तान्तात् परस्य ठस्य कः । साक्तुकम् । [6]हास्तिकम् । धैनुकम् ।

१०५० तदधीते [7]तद्वेद ४ । २ । ५९ ।

१–'यूनस्तिः' इति ति-प्रत्ययान्तात् युवतिशब्दात् समूहेऽर्थेऽणप्रत्यये 'अन्' इति सूत्रेण प्रकृतिभावे 'यौवनम्' इति सिद्ध्यति । शत्रन्तादुगितश्चेति ङीप्प्रत्यये अनुदात्तादेर्युवतीति-दीर्घान्तात् समूहेऽञि तु 'यौवतम्' । २–समूहेऽर्थे । ३–अत्रापि समूहे-एव । ४–अहन् शब्दात् समूहेऽर्थे 'ख' प्रत्ययः स्याद् यज्ञे वाच्ये इत्यर्थः । खस्य 'ईन' 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः । अहीनः=अनेकदिनसाध्यः क्रतुविशेषः । ५–षष्ठ्यन्तात् अचित्तात् (चित्तरहितवाचकात्) तथा हस्तिशब्दात्, धेनुशब्दाच्च समूहेऽर्थे ठक् स्यादिति सूत्रार्थः । ६–'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपः, हस्तिनीनां समूह इति विग्रहेऽपि (भस्याऽढे) इति पुंवद्भावे तदेव रूपम् । ७–द्वितीयान्ताद् एतस्मिन्नर्थेऽणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः ।

(वा०–ढ भिन्न तद्धित परे रहते भसंज्ञक प्रातिपदिक को पुंवद्भाव होता है ।)

१०४६–अपत्यार्थभिन्न अण् परे रहते इनको प्रकृतिभाव होता है ।

१०४७–ग्राम-जन-बन्धु शब्दों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है ।

(वा०–(१) गज और सहाय शब्द से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय कहना चाहिये । (२) अहन् शब्द से ख प्रत्यय होता है क्रतु अर्थ में) ।

१०४८–चेतना-रहितवाची, तथा हस्ति-शब्द और धेनु-शब्द से समूह अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१०४९–इस्-उस्-उक् और तकारान्त से परे ठ को क होता है ।

१०५०–द्वितीयान्त से अधीते और वेद अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०५१ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७ । ३ । ३ ।

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किंतु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ[1] स्तः । व्याकरणमधीते वेद वा–वैयाकरणः[2] ।

१०५२ क्रमादिभ्यो[3] वुन् ४ । २ । ६१ ।

[4]क्रमकः । पदकः । शिक्षकः । मीमांसकः ।

इति रक्ताद्यर्थकाः ।

अथ चातुरर्थिकाः

१०५३ तदस्मिन्नस्तीति देशे[5] तन्नाम्नि ४ । २ । ६७ ।

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः ।

१०५४ तेन[6] निर्वृत्तम् ४ । २ । ६८ ।

कुशाम्बेन[7] निर्वृत्ता नगरी–कौशाम्बी[8] ।

१—यकारात् पूर्वम् 'ऐ' वकारात्पूर्वम् 'औ' इत्यर्थः । २—वैयाकरणः–व्याकरणशब्दात् 'व्याकरणमधीते वेद वा' इत्यर्थे द्वितीयान्तात् 'तदधीते तद्वेद' इत्यणि सुपो लुकि भसंज्ञायां 'यस्येति च' इत्यकारलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः' इति आदिवृद्धौ प्राप्तायां 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां....' इत्यादिना वृद्धिं निषेध्य यकारात् पूर्वम् ऐजागमे (ऐकारागमे) प्रातिपदिकत्वात् सौ विभक्तिकार्ये 'वैयाकरणः' इति रूपम् । ३–'वु' इत्यस्य 'अक' इति । ४–क्रमम् अधीते वेद वा इति विग्रहः । इति रक्ताद्यर्थकाः ।

५–प्रथमान्तादस्मिन्नस्तीत्यर्थे अणादयः स्युः प्रत्ययान्तेन तन्नाम्नि देशे गम्यमाने । ६–तृतीयान्ताद् निर्वृत्तमित्यर्थेऽणादयः स्युरित्यर्थः । ७–सम्पादिता । ८–कौशाम्बी-कुशाम्बेन निर्वृत्ता इत्यर्थे 'कुशाम्ब' शब्दात् तृतीयान्तात् 'तेन निर्वृत्तम्' इत्यण् प्रत्यये सुपो

१०५१–पदान्त यकार-वकार से परे वृद्धि नहीं होती, किन्तु उनको ऐच् का आगम हो जाता है ।

१०५२–क्रमादिगणपठित शब्दों से वुन् होता है 'अधीते' और 'वेद' अर्थ में ।

इति रक्ताद्यर्थकाः ।

अथ चातुरर्थिकाः

१०५३–प्रथमान्त शब्द से 'अस्मिन्' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

१०५५ तस्य [1]निवासः ४ । २ । ६९ ।

शिबीनां निवासो देशः शैबः ।

१०५६ अदूरभवश्च ४ । २ । ७० ।

[2]विदिशाया अदूरभवं नगरं—वैदिशम् ।

१०५७ जनपदे लुप् ४ । २ । ८१ ।

जनपदे वाच्ये [3]चातुरर्थिकस्य लुप् ।

१०५८ लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १ । २ । ५१ ।

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः—[4]पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ।

१०५९ वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ ।

[5]अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं—वरणाः ।

१०६० कुमुद-नड-वेतसेभ्यो ड्मतुप् ४ । २ । ८७ ।

लुकि 'तद्धितेष्वचामादेः' इति वृद्धौ स्त्रियां 'टिड्ढाणञ्...' इत्यादिना ङीपि सौ तस्य लोपे 'कौशाम्बी' इति ।

१—षष्ठ्यन्तात् निवास इत्यर्थेऽणादयः स्युः इत्यर्थः । २—विदिशा नाम नगरी । ३—प्रत्ययस्येति शेषः, पूर्वोक्तसूत्रचतुष्टयप्राप्तस्य लुप् इत्यर्थः । ४—'तस्य निवासः' इति विहितस्याणो लुपि, प्रकृतिवल्लिङ्गवचने (पाञ्चालानामित्यत्र यथा पुंल्लिङ्गो बहुवचनं तथाऽत्रापि)। एवमन्यत्र कुरवः, अङ्गा, वङ्गा, इत्यादि । प्रत्ययलुपि देशवाचकेषु सर्वत्रापि बहुवचनमेव प्रयोक्तव्यं भवति । ५—जनपदभिन्नार्थमिदं सूत्रम् ।

१०५४—तृतीयान्त शब्द से 'निर्वृत्त' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१०५५—षष्ठ्यन्त शब्दों से 'निवास' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१०५६—षष्ठ्यन्त शब्द से 'अदूरभव' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१०५७—जनपदवाच्य होने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है ।

१०५८—लुप् होने पर प्रकृति की तरह लिंग और वचन होते हैं ।

१०५९—वरणादिगणपठित शब्दों से 'अदूरभव' अर्थ में विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है ।

१०६०—कुमुद-नड-वेतस् शब्दों से चारों अर्थों में ड्मतुप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०६१ झयः ८ । २ । १० ।

झयन्तान्मतोर्मस्य वः । [1]कुमुद्वान् । नड्वान् ।

१०६२ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८ । २ । ९ ।

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात् परस्य मतोर्मस्य वः । [2]वेतस्वान् ।

१०६३ नड-शादाद्-ड्वलच् ४ । २ । ८८ ।

[3]नड्वलः । शाद्वलः ।

१०६४ शिखाया वलच् ४ । २ । ८९ ।

[4]शिखावलः ।

इति चातुरर्थिकाः ।

अथ शैषिकाः

१०६५ शेषे ४ । २ । ९२ ।

अपत्यादिचतुर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं=रूपम् । [5]श्रावणः = शब्दः । [6]औपनिषदः=पुरुषः । [7]दृषदि पिष्टा दार्षदाः=

१–कुमुदाः सन्त्यस्मिन्निति विग्रहः, ङित्वाट्टिलोपः । एवमन्यत्र । २–वेतसाः सन्त्यत्रेति विग्रहः । ३–नडाः सन्ति यस्मिन्, नड्वलः । शादाः=घासाः सन्ति यत्र स देशः शाद्वलः, उभयत्र डित्वाट्टिलोपः । ४–शिखाऽस्त्यस्मिन् इति शिखावलः–मयूरः ५–श्रवणेन=कर्णेन गृह्यते इति श्रावणः, अण्-प्रत्ययः, आदिवृद्धिः । ६–उपनिषद्भिः प्रतिपादित इति विग्रहः, अण् प्रत्ययः, आदिवृद्धिः । ७–दृषदि = शिलायाम् ।

१०६१–झयन्त से परे मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है ।

१०६२–मकारान्त और अवर्णान्त तथा मकारोपध और अवर्णोपध से परे मतुप् के मकार को वकार होता है यवादिगणपठितों को छोड़ कर ।

१०६३–नड, शाद शब्द से चातुरर्थिक अर्थ में ड्वलच् प्रत्यय होता है ।

१०६४–शिखा शब्द से चातुरर्थिक अर्थ में वलच् प्रत्यय होता है ।

इति चातुरर्थिकाः ।

अथ शैषिकाः ।

१०६५–अपत्यादि चतुर्थ्यन्त से भिन्न अर्थ शेष कहलाता है, उस अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सक्तवः। चतुर्भिरुह्यते चातुरं=शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं=[1]रक्षः। तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

१०६६ राष्ट्राऽवार-पाराद्ध-खौ ४।२।९३।

आभ्यां क्रमाद् घ-खौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादिः=[2]राष्ट्रियः। [3]अवारपारीणः। (अवारपाराद्विगृहीतादपि[4] विपरीताच्चेति वक्तव्यम्)। अवारीणः। पारीणः। [5]पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

१०६७ ग्रामाद् य-खञौ ४।२।९४।

ग्राम्यः, [6]ग्रामीणः।

१९६८ [7]नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७।

[8]नादेयम्। [9]माहेयम्। वाराणसेयम्।

१–रक्षः=राक्षसः। २–राष्ट्रे जातः, भव इत्यादिविग्रहः, घप्रत्ययः। घस्य-इय् 'यस्येति च' इत्यकारलोपः। ३–अवारपारे जात इत्यादिविग्रहः। खप्रत्ययः। खस्य ईनादेशः। ४–विगृहीतात्=पृथग्भूतात्, अवारशब्दात्, पारशब्दात् पृथक्-पृथक् अपि प्रत्ययः। विपरीतात्=पारावारशब्दादित्यर्थः। ५–पारावारीणः–'पारावारे जातः' इति विग्रहे सप्तम्यन्तात् पारावारशब्दात् 'अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्' इति वार्त्तिकेन 'ख' प्रत्यये खस्य ईनादेशे सुब्लुकि 'यस्येति च' इत्यकारलोपे णत्वे प्रातिपदिकत्वेन सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'पारावारीणः' इति। ६–ग्रामे जात इत्यादिविग्रहे यप्रत्यये ग्राम्यः, खञ्प्रत्यये ग्रामीणः। ७–नदी-मही-वाराणसी-श्रावस्ती-इत्यादि (नद्यादिगणः)। ८–नद्यां जातं भवमित्यादिरर्थः। ढस्य 'एय्', आदिवृद्धिश्च। ९–मह्यां जातं भवं वा, वाराणस्यां जातं भवं वा। ढक्प्रत्यये ढस्य 'एय्', 'किति च' इत्यादिवृद्धिः। 'यस्येति च' इति ईकारलोपः।

१०६६–राष्ट्र और अवारपार शब्द से जात आदि अर्थ में घ और ख प्रत्यय होते हैं। (वा०–अवारपार शब्द से पृथक्-पृथक् तथा इनके उल्टा करने पर 'पारावार' शब्द से भी ख प्रत्यय होता है)।

१०६७–ग्राम शब्द से जातादि अर्थ में य और खञ् प्रत्यय होते हैं।

१०६८–नद्यादिगणपठितों से ढक् प्रत्यय होता है जातादि अर्थों में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०६९ दक्षिणा-पश्चात्-पुरसस्त्यक् ४ । २ । ९८ ।

[1]दाक्षिणात्यः । पाश्चात्त्यः । पौरस्त्यः ।

१०७० द्यु-प्रागपागुदक्-प्रतीचो [2]यत् ४ । २ । १०१ ।

[3]दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

१०७१ अव्ययात्त्यप् ४ । २ । १०४ ।

(अमेह-क-तसि-त्रेभ्य एव) [4]अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः । (त्यब्नेर्ध्रुव इति [5]वक्तव्यम्) नित्यः ।

१०७२ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १ । १ । ७३ ।

यस्य समुदायस्याचां मध्ये [6]आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसंज्ञं स्यात् ।

१०७३ त्यदादीनि च १ । १ । ७४ ।

वृद्धसंज्ञानि स्युः ।

१–दक्षिणा = दक्षिणस्यां भवो जात इति वा । 'किति च' इत्यादिवृद्धिः । एवं पश्चात्-जातो भवो वा पाश्चात्यः । पुरः–भवो जातो वा पौरस्त्यः । २–भवार्थेऽयं यत् । ३–दिवि भवम्-दिव्यम्, प्राचि भवं प्राच्यम्, अपाचि भवम्–अपाच्यम्, उदीचि भवम्, प्रतीचि भवमित्यादिविग्रहः । ४–अमा सह भवतीति-अमात्यः (मन्त्री) । एवम् इहत्यः–इत्यादि । ५–'नि' इत्यस्मात् ध्रुवेर्थे 'त्यप्' प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । ६–आ-ऐ-औरूपाः ।

१०६९–दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् से त्यक् प्रत्यय होता है जातादि अर्थों में ।

१०७०–दिव्-प्राच्-अपाच्-उदच्-प्रतीच् शब्दों से जातादि अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ।

१०७१–अव्यय से त्यप् प्रत्यय होता है ।

(वा०–अमा इह क्व तस् त्र इनसे ही हो) । (वा०–'नि' से त्यप् प्रत्यय हो ध्रुव अर्थ में) ।

१०७२–जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिस्वरूप हो तो वह समुदाय वृद्धसंज्ञक होता है ।

१०७३–त्यदादि की भी वृद्ध संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०७४ [1]वृद्धाच्छः ४ । २ । १४४ ।

[2]शालीयः । मालीयः । [3]तदीयः । (वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या) देवदत्तीयः [4]दैवदत्तः ।

१०७५ [5]गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ ।

[6]गहीयः ।

१०७६ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४ । ३ । १ ।

चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वाऽयं [7]युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

१०७७ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ ।

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि, अणि च । [8]यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ।

१०७८ तवक-ममकावेकवचने ४ । ३ । ३ ।

१–वृद्धसंज्ञकात् छप्रत्ययः स्यात्, इत्यर्थ; छस्य 'ईय' । २–शालायां भव इत्यादि विग्रहः, 'यस्येति च' इत्यालोपः । एवं मालीयः । ३–तस्याऽयं–तदीयः । ४–पक्षेऽण् । ५–'छः' स्यात् । ६–गहे (देशविशेषे) भव इति विग्रहः । ७–युष्मदीयः–'युष्माकमयम्' इत्यर्थे 'युष्मद्' शब्दात् 'युस्मदस्मदोरन्यतरस्याम्' इति 'छ' प्रत्यये ईयादेशे सुब्लुकि विभक्तिकार्ये सौ रुत्वे विसर्गे युष्मदीयः । ८–यौष्माकीणः–'युवयोर्युष्माकं वा अयम्' इति विग्रहे 'युष्मदस्मदो...' इत्यादिना खञ् प्रत्यये 'तस्मिन्नणि च....' इति सूत्रेण 'युष्मत्' शब्दस्य युष्माकादेशे खस्य ईनादेशे भत्वेऽकारलोपे आदिवृद्धौ णत्वे विभक्तिकार्ये रूपं सिध्यति 'यौष्माकीणः' इति । (उक्तसूत्रे 'अन्यतरस्यां खञ् च' इत्युक्तेः पक्षेऽणि यौष्माकादेशे आदिवृद्धौ रूपं सिध्यति 'यौष्माकः' इति) ।

१०७४–वृद्धसंज्ञकों से छ प्रत्यय होता है। (नामकी विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है।)
१०७५–देशवाचक गहादिगणपठित शब्दों से छ प्रत्यय होता है।
१०७६–युष्मद्-अस्मद् शब्दों से खञ् और छ प्रत्यय होते हैं, पक्ष में अण् भी।
१०७७–युष्मद्-अस्मद् को युष्माक अस्माक आदेश होता है खञ, अण् परे रहते।
१०७८–एकार्थवाची युष्मद् अस्मद् को तवक ममक होते हैं, खञ् अण् परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवक-ममकौ स्तः खञि, अणि च। [1]'ताबकीनः, [2]'तावकः। मामकीनः, मामकः। छे [3]तु—

१०७९ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७। २। ९८।

मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये-उत्तरपदे च परतः। [4]त्वदीयः। मदीयः। [5]त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः।

१०८० मध्यान्मः ४। ३। ८।

[6]मध्यमः।

१०८१ कालाट्ठञ् ४। ३। ११।

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्। [7]कालिकम्। मासिकम्। सांवत्सरिकम् (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः) [8]सायंप्रातिकः। [9]पौनःपुनिकः।

१०८२ प्रावृष एण्यः ४। ३। १७।

[10]प्रावृषेण्यः।

१–तव अयम्, मम-अयम्-इति विग्रहौ। २–तावकः–'तव अयम्' इति विग्रहे 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' इति खञभावपक्षेऽणि 'तवकममकावेकवचने' इति 'युष्मच्छब्दस्य 'तावका' देशे भत्वेऽकारलोपे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'तावकः' इति। खञि तु 'तावकीनः' इति रूपम्। ३–छप्रत्यये तु। ४–त्वदीयः मदीयः, त्यदादित्वाद् वृद्धसंज्ञायां 'वृद्धाच्छः' इति छप्रत्ययः। ५–उदाहरणद्वयमिदमुत्तरपदे त्वमादेशयोः। ६–भवार्थे प्रत्ययः, मध्ये भवो मध्यमः। ७–ठस्य 'इक' आदेशः, ञित्वाद् आदिवृद्धिः। काले भवमिति विग्रहः। एवमग्रेऽपि। ८–सायं प्रातर्भवति विग्रहः। ठञि टिलोपः। ९–पुनः पुनर्भवतीति विग्रहः, ठञ् टिलोपः, आदिवृद्धिः, ठस्येकः। १०—प्रावृषि (वर्षासु) भव इति।

११७९–एकार्थवाची युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्तभाग को त्व म आदेश होते हैं प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते।

१०८० मध्य शब्द से जातादि अर्थों में म-प्रत्यय होता है।

१०८१–कालवाचक शब्द से जातादि अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।

(वा०–अव्ययों की भसंज्ञामात्र में टि का लोप होता है।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०८२–प्रावृष् शब्द से जातादि अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है।

१०८३ सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगे-ऽव्ययेभ्यष्ट्यु-ट्युलौ तुट् च ।४।३।२३।

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यः अव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च । [1]सायन्तनम् । [2]चिरन्तनम् । प्राह्ण-प्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते । [3]प्राह्णेतनम् । [4]प्रगेतनम् । [5]दोषातनम् ।

१०८४ तत्र जातः ४ । ३ । २५ ।

सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः [6]स्रौघ्नः । उत्से जातः–औत्सः । [7]राष्ट्रे जातः–[8]राष्ट्रियः । अवारपारे जातः–[9]अवारपारीणः इत्यादि ।

१०८५ [10]प्रावृषष्ठप् ४ । ३ । २६ ।

एण्यापवादः । [11]प्रावृषिकः ।

१०८६ प्रायभवः ४ । ३ । ३९ ।

तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण = बाहुल्येन भवति–[12]स्रौघ्नः ।

१०८७ सम्भूते ४ । ३ । ४१ ।

१–ट्यु-ट्युलोः 'यु' इत्यस्य 'युवोरनाकौ' इति सूत्रेण 'अन' इत्यादेशः । भवार्थे प्रत्ययौ । २–चिरन्तनम्–'चिरम्' इत्यव्ययाद् भवार्थे 'सायं चिरं प्राह्णे ....' इत्यादिना 'ट्यु' प्रत्यये 'ट्युल्' प्रत्यये वाऽनुबन्धलोपे तुडागमे च 'यु' इत्यस्य 'युवोरनाकौ' इत्यनेन अनादेशे मस्यानुस्वारे परसवर्णे च प्रातिपदिकत्वात् सौ सोरमि सिध्यति रूपं 'चिरन्तनम्' इति । ३–पूर्वाह्णकालभवमित्यर्थः । ४–प्रातःकालिकम् । ५–रात्रिभवम् । ६–अण् प्रत्ययः 'शेषे' इत्यनेन । ७–'उत्सादिभ्योऽञ्' । ८–घप्रत्ययः, तस्य 'इय्' । ९–खप्रत्ययः, तस्य 'ईन्' इति । १०–सप्तम्यन्ताज्जात इत्यर्थे, ठस्य 'इकः' । ११–प्रावृषि जात इति विग्रहः । १२–अण्, अदिवृद्धिः ।

१०८३–सायम् आदि से ट्यु-ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् का आगम होता है ।

१०८४–सप्तम्यन्त से जात अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

१०८५–प्रावृष शब्द से ठप् प्रत्यय होता है ।

१०८६–'प्रायभव' अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

१०८७–'सम्भूत' अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः।

१०८८ कोशाड्ढञ् ४ । ३ । ४२ ।

[1]कौशेयं (वस्त्रम्)।

१०८९ तत्र भवः ४ । ३ । ५३ ।

स्रुघ्ने भवः-[2]स्रौघ्नः । [3]औत्सः । [4]राष्ट्रियः ।

१०९० दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ ।

दिश्यम् । वर्ग्यम् ।

१०९१ [5]शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ ।

[6]दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । (अध्यात्मादेष्ठञिष्यते) अध्यात्मं भवमाध्यामिकम्[7] ।

१०९२ अनुशतिकादीनां च ७ । ३ । २० ।

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च । [8]आधिदैविकम् । आधि-

१–कौशेयम्–'कोशे सम्भवती' त्यर्थे सप्तम्यन्तात् 'कोश' शब्दात् 'कोशाड्ढञ्' इति 'ढञ्' प्रत्यये ञित्वादादिवृद्धौ ढस्य एयादेशे सुपोलुकि 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये 'कौशेयम्' । २–अण् । ३–अञ् । ४–घः । ५–यत् स्यादित्यर्थः । ६–दन्तेषु भवम्, कण्ठे भवमिति विग्रहौ । ७–आध्यात्मिकम्–आत्मनि इत्यध्यात्मम् तस्माद् भवार्थे 'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' इति वार्त्तिकेन ठञि ञित्वादादिवृद्धौ ठस्य इकादेशे ऽकारलोपे विभक्तिकार्ये 'आध्यात्मिकम्' । ८–देवे इत्यधिदेवम् (विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः), तत्र भवम् आधिदैविकम् । एवम्-आधिभौतिकम् ।

१०८८–कोश शब्द से 'सम्भूत' अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ।

१०८९–'भवार्थ' में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

१०९०–दिगादिगणीय शब्दों से यत् प्रत्यय होता है भवार्थ में ।

१०९१–शरीर के अवयववाची शब्दों से यत् प्रत्यय होता है भवार्थ में ।

(वा०–अध्यात्मादिगणपठित से प्रत्यय होता है भवार्थ में ।)

१०९२–अनुशतिकादि गणपठित शब्दों को उभयपद वृद्धि होती है । ञित्-णित्-कित् तद्धित परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भौतिकम् । [1]ऐहलौकिककम् । [2]पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।

१०९३ जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः[3] ४ । ३ । ६२ ।

[4]जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

१०९४ वर्गान्ताच्च ४ । ३ । ६३ ।

[5]कवर्गीयम् ।

१०९५ तत [6]आगतः ४ । ३ । ७४ ।

स्रुघ्नादागतः, [7]स्रौघ्नः ।

१०९६ ठगायस्थानेभ्यः ४ । ३ । ७५ ।

[8]शुल्कशालाया आगतः–[9]शौल्कशालिकः ।

१०९७ विद्या-योनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४ । ३ । ७७ ।

[10]औपाध्यायकः । पैतामहकः ।

१–इह लोके भवम्, ऐहलौकिकम् । परलोके भवं–पारलौकिकम् । २–पारलौकिकम्–परलोके भवमित्यर्थे सप्तम्यन्तात् 'परलोक' शब्दात् आध्यात्मादित्वाट्ठञ् प्रत्यये 'अनुशतिकादीनां च' इत्युभयपदवृद्धौ ठस्य इकादेशे अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'पारलौकिकम्' । ३–छस्य ईय् इति । ४–जिह्वामूले भवम्, इति विग्रहः । अङ्गुल्यां भवम् 'अङ्गुलीयम्' । ५–कवर्गे भवम्–कवर्गीयम्, छप्रत्ययः तस्य 'ईय्' ६–तत आगत इत्यर्थे पञ्चम्यन्तात् अणादयः स्युरित्यर्थः । ८–अण् । ८–शुल्कशाला=(चुङ्गीखाना) । ९–'किति च' इत्यादिवृद्धिः । शौल्कशालिकः=(आयः) । १०–औपाध्यायकः–'उपाध्यायादागतः' इति विग्रहे पञ्चम्यन्ताद् 'उपाध्याय' शब्दात् 'विद्या–योनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्' इति 'वुञ्' प्रत्यये ञित्वादादिवृद्धौ सुब्लुकि 'वु' इत्यस्य अकादेशे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये 'औपाध्यायकः' इति रूपम् । एवं पितामहादागतः, वुञः-'वु' इत्यस्य 'युवोरनाकौ' इत्यकः, आदिवृद्धिः ।

१०९३–जिह्वामूल और अंगुली शब्द से भवार्थ में छप्रत्यय होता है ।

१०९४–वर्गान्त शब्द से भवार्थ में छ प्रत्यय होता है ।

१०९५–'आगत' अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

१०९६–आयस्थानवाचक शब्दों से 'आगत' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१०९७–विद्या और योनि सम्बन्धवाची शब्द से आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१०९८ हेतु-मनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४ । ३ । ८१ ।

समादागतं समरूप्यम् । पक्षे-गहादित्वाच्छः–समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । [1]दैवदत्तम् ।

१०९९ मयट् च ४ । ३ । ८२ ।

सममयम् । देवदत्तमयम् ।

११०० [2]प्रभवति ४ । ३ । ८३ ।

हिमवतः प्रभवति—[3]हैमवती=गङ्गा ।

११०१ तद्गच्छति [4]पथिदूतयोः ४ । ३ । ८५ ।

स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ।

११०२ अभिनिष्क्रामति [5]द्वारम् ४ । ३ । ८६ ।

स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं–कान्यकुब्जद्वारम् ।

११०३ अधिकृत्य कृते [6]ग्रन्थे ४ । ३ । ८७ ।

१–पक्षेऽण् (शेषे, इत्यनेन) । पञ्चम्यन्तात् प्रभवतीत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युरित्यर्थः । ३–अणप्रत्यये स्त्रियाम् 'टिड्ढाणञ्...' इति ङीप् । ४–द्वितीयान्ताद् गच्छति इत्यर्थेऽणादयः प्रत्ययाः स्युः पथि दूते च वाच्ये । ५–अस्मिन्नर्थेऽणादयः स्युरित्यर्थः । ६–द्वितीयान्तात् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इत्यर्थे–अणादय घादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः ।

१०९८–हेतुवाचक और मनुष्यवाचक शब्दों से आगत अर्थ में रूप्य प्रत्यय होता है ।

१०९९–हेतुवाचक और मनुष्यवाचक शब्द से आगत अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

११००–पञ्चम्यन्त से 'प्रभवति' अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं ।

११०१–द्वितीयान्त से 'गच्छति' अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं यदि जानेवाला रास्ता या दूत हो ।

११०२–'अभिनिष्क्रामति' अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय होते हैं यदि निकलने वाला द्वार हो ।

११०३–'अधिकृत्य कृते' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं, ग्रन्थ यदि किया जाता हो ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः –शारीरकीयः[१]।

११०४ सोऽस्य [२]निवासः ४ । ३ । ८९ ।

स्रुघ्नो निवासोऽस्य– स्रौघ्नः[३]।

११०५ तेन प्रोक्तं[४] ४ । ३ । १०१

पाणिनिना प्रोक्तं– पाणिनीयम्[५]।

११०६ [६]तस्येदम् ४ । ३ । १२० ।

उपगोरिदम्– औपगवम्[७]।

इति शैषिकाः ।

अथ प्राग्दीव्यतीयाः

११०७ तस्य [८]विकारः ४ । ३ । १३४ ।

(अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः) अश्मनो विकारः–[९]आश्मः । [१०]भास्मनः । [११]मार्त्तिकः ।

१–छप्रत्ययः–छस्य 'ईय्' । २–प्रथमान्तादस्य निवास इत्यर्थेऽणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । ३–अण् । ४–तृतीयान्तात्प्रोक्तेर्थेऽणादयो घादयश्चः स्युरित्यर्थः सूत्रस्य ५–छः प्रत्ययः । तस्य–'ईय्' । ६–षष्ठ्यन्तादिदमित्यर्थेऽणादयो घादयश्चः प्रत्ययाः । स्युरिति सूत्रार्थः । ७–अण् । इति शैषिकाः ।

८–षष्ठ्यन्ताद् विकारेऽर्थे प्राग्दीव्यतीया अणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । ९–आश्मः–'अश्मनो विकारः' इति विग्रहे 'अश्मन्' शब्दात् 'तस्य विकारः' इत्यणि 'अश्मनों विकारे टिलोपो वक्तव्यः' इति टिलोपे, आदिवृद्धौ, विभक्तिकार्ये 'आश्मः' इति रूपम् । १०–भस्मनो विकारः । 'अन्' इति प्रकृतिभावः (न टिलोपः) । अण् प्रत्ययः । ११–मृत्तिकाया विकारः अण्, आदिवृद्धिः–'यस्येति च' इत्यालोपः ।

११०४–प्रथमान्त से 'अस्य निवासः' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

११०५–तृतीयान्त से 'प्रोक्तार्थ' में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

११०६–षष्ठ्यन्त से 'इदम्' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं । इति शैषिकाः ।

अथ प्राग्दीव्यतीयाः

११०७–विकार अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

(वा०–अश्मन् शब्द की टि का लोप होता है विकार अर्थ में)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११०८ अवयवे च [1]प्राण्योषधि-वृक्षेभ्यः ४ । ३ । १३५ ।

चाद्विकारे । मयूरस्याऽवयवो विकारो वा मायूरः । [2]मौर्वं=काण्डं भस्म वा । [3]पैप्पलम् ।

११०९ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४ । ३ । १४३ ।

प्रकृतिमात्रान् मयड् वा स्यात् [4]विकारावयवयोः । अश्ममयम्, [5]आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम्—मौद्गः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ।

१११० नित्यं [6]वृद्ध-शरादिभ्यः ४ । ३ । १४४ ।

[7]आम्रमयम् ।

११११ गोश्च पुरीषे ४ । ३ । १४५ ।

गोः पुरीषं–गोमयम्[8] ।

१–षष्ठ्यन्तेभ्यः प्राण्योषधिवृक्षवाचकशब्देभ्यः अवयवे विकारे चार्थेऽणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । २–मूर्वा=ओषधिभेदः, तस्या विकारः । काण्डम् =पर्व । ३–पिप्पल्याः विकारो भस्म वा । ४–भक्ष्याऽऽच्छादनभिन्नयोर्विकारावयवयोरित्यर्थः । ५–आश्मनम्–(अश्मा कश्चित् पुरुषविशेषः न तु पाषाणः । अश्मनोविकारोऽवयवो वा इत्यर्थे 'अश्मन्' शब्दात् 'मयड्वैतयोर्भाषायाम्' इति प्राप्तस्य मयटोऽभावे 'तस्य विकारः' इत्यणि 'अन्' इति प्रकृतिभावेन टिलोपाभावे चादिवृद्धौ प्रातिपदिकत्वे सौ सोरमि सिध्यति रूपम् 'आश्मनम्' इति (नन्वत्र 'आश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः इति टिलोपः कथं नेति चेन्न, प्रसिद्धस्य पाषाणवाचकस्याश्मशब्दस्यैव तत्र ग्रहणात्) । ६–वृद्धम् ='वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्' । ७–आम्रस्य विकारोऽवयवो वा । ८–गोमयम्–'गोः पुरीषम्'–इत्यर्थे पुरीषार्थे षष्ठ्यन्ताद् 'गो' शब्दात् 'गोश्च पुरीषे' इति 'मयट्' प्रत्यये सुब्लुकि विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'गोमयम्' इति ।

११०८–प्राणि-ओषधि और वृक्षवाचक शब्दों से अवयव और विकार अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

११०९–मयट् प्रत्यय विकल्प से होता है विकार और अवयव अर्थ में । भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़कर ।

१११०–शरादिगणपठित और वृद्धसंज्ञक शब्दों से नित्य मयट् होता है विकार और अवयव अर्थों में ।

११११–गोशब्द से पुरीष अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१११२ [1]गोपयसोर्यत् ४ । ३ । १६० ।

गव्यम् । पयस्यम् ।

इति प्राग्दीव्यतीयाः ।

अथ ठगधिकारः

१११३ प्राग्वहतेष्ठक् ४ । ४ । १ ।

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

१११४ तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ ।

अक्षैर्दीव्यति [2]खनति जयति जितं वा–[3]आक्षिकः ।

१११५ [4]संस्कृतम् ४ । ४ । ३ ।

दध्ना संस्कृतं [5]दाधिकम् । [6]मारीचिकम् ।

१११६ [7]तरति ४ । ४ । ५ ।

तेनेत्येव । उडुपेन तरति–[8]औडुपिकः ।

१—विकारेऽर्थे ।

इति प्राग्दीव्यतीयाः

२—तृतीयान्तसमर्थात् 'दीव्यति, खनति, जयति, जितम्' इत्येतेष्वर्थेषु ठक् स्यादिति सूत्रार्थः ३—आक्षिकः–'अक्षैर्दीव्यति' इति विग्रहे 'तेन दीव्यति....' इत्यादिना 'ठक्' प्रत्यये कित्त्वाद् आदिवृद्धौ सुपो लुकि 'ठस्येकः' इति ठस्य इकादेशेऽकारलोपे विभक्तिकार्ये 'आक्षिकः' इति रूपम् । ४—तृतीयान्तात्संस्कृतमित्यर्थे ठक् स्यात् इति सूत्रार्थः । ५—ठक् । ६–मरीचिकाभिः संस्कृतं–मारीचिकम्, ठक् 'कति च' इत्यादिवृद्धिः । ७–तृतीयान्तात्तरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । ८—ठस्येकः आदिवृद्धिः ।

१११२–गो-पयस्, शब्दों से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। इति प्राग्दीव्यतीयाः।

अथ ठगधिकारः

१११३–'तद्वहति' सूत्र से पूर्व ठक् प्रत्यय का अधिकार जाता है।

१११४–तृतीयान्त शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है 'दीव्यति' आदि अर्थों में।

१११५–'संस्कृत' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

१११६–'तरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१११७ चरति ४ । ४ । ८ ।

तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् । हस्तिना [1]चरति [2]हास्तिकः । दध्ना [3]चरति दाधिकः ।

१११८ [4]संसृष्टे ४ । ४ । २२ ।

दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ।

१११९ [5]उञ्छति ४ । ४ । ३२ ।

वदराण्युञ्छति–बादरिकः ।

११२० [6]रक्षति ४ । ४ । ३३ ।

समाजं रक्षति–सामाजिकः[7] ।

११२१ शब्द-दर्दुरं [8]करोति । ४ । ४ । ३४ ।

शब्दं करोति शाब्दिकः । दार्दुरिकः ।

११२२ धर्मं [9]चरति ४ । ४ । ४१ ।

धर्मं चरति–[10] धार्मिकः । (अधर्माच्चेति वक्तव्यम्) आधर्मिकः ।

१–गच्छति-इत्यर्थः । २–'नस्तद्धिते' इति टिलोपः । ३–भक्षयतीत्यर्थः (चर गतिभक्षणयोः) । ४–तृतीयान्तात्संसृष्टेऽर्थे ठक् स्यादित्यर्थः ५–द्वितीयान्तात् उञ्छति = (कणाश आदत्ते) इत्यर्थे ठक् स्यात् । ६–द्वितीयान्तात् रक्षतीत्यर्थे ठक् स्यात् । ७—सामाजिकः–'समाजं रक्षति' इत्यर्थे द्वितीयान्तात् 'समाज' शब्दात् 'रक्षति' इति ठकि सुब्लुकि, आदिवृद्धौ, ठस्येकादेशे ऽकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'सामाजिकः' इति । ८–द्वितीयान्तात् 'शब्द' शब्दात् 'दर्दुर'–शब्दाच्च करोत्यर्थे ठक् । ९–द्वितीयान्ताद् धर्मशब्दात् ठक् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । १०–धार्मिकः–'धर्म' शब्दाद् द्वितीयान्तात् चरतीत्यर्थे 'धर्मं चरति'' इत्यनेन ठकि सुब्लुकि चादिवृद्धौ ठस्येकादेशेऽकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'धार्मिकः' इति ।

१११७–'चरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१११८–'संसृष्ट' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१११९–'उञ्छति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

११२०–'रक्षति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

११२१–'शब्द' और 'दर्दुर' शब्द से ठक प्रत्यय होता है 'करोति' अर्थ में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११२२–'धर्म' शब्द से 'चरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

११२३ [1]शिल्पम् ४ । ४ । ५५ ।

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ।

११२४ [2]प्रहरणम् ४ । ४ । ५७ ।

तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्य–[3]आसिकः । [4]धानुष्कः ।

११२५ [5]शीलम् ४ । ४ । ६१ ।

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः ।

११२६ [6]निकटे वसति ४ । ४ । ७३ ।

नैकटिको भिक्षुः ः

इति ठगधिकारः ।

अथ यदधिकारः

११२७ प्राग्घिताद्यत् ४ । ४ । ७५ ।

तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

११२८ तद्वहति रथ-[7]युग-प्रासङ्गम् १ । १ । ७६ ।

१–प्रथमान्तादस्य शिल्पमित्यर्थे ठक् प्रत्पयः । २–प्रथमान्तादस्य प्रहरणमित्यर्थे ठक् । ३–आसिकः = खड्गायुधः । ३–धानुष्कः–'धनुः प्रहरणमस्ये' ति विग्रहे प्रथमान्तात् 'धनुष्' शब्दात् 'प्रहरणम्' इति ठकि सुब्लुकि आदिवृद्धौ 'इसुसुक्तान्तात् कः' इति ठस्य कादेशे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'धानुष्कः' इति' । ५–प्रथमान्तादस्य शीलमित्यर्थें ठक् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । ६–सतम्यन्तान्निकटशब्दात् वसतीत्यर्थे ठक् । ७–द्वितीयान्तेभ्यो रथयुगप्रासङ्गशब्देभ्यो वहतीर्थे यत् प्रत्ययः स्यात् ।

(वा–अधर्म शब्द से 'चरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।)

११२३–'शिल्प' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

११२४–'प्रहरण' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

११२५–'शील' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

११२६–'निकटे वसति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है । इति ठगधिकारः ।

अथ यदधिकारः

११२७–'तस्मै हितम्' से पूर्व यत् प्रत्यय का अधिकार होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११२८–रथ-युग प्रासंग शब्दों से 'वहति' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

रथं वहति-रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः।

११२९ धुरो [1]यड्ढकौ ४।४।७७।

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते।

११३० न-भकुर्छुराम् ८।२।७९।

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात्। [2]धुर्यः। [3]धौरेयः।

११३१ नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य वध्याऽऽनाम्य [4]सम-समित-सम्मितेषु ४।४।९१।

नावा तार्यं-[5]नाव्यम्। वयसा तुल्यो-वयस्यः। धर्मेण प्राप्यं-धर्म्यम्। विषेण वध्यो-विष्यः, मूलेन आनाम्यं-मूल्यम्, मूलेन समो-मूल्यः। सीतया समितं-सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया सम्मितं तुल्यम्।

११३२ तत्र [6]साधुः। ४।४।९८।

अग्रे साधुः-अग्र्यः। सामसु साधुः सामन्यः। (१०२०) ये चाभाव-कर्मणोरिति प्रकृतिभावः। [7]कर्मण्यः। [8]शरण्यः।

१—द्वितीयान्ताद् 'धुर्' शब्दात् यत् प्रत्ययः ठक् प्रत्ययश्च स्यात् वहतीत्यर्थे। २—धुर्यः—'धुरं वहतीति' विग्रहे द्वितीयान्ताद् 'धुर्' शब्दाद् 'धुरो यड्ढकौ' इति 'यत्' प्रत्यये सुपो लुकि 'हलि चे' ति दीर्घे प्राप्ते भत्वात् 'न भकुर्छुराम्' इत्यनेन तन्निषेधे विभक्तिकार्ये 'धुर्यः' इति रूपं सिध्यति (पक्षे ढकि 'धौरेयः' इति रूपम्)। ३—ढस्य 'एय्' कित्त्वादादिवृद्धिः। ४—नावादिभ्यः तार्यादिष्वर्थेषु यत् प्रत्ययः, इत्यर्थः। ५—नाव्यम्—'नावा तार्यम्' इत्यर्थे तृतीयान्तात् 'नौ-वयो-धर्म....' इत्यादिना यति सुब्लुकि 'वान्तो यि प्रत्यये' इत्यनेन औकारस्य आवादेशे विभक्तिकार्ये 'नाव्यम्' इति रूपम् ६—सप्तम्यन्तात्साधुरित्यर्थे यत्प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। ७—कर्मणि साधुः, शरणे साधुः, यत्। ८—शरण्यः—'शरणे साधु' रित्यर्थे 'शरण' शब्दात् सप्तम्यन्तात् 'तत्र साधुः' इति 'यत्' प्रत्यये सुब्लुकि अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं शरण्यः' इति।

११२९—धुर शब्द से 'वहति' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

११३०—भसंज्ञक कुर् छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता।

११३१—नौ वयस् आदि शब्दों से यत् प्रत्यय होता है तार्यं तुल्यादि अर्थों में क्रम से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११३२—साधु अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

११३३ [1]सभाया यः ४ । ४ । १०५ ।

[2]सभ्यः ।

इति यतोऽवधिः ।

अथ छयतोरधिकारः

११३४ प्राक् क्रीताच्छः ५ । १ । १ ।

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ।

११३५ उ-गवादिभ्यो यत् ५ । १ । २ ।

प्राक्क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवादः । शङ्कवे हितं [3]शङ्कव्यं=दारु । गव्यम् । (नाभि [4]नभं च) नभ्योऽक्षः, [5]नभ्यमञ्जनम् ।

११३६ तस्मै [6]हितम् ५ । १ । ५ ।

१–सभाशब्दात्तु सप्तम्यन्तात् साधुरित्यर्थे यः प्रत्ययः स्यान्नतु यत् इत्यर्थः । २–सभ्यः–'सभायां साधु' रित्यर्थः, सप्तम्यन्तात् 'सभा' शब्दात् 'सभाया यः' इति 'य' प्रत्यये सुब्लुकि 'यस्येति च' इत्याकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'सभ्यः' इति ।

३–'ओर्गुण' इति गुणे 'वान्तो यि प्रत्यये' इति 'अव्' । ४–नाभिशब्दस्य यप्रत्यये नभादेशः स्यादित्यर्थः । ५–नभ्यम्–'नाभये हितम्' इत्यर्थे 'नाभि' शब्दात् चतुर्थ्यन्ताद् 'उ–गवादिभ्यो यत्, इत्यनेन यति 'नाभि नभं च' इति वार्त्तिकेन नभादेशे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये रूपं 'नभ्यम्' । ६–चतुर्थ्यन्तात् हितमित्यर्थे छप्रत्ययः ।

११३३–सभा शब्द से 'य' प्रत्यय होता है साधु अर्थ में । इति यदधिकारः ।

अथ छयतोरधिकारः

११३४–'तेन क्रीतम्' से पूर्व छ का अधिकार जाता है ।

११३५–उवर्णान्त और गवादिगणपठित शब्दों से यत् प्रत्यय होता है हित अर्थ में ।

(वा०–नाभि शब्द के स्थान में नभ आदेश होता है यत् प्रत्यय परे रहते) ।

११३६–हित अर्थ में छ प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वत्सेभ्यो हितो—[1]वत्सीयो-गोधुक्।

११३७ [2]शरीरावयवाद् यत् ५।१।६।

[3]दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। [4]नस्यम्।

११३८ आत्मन्-विश्वजन-[5]भोगोत्तरपदात् खः ५।१।९।

११३९ आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९।

एतौ खे प्रकृत्या स्तः[6]। आत्मने हितम्–[7]आत्मनीनम्। [8]विश्वजनीनम्। [9]मातृभोगीणः।

इति यतोः पूर्णोऽवधिः।

अथ ठञधिकारः

११४० प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८।

तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते।

११४१ तेन [10]क्रीतम् ५।१।३७।

१—छस्य 'ईय' गोधुक्=गवां दोग्धा। २—चतुर्थ्यन्तात् शरीरावयववाचकात् शब्दात् यत् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। ३—दन्तेभ्यो हितम्, यत्। ४—नासिकायै हितम्, नस् भावः। ५—चतुर्थ्यन्तेभ्य आत्मन्-विश्वजन-भोगोत्तर-(मातृभोगादिक) शब्देभ्यो हितमित्यर्थे खप्रत्ययः। ६—तेन न दिलोपः। ७—खस्य 'ईन्'। ८—विश्वजनीनम्—'विश्वजनाय हितमित्यर्थे चतुर्थ्यन्ताद् 'विश्वजन' शब्दाद् 'आत्मन् विश्वजन…' इत्यादिना 'ख' प्रत्यये खस्य ईनादेशे सुब्लुकि अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'विश्वजनीनम्' इति। ९—मातुर्भोगः=शरीरं तस्मै हित इति विग्रहः। 'कुमति च' इति णत्वम्। एवं पितृभोगीणः। १०—तृतीयान्तात्क्रीतेऽर्थे ठञ् स्यात्।

११३७—शरीरावयववाचक शब्दों से हित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

११३८—आत्मन्-विश्वजन शब्द से और भोग हैं उत्तरपद जिनके, उनसे हित अर्थ में ख-प्रत्यय होता है।

११३९—आत्मन् और अध्वन् शब्द को प्रकृतिभाव होता है ख प्रत्यय परे रहते।

अथ ठञधिकारः

११४०—'तेन तुल्यम्' से पूर्व ठञ् प्रत्यय का अधिकार होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११४१—तृतीयान्त से क्रीत अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

सप्तत्या क्रीतं–साप्ततिकम् । [1]प्रास्थिकम् ।

११४२ तस्येश्वरः ५ । १ । ४२ ।

[2]सर्वभूमि-पृथिवीभ्यामणञौ स्तः ।

११४३ अनुशतिकादीनां च ७ । ३ । २० ।

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च तद्धिते । सर्वभूमेरीश्वरः–[3]सार्वभौमः । [4]पार्थिवः ।

११४४ [5]पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्-पञ्चाशत्-षष्टि-सप्तत्य-शीति-नवति-शतम् ५ । १ । ५९ ।

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ।

११४५ तदर्हति ५ । १ । ६३ ।

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्तात् ठञादयः स्युः । श्वेतच्छत्रमर्हति [6]श्वैतच्छत्रिकः ।

११४६ [7]दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६ ।

एभ्यो यत् स्यात् । दण्डमर्हति–[8]दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ।

१–प्रस्थेन क्रीतम् । २–षष्ठ्यन्ताभ्यामीश्वर इत्यर्थे, इति शेषः । ३–सार्वभौमः–'सर्वभूमेरीश्वरः' इत्यर्थे 'सर्वभूमि' शब्दात् 'सर्वभूमि–पृथिवीभ्यामणञौ' इत्यनेन अणि अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धौ 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'सार्वभौमः' इति । ४–पृथिव्या ईश्वरः = स्वामी । ५–पङ्क्तिः = दश = १० । विंशतिः = २० । त्रिंशत् = ३० । चत्वारिंशत् = ४० । पञ्चाशत् = ५० । षष्टिः = ६० । सप्ततिः = ७० । अशीतिः = ८० । नवतिः = ९० । शतम् = १०० । ६–ठञ्, आदिवृद्धिः, ठस्येकः । ७–द्वितीयान्तेभ्यो दण्डादिभ्योऽर्हत्यर्थे यत् स्यात् । ८–'यस्येति च' इति 'अ' लोपः । एवं अर्घमर्हतीति वधमर्हतीति विग्रहौ ।

११४२–सर्वभूमि और पृथिवी शब्द से ईश्वर अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

११४३–अनुशतिकादियों में उभयपद वृद्धि होती है ।

११४४–पङ्क्ति विंशति आदि निपातन से सिद्ध होते हैं ।

११४५–'लब्धुं योग्यो भवति' इस अर्थ में द्वितीयान्त से ठञ प्रत्यय होता है ।

११४५–दण्डादिगणपठित शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११४७ तेन निर्वृत्तम् ५ । १ । ७९ ।

अह्ना [1]निर्वृत्तम् [2]आह्निकम् । इति ठञोऽवधिः ।

अथ त्वतलधिकारः

११४८ [3]तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५ । १ । ११५ ।

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते । क्रिया चेदिति किम्—गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।

११४९ तत्र [4]तस्येव ५ । १ । ११६ ।

मथुरायामिव-मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव-चैत्रवन्मैत्रस्य गावः ।

११५० तस्य [5]भावस्त्व-तलौ ५ । १ । ११९ ।

[6]प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः गोर्भावो-गोत्वम्, गोता । [7]त्वान्तं क्लीबम् ।

११५१ आ च त्वात् ५ । १ । १२० ।

१-तृतीयान्तान्निर्वृत्तमित्यर्थे ठञ् स्यात् । २-आह्निकम्-अह्ना निर्वृत्तमित्यर्थे 'अहन्' शब्दात् तृतीयान्तात् 'तेन निर्वृत्तम्' इति 'ठञ्' प्रत्यये आदिवृद्धौ भसंज्ञायाम् 'अह्नष्ठखोरेवे' तिनियमात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपाभावे 'अल्लोपोऽनः' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'आह्निकम्' इति । ३-तृतीयान्तात्तुल्येऽर्थे वतिप्रत्ययः स्यात् यत्तुल्यं तत्क्रिया चेत् । ४-सप्तम्यन्तात् षष्ठ्यन्ताच्च इवार्थे 'वति' प्रत्ययः स्यात् । ५-षष्ठ्यन्ताद् भाव इत्यर्थे त्वप्रत्ययः, तल्प्रत्ययश्च स्यात् । ६-त्वतल्प्रकृतिभूतगवादिशब्देभ्यो जायमाने गोव्यक्त्यादिबोधे प्रकारो=विशेषणं भावः, इत्यर्थः । ७-तल्प्रत्ययान्तं स्त्रियामित्यपि बोध्यम् ।

११४७-'निर्वृति' अर्थ में तृतीयान्त से यत् प्रत्यय होता है । इति ठञधिकारः ।

अथ त्वलधिकारः

११४८-तुल्यार्थ में वति प्रत्यय होता है तुल्य यदि क्रिया हो ।

११४९-सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से इव अर्थ में वति प्रत्यय होता है ।

११५०-भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय होते हैं । प्रकृतिजन्य बोध में प्रकार को भाव कहते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११५१-'ब्रह्मणस्त्वः' से पूर्व त्व-तल् का अधिकार जाता है ।

'ब्रह्मणस्त्व' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। [1]अपवादैः सह [2]समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्-स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रियाः भावः-[3]स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता। [4]पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता।

११५२ पृथ्व्यादिभ्य [5]इमनिज् वा ५।१।१२२।

वा-[6]वचनमणादिसमावेशार्थम्।

११५३ र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१।

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् [7]इष्ठेमेयस्सु परतः।

११५४ टेः ६।४।१५५।

भस्य टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु। (पृथु-मृदु-भृश-कृश-दृढ-परिवृढानामेव रत्वम्)। पृथोर्भावः-[8]प्रथिमा, [9]पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्।

११५५ [10]वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५।१।१२३।

चादिमनिच्। शौक्ल्यं, शुक्लिमा। दार्ढ्यं, द्रढिमा।

१-इमनिजादिभिः, इत्यर्थः। २-अनुवृत्त्यैव सिद्धे, इमनिजादिभिरपवादैरस्य बाधो मा भूदित्येवमर्थमधिकारसूत्रम्। तथा च 'प्रथिमा' शब्देन सह, 'पृथुत्वम्' 'पृथुता' इत्येतयोरपि सिद्धिः। ३-अत्र नञ्। ४-स्नञ्। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ'। ५-षष्ठ्यन्तेभ्यः पृथ्व्यादिभ्यो भावेऽर्थे-इमनिच् प्रत्ययो वा। (इमनिजन्ताः पुंसि)। ६-अणादयोऽपि भवन्तीत्यर्थः। ७-इष्ठ-इम-ईयस् (सु) इति छेदः। ८-प्रथिमा-'पृथु' शब्दाद् भावेऽर्थे 'पृथ्व्यादिभ्य-इमनिज् वा' इति 'इमनिच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे सुब्लुकि 'पृथु इमन्' इति स्थितौ 'र ऋतो हलादेर्लघो' इति ऋकारस्य रेफादेशे भत्वे गुणं बाधित्वा 'टेः' इति टिलोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'प्रथिमा' इति। ९-इगन्ताच्च लघुपूर्वात्, इति सूत्रेण-अण् ओर्गुणः। १०-षष्ठ्यन्तेभ्यो वर्णवाचकेभ्यो दृढादिभ्यश्च ष्यञ् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। ११-शौक्ल्यम्-'शुक्ल' शब्दाद् भावेऽर्थे 'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च' इत्यनेन 'ष्यञ्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यकारलोपे विभक्तिकार्ये 'शौक्ल्यम्' इति (ष्यञभावपक्षे इमनिचि 'शुक्लिमा' इति रूपम्।

११५२-पृथ्व्यादिगणपठित शब्दों से भाव में इमनिच् प्रत्यय होता है विकल्प से।

११५३-हलादि लघु ऋकार को रभाव होता है इष्ठ, इम, ईयस् परे रहते।

११५४-भसंज्ञक टि का लोप होता है इष्ठन्, इमन्, ईयसुन् परे रहते।

११५५-वर्णवाचक और दृढादिगणपठित शब्दों से ष्यञ् होता है भाव अर्थ में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११५६ गुणवचन-[2]ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५ । १ ।१२४ ।

चाद्भावे । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम् । [2]ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ।

११५७ [3]सख्युर्यः ५ । १ । १२६ ।

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ।

११५८ [4]कपि-ज्ञात्योर्ढक् ५ । १ । १२७ ।

कापेयम् । ज्ञातेयम् ।

११५९ [5]पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यो यक् ५ । १ । १२८ ।

सैनापत्यम् । [6]पौरोहित्यम् ।

इति त्वतलधिकारः ।

अथ भवनार्थकाः

११६० [7]धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५ । २ । १ ।

भवत्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं [8]मौद्गीनम् ।

१–षष्ठ्यन्तेभ्यो गुणवाचकेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च कर्मणि भावे चार्थे ष्यञ् स्यात् । २–ब्राह्मण्यम्–ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे 'गुणवचन...' इत्यादिना ष्यञि अनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'ब्राह्मण्यम्' इति । ३–षष्ठ्यन्ताद् सखिशब्दात् भावे कर्मणि चार्थे य-प्रत्ययः । ४–षष्ठ्यन्ताभ्यां कपिज्ञातिशब्दाभ्यां भावे कर्मणि च ढक्, कित्वादादिवृद्धिः । ५–षष्ठ्यन्तेभ्यः पत्यन्तशब्देभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च यक् स्याद् भावे कर्मणि चार्थे । ६–पौरोहित्यम्–'पुरोहित' शब्दाद् भावे कर्मणि वा 'पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यो यक्' इति यक् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे आदिवृद्धौ अकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति 'पौरोहित्यम्' इति । इति त्वतलधिकारः । ७–षष्ठ्यन्ताद् धान्यवाचकाद् शब्दाद् भवनं क्षेत्रमित्यर्थे खञ् स्यात् । ८–खस्य 'ईन्' ।

११५६–गुणवाचक और ब्राह्मणादिगणपठितोंसे ष्यञ् होता है कर्म और भाव अर्थमें ।

११५७–सखि शब्द से य होता है कर्म और भाव अर्थ में ।

११५८–कपि और ज्ञाति शब्द से ढक् होता है भाव और कर्म अर्थ में ।

११५९–पत्यन्त और पुरोहितादिगणपठित शब्दों से यक् प्रत्यय होता है भाव और कर्म अर्थ में ।

इति त्वतलधिकारः ।

अथ भवनाद्यर्थकाः

११६०–धान्यवाचक शब्दों से भवन क्षेत्र अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११६१ [1]व्रीहिशाल्योर्ढक् ५ । २ । २ ।

[2]व्रैहेयम् । शालेयम् ।

११६२ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ ।

ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशः, विकारार्थे खञ् च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः=क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः-[3]हैयङ्गवीनम् = नवनीतम् ।

११६३ तदस्य सञ्जातं [4]तारकादिभ्य इतच् ५ । २ । ३६ ।

तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं-नभः । पण्डितः[5] । आकृतिगणोऽयम् ।

११६४ प्रमाणे द्वयसज्-दघ्नञ्-[6]मात्रचः ५ । २ । ३७ ।

तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरू प्रमाणमस्य-ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ।

११६५ यत्तदेतेभ्यः [7]परिमाणे वतुप् ५ । २ । ३९ ।

यत् परिमाणमस्य[8]-यावान् । तावान् । एतावान् ।

१-षष्ठ्यन्ताभ्यां व्रीहिशालिशब्दाभ्यां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे ढक् । खञोऽपवादोऽयम् । २-व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्, शालीनां भवनं क्षेत्रम् । ३-हैयङ्गवीनम्-ह्योगोदोहस्य विकारः 'हैयङ्गवीनम्' इति । 'हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्'इति 'खञ्-प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'ह्योगोदोह' शब्दस्य 'हियङ्गु-' आदेशे ञित्वादादिवृद्धौ 'ओर्गुणः' इति गुणेवाऽदेशे खस्य ईनादेशे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'हैयङ्गवीनम्' इति । ४-प्रथमान्तेभ्यः तारकादिगणपठितेभ्यो शब्देभ्योऽस्य सञ्जातमित्यर्थे 'इतच्' स्यात् । ५-सदसद्विवेकिनी बुद्धिः = पण्डा, सा सञ्जाता अस्येति पण्डितः । ६-प्रथमान्तादस्य प्रमाणमित्यर्थे द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच् इति त्रयः प्रत्ययाः स्युः । ७-प्रथमान्तेभ्यो यत्तदेतेभ्योऽस्य परिमाणमित्यर्थे वतुप् स्यात् । ८-यावान्-यत् परिमाणमस्येति विग्रहे 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' इति 'वतुप्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'यत्-वत्' इति स्थितौ 'आ सर्वनाम्नः' इति तकारस्य आत्वे सवर्णदीर्घे प्रातिपदिकत्वेन सौ नुमि 'हल्ङ्याभ्यः....' इत्यादिना सुलोपे संयोगान्तस्य लोपे

११६१-व्रीहि और शालि शब्दों से 'भवनं क्षेत्रं' अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ।

११६२-'हैयङ्गवीनम्' इस शब्द का संज्ञा में निपातन होता है ।

११६३-तारकादिगणपठित शब्दों से 'अस्य संजातम्' अर्थ में इतच् प्रत्यय होता है ।

११६४-'अस्य प्रमाणम्' अर्थ में द्वयसज् दघ्नञ् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं ।

११६५-'यत्, तत्, एतद् शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

११६६ किमिदंभ्यां वो घः ५ । २ । ४० ।

आभ्यां वतुप्, वकारस्य [1]घश्च ।

११६७ इदंकिमोरीश्-की ६ । ३ । ९० ।

दृग्दृशवतुषु इदम ईश्, किमः की स्यात् । [2]इयान् । [3]कियान् ।

११६८ [4]संख्याया अवयवे तयप् ५ । २ । ४२ ।

पञ्च अवयवा अस्य-पञ्चतयम् ।

११६९ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा ५ । २ । ४३ ।

द्वयम्, द्वितयम् । त्रयम्, त्रितयम् ।

११७० उभादुदात्तो नित्यम् ५ । २ । ४४ ।

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्तः । उभयम्

११७१ तस्य पूरणे डट् ५ । २ । ४८ ।

नान्तस्योपधायाः दीर्घे 'यावान्' इति रूपम् ।

१–घस्य 'इय्' । २–इयान्–'इदम्' शब्दात् परिमाणेऽर्थे 'किमिदंभ्यां वो धः' 'वतुप्' प्रत्यये वतुपो वस्य धादेशे चानुबन्धलोपे 'इदं किमोरीश् की' इति इदमः इशादेशे 'इघत्' इति स्थितौ घस्य इयादेशे भसंज्ञया 'यस्येति चे' ति इकारलोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ उगित्वान्नुमि सुलोपे संयोगान्तलोपे चोपधादीर्घे 'इयान्' इति । ३–'यस्येति च' इति 'की' इत्यस्य 'ई' लोपः । प्रथमान्तात्सङ्ख्यावाचकाद् अवयवा अस्येत्यर्थे तयप् स्यात् । ४–षष्ठ्यन्तात्सङ्ख्यावाचकात्पूरणेऽर्थे डट् स्यात् । डित्त्वात् टिलोपः ।

११६६–किम्-इदम् शब्द से वतुप् प्रत्यय होता है और व को घ होता है ।

११६८–इदम् को ईश् और किम् को की आदेश होता है दृग्, दृश्, वतु परे रहते ।

११६८–संख्यावाचक शब्दों से 'अवयया: अस्य' अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है ।

११६९–द्वि-त्रि शब्द से विहित तयप् प्रत्यय को अयच् आदेश होता है विकल्प से ।

११७०–उभशब्द से विहित तयप् प्रत्यय को अयच् आदेश होता है, वह उदात्त होता है ।

११७१–पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एकादशानां पूरणः–एकादशः ।

११७२ नान्तादसंख्यादेर्मट् ५ । २ । ४९ ।

डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः[१] । नान्तात्किम्—

११७३ ति विंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ ।

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे । [२]विंशः । असंख्यादेः किम्-[३]एकादशः ।

११७४ षट्-कति-कतिपय चतुरां थुक् ५ । २ । ५१ ।

एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः–षष्ठः[४] । कतिथः । कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकात् डट् । कतिपयथः । [५]चतुर्थः ।

११७५ द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ ।

डटोऽऽपवादः । द्वयोः पूरणो– द्वितीयः ।

११७६ त्रेः सम्प्रसारणं च ५ । २ । ५५ ।

तृतीयः ।

११७७ श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते[६] ५ । २ । ८४ ।

१–डटो मडागमे, 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपः । २–विंशः–विंशति' शब्दात् पूरणेऽर्थे 'तस्य पूरणे डट्' इति 'डट्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'ति विंशतेर्डिति' इति तिलोपे 'विंश अ' इति स्थितौ 'अतो गुणे' इति पररूपे विभक्तिकार्ये सिध्यति 'विंश' इति रूपम् । (ननु 'यस्येति च' इत्यकारलोपः स्यादिति चेन्न; 'असिद्धवदत्राभात्' इति तिलोपस्यासिद्धत्वात्) । स्त्रियां टित्त्वात् ङीप् 'विंशी' । ३–नात्र डटो मट् (आगमः) । ४–ष्टुना ष्टुः, इति ष्टुत्वम् । ५–चतुर्णां पूरणः=चतुर्थः । ६–'छन्दोऽधीते' इत्यर्थे

११७२–नान्त संख्यावाची शब्द से डट् को मट् का आगम होता है संख्यादि शब्द को छोड़कर ।

११७३–भसंज्ञक विंशति शब्द के 'ति' का लोप होता है डित् परे रहते ।

११७४–षट्-कति-कतिपय-चतुर शब्दों को थुक् का आगम होता है डट् परे रहते ।

११७५–द्विशब्द से पूरणार्थ में तीय प्रत्यय होता है ।

११७६–त्रिशब्द से तीय प्रत्यय होता है पूरण अर्थ में त्रि को सम्प्रसारण भी ।

११७७–'छन्दोऽधीते' अर्थ में श्रोत्रिय निपातन होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः[1] ।

११७८ [2]पूर्वादिनिः ५ । २ । ८६ ।

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ।

११७९ [3]सपूर्वाच्च ५ । २ । ८७ ।

[4]कृतपूर्वी ।

११८० [5]इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८ ।

इष्टमनेन इष्टी । अधीती ।

इति भवनार्थकाः

अथ मत्वर्थीयाः

११८१ [6]तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५ । २ । ९४ ।

गावोऽस्यास्मिन् वा सन्ति-गोमान् ।

'श्रोत्रियः' इति निपात्यते इत्यर्थः । 'छन्दः' शब्दात् 'घन्' प्रत्ययः, छन्दः शब्दस्य श्रोत्रादेशश्चेति भावः । घस्य-इय् ।

१-पक्षे छन्दःशब्दाद् अण् छान्दसः । २-द्वितीयान्तात् पूर्वशब्दात्कृतमनेन इत्यर्थे 'इनि' प्रत्ययः । ३-एतत्सूत्रार्थश्चायं विद्यमानपूर्वाच्च पूर्वशब्दात् 'अनेन' इत्यर्थे 'इनिः' स्यात् । ४-कृतपूर्वी-कृतं पूर्वमनेनेति विग्रहे समासे सति 'कृतपूर्व' शब्दात् 'सपूर्वाच्च' इति इनि प्रत्यये भत्वेऽकारलोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ 'सौ च' इत्युपधादीर्घे सुलोपे नलोपे च सिध्यति रूपं 'कृतपूर्वी' इति । ५-प्रथमान्तेभ्य इष्टादि शब्देभ्य 'अनेन' इत्यर्थे इनि-प्रत्ययः ।

अथ भवनाद्यर्थकाः ।

६-प्रथमान्तादस्यास्तीत्यर्थेऽस्मिन्नस्ति इत्यर्थे च मतुप् स्यादित्यर्थः ।

११७८-पूर्व शब्द से इनि प्रत्यय होता है ।

११७९-सपूर्व पूर्व शब्द से इनि प्रत्यय होता है ।

११८०-इष्टादि शब्दों से इनि प्रत्यय होता है 'भवने' अर्थ में । इति भवनाद्यर्थकाः ।

अथ मत्वर्थीयाः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११८१-अस्यास्ति और अस्मिन्नस्ति अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है ।

११८२ तसौ मत्वर्थे १ । ४ । १९ ।

तान्त-सान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । [1]गरुत्मान् (३५२) वसोः संप्रसारणम् । [2]विदुष्मान् । (गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः) शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति–शुक्लः पटः । कृष्णः ।

११८३ [3]प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५ । २ । ९६ ।

चूडालः । [4]चूडावान् । प्राणिस्थात्किम् [5]-शिखावान्=दीपः । प्राण्यङ्गादेव, नेह–[6]मेधावान् ।

११८४ लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः [7]शनेलचः ५ ।२।१००।

लोमादिभ्यः शः लोमशः=लोमवान् । "पामादिभ्यो नः" । पामनः । (अङ्गात् कल्याणे) । [8]अङ्गना ([9]लक्ष्म्या अच्च) । [10]लक्ष्मणः पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिलः=पिच्छवान् ।

१–भत्वात् पदत्वाऽभावेन 'प्रत्यये भाषायाम्' इति अनुनासिको न भवति । २–विद्वानस्त्यस्मिन्निति विदुष्मान् वंशः । ३–प्रथमान्तात् प्राणिस्थाङ्गवाचकादाकारान्ताच्छब्दान्मतुबर्थेलच् स्यादित्यर्थः । ४–चूड़ावान्–चूडा अस्यास्तीति विग्रहे 'चूडा' शब्दात् 'प्राणिस्थादातो....' इत्यादिना वा 'लच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'चूडालः' इति (पक्षे मतुपि 'चूडावान्' इति रूपं सिध्यति । ५–नात्र प्राणिस्था शिखा । ६–मेधा=बुद्धिः, अमूर्त्तत्वात् नाऽङ्गम् । ७–लोमादिभ्यः शः, पामादिभ्यो नः, पिच्छादिभ्य इलच् स्यान्मतुबर्थे इति सूत्रार्थः । ८–कल्याणान्यङ्गानि यस्या इति विग्रहः । टाप् स्त्रियाम् । ९–लक्ष्मीशब्दान् मत्वर्थे 'न' प्रत्ययः, अकारोऽन्तादेशश्च । १०–लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः ।

११८२–तान्त सान्त की भसंज्ञा होती है मत्वर्थ प्रत्यय परे रहते ।
(वा०–गुणवाचक से विहित मतुप् प्रत्यय का लुक् होता है) ।

११८३–प्राण्यङ्गवाचक आकारान्त शब्दों से लच् होता है विकल्प से अस्त्यादि अर्थ में ।

११८४–लोमादिगणपठित शब्दों से श, पामादियों से न, और पिच्छादियों से इलच् प्रत्यय होता है ।

(वा० (१) अङ्ग शब्द से कल्याण अर्थ में न प्रत्यय होता है । (२) लक्ष्मी शब्द को अकारान्त आदेश होता है और न प्रत्यय भी ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११८५ दन्त [1]उन्नत उरच् ५ । २ । १०६ ।

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य–दन्तुरः ।

११८६ [2]केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५ । २ । १०६ ।

केशवः, [3]केशी, [4]केशिकः [5]केशवान् । (अन्येभ्योऽपि दृश्यते) मणिवः ([6]अर्णसो लोपश्च) [7]अर्णवः ।

११८७ [8]अत इनि-ठनौ ५ । २ । ११५ ।

[9]दण्डी, दण्डिकः ।

११८८ [10]व्रीह्यादिभ्यश्च ५ । २ । ११६ ।

व्रीही, व्रीहिकः ।

११८९ [11]अस्-माया-मेधा-स्रजो विनिः ५ । २ । १२१ ।

यशस्वी, [12]यशस्वान् । मायावी । [13]मेधावी । स्रग्वी ।

१–प्रथमान्ताद् दन्तशब्दात् मतुबर्थे उरच् स्याद्दन्ताश्चेदुन्नताः स्युः । २–प्रथमान्तात्केशशब्दाद् मतुबर्थे 'व' प्रत्ययो वा । अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तावपि–पुनरन्यतरस्यां ग्रहणम् इनिठनावपि स्यातामित्येतदर्थम् । ३–पक्षे इनि । ५–मतुप् । ६–'अर्णस्' इत्यस्यान्तलोपो अप्रत्ययश्चेत्यर्थः । ६–अर्णो=जलम् । अर्णवः=समुद्रः अर्णांसि सन्त्यत्रेति विग्रहः । ८–प्रथमान्ताददन्तान्मत्वर्थे इनिठनौ स्यातामित्यर्थः । ९–दण्डी–दण्डोऽस्यास्ति इत्यर्थे 'दण्ड' शब्दात् 'अत इनि–ठनौ' इति इनि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'दण्डी' इति रूपं सिध्यति (पक्षे 'ठन्' प्रत्यये ठस्येकादेशेऽलोपे सिध्यति रूपं 'दण्डिकः' इति) । १०–इनिठनौ स्तः । ११–अस्= असन्तात् माया-मेधा-स्रज्-शब्देभ्यश्च विनिः स्यादित्यर्थः । १२–अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तेः पक्षे मतुप्, 'तसौ मत्वर्थे' इति भत्वात् पदत्वाऽभावेन रुत्वं न । १३–मेधावी–'धीर्धारणावती मेधा' । सोऽस्यास्तीति विग्रहे 'मेधा' शब्दाद् 'अस्-माया-मेधा...' इत्यादिना

११८५–दन्त शब्द से उरच् प्रत्यय होता है उन्नत अर्थ में ।

११८६–केश शब्द से व प्रत्यय होता है विकल्प से मत्वर्थ में ।

(वा०-(१) केश भिन्न से भी व प्रत्यय होता है । (२) अर्णस् से व प्रत्यय होता है और अन्त्य वर्ण का लोप होता है ।

११८७–अदन्त शब्द से इनि प्रत्यय होता है और ठन् प्रत्यय भी मत्वर्थ में ।

११८८–व्रीह्यादिगणपठित शब्दों से इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं मत्वर्थ में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११८९–असन्त और माया मेधा स्रज् शब्दों से विनि प्रत्यय होता है मत्वर्थ में ।

११९० वाचो ग्मिनिः ५ । २ । १२४ ।

[1]वाग्मी ।

११९१ [2]अर्श आदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७ ।

अर्शोऽस्य विद्यते-अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ।

११९२ अहं-शुभमोर्युस् ५ । २ । १४० ।

[3]अहंयुरहंकारवान् । शुभंयुः=शुभान्वितः ।

इति मत्वर्थीयाः ।

अथ प्राग्दिशीयाः

११९३ प्राग्दिशो विभक्तिः ५ । ३ । १ ।

दिक्शब्देभ्यः इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः ।

११९४ किं-सर्वनाम-बहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५ । ३ । २ ।

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ।

विनि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये 'मेधावी' इति रूपं सिध्यति ।

१–वाचः सन्त्यस्येति विग्रहः चोः कुरिति कुत्वम् । २–अर्शः='बवासीर' इति प्रसिद्धो रोगः । ३–अहंयुः–अहमित्यहंकारे रूढमव्ययम् । तस्मादस्त्यर्थे 'अहंशुभमोर्युस्' इति युसि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'सिपि चे' ति पदत्वात् मस्य अनुस्वारे प्रातिपदिकत्वाद् विभक्तिकार्ये सिध्यति रुपम् 'अहंयुः' इति (अहंयुः, अहंयू, अहंयवः इत्युच्चारणम्) ।

इति मत्वर्थीयाः ।

११९०– वाच शब्द से ग्मिनि प्रत्यय होता है मत्वर्थ में ।

११९१–अर्श आदियों से अच् प्रत्यय होता है मत्वर्थ में ।

११९२–अहं शुभं शब्दों से युस् प्रत्यय होता है मत्वर्थ में । इति मत्वर्थीयाः ।

अथ प्राग्दिशीयाः

११९३–'दिक् शब्देभ्यः' से पूर्व होनेवाले प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा होती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११९४–कि-सर्वनाम का 'दिग्शब्देभ्यः' से पूर्व अधिकार जाता है ।

११९५ पञ्चम्यास्तसिल् ५ । ३ । ७ ।

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ।

११९६ कु तिहोः ७ । २ । १०४ ।

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः [१]कुतः=कस्मात् ।

११९७ इदम [२]इश् ५ । ३ । ३ ।

प्राग्दिशीये परे । इतः ।

११९८ अन् ५ । ३ । ५ ।

[३]एतदः प्राग्दिशीये । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । [४]अतः, । [५]अमुतः । यतः । बहुतः । द्व्यादेस्तु [६]द्वाभ्याम् ।

११९९ पर्यभिभ्यां च ५ । ३ । ९ ।

आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः = सर्वत इत्यर्थः । अभितः = उभयत इत्यर्थः ।

१२०० सप्तम्यास्त्रल् ५ । ३ । १० ।

[७]कुत्र । [८]यत्र । [९]तत्र । बहुत्र ।

१–कुतः–पञ्चम्यन्तात् 'किम्' शब्दात्–'पञ्चम्यास्तसिल्' इति 'तसिल्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि 'कु तिहोः' इति 'कु'–आदेशे तसिलन्तस्याव्ययत्वात् तत आगतस्य सुपो लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'कुतः' इति २–शित्वात्सर्वादेशः । ३–'एतद्' शब्दस्य 'अन्' आदेशः स्यादित्यर्थः । ४–'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नस्य लोपः ५–तसिलो विभक्तिसंज्ञात्वात् 'अदसोऽसेर्दादु-दोमः' इति मुत्वं बोध्यम् । यतः–इत्यत्र 'त्यदादीनामः' इत्यकारश्चापि । ६–सूत्रेऽद्व्यादिभ्यः, इत्युक्तेः । ७–किम् + त्र, इत्यत्र 'कुति होः' इत्यनेन 'कु' आदेशः । ८–यत्र, तत्र इत्यादौ त्रलो विभक्तित्वात् 'त्यदादीनामः' ९–तत्र–सप्तम्यन्तात् 'तत्' शब्दात्

११९५–पञ्चम्यन्त किमादियों से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

११९६–किम् को कु होता है तादि, हादि विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय परे रहते ।

११९७–इदम् को इश् आदेश होता है प्राग्दिशीय विभक्ति परे रहते ।

११९८–एतत् को अन् आदेश होता है प्राग्दिशीय विभक्ति परे रहते ।

११९९–परि और अभि शब्दों से तसिल प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२००–सप्तम्यन्त से त्रल् प्रत्यय होता है ।

१२०१ इदमो हः ५ । ३ । ११ ।

त्रलोऽपवादः । [1]इह ।

१२०२ किमोऽत् ५ । ३ । १२ ।

वा-ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा[2] स्यात् । पक्षे त्रल् ।

१२०३ क्वाति ७ । २ । १०५ ।

किमः क्वादेशः स्यादति । [3]क्व, कुत्र ।

१२०४ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५ । ३ । १४ ।

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एवं [4]दीर्घायुः, देवानांप्रियः, आयुष्मान् ।

१२०५ सर्वैकान्य-किं-यत्तदः काले दा ५ । ३ । १५ ।

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

१२०६ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ ।

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले-[5]सदा ।

'सप्तम्यास्त्रल्' इति 'त्रल्' प्रत्यये प्रातिपदिकत्वात् सुब्लुकि 'तत् त्र' इति स्थितौ 'त्यदादीनामः' इत्यकारे पररूपे 'तत्र' इति रूपम् (अव्ययत्वात् तत आगतस्य सुपो लुक्)।

१-'इदम इश्' इति इशादेशः, शित्वात्सर्वादेशः । २-अत् प्रत्ययः । ३-क्व-सप्तम्यन्तात् 'किम्' शब्दात् 'किमोऽत्' इति सूत्रेण 'अत्' प्रत्यये 'क्वाति' इति किमः क्वादेशेऽकारलोपे 'क्व' इति रूपम् । अव्ययत्वादत्र तत आगतस्य सुपो लुक् । ४-एतैर्योगेऽपि तथैव इत्यर्थः । ५-सदा-सर्वस्मिन्काले इत्यर्थे सप्तम्यन्तात् 'सर्व' शब्दात् 'सर्वैकान्य....' इत्यादिना 'दा' प्रत्यये सुब्लुकि 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्याम्' इति वैकल्पिके सादेशे 'सदा' इति रूपम् । पक्षे 'सर्वदा' इति ।

१२०१-इदम् शब्द से 'ह' प्रत्यय होता है। यह त्रल् का अपवाद है।

१२०२-किम् शब्द से अत् प्रत्यय होता है विकल्प से।

१२०३-किम् शब्द को क्व आदेश होता है अत् परे रहते।

१२०४-पञ्चमी सप्तमी से भिन्न विभक्त्यन्त से भी तसिलादि प्रत्यय होते हैं।

१२०५-सप्तम्यन्त कालार्थक सर्व एक अन्यादि शब्दों से स्वार्थ में दा प्रत्यय होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२०६-सर्व शब्द को स आदेश होता है दादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते।

सर्वदा। अन्यदा। [1]कदा। यदा। तदा। काले किम्- सर्वत्र देशे।

१२०७ इदमो र्हिल् ४। ३। १६।

सप्तम्यन्तात् काले इत्येव।

१२०८ एतेतौ [2]रथोः ५। ३। ४।

इदम्शब्दस्य एत-इत् इत्यादेशौ स्तौ रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। अस्मिन् काले-एतर्हि। काले किम्-इह देशे।

१२०९ [3]अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५। ३। २१।

कर्हि, [4]कदा। [5]यर्हि, यदा। तर्हि, तदा।

१२१० एतदः ५। ३। ५।

एत इत एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन्काले-एतर्हि।

१२११ प्रकारवचने थाल् ५। ३। २३।

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे। तेन प्रकारेण— [6]तथा। [7]यथा।

१२१२ इदमस्थमुः ५। ३। २४।

१—दाप्रत्ययस्य विभक्तित्वात्किमः कः, एवं, तदा, यदा, इत्यादौ 'त्यदादीनामः'। २—रेफादौ 'एतः' थादौ 'इत' इति विवेकः। ३—अनद्यतनकालवृत्तिभ्यः किमादिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यो र्हिल् स्याद् वा। ४—विभक्तित्वात् किमः कः। यर्हि यदा, त्यदादीनामः। ५—यर्हि—सप्तम्यन्ताद् 'यत्' शब्दात् कालेऽर्थे 'अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्' इति 'र्हिल्' प्रत्यये अनुबन्धलोपे 'त्यदादीनामः' इत्यत्त्वे पररूपे 'यर्हि' इत्यव्ययम्। ६—यथा तथा त्यदादीनामः। ७—येन प्रकारेण।

१२०७—सप्तम्यन्त इदम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय होता है।

१२०८—इदम् शब्दको एत और इत् आदेश होते हैं रेफादि थकारादि प्राग्दिशीय परे रहते।

१२०९—किमादि से अनद्यतन काल मे र्हिल प्रत्यय होता है विकल्प से।

१२१०—एतत् को एत-इत् आदेश होते हैं रेफादि थकारादि प्राग्दिशीय विभक्ति परे रहते।

१२११—प्रकारार्थ किमादि शब्दों से थाल् प्रत्यय होता है स्वार्थ में।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

१२१२—इदम् शब्द से थमु प्रत्यय होता है। यह थाल् का अपवाद है।

थालोऽपवादः। (एतदोऽपि वाच्यः) अनेन एतेन वा प्रकारेण-[1]इत्थम्।

१२१३ किमश्च ५ । ३ । २५ ।

केन प्रकारेण-[2]कथम्।

इति प्राग्दिशीयाः।

अथ प्रागिवीयाः।

१२१४ अतिशायने तमबिष्ठनौ ५ । ३ । ५५ ।

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः। अयमेषामतिशयेनाढ्यः-आढ्यतमः। लघुतमो-[3]लघिष्ठः।

१२१५ तिङश्च ५ । ३ । ५६ ।

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्।

१२१६ तरप्तमपौ घः १ । १ । २२ ।

एतौ घसंज्ञौ स्तः।

१२१७ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे १ । ४ । ११ ।

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे।

१-इदम एतदश्च 'इत्' इत्यादेशः। २-'किमः कः'। इति प्राग्दिशीयाः।

३-लघिष्ठः-अतिशयेन लघुः इत्यर्थे 'लघु' शब्दाद् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति 'इष्ठन्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे भसंज्ञायां 'टेः' इति टिलोपे प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'लघिष्ठः' इति।

(वा०-एतत् शब्द से भी थमु प्रत्यय होता है।)

१२१३-किम् शब्द से प्रकारार्थ में थमु प्रत्यय होता है। इति प्राग्दिशीयाः।

अथ प्रागिवीयाः

१२१४-अतिशय अविशिष्टार्थ वाचक से तमप् और इष्ठन् होते हैं स्वार्थ में।

१२१५-अतिशय अर्थ द्योत्य रहते तमप् प्रत्यय होता है।

१२१६-तरप् और तमप् की घ संज्ञा होती है।

१२१७-किम् और एदन्त शब्द तथा तिङन्त और अव्यय से विहित घ-प्रत्ययान्त से आमु प्रत्यय होता है, द्रव्यप्रकर्ष में नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]किन्तमाम्। प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः।

१२१८ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५ । ३ । ५७ ।

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। [2]पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः। [3]लघीयान्। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः। पटीयांसः।

१२१९ प्रशस्यस्य श्रः ५ । ३ । ६० ।

अस्य श्रादेशः [4]स्यादजाद्योः परतः।

१२२० प्रकृत्यैकाच् ६ । ४ । १६३ ।

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। [5]श्रेष्ठः; [6]श्रेयान्।

१२२१ ज्य च ५ । ३ । ६१ ।

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यात् इष्ठेयसोः। [7]ज्येष्ठः।

१–किन्तमाम्–अतिशयेन किं किन्तमाम्। कि शब्दात् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ इति 'तमप्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे भस्यानुस्वारे परसवर्णे 'किन्तम्' इत्यस्मात् तमपो घसंज्ञकत्वेन तदन्तात् 'किमेत्तिङव्यय...' इत्यादिना 'आमु' प्रत्यये उकारलोपे भत्वे 'यस्येति च' इत्यकारलोपेऽव्ययत्वेन विभक्तेर्लुकि सिध्यति रूपं 'किन्तमाम्' इति। २–पूर्वोक्तयोस्तमबिष्ठनोरित्यर्थः। ३–'टेः' इति टिलोपः। सान्तेति दीर्घः। ४–इष्ठन्नीयसुनोरित्यर्थः। ५–प्रकृतिभावान्न टिलोपः। ६–श्रेयान्–अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्। 'प्रशस्य' शब्दाद् 'द्विवचनविभज्योपपदे...' इत्यादिना ईयसुन् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे 'प्रशस्यस्य श्रः' इति श्रादेशे 'प्रकृत्यैकाच्' इति प्रकृतिभावाट् टिलोपाभावे गुणे 'श्रेयस्' शब्दात् प्रातिपदिकत्वात्सौ उगित्वान्नुमि सुब्लुकि 'सान्त-महत....' इत्यादिना दीर्घे सिध्यति रूपं 'श्रेयान्' इति। पक्षे इष्ठनि प्रत्यये 'श्रेष्ठः' इति रूपम्। ७–ज्येष्ठः–

१२१८–दो में से एक का अतिशय द्योत्य हो तो विभक्तव्य उपपद रहते सुबन्त और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।

१२१९–प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होता है अजादि इष्ठन्, ईयसुन् प्रत्यय परे रहते।

१२२०–एकाच् को प्रकृतिभाव होता है इष्ठादि प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२२१–प्रशस्य को ज्य आदेश होता है इष्ठन् ईयसुन् प्रत्यय परे रहते।

१२२२ [1]ज्यादादीयसः ६ । ४ । १६० ।

(७२) आदेः परस्य । ज्यायान् ।

१२२३ बहोर्लोपो भू च बहोः ६ । ४ । १५८ ।

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्यात् बहोश्च भूरादेशः । [2]भूमा । भूयान् ।

१२२४ इष्ठस्य यिट् च ६ । ४ । १५९ ।

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च । [3]भूयिष्ठः ।

१२२५ विन्मतोर्लुक् ५ । ३ । ६५ ।

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी–[4]स्रजिष्ठः । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान्–त्वचिष्ठः । त्वचीयान् ।

१२२६ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५ । ३ । ६७ ।

ईषदूनो विद्वान्-विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ।

अतिशयेन प्रशस्य इति विग्रहे 'प्रशस्य' शब्दाद् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति 'इष्ठन्' प्रत्यये 'ज्य च' इति ज्यादेशे 'प्रकृत्यैकाच्' इति प्रकृतिभावात् टिलोपाभावे गुणे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपं 'ज्येष्ठः' इति ।

१–'ज्य' शब्दात् परस्य 'ईयसः' 'आत्' आदेश इत्यर्थः । २–'बहु' शब्दाद् 'इमनिच्' । इम्नो लोपे प्राप्ते 'आदेः परस्य' इति इकारस्य लोपः, बहोः 'भू' आदेशः, एवं भूयान् । ३–भूयिष्ठः–अतिशयेन बहु इति विग्रहे 'बहु' शब्दाद् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति 'इष्ठन्' प्रत्यये 'इष्ठस्य यिट् च' इति इकारलोपे यिडागमे च अनुबन्धलोपे 'बहोर्लोपो भू च बहोः' इति बहो 'भू'–आदेशे प्रातिपदिकत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे सिध्यति रूपं 'भूयिष्ठः' इति । ४–इत्यादावप्येवम् ।

१२२२–ज्य से परे ईयसुन् को आकार आदेश होता है ।

१२२३–बहुशब्दसे परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय का लोप होता है और बहु शब्द को भू आदेश होता है ।

१२२४–बहुशब्द से परे इष्ठन् प्रत्यय का लोप और इष्ठन् को यिट् का आगम होता है ।

१२२५–विन् और मतुप् का लुक् होता है इष्ठन् ईयसुन् परे रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२२६–ईषदसमाप्ति अर्थ में कल्पप्, देश्य और देशीयर् प्रत्यय होते हैं ।

१२२७ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५ । ३ । ६८ ।

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः। ईषदूनः पटुर्बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम्–[1]यजतिकल्पम् ।

१२२८ प्रागिवात् कः ५ । ३ । ७० ।

इवे प्रतिकृतावित्यतः [2]प्राक्काधिकारः ।

१२२९ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५ । ३ । ७१ ।

कापवादः । तिङश्चेत्यनुवर्तते । (ओकार-सकार-भकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् ।) अन्यत्र [3]सुबन्तस्य ।

१२३० [4]अज्ञाते ५ । ३ । ७३ ।

कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वकैः । [5]युष्मकाभिः । युवकयोः । [6]त्वयका ।

१२३१ कुत्सिते ५ । ३ । ७४ ।

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः[7] ।

१–नात्र बहुच् । २–कप्रत्ययाधिकारः । ३–टेः प्रागकच्, इति योज्यम् । ४–प्रातिपदिकादज्ञातेऽर्थे कप्रत्ययः, अव्ययसर्वनाम्नामकच् स्यादित्यर्थः । ५–ओकारसकारभकारादावित्युक्तेः प्रातिपदिकात् (साधनात् प्रागेवेत्यर्थः)। त्वयका, मयका इत्यादौ तु त्वया मया, इति निष्पन्नस्यैव । ६–त्वयका–युष्मच्छब्दस्य 'टा' विभक्तौ 'ओकार-सकार-भकारादौ' इत्युक्तेर्विभक्तिकार्ये 'त्वया' इति सिद्धस्य सुबन्तस्य 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' इति टेः प्रागकच् । अनुबन्धलोपे 'त्वयका' इति रूपम् । ७–अश्वकः–'अश्व इव' इति विग्रहे 'अश्व' शब्दात् 'इवे प्रतिकृतौ' इति 'कन्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति रूपम् 'अश्वकः' इति ।

१२२७–ईषदसमाप्ति विशिष्ट अर्थ में सुबन्त से बहुच् प्रत्यय होता है विकल्प से और वह प्रकृति से पूर्व होता है, पर नहीं ।

१२२८–'इवे प्रतिकृतौ' से पूर्व क प्रत्यय का अधिकार है ।

१२२९–अव्यय और सर्वनाम शब्दों की टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है ।

१२३०–'अज्ञात' अर्थ में क प्रत्यय होता है ।

१२३१–'कुत्सित' अर्थ में क प्रत्यय होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२३२ किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५ । ३ । ९२ ।

अनयोः [1]कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ।

१२३३ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५ । ३ । ९३ ।

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज् वा स्यात् । 'जातिपरिप्रश्ने' इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वाग्रहणमकजर्थम् । [2]यकः । [3]सकः ।

इति प्रागिवीयाः ।

अथ स्वार्थिकाः

१२३४ इवे [4]प्रतिकृतौ ५ । ३ । ९६ ।

कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिरश्वकः । (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्) । अश्वकः ।

१२३५ तत्प्रकृतवचने मयट् ५ । ४ । २१ ।

प्राचुर्येण प्रस्तुतं=प्रकृतं तस्य वचनं=प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । [5]आद्ये प्रकृतमन्नम्–अन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये [6]तु अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं=पर्व ।

१२३६ प्रज्ञादिभ्यश्च ५ । ४ । ३८ ।

१–डतरचो डित्त्वात् टिलोपः । २–'त्यदादीनामः । ३–विभक्तित्वात् 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' इति सत्वम् । इति प्रागिवीयाः ।

४–इवार्थे (सादृश्ये) वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात् कन् स्यात्प्रतिकृतौ । ५–भवाऽर्थे ल्युटि । ६–अधिकरणार्थे ल्युटि ।

१२३२–दो में से एक के निर्धारण में किम्, यत्, तत् शब्द से डतरच प्रत्यय होता है ।

१२३३–बहुतों में से एक के निर्धारण में किं, यत्, तत् शब्द से डतरच् प्रत्यय होता है ।

इति प्रागिवीयाः ।

अथ स्वार्थिकाः

१२३४–इव (सदृश) के अर्थ में कन् प्रत्यय होता है सदृश यदि प्रतिकृति हो ।

१२३५–प्रथमान्त से प्रकृत वचन में मयट् प्रत्यय होता है ।

१२३६–प्रज्ञादिगणपठित शब्दों से अण् प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

अण्[1]स्यात्। प्रज्ञ एव-प्राज्ञः[2]। [3]प्राज्ञी स्त्री। [4]दैवतः। [5]बान्धवः।

२१३७ [6]बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् ५। ४। ४२।

बहूनि ददाति-बहुशः। [7]अल्पशः। (आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्) आदौ-आदितः। मध्यतः। अन्ततः। पार्श्वतः। आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण-स्वरतः। वर्णतः।

१२३८ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः ५। ४। ५०।

(अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्) विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्त्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे।

१२३९ अस्य च्वौ ७। ४। ३२।

अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ। वेर्लोपः। [9]च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति-कृष्णीकरोति[10]। ब्रह्मीभवति। गङ्गीस्यात् (अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्) दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

१-स्वार्थे। २-प्राज्ञः-'प्रज्ञ' शब्दात् स्वार्थे 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इत्यणि स्वादिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यकारलोपे प्रातिपदिकत्वे सौ विभक्तिकार्ये 'प्राज्ञः' इति रूपम्। ३-'टिड्ढाणञ्....' इति ङीप्। ४-देवता एव दैवतः। ५-बन्धुरेव बान्धवः, अणि सति 'ओर्गुणः' इति गुणः, आदिवृद्धिः ६-बह्वर्थात्कारकाभिधायिनो मङ्गलवचने शस्, अल्पार्थात्कारकाभिधायिनोऽमङ्गलवचन एव शस् स्यादित्यर्थः। ७-अल्पशः-अल्पेऽल्पा वा अल्पशः। अल्पशब्दात् 'बह्वल्पार्थाः....' इत्यादिना स्वार्थे 'शस्' प्रत्ययः। 'अल्पशस्' इति जाते प्रातिपदिकत्वात् सुपि अव्ययत्वेन तल्लुकि सकारस्य रुत्वे विसर्गे च 'अल्पशः' इति। ८-सार्वविभक्तिकोऽयं तसिः। ९-'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' इत्यत्र 'शस् प्रभृतयः' इत्युक्तत्वात् तदन्तर्गतत्वाच्चास्येति भावः। १०-कृष्णीकरोति-अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोतीति विग्रहः। अत्र 'करोति-' योगे 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्वि' इति 'च्वि' प्रत्यये तस्य सर्वापहारे 'अस्य च्वौ' इति सूत्रेणाकारस्य ईकारे 'कृष्णीकरोति' इति रूपम्।

१२३७-बह्वर्थ और अल्पार्थ कारकाभिधायी शब्द से शस् प्रत्यय होता है विकल्प से (वा० आद्यादिगणपठित शब्दों से तसि प्रत्यय होता है)।

१२३८-विकार को प्राप्त होनेवाली प्रकृति में वर्त्तमान विचारवाची शब्द से च्वि प्रत्यय होता है विकल्प से स्वार्थ में कृ, भू, अस् के योग में।

१२३९-अवर्ण को ईकारादेश होता है च्वि प्रत्यय परे रहते। (वा०-अव्यय-सम्बन्धी अवर्ण को ईत्व नहीं होता च्वि परे रहते)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२४० विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५ । ४ । ५२ ।

च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये ।

१२४१ सात्-पदाद्योः ८ । ३ । १११ ।

सस्य षत्वं न स्यात् । दधि सिञ्चति । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यते—अग्निसाद्भवति ।

१२४२ च्वौ च ७ । ४ । २६ ।

च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । अग्नीभवति ।

१२४३ अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५ । ४ । ५७ ।

द्व्यजेवावरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति [1]यावत्तादृशमर्धं यस्य तस्माड-डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे (डाचि च द्वे बहुलम्) इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् । (नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्) डाचपरं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्, इति तकारपकारयोः पकारः । [2]पटपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात्किम् ईषत्करोति । द्व्यजवरार्धात्किम् श्रत्करोति । अवरेति किम् खरटखरटाकरोति । अनितौ किम् पटिति करोति ।

इति तद्धिताः ।

१–अनेकाच्कमित्यर्थः । २–पटपटाकरोति—'पटत्' इति शब्दानुकरणम् । तस्मात् 'डाचि द्वे बहुलम्' इति डाचि विवक्षिते द्वित्वे 'पटत् पटत्' इति स्थितौ 'अव्यक्तानु-करणाद्' इत्यादिना 'डाच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे परस्याम्रेडितसंज्ञायां 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' इति वार्त्तिकेन तकारपकारयोः पकारे 'पटपटत् आ' इति जाते 'टेः' इति टिलोपे ऽव्ययत्वे 'पटपटाकरोतीति' रूपम् । इति तद्धिताः ।

१२४०–च्विके विषय में साति प्रत्यय होता है विकल्प से यदि सम्पूर्णता द्योत्य हो ।

१२४१–पद के आदि सकार को और साति प्रत्यय के सकार को षत्व नहीं होता ।

१२४२–च्वि प्रत्यय परे रहते पूर्व को दीर्घ होता है ।

१२४३–दो अच् से कम नहीं है अर्ध में जिसके, ऐसे अव्यक्तानुकरण शब्द से डाच् प्रत्यय होता है कृ-भू-अस् के योग में, इति परे रहते नहीं ।

(वा०–(१) डाच् प्रत्यय की विवक्षा होने पर द्वित्व होता है बहुलता से । (२) डाच् परक आम्रेडित के परे रहते पूर्व-पर वर्ण को पररूप होता है ।)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति स्वार्थिकाः ।

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

१२४४ स्त्रियाम् । ४ । १ । ३ ।

अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत् ।

१२४५ [1]अजाद्यतष्टाप् ४ । १ । ४ ।

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् । [2]अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । गङ्गा । शर्वा । इत्यादिः (अजादिगणः) ।

१२४६ उगितश्च ४ । १ । ६ ।

उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । [3]भवन्ती । पचन्ती । दीव्यन्ती

१२४७ टिड्ढाणञ्-द्वयसज् - दघ्नञ् - मात्रच् - तयप्-ठक् - ठञ्-कञ्-क्वरपः ४ । १ । १५ ।

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात् ।

१–अजादिश्च अच्च तयोः समाहारः—अजाद्यत्, तस्य वाक्ये स्त्रीत्वे द्योत्ये । तत्र अजादिर्गणः अजादिगणपठितात् शब्दात्, अदन्ताच्च शब्दात् टाप् स्यादित्यर्थः । २–अजा–'अज' शब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'अजाद्यतष्टाप्' इति टाप्–प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् इत्युक्तेः सौ तल्लोपे 'अजा' इति रूपम् । ३–भवन्ती, पचन्ती, दीव्यन्ती शतृ-प्रत्ययान्तेभ्यो ङीप् 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इति नुम् । (भाधातोर्डवतुप्रत्यये तु भवत्-शब्दस्य उगित्त्वात् ङीपि 'भवती' इति रूपम्) ।

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

१२४४–'समर्थानां प्रथमाद्वा' से पूर्व तक 'स्त्रियाम्' का अधिकार जाता है ।

१२४५–अजादिगणपठित और अकारान्त शब्दों से टाप् होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते ।

१२४६–उगिदन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते ।

१२४७–अनुपसर्जन जो टित् तदन्त प्रातिपदिक तथा ढ आदि प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीप् होता है–स्त्रीत्व द्योत्य रहते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]कुरुचरी। नदट्-नदी। देवट्-देवी[2]। [3]सौपर्णेयी। [4]ऐन्द्री। [5]औत्सी। [6]ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। [7]पञ्चतयी। [8]आक्षिकी। [9]प्रास्थिकी। [10]लावणिकी। [11]यादृशी। [12]इत्वरी। (नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुण-तलुनानामुपसंख्यानम्) [13]स्त्रैणी। पौंस्नी। [14]शाक्तीकी। [15]आढ्यङ्करणी। तरुणी। तलुनी।

१२४८ यञश्च ४ । १ । १६ ।

यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। [16]अकारलोपे कृते।

१२४९ हलस्तद्धितस्य ६ । ४ । १५० ।

हलः परस्य तद्धित-यकारस्योपधाभूतस्य लोप ईकारे परे। [17]गार्गी।

१२५० प्राचां ष्फ तद्धितः ४ । १ । १७ ।

१-'चरेष्टः' इति टप्रत्ययान्तात् ङीप्। २-देवी-पचादिगणे 'देवट्' इति टित्-पाठात् 'देव' शब्दस्य टित्त्वम्। तस्मात् 'टिड्ढाणञ्...' इत्यादिना 'ङीप्'-प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे भत्वे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे सौ विभक्तिकार्ये 'देवी' इति रूपम्। ३-'स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढगन्तात् ङीप्। ४-साऽस्य देवता इत्यण्। ततो ङीप्। ५-'उत्सादिभ्योऽञ्' इति अञन्तात् ङीप्। ६-प्रयोगत्रये क्रमेण 'परिमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' इति त्रयः प्रत्ययाः, ततो ङीप्। ७-'सङ्ख्याया अवयवे तयप्' इति तयप्प्रत्ययात् ङीप्। ८-अक्षैर्दीव्यतीति, 'तेन दीव्यति' इति ठगन्तात् ङीप्। ९-प्रस्थेन क्रीता 'तेन क्रीतम्' इति ठञ्, ततो ङीप्। १०-लवणं पण्यमस्याः 'लवणाट्ठञ्' ततो ङीप् लावणिकी = लवणविक्रेत्री ११-'त्यदादिषु दृशोनालो...' इति कञ्, ङीप्। १२-'इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्' ततो ङीप्। १३-स्त्रैणी, पौंस्नी, 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ' इति क्रमेण नञ् स्नञ् च ततो ङीप्। १४-'शक्तियष्ट्योरीकक्' इति ईकक्, शक्तिः प्रहरणमस्या इति विग्रहः। १५-'आढ्यसुभगस्थूल....' इति ख्युन्, ततो ङीप्। १६-'यस्येति च' इत्यनेन। १७-'गर्गादिभ्यो यञ्' इति यञन्तात् ङीप्। गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्रीत्यर्थः।

(वा०-नञ् स्नञादिप्रत्ययान्तों से ङीप् प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते।)

१२४८-यञ् प्रत्ययान्त से ङीप् प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते।

१२४९-हल् से परे उपधाभूत तद्धित यकार का लोप होता है ईकार परे रहते।

१२५०-यञ् प्रत्ययान्त से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है विकल्प से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यञन्तात् [1]ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः ।

१२५१ षिद्गौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ ।

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात् । [2]गार्ग्यायणी । [3]नर्तकी । गौरी । (आमनडुहः स्त्रियां वा) अनड्वाही, अनडुही । [4]आकृतिगणोऽयम् ।

१२५२ वयसि प्रथमे ४ । १ । २० ।

प्रथम-वयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । [5]कुमारी ।

१२५३ द्विगोः ४ । १ । २१ ।

अदन्तात् द्विगोर्ङीप् स्यात् । [6]त्रिलोकी । [7]अजादित्वात्त्रिफला । त्र्यनीका = सेना ।

१२५४ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४ । १ । ३९ ।

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च । [8]एता, एनी । रोहिता, रोहिणी ।

१–'षः प्रत्ययस्य' इति ष इत् । फस्य 'आयन्' 'आयनेयी ...' इति सूत्रेण । गार्ग्यायणी–यञन्ताद् 'गार्ग्य' शब्दात् 'प्राचां ष्फ तद्धितः' इति वैकल्पिके 'ष्फ–' प्रत्यये षस्येत्संज्ञायां लोपे फस्यायनादेशे भत्वादल्लोपे णत्वे च 'गार्ग्यायण' इत्यस्मात् स्त्रीत्वे 'षिद् गौरादिभ्यश्च' इति 'ङीष्—' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे भत्वादल्लोपे च विभक्तिकार्ये 'गार्ग्यायणी' इति रूपम् । अत्र ष्फेणोक्तेऽपि स्त्रीत्वे षित्त्वसामर्थ्यात् ङीष् । ३–'शिल्पिनि ष्वुन्' इति ष्वुन्नन्तात् ङीष् । ४–गौरादिरिति शेषः । ५–कुमारी–बाल्यवयोवाचकात् 'कुमार' शब्दात् स्त्रीत्वे विवक्षिते 'वयसि प्रथमे' इति ङीप् प्रत्ययः अनुबन्धलोपे भत्वेऽकारलोपे विभक्तिकार्ये रूपं 'कुमारी' इति । ६–त्रयाणां लोकानां समाहारः–त्रिलोकी 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः' अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति स्त्रीत्वम् । ७–अजादिगणान्तर्गतत्वात् इत्यर्थः, 'अजाद्यतष्टाप्' इति टाप् । ८–चित्रवर्णा ।

१२५१–षित्प्रत्ययान्त और गौरादिगणपठित शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है ।

१२५२–प्रथमवयोवाची अदन्त से ङीप् होता है स्त्रीलिङ्ग की द्योत्यता में ।

१२५३–अदन्त द्विगु से ङीप् होता है ।

१२५४–वर्णवाची अनुदात्तान्त जो तोपध, तदन्त अनुपसर्जन से ङीप् होता है विकल्प से और तकार को नकार आदेश होता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२५५ वोतो गुणवचनात् ४ । १ । ४४ ।

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीप् स्यात् । मृद्वी, मृदुः ।

१२५६ बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ।

एभ्यो वा ङीप् स्यात् । बह्वी, बहुः, ([1]कृदिकारादक्तिनः) [2]रात्रिः, रात्री । ([3]सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके) शकटी, शकटिः ,

१२५७ पुंयोगादाख्यायाम् ४ । १ । ४८ ।

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीप् । गोपस्य स्त्री [4]गोपी । (पालकान्तान्न) गोपालिका । अश्वपालिका ।

१२५८ प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७ । ३ । ४४ ।

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत् । [5]सर्विका । [6]कारिका । अतः किम्—नौका । प्रत्ययस्थात्किम्—शक्नोतीति

१—कृत् प्रत्ययस्य य इकारस्तदन्तात्प्रातिपादिकात् 'ङीष्' वा स्यात् क्तिन्प्रत्ययान्तात्तु न स्यादित्यर्थः । २—'राशादिभ्यस्त्रिप्' इत्युणादिसूत्रेण त्रिप् प्रत्ययः । ३—क्तिन्-प्रत्ययार्थविहितप्रत्ययान्तभिन्नादिकारान्तमात्रात् ङीष् स्यादित्येके आचार्या मन्यन्त इत्यर्थः । ४—गोपी—'गोपस्य स्त्री' इति विग्रहः । 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति 'ङीष्—' प्रत्यये ऽनुबन्धलोपे भसंज्ञायामकारलोपे विभक्तिकार्ये 'गोपी' इति रूपम् । ५—'अव्यय-सर्वनाम्नामकच्' इत्यकच् , ततः टापिरूपम् । ६—कारिका—'कृ' धातोर्ण्वुलि अनुबन्धलोपे वृद्धौ 'वु' इत्यस्य अकादेशे 'कारका' शब्दात् स्त्रीत्वे टापि सवर्णदीर्घे 'प्रत्ययस्थात्....' इत्यादिना कात् पूर्वस्य रेफगतस्याकारस्य इत्वे विभक्तिकार्ये 'कारिका' इति रूपम् ।

१२५५—गुणवाची उदन्त से ङीप् होता है विकल्प से स्त्रीत्व की द्योत्यता में ।

१२५६—बह्वादिगणपठित शब्दों से ङीष् होता है विकल्प से ।

(वा०—(१) क्तिन्—भिन्न कृत् इकारान्त से ङीष् प्रत्यय होता है विकल्प से । (२) क्तिन्नर्थ से भिन्न इकारान्त से ङीष् प्रत्यय होता है विकल्प से) ।

१२५७—जो पुंवाचक शब्द पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग हो जाये उससे ङीष् होता है । (वा—पालक शब्द अन्त में है जिसके ऐसे शब्द से ङीष् प्रत्यय नहीं होता)

१२५८—प्रत्यय के ककार से पूर्व आकार को इकार आदेश होता है आप् परे रहते, यदि वह आप् सुप् से परे न हो ।

(वा०—(१) सूर्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय होता है । (२) सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप होता है छ और ङी प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. Nepal Sahskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]शका। असुपः किम्—[2]बहुपरिव्राजका—नगरी (सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः) सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्—(सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च) यलोपः। [3]सूरी=कुन्ती। [4]मानुषीयम्।

१२५९ [5]इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९।

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी[6]। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी। (हिमारण्ययोर्महत्त्वे) महद्धिमं=हिमानी, महदरण्यमरण्यानी। यवाद्दोषे) दुष्टो यवो=[7]यवानी। (यवनाल्लिप्याम्) यवनानां लिपिर्यवनानी (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) मातुलानी, मातुली। [8]उपाध्यायानी; उपाध्यायी ([9]आचार्यादणत्वं च) आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे) अर्याणी, अर्या। [10]क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

१–पचाद्यच् ततष्टाप्। नात्र प्रत्ययस्थः ककारः २–बहवः परिव्राजका यस्यामिति सुबन्ताट्टाप् (प्रत्ययलक्षणेन सुपः परोऽयं टाप्)। ३–सूर्यस्य स्त्री 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीष्। ४–इयं मनुष्यजातीया इत्यर्थः। ५–इन्द्रादीनां षण्णां मातुलाचार्ययोश्च पुंयोगे एवेष्यते तत्र पूर्वेण ङीषि सिद्धे आनुङ्मात्रं विधीयते,, इतरेषां चतुर्णामुभयविधिः। ६–इन्द्राणी–'इन्द्रस्य स्त्री' इति विग्रहे 'इन्द्र' शब्दाद् 'इन्द्र-वरुण-भव....' इत्यादिना ङीषि आनुगागमे चानुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये रूपम् 'इन्द्राणी' इति। ७–यवानी–दुष्टयवेर्थे 'यव' शब्दात् 'यवाद्दोषे' इति वार्तिकेन ङीषि आनुगागमेऽनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'यवानी' इति। उपाध्यायानी–'उपाध्यायस्य स्त्री' इत्यर्थे 'उपाध्याय'–शब्दाद् 'ङीषि' मातुलोपाध्याययोरानुग्वा' इति वैकल्पिके आनुगागमे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'उपाध्यायानी'। पक्षे 'उपाध्यायी' इति। ९—चकारादानुक् ङीप् च भवति। १०–क्षत्रियाणी–'क्षत्रियजातावुत्पन्ना स्त्री' इत्यर्थे 'क्षत्रिय'–शब्दाद् 'अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे' इति वार्त्तिकेन वैकल्पिके ङीषि तत् सन्नियोगशिष्टे आनुगागमे चानुबन्धलोपे भत्वेऽकारलोपे नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये 'क्षत्रियाणी' पक्षे 'टाप्' प्रत्यये 'क्षत्रिया' इति रूपं सिद्धयति। पुंयोगे तु 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीषि 'क्षत्रियी' इति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२५९–इन्द्रादि शब्दों से आनुक् का आगम होता है और ङीष् प्रत्यय होता है।

१२६० क्रीतात् करणपूर्वात् ४ । ५० ।

क्रीतान्ताददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । [१]वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न-धनक्रीता ।

१२६१ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४ । १ । ५४ ।

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् [२]स्वाङ्गं तदन्ताददन्तात् ङीप् वा स्यात् । केशानतिक्रान्ता [३]अतिकेशी, अतिकेशा । [४]चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । असंयोगोपधात् किम्—सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम्—सुशिखा[५] ।

१२६२ न क्रोडादिबह्वचः ४ । १ । ५६ ।

१–वस्त्रक्रीती–'वस्त्रेण क्रीता' इति विग्रहे 'वस्त्रक्रीत' शब्दात् 'क्रीतात् करणपूर्वात्' इति ङीपि अनुबन्धलोपे भसंज्ञायामकारलोपे विभक्तिकार्ये सिध्यति 'वस्त्रक्रीती' इति रूपम् ।

२--स्वाङ्गलक्षणम्--'अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् ।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तेन चेत्तत्तथा युतम् ॥'

३--अतिकेशी--'केशान् अतिक्रान्ता' इति विग्रहे समस्तादतिकेशशब्दात् 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् इत्यादिना विकल्पेन 'ङीष्' प्रत्यये भत्वेऽकारलोपे विभक्तिकार्ये 'अतिकेशी' इति रूपम् । पक्षे 'अतिकेशा' इति रूपम् । ४–चन्द्रमुखी–'चन्द्र इव मुखं यस्याः' इति विग्रहे समस्तात् 'चन्द्रमुख' शब्दात् 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद्....' इत्यादिना वैकल्पिके ङीषि भत्वेऽकारलोपे विभक्तिकार्ये 'चन्द्रमुखी' । पक्षे 'चन्द्रमुखा' इति रूपम् । ५—शोभना शिखा = सुशिखा । नेदमुपसर्जनम् ।

(वा०-(१) हिम और अरण्य शब्द से महत्त्व अर्थ में ङीष् और आनुक् होते हैं । (२) यव शब्द से दोष अर्थ में ङीष् और आनुक् होते हैं । (३) यवन शब्द से लिपि अर्थ में ङीष् और आनुक् होते हैं । (४) मातुल और उपाध्याय शब्द से आनुक विकल्प से होता है । (५) आचार्य के न को ण नहीं होता है । (६) अर्यक्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् होते हैं विकल्प से) ।

१२६०–क्रीतशब्द अन्त में है जिसके और करण है आदि में जिसके ऐसे अदन्त से ङीष् होता है ।

१२६१–संयोगोपध से भिन्न उपसर्जन जो स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त अदन्त से ङीप् होता है विकल्प से ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२६२–क्रोडादिगणपठित और बह्वच्क स्वाङ्गवाची शब्द से ङीष् नहीं होता ।

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। [1]कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजघना

१२६३ नखमुखात् संज्ञायाम् ४। १। ५८।

न ङीष्।

१२६४ पूर्वपदात् संज्ञायामगः ८। ४। ३।

पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने। [2]शूर्पणखा। गौरमुखा। संज्ञायां किम्—ताम्रमुखी कन्या।

१२६५ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४। १। ६३।

[3]जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। [4]तटी। वृषली। कठी। बह्वृची। जातेः किम्—मुण्डा। अस्त्रीविषयात्किम्—

१—कल्याणक्रोडा—'कल्याणी क्रोडा यस्याः' इति विग्रहे 'समासे स्त्रिया पुंवत्' इति पुंवद्भावे 'कल्याणक्रोड' शब्दात् 'स्वाङ्गाच्चे' ति ङीषि प्राप्ते 'न क्रोडादिबह्वचः' इति तन्निषेधेऽदन्तत्वात् टापि सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'कल्याणक्रोडा' इति रूपम्। २—शूर्पणखा—'शूर्पवत् नखानि यस्याः' इति विग्रहे समस्तात् 'शूर्पनख' शब्दात् 'स्वाङ्गाच्चे' ति ङीषि प्राप्ते 'नखमुखात् संज्ञायाम्' इति तन्निषेधेऽदन्तत्वात् टापि सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' इति नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये 'शूर्पणखा' इति। ३—जातिलक्षणम्—

'(क) आकृतिग्रहणा जातिः, (ख) लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, (ग) गोत्रं च, (घ) चरणैः सहः।

४—तटी—'तट' शब्दाद् जातिवाचकादनियतस्त्रीलिङ्गात् 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीषि भसंज्ञायामकारलोपे विभक्तिकार्ये रूपं 'तटी' इति।

१२६३—नख—मुख-शब्दान्त से संज्ञा में ङीष् होता है।

१२६४—पूर्वपद में स्थित रेफ-षकार से परे नकार को णकार होता है, गकार के व्यवधान में नहीं।

१२६५—नित्य स्त्रीलिङ्ग से भिन्न यकार जिसकी उपधा में नहीं है, ऐसे जातिवाचक शब्द से ङीष् होता है।

(वा०—(१) यकारोपध के प्रतिषेध में हय-गवयादि का प्रतिषेध नहीं होता। (२) मत्स्य शब्द के य का लोप होता है ङी परे रहते।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बलाका। अयोपधात्किम्—क्षत्रिया। योपधप्रतिषेधे हय-गवय-मुकय-मनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेधः[1]। हयी। गवयी। मुकयी। (१२४९) हलस्तद्धितस्येति यलोपः। [2]मनुषी। (मत्स्यस्य ङ्याम्) यलोपः। मत्सी।

१२६६ इतो [3]मनुष्यजातेः ४।१।३५।

ङीष्। [4]दाक्षी।

१२६७ ऊङुतः ४।१।६६।

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात्। कुरूः। अयोपधात्किम् अध्वर्युर्ब्राह्मणी।

१२६८ [5]पङ्गोश्च ४।१।६८।

पङ्गूः। ([6]श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च) [7]श्वश्रूः।

१२६९ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९।

उपमानवाचि पूर्वपदमुरूत्तरपदं यत् प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात्। [8]करभोरूः।

१–योपधप्रतिषेधे–एषां न गणनेत्यर्थः। एभ्यो जातिलक्षणो ङीष् भवत्येवेति भावः। २–मनुषी–'मनुष्य' शब्दात् योपधादपि 'योपधप्रतिषेधे हय गवय....' इत्यादिवार्त्तिकेऽप्रतिषेधवचनात् 'जातेरस्त्रीविषयाद्' इति 'ङीष्' प्रत्यये भसंज्ञायामकारलोपे 'हलस्तद्धितस्ये' ति यलोपे विभक्तिकार्ये 'मनुषी' इति। ३–मनुष्यजातिवाचकादिकारान्तान् ङीष् स्यादित्यर्थः। ४–'अत इञ्' सूत्रेण दक्षशब्दात् 'इञ्' ततो ङीष्, दाक्षी। ५–ऊङ् स्यादिति शेषः। ६–चादूङ्। ७–श्वश्रूः—श्वशुरस्य स्त्रीत्यर्थे पुंयोगलक्षणं ङीषं बाधित्वा 'श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च इति वार्त्तिकेन 'ऊङ्—' प्रत्यये भत्वेऽकारलोपेऽकारस्योकारस्य च लोपे विभक्तिकार्ये 'श्वश्रूः' इति। ८–करभौ इव ऊरू यस्याः सा।

१२६६—मनुष्यजातिवाचक इञन्त से ङीष् होता है।

१२६७—यकारोपध से भिन्न मनुष्य जातिवाचक उदन्त प्रतिपादक से ऊङ् होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते।

१२६८—पङ्गु शब्द से ऊङ् होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते।

(वा०—श्वशुर शब्द के उकार का लोप होता है और ऊङ् प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते।)

१२६९—उपमानवाचक शब्द पूर्वपद में और ऊरु उत्तरपद में है जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से ऊङ् होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२७० संहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च ४ । १ । ७० ।

अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरूः । शफोरूः । वामोरूः । लक्षणोरूः

१२७१ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४ । १ । ७३ ।

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीप् स्यात् । [1]शार्ङ्गरवी । वैदी । ब्राह्मणी । (नृनरयोर्वृद्धिश्च) [2]नारी ।

१२७२ यूनस्तिः ४ । १ । ७७ ।

युवन्शब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् । [3]युवतिः ।

इति स्त्रीप्रत्ययाः ।

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

इति श्रीवरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ।

१–शार्ङ्गरवी–अण्प्रत्ययान्तात् 'शार्ङ्गरव' शब्दात् जातित्वात् प्राप्तं ङीपं बाधित्वा 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' इति 'ङीन्—' प्रत्यये भसंज्ञायामकारलोपे विभक्तिकार्ये शार्ङ्गरवी इति । २–नारी—'नृ' शब्दात् 'नर' शब्दात् वा 'नृनरयोर्वृद्धिश्चेति वार्तिकेन 'ङीन्' प्रत्यये तत् सन्नियोगशिष्टायां वृद्धौ च विभक्तिकार्ये 'नारी' इति । ३—युवति—'युवन्' शब्दात् स्त्रीत्वे विवक्षिते 'यूनस्तिः' इति सूत्रेण 'ति' प्रत्यये 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति पदसंज्ञायां 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये' ति न लोपे विभक्तिकार्ये 'युवतिः' । युवतीति दीर्घान्तस्तु यौतेः शत्रन्ताद् 'उगितश्च' इति ङीपि बोध्यः ।

इति स्त्रीप्रत्ययाः ।

१२७०—संहितादि शब्द हैं आदि में जिसके, और ऊरु शब्द उत्तरपद में है जिसके ऐसे प्रातिपदिक से ऊङ् होता है स्त्रीत्व द्योत्य रहते ।

१२७१—शार्ङ्गरवादिगणपठित और अञ् प्रत्यय का आकार जिनके अन्त में है, ऐसे जातिवाचक शब्दों से ङीन् प्रत्यय होता है ।

(वा०—नृ और नर को वृद्धि होती है, और ङीन् प्रत्यय होता है) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२७२—स्त्रीत्व द्योत्य होने पर युवन् शब्द से ति प्रत्यय होता है ।

टीकाकर्तुः परिचयः

अस्ति पञ्चाम्बुदेशेऽस्मिन्, 'होश्यारपुर'—मण्डले ।
जेजों नाम पुरी रम्या [1]द्वीपमूर्ध्नि व्यवस्थिता । १ ।
या पुरासीद् [2]यशःपाल-भूपानां सिक्खशासने ।
राजधानी प्रशस्तेयं पूर्वं बृटिश-शासनात् । २ ।
पण्डितानां कुलं तत्र प्रसिद्धं विद्यते परम् ।
सदाचाररतं शुद्धं हरिभक्तमथापि यत् । ३ ।
तत्पूर्वजः [3]केशवोऽभूद् विद्वन्मण्डलमण्डनः ।
महात्मा भगवद्भक्तो मदूदग्रामवासकृत् । ४ ।
पुनः प्रचारयामास पाणिनीयमिहापि यः ।
लुप्तप्रायमधीत्यासौ [4]भवदेवमहोदयात् । ५ ।
रघुनाथस्तु तत्पुत्रो [5]मुकुन्दस्तत्सुतोऽभवत् ।
[6]रामचन्द्रो [7]धूर्जटिश्च रामनारायणस्ततः[8] । ६ ।
रामनारायणस्यासंश्चत्वारः पण्डिताः सुताः ।
[9]नीलकण्ठ उपेन्द्रश्च विश्वामित्रश्च [10]पूर्वजः । ७ ।
चतुर्थश्चास्मि विदुषां सात्वतां सेवकः सदा ।
दामोदरीगर्भजातो विश्वनाथ-प्रभाकरः । ८ ।
उपकाराय छात्राणामुपेन्द्रविवृतिर्मया ।
सम्पादिता प्रयत्नेन शोधिता [11]गुरुभिः पुनः । ९ ।

१—द्वाबाप्रान्तशिरोभागे । २—"जसवाल" इति प्रसिद्धजातीय—राजपूतराजानाम् । ३—विद्यासागरो भगवद्भक्त आदर्शमहात्मा श्रद्धेयचरणः पण्डितश्रीकेशवरामजी-महाराजः । ४—काश्यां तत्काले प्रथितमहिम्नो भैरव्यादिटीकाकृद्-भैरवमिश्रपितुः श्रीपूज्यपादपण्डितभवदेवमिश्रात् सकलवेदवेदाङ्गादिकमधिजग्मिवान् श्रीकेशवरामो विशेषतः पाणिनीयं व्याकरणम् । ५—पूज्यपादो भक्त्यैकनिष्ठः श्रीपण्डितमुकुन्दलालजी-महाराजः ६—पं० रामचन्द्रात् प० परमानन्दादयः । ७—पं० धूर्जटिशर्मणश्च पं० रामप्रपन्नादयः । ८—ततः—पं० मुकुन्दलालात् । ९—वेदान्तसार्वभौमस्तार्किकचक्रचूडामणिर्भगवद्भक्तो महात्मा श्रीपण्डित-नीलकण्ठशास्त्री । १०—ज्येष्ठाः । ११—काव्यव्याकरणदर्शनतीर्थश्रीमत्-पण्डितरामप्रपन्नशास्त्रिभिः, (इमे मम ज्येष्ठपितृव्यपुत्रतया भ्रातरो विद्यागुरवश्च) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सेयं स्मारकरूपा स्यात् स्वर्यातस्य महात्मनः।
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्विदुषो योग्यस्योपेन्द्रशास्त्रिणः† । १० ।
कृत्वैतत्सकलं प्रेम्णा श्रीकृष्णाय समर्पये।
तेन मे प्रीयतां देवो भगवान् राधिकापतिः । ११ ।

इति श्रीभारतीय-पञ्चाम्बु-प्रान्तोत्तरदिग्विभागस्थहोशियारपुरमण्डलान्तर्गत-
'जेजों' नगरनिवासिसुप्रसिद्धपण्डितकुलप्रसूत-पण्डितश्रीराम-
नारायणशर्मात्मज-'खन्ना'-नगरस्थ-श्रीसरस्वतीसंस्कृत-
महाविद्यालयाचार्य-पण्डित-श्रीविश्वनाथशास्त्रि-
प्रभाकर-सम्पादिता "उपेन्द्रविवृतिः"
सम्पूर्णा ॥ ॐ तत्सत् ॥

शास्त्रान्तरेति—और शास्त्रों में प्रविष्ट होनेवाले बालकों का उपकार करनेवाली यह वरदराजाचार्य द्वारा निर्मित लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्त होती है।

इति श्रीहरिद्वारस्थ-ऋषिकुलव्याकरणाध्यापकश्रेष्ठानां गुरुवर्य्याणां श्रीविद्यारत्न-
पण्डितदेवदत्तशर्मणामन्तेवासि-लक्ष्मीनारायणशास्त्रिकृतो लघुकौमुदीस्थ-सूत्राणां
हिन्दीभाषानुवादः परिसमाप्तः।

॥ इति शम् ॥

---

† वैयाकरणभूषणस्य दर्शनालङ्कारस्य स्व० श्री पं० उपेन्द्रनाथशास्त्रिणः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ परिशिष्टम्

अद्वन्द्वं द्वन्द्वदेहं तं द्वन्द्ववृन्दनिकन्दनम्। वन्देऽहं सच्चिदानन्दं देवं श्रीनन्दनन्दनम् ॥१॥
कर्तॄनुपेन्द्रविवृतेर्विवृतेष्टलक्ष्यान् भ्रातॄनुपेन्द्रविदुषो विदुषो विशिष्टान्।
भक्तानुपेन्द्रपदयोः पदयोजनाविद्, वन्दे गुणैरतिगुरून् गुरुविश्वनाथान् ॥ २ ॥
एषोऽहं कविकान्तो **निगमानन्दः** परमहंसः। विदधे बालबोधाय **परिशिष्टं** कौतुकादेव ॥

अथ लघुलिङ्गानुशासनम्

लोकाश्रयस्य लिङ्गस्य बाहुल्यपरिलोकनात्। लिख्यते बालबोधाय लघुलिङ्गानुशासनम् ॥

१ **लिङ्गम्**। अधिकारोऽयम्।

स्त्रीलिङ्गाधिकारः

२ **स्त्री**। अयमप्यधिकारः।

३ **अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः**। अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। अवनिः, चमूः।

४ **मिन्यन्तः**। मिप्रत्ययान्तो निप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियाम्। भूमिः, ग्लानिः।

५ **क्तिन्नन्तः (त्यन्तश्च)** क्तिन्प्रत्ययान्तस्तिप्रत्ययान्तश्च स्त्रियाम्। क्तिन्नन्तो यथा–गतिः, कृतिः, मतिः, भूतिः, तिप्रत्यायान्तो यथा–युवतिः।

६ **ईप्रत्ययान्तश्च**। ङीबन्तो ङीषन्तो ङीनन्त ईप्रत्ययान्तश्च स्त्रियाम्। नदी, ऐन्द्री, गार्गी। गौरी, नर्त्तकी, गोपी, तटी, कठी। शार्ङ्गरवी, बैदी, ब्राह्मणी, नारी,लक्ष्मीः।

७ **ऊङाबन्तश्च**। ऊङन्ता यथा—कुरूः, पङ्गूः, श्वश्रूः, वामोरूः, इत्यादयः। आबन्ता यथा—अजा, अश्वा, बाला, रमा, मेधा, गङ्गा, सर्वा, त्रिफला इत्यादयः।

८ **य्वन्तमेकाक्षरम्**। ईकारान्त ऊकारान्तश्चैकाक्षरः स्त्रियाम्। श्रीः, भूः। एकाक्षरं किम्—पृथुश्रीरयम्।

९ **विंशत्यादिरानवतेः**। स्त्रियाम्। इयं विंशतिः २०। त्रिंशत् ३०। चत्वारिंशत् ४०। पञ्चाशत् ५०। षष्टिः ६०। सप्ततिः ७०। अशीतिः ८०। नवतिः ९०।

१० **तलन्तः**। स्त्रियाम्। शुक्लता, ब्राह्मणता, जनता, देवता, सहायता।

११ **भाः स्रुक् स्रग्दिगुष्णिगुपानहः**। एते स्त्रियां स्युः। इयं भाः, स्रुक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक्, उपानत्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२ **शष्कुलि-राजी-कुट्यशनि-वर्त्ति-भ्रुकुटि-त्रुटि-वलि-पङ्क्तयः**। एते स्त्रियां स्युः इयं शष्कुलिरित्यादयः। **अशनिः** पुंसि च। इयमयं वाऽशनिः।

१३ **अप-सुमनस्समासिकता-वर्षाणां बहुत्वञ्च।** एषां स्त्रीत्वं बहुवचनान्तत्वञ्च। आप इमाः, सुमनसः = पुष्पम्। देवतावाची तु पुंस्येव। समाः = वर्षम्। सिकताः = बालुकाः।

१४ **ऋकारान्ता मातृ-दुहितृ-स्वसृ-यातृ-ननान्दरः।** ऋकारान्ता एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः। स्वस्रादिपञ्चकस्यैव ङीब्निषेधेन, कर्त्रीत्यादेः ङीपो-ईकारान्तत्वात् तिसृचतस्रोस्तु स्त्रियामादेशतया विधानेऽपि प्रकृत्योस्त्रिचतुरोर्ऋकारान्तत्वाभावाद् न दोषः॥ इति स्त्र्यधिकारः।

अथ पुँल्लिङ्गाधिकारः

१५ **पुमान्।** अयमधिकारः।

१६ **घञबन्तः।** घञन्ता यथा—पाकः, रामः, त्यागः। अप्प्रत्ययान्तो यथा—करः गरः।

१७ **घाजन्तश्च।** घप्रत्ययान्ता यथा—विस्तरः, गोचरः, दन्तच्छदः। अच्प्रत्ययान्ता यथा—चयः, जयः, अयः।

१८ **नङन्तः।** पुंसि स्यात्। यज्ञः। **याच्ञा तु स्त्रियाम्।** प्रश्नः, विश्नः, यत्नः। रक्ष्णः।

१९ **क्यन्तो घुः।** किप्रत्ययान्तो घुसंज्ञः, पुंसि। उदधिः, समाधिः, सन्धिः, व्याधिः, विधिः, निधिः।

२० **उदन्तः।** प्रभुः, विभुः।

२१ **रुत्वन्तः।** मेरुः, सेतुः।

२२ **अवन्तः।** इत्यधिकृत्य।

२३ **कोपधः।** २४—**टोपधः।** २५—**णोपधः।** २६—**थोपधः।** २७—**नोपधः।** ८—**पोपधः।** २९—**भोपधः।** ३०—**मोपधः।** ३१—**योपधः।** ३२—**रोपधः।** ३३—**षोपधः।** ३४—**सोपधः।** अकारान्ता उक्तोपधाः प्रायः पुंसि। क्रमशो तथा—स्तवकः, ल्कः। घटः, पटः। गणः, पाषाणः। रथः, यूथः। इनः, फेनः। दीपः, सर्पः। कुम्भः, शरभः। होमः, धर्मः। हयः, समयः। क्षुरः खुरः। वृषः, वृक्षः। वायसः, महानसः। इति पुंल्लिङ्गाधिकारः।

अथ नपुंसकलिङ्गाधिकारः

३५ **नपुंसकम्।** अधिकारोऽयम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३६ **भावे ल्युडन्तः।** यथा—ज्ञानं, हसनं, गमनम्।

३७ **निष्ठा च**। भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात्। गीतं, पीतं, हसितं, गतं, भुक्तं, युक्तम्।

३८ **त्वष्यञौ तद्धितौ**। शुक्लत्वं, शौक्ल्यं, मूढत्वं, मौढ्यं, सुखत्वं, सौख्यम्।

३९ **य-घ ठग्-यगञण्-वुञ्-छाश्च भावकर्मणि**। स्तेयम्। सख्यम्। कापेयम्। सैनापत्यम्। औष्ट्रम्। द्वैहायनम्। पितापुत्रकम्। अच्छावाकीयम्।

४० **अव्ययीभावः**। नपुंसके स्यात्। अधिहरि। यथामति।

४१ **द्वन्द्वैकत्वम्**। प्राणितूर्येतिप्राप्तैकवद्भावा द्वन्द्वा नपुंसके। पाणिपादम्। मुखनासिकम्। रथिकाश्वारोहम्।

४२ **लोपधः**। कमलं, कुशलं, भूतलं, सकलं, शकलम्।

४३ **शतादिः संख्या**। शतं, सहस्रम्, अयुतं, नियुतं, लक्षम्।

४४ **असन्तो द्व्यचकः**। यशः, मनः, तपः।

४५ **त्रन्नन्तः**। पत्रं, छत्रं, पात्रं, गात्रं, पवित्रम्। इति नपुंसकलिङ्गाधिकारः।

अथ स्त्रीपुंसाधिकारः

४६ **स्त्रीपुंसयोः**। अयमधिकारः।

४७ **गो-मणि-यष्टि-मुष्टि-पाटलि-वस्ति-शाल्मलि-त्रुटि-मसि-मरीचयः**। इयमयं वा गौः।

४८ **अपत्यार्थस्तद्धिते**। औपगवः, औपगवी। इति स्त्रीपुंसाधिकारः।

अथ पुंनपुंसकाधिकारः

४९ **पुंनपुंसकयोः**। इत्यधिकारः।

५० **घृत-भूत-मुस्त-क्ष्वेलितैरावत-पुस्तक-वुस्त-लोहिताः**। अयं घृतः, इदं घृतम्।

५१ **गृह-मेह-देह-पट्ट-पटहाष्टापदाम्बुद-ककुदाश्च**। गृहं, गृहाः पुँभूम्न्येव।

५२ **अर्धर्चादयः पुंसि च**। अर्धर्चम्, अर्धर्चः॥ इति पुंनपुंसकाधिकारः।

अथ विशिष्टलिङ्गाधिकारः

५३ **अविशिष्टलिङ्गम्**। (तत्तल्लिङ्गवाचकताप्रयुक्तकार्यविशेषशून्यमित्यर्थः) इत्यधिकारः।

५४ **अव्ययं कतियुष्मदः**।

५५ **ष्णान्ता संख्या**।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष्यलिङ्गाधिकारः

५६ **शिष्टा संख्या परवत्।** शिष्टा संख्या विशेष्यलिङ्गा। एकः पुरुषः, एका स्त्री। एकं कुलम्।

५७ **गुणवचनश्च।** विशेष्यलिङ्गं स्यादित्यर्थः। शुक्लः पटः। शुक्ला पटी। शुक्लं वस्त्रम्।

५८ **कृत्याश्च।** कृत्यप्रत्ययान्ताश्च विशेष्यलिङ्गाः स्युः कर्त्तव्यो धर्मः। सर्तव्या सरणिः। स्मर्तव्यं ब्रह्म।

४९ **करणाधिकरणयोर्ल्युट् च।** विशेष्यलिङ्गं स्यादित्यर्थः।

६० **सर्वादीनि सर्वनामानि।** सर्वनामसंज्ञकानि सर्वादीनि विशेष्यलिङ्गानीत्यर्थः। सर्वे पुरुषाः। सर्वाः स्त्रियः। सर्वाणि फलानि। इति लघुलिङ्गानुशासनं सम्पूर्णम्।

अथ किमिदं व्याकरणम्?

व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते (संसाध्यन्ते) शब्दा अनेनेति व्याकरणम् = सूत्रवार्तिकभाष्यव्याख्यानादिस्वरूपं शब्दानुशासनं नाम शास्त्रम्।

तत्र सूत्रम्—

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्। अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

तद्भेदाश्च—

सञ्ज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च। अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते॥

तत्र १–सञ्ज्ञासञ्ज्ञिसम्बन्धबोधकं सूत्रम् = सञ्ज्ञासूत्रम्। यथा—"वृद्धिरादैच्", "अदेङ्गुणः", "शेषो घ्यसखि"।

२–अव्यवस्थायां व्यवस्थाऽऽपादकं सूत्रम् = परिभाषासूत्रम्। यथा—"तस्मादित्युत्तरस्य", "मिदचोऽन्त्यात्परः"।

३–आदेशादिविधायकं सूत्रम् = विधिसूत्रम्।

यथा—"इको यणचि", "ह्रस्वनद्यापो नुट्", "एरच्"।

४–प्राप्तस्य विधेर्नियामकं सूत्रम् = नियमसूत्रम्। यथा—"रात्सस्य"।

५–अतस्मिन् तद्धर्माऽऽपादकं सूत्रम् = अतिदेशसूत्रम्। यथा = "सख्युरसम्बुद्धौ", "गोतो णित्", "लोटो लङ्वत्"।

६–उत्तरोत्तरस्वार्थसमर्पकं सूत्रम् = अधिकारसूत्रम्। यथा—

UC-Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"ङ्याप्प्रातिपदिकात्" "आर्धधातुके", "पूर्वत्रासिद्धम्"।

वार्तिकलक्षणम्—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते । तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा विचक्षणाः ॥

यथा—'ओतो णिदिति वाच्यम्', 'छत्वममीति वाच्यम्' 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः'।

भाष्यलक्षणम्—

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वर्णैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

तच्च प्रकृते महामुनि-पतञ्जलि-विरचितं व्याकरणमहाभाष्यं सर्वप्रसिद्धमेव ।

व्याख्यानलक्षणम्—

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना ।
आक्षेपश्च समाधानं व्याख्यानं षड्विधं मतम् ॥

तच्च पूर्वाचार्यविरचितं काशिकाप्रक्रियाकौमुदीसिद्धान्तकौमुद्यादिरूपं प्रथितमेव ।

तदेवं सूत्रवार्तिकभाष्यव्याख्यानादिविधया सर्वविध-लौकिक-वैदिकशब्दसाधुत्वप्रतिपादनपरं पाणिनीयं व्याकरणं सर्वेष्वपि व्याकरणेषु प्रातिशाख्येषु च मूर्धन्यतममिति नाविदितं विदुषाम् । तस्येयं प्रवेशिकास्थानीया लघुसिद्धान्तकौमुदी ।

व्याकरणस्याऽनुबन्धचतुष्टयम्—

सकलपुरुषार्थसाधनं वेदः, स च मन्त्रब्राह्मणात्मक-शब्दराशिरूपः, तदनु सर्वाण्यपि शास्त्राणि शब्दराशिरूपाण्येवेति वेदशास्त्रादिज्ञानाय प्रवृत्तमिदं शब्दशास्त्रम् = व्याकरणं सर्वेषामध्येयतामापद्यत इति सिद्धमस्यानुबन्धचतुष्टयम्—

१—शब्दज्ञानं प्रयोजनम् । २—शब्दसाधनं विषयः । ३—शब्दज्ञानार्थी अधिकारी । ४—प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावादिः सम्बन्धः ।

पञ्च सन्धयः—

सन्धयः पञ्च, पञ्चसन्धिप्रकरणमिति च परम्पराप्रवादः । तत्र जायते जिज्ञासा के ते पञ्च सन्धयः ? यानाश्रित्य प्रवृत्तोऽयम्प्रवादः । लघुकौमुद्याम्—अच्सन्धिः, हल्सन्धिः, विसर्गसन्धिः, इति सन्धित्रयमेव समुपलभ्यते । सिद्धान्तकौमुद्युक्तस्वादिसन्धिसम्मेलनेऽपि चत्वार एव सम्पद्यन्ते । अत्र केचित्-प्रकृतिभावं चतुर्षु पञ्चमं सन्धिमाचक्षते । वर्णसन्धानं सन्धिरिति व्याकुर्वाणा अन्ये प्रकृतिभावस्य सन्धित्वे न सन्तुष्यन्ति तत्र वर्णसन्धानाभावात् । ते हि सिद्धान्तकौमुद्युक्त-चतुःसन्धिषु पञ्चमम्—अनुस्वारसन्धि परसवर्णरूपं ब्रुवते ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'अपरे पुनः सञ्ज्ञाप्रकरणं प्रकृतिभावप्रकरणञ्चापि लघुकौमुद्युक्तसन्धित्रये सम्मेल्य प्रकरणपञ्चकमिदं पञ्चसन्धिप्रकरणमुच्यत इति समादधति। सञ्ज्ञाप्रकरणस्य सन्धित्वाभावेऽपि तदुपोद्घातत्वेन तदन्तःपातः। प्रकृतिभावस्य चाऽच्सन्ध्यपवादत्वेन तत्समानदेशत्वमुत्सर्गापवादयोरिति समानदेशत्वनियमाद् विधिपूर्वको निषेध इति नियमाच्च सन्धिसम्बन्धित्वेन सन्धित्वमेवेति छत्रिणो यान्तीतिवत् पञ्चसन्धिव्यवहारो भाक्त इति तदाशयः। यद्वा पञ्चानां परस्परसापेक्षाणां सञ्ज्ञाद्यवयवानां सन्धिः=समुच्चयो यस्मिन्नवयविनि (प्रकरणे) तत्पञ्चसन्धिप्रकरणमित्युच्यते परम्परया।

पाणिनीयव्याकरणाचार्य्यकालविचारः

पाणिनिः

एतद्व्याकरणमूलभूतसूत्राणां कर्त्ता 'परशुपुर' (पेशावर) समीपवर्ति 'शलातुर' (लाहुर) ग्रामाभिजनो दाक्षिपुत्रो भगवान् पाणिनिः, कलेरष्टम्यां शताब्द्यां समभूदिति पूर्वविद्वत्समाजसिद्धान्तः।

कात्यायनः

पाणिनीयव्याकरणे वार्त्तिककर्ता वररुच्यपरनामाऽयं कात्यायनो मुनिः कलेर्विंशशताब्द्यां प्रादुरभवदिति पण्डितश्रीरामप्रपन्नशास्त्रिकृतनिरुक्तभूमिकातोऽवगम्यते। केचित्तु पाणिनिसमकालत्वमेवास्य प्रतिपादयन्ति।

पतञ्जलिः

गोनर्ददेशीयः (अयञ्च गोनर्ददेशः काश्मीरेष्विति प्राञ्चः, अयोध्याप्रान्ते इति पौरस्त्याः महाभाष्यकारः शेषावतारत्वेन विख्यातो भगवान् पतञ्जलिः कलेः सप्तविंशशताब्द्यां खीष्टजन्मतश्च ४५० वर्षाणि पूर्व–समजायतेति निरुक्तभूमिकायां पं० श्रीरामप्रपन्नशास्त्रिणः। कलेश्चतुर्विंशशताब्द्यामभूदिति श्रीदाधिमथाः।

भट्टोजिदीक्षित वरदराजौ

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीकर्त्ता श्रीभट्टोजिदीक्षितः श्रीलक्ष्मीधरभट्टसूनुः कान्यकुब्जेश्वरस्य गोविन्द्रचन्द्रदेवस्य समानकालिकस्तेन खीष्टीयद्वादशशताब्दीशेषभागे त्रयोदशे शतके समभूदिति महता प्रयासेन साधितं श्रीपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रेण भाषाटीकासहितसिद्धान्तकौमुदीभूमिकायाम्।

प्रो० वेबर–डाक्टरजलिमतानुसारञ्च खीष्टीयसप्तदशशताब्दी श्रीभट्टोजिदीक्षितस्य समयः। मध्यसिद्धान्तकौमुदीकर्त्ता श्रीवरदराजश्च भट्टोजिदीक्षितस्य शिष्य इति तस्य समानकालिक एवाऽतस्तस्य कालनिर्णयो न पृथक् क्रियते।

१—अपरे=कर्मकाण्डप्रभाकराः पं० श्रीविद्यसरशर्माणः स्वर्गं स्थाः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बालानां लेखोपयोगिनो नियमाः प्रदर्श्यन्ते ।

१—अक्षराणि सुवाच्यानि सुन्दराणि सन्देहरहितानि च स्युः ।

२-पदं पदं पृथक्कृत्य (समुचितव्यवधानं कृत्वा) लेखो लिखितः स्यात् ।

३-लेखे विरामादिचिह्ननियमाः सर्वथा पालिता भवेयुः ।

४-लेखे प्रसङ्गसमाप्तौ प्रघट्टकः परिवर्त्तनीयोऽवश्यमेव ।

५-प्रघट्टकस्य प्रथमा पङ्क्तिर्द्व्यङ्गुलं स्थानं रिक्तं परित्यज्य लेखनीया, शिष्टाश्च पङ्क्तयः समानरेखायां सरलाः = ऋजवो विरलाश्च लेखनीयाः ।

लेखोपयोगिचिह्नानि ।

अवान्तरविरामचिह्नम्	....	,
अर्धविरामचिह्नम्	....	;
पूर्णविरामचिह्नम्	....	।
प्रसङ्गसमाप्तिचिह्नम्	....	॥
प्रश्नचिह्नं काकुचिह्नम्	....	?
सम्बोधनखेदाऽऽश्चर्यचिह्नम्	....	!
उद्धरणचिह्नम्	....	"...."
पर्यायचिह्नं संयोगचिह्नञ्च	....	=
सन्धिच्छेदचिह्नम्	....	+
निर्देशचिह्नम्	....	:—
पाठान्तरचिह्नम् मध्ये भावादिप्रदर्शकचिह्नम्	}	( )
त्रुटिपूर्तिचिह्नम्	.... =	Λ
अपूर्णपाठचिह्नं समासे पदविभागसौकर्यचिह्नञ्च		—

बालोपयोगि—अशुद्धिप्रदर्शनम्

(बालानां संस्कृतानुवादे प्रायो जायमाना अशुद्धयः)

[1]ते [2]भ्रातोऽनेन [3]कर्मेणाऽभिलाषा[4] जायते मम ।
[5]एकामुपाधिमद्य [6]त्वां दद्यां किन्तु [7]पतेर्भयं[8] ॥८॥

१-**तव**, पादादौ स्थितत्वान्न 'ते' आदेशः । २-**भ्रातरनेन**, रोरेवोत्वविधानादुत्वं न । ३-**कर्मणा**, नान्तत्वेनादन्तत्वाभावादिनादेशो न । ४-**अभिलाषः**, 'घञन्तः' इति पुंस्त्वम् , । ५-**एकम्** , 'क्यन्तो घुः' इति सूत्रेण उपाधिशब्दस्य पुंस्त्वम् , तद्विशेषणत्वाद् एकशब्दस्यापि ... ६-**तुभ्यम्** , सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । ७-**पत्युः** पतिशब्दस्य समास एव घिसंज्ञाविधानान्न गुणादिकम् । ८-**भयम्** , हल्परत्वाभावादनुस्वारो न ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

[1]पश्यत्वा [2]युवतीभार्यां [3]भवान्नद्य गृहाद् गतः ।
तस्या [4]भर्त्तु र्बहिर्याते किं [5]विहित्वा त्वमागतः ॥ २ ॥
कुतस्त्वं [6]शंकसे [7]भ्रातो ! [8]नेत्रकाणोऽस्ति तत्सुतः ।
[9]तस्य सार्द्धं [10]मदीयाऽस्ति सन्धिर्वै दीर्घकालतः ॥ ३ ॥
कोपं [11]मा कुरु तात ! त्वं धर्मं [12]तव ब्रवीम्यहम् ।
[13]इमे ऽतिमधुरे [14]नीय [15]फल आस्वादय प्रिय ! ॥ ४ ॥
यश्च लग्नो [16]महत्प्रेम्णा दयालोः [17]कृष्णपादयोः ।
[18]सो [19]जगतस्य सर्वस्य सेव्यस्तस्य [20]नमस्ततः ॥ ५ ॥
अस्माकं भोजनं [21]पक्तं गृहं [22]गच्छे [23]यथागतिः ।
[24]अहोरात्रं [25]बिना [26]क्रीडे [27]छत्रोपानद्भिरातुरः ॥ ६ ॥
अस्मिन् [28]विश्वे मनुष्या ये [29]कर्म [30]जहन्ति नो निजम् ।
[31]नीचापि ते न [32]बिभ्यन्ति शमनात्तस्य सेवया ॥ ७ ॥

१—दृष्ट्वा, इत्संज्ञकशकारादिप्रत्यये परे पिन्नादीनां विधानात्पश्याऽऽदेशो न। २—युवभार्याम्. 'पुंवत्कर्मधारय' इत्यादिना पुंवद्भावः। ३—भवानद्य, ह्रस्वाभावात् ङमुण्न। ४—भर्त्तरि, 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इत्यनेन 'भर्त्तरि' इति कर्त्तरि सप्तमी कर्तृपदसम्बन्धेन क्रियापदेऽपि सप्तमी तद्विशेषणत्वात्। ५—विधाय, 'समासे नञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति ल्यप्। ६–शङ्कसे, 'अनुस्वारस्य' इति नित्यपरसवर्णः। ७–८–भ्रातर्नेत्रेण-काणः, रोरेवोत्वविधानान्नोत्वम्। तत्कृतगुणवचनाभावान्न समासः ९–तेन सहादियोगे तृतीया। १०–मदीयः 'क्यन्तो घु' इति सन्धिशब्दस्य पुंस्त्वम्, तद्विशेषत्वाद् मदीय इत्यस्यापि। ११–मा कार्षीः, 'माङि लुङ्' इति लुङ् १२–त्वाम्, द्विकर्मकत्वात् कर्मणि द्वितीया। १३–इमे अति, 'ईदूदे—' इति प्रगृह्यत्वात् प्रकृतिभावः। १४–नीत्वा, असमस्तत्वान्न ल्यप्। १५–फले आस्वादय, अत्रापि प्रकृतिभावः। 'ईदूदे' इति। १६–महाप्रेम्णा, 'आन्महत' इत्यात्वम्। १७–कृष्णस्य, सविशेषणानां वृत्तिर्न, वृत्तस्य च न विशेषणम्। १८–स 'एतत्तदोः' इति सुलोपः। १९–जगतः हलन्तत्वान्न 'स्मः'। २०–तस्मै, 'नमः स्वस्ति' इति चतुर्थी। २१–पक्वम्, 'पचो वः' इति क्तस्य वकारः। २२–गच्छामि, गमेः परस्मैपदत्वात्। २३–यथागति, 'अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वम् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सुपो लुक्। २४–अहोरात्रः, 'रात्राह्नाहाःपुंसि' इति पुंस्त्वम्, यद्वा–क्रियाविशेषणत्वात् साधु। २५–विना। २६–क्रीडामि, परस्मैपदत्वात्। २७–छत्रोपानहेन, 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्ताद्' इति टच्, समाहारत्वादेकवचनम्। २८–विश्वस्मिन् सर्वनामत्वात्स्मिन्नादेशः। २९–कर्म, 'स्वमोर्नपुंसकात्' इत्यमो लुक्। ३०–जहति, 'अदभ्यस्तात्' इत्यत्। ३१–नीचा अपि, यलोपस्याऽसिद्धत्वान्न सवर्णदीर्घः। ३२–बिभ्यति, अभ्यस्तत्वादत्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवादोपयोगाय-उपसर्गयोगेन केषाञ्चिद् धातूनामर्थविपरिणामः प्रदर्श्यते—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥१॥
(दिङ्मात्रमुदाह्रियते)

धातुरूपम्	भाषार्थः

[1]भू-सत्तायाम्

भवति–होता है ।
प्रभवति–समर्थ होता है, या उत्पन्न होता है ।
अनुभवति–अनुभव करता है ।
आविर्भवति–प्रकट होता है ।
उद्भवति–उत्पन्न होता है ।
प्रादुर्भवति– ,,
परिभवति–तिरस्कार करता है ।
पराभवति–तिरस्कार करता है ।
अभिभवति– ,,
सम्भवति–पैदा होता है, या सम्भव है ।

क्रमु—पादविक्षेपे

क्रामति–चलता है ।
उपक्रमते–आरम्भ करता है ।
प्रक्रमते– ,,
संक्रमति–संक्रान्त होता है ।
विक्रमते–विक्रम दिखाता है ।
आक्रमते–आक्रमण करता है ।
निष्क्रामति–निकलता है ।
अतिक्रामति–अतिक्रमण-उल्लंघन करता है ।
परिक्रामति–परिक्रमा करता है ।
पराक्रमते–पराक्रम दिखाता है ।
अपक्रामति–हटता है ।

गम्लृ—गतौ ।

गच्छति–जाता है ।
प्रतिगच्छति–लौटता है ।
अवगच्छति–जानता है ।
अनुगच्छति–पीछे जाता है ।
निर्गच्छति–बाहर जाता है ।
अधिगच्छति–प्राप्त करता है ।
आगच्छति–आता है ।
संगच्छते–मिलता है ।
उद्गच्छति–ऊपर जाता है ।

अय—गतौ ।

अयते–चलता है ।
पलायते–दौड़ता है ।

वृत्—वर्तने ।

वर्तते–है ।
प्रवर्तते–कार्य में लगता है ।
निवर्तते–लौटता है ।
अनुवर्तते–अनुसरण करता है ।
परिवर्तते–घूमता है ।

हृञ—हरणे ।

हरति–चुराता है ।

१–दीधी–वेवी–दरिद्राणामूर्णुञो जागरेस्तथा ।
एकाचामपि धातूनां नाऽनुबन्धोऽत्र विलुप्यते ॥ तेन, ऊकारानुबन्धलोपो न ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातुरूपम् भावार्थः

उपाहरति–भेंट देता है।
प्रहरति–प्रहार करता है।
विहरति–विहार करता है।
संहरति–संहार करता है।
परिहरति–दूर करता है।
उद्धरति–उद्धार करता है, निकलता है।
उदाहरति–उदाहरण देता है।
उपसंहरति–उपसंहार (संकोच) करता है।
प्रत्युदाहरति–प्रत्युदाहरण देता है।
व्यवहरति–व्यवहार करता है।
आहरति–लाता है।
अभ्यवहरति–खाता है।
अपहरति–अपहरण करता है।

वह–प्रापणे

वहति–ले जाता है। (ढोता है)
उद्वहति–विवाहता है।

णीञ्–प्रापणे

नयति–ले जाता है।
प्रणयति–बनाता है।
अपनयति–हटाता है।
आनयति–लाता है।
परिणयति–विवाहता है।
निर्णयति–निर्णय करता है।
अनुनयति–मनाता है।
उपनयति–उपनयन करता है।

ईक्ष–दर्शने—

प्रतीक्षते–उडीकता है। प्रतीक्षा करता है।
अपेक्षते–चाहता है।
परीक्षते–परीक्षा लेता है।

धातुरूपम् भावार्थः

उपेक्षते–उपेक्षा (लापरवाही) करता है।
अन्वीक्षते–जाँच करता है।

रुह–बीजजन्मनि

रोहति–जमता है। (उगता है)
प्ररोहति—,,
अधिरोहति–चढ़ता है।
संरोहति–मिलता है।
आरोहति–चढ़ता है।
अवरोहति–उतरता है।

लप–लपने

लपति–बोलता है।
आलपति—,,
विलपति–रोता है।
संलपति–वार्तालाप करता है।
प्रलपति–बकवास करता है।
अपलपति–छिपाता है।

वद–व्यक्तायां वाचि।

वदति–कहता है।
अनुवदति–अनुवाद करता है।
विवदते–झगड़ता है।
प्रतिवदति–जवाब देता है।

वस–निवासे

वसति–निवास करता है।
प्रवसति–विदेश जाता है।
उपवसति–उपवास (व्रत) करता है।

षद्लृ–विशरणगत्यवसादनेषु—

सीदति–ठहरता है, दुःखी होता है।
प्रसीदति–प्रसन्न होता है।
पर्यवसीदति–समाप्त होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

धातुरूपम्	भाषार्थः

विषीदति–दुःखी होता है।
निषीदति–बैठता है।
अवसीदति–थकता है।

ष्ठा–गतिनिवृत्तौ—
तिष्ठति–ठहरता है।
प्रतिष्ठते–जाता है।
अनुतिष्ठति–करता है।
संतिष्ठते–मरता है।
उत्तिष्ठति–उठता है।
उपतिष्ठते–उपस्थित होता है।

सृ–गतौ
सरति–जाता है।
प्रसरति–फैलता है।
अनुसरति–पीछे जाता है।
निःसरति–निकलता है।
अपसरति–हटता है।
परिसरति–घूमता है।

चर–गतौ—
चरति–घूमता है।
दुराचरति–दुराचरण करता है।
आचरति–व्यवहार करता है।
उपचरति–सेवा करता है।
अनुचरति–पीछे चलता है।
परिचरति–सेवा करता है।
संचरति–घूमता है।

तृ–प्लवनतरणयोः—
तरति–तरता है।
अवतरति–उतरता है।
वितरति–देता है।

धातुरूपम्	भाषार्थः

द्रु–गतौ।
द्रवति–पिघलता है।
उपद्रवति–उपद्रव करता है।
विद्रवति–भागता है।

पत्लृ–पतने—
पतति–गिरता है।
प्रणिपतति–प्रणाम करता है।
आपतति–आ पड़ता है।
उत्पतति–उड़ता है।

रमु–क्रीडायाम्—
रमते–खेलता है।
विरमति–हटता है।
उपरमति–उपरत होता है।

असु–क्षेपणे
अस्यति–फेंकता है।
अभ्यस्यति–अभ्यास (याद) करता है।
निरस्यति–निकलता है।

आस–उपवेशने।
आस्ते–बैठता हैं।
अध्यास्ते–अधिकार करता है।
उपास्ते–पूजा करता है।

इण्–गतौ
एति–जाता है।
अवैति–समझता है।
प्रत्येति–विश्वास करता है।
व्येति–खर्च करता है।
उदेति–उगता है।
उपैति–प्राप्त करता है।
अभ्येति–आगे आता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातुरूपम्	भाषार्थः
अन्वेति	पीछे आता है, या संबद्ध होता है।
अपैति	दूर होता है।
डुधाञ्-धारणपोषणयोः—	
दधाति	धारण करता है।
[1]संदधाति	मेल करता है।
विदधाति	करता है।
परिधत्ते	पहनता है।
(अ) पिदधाति	ढकता है।
निदधाति	रखता है।
अवधत्ते	ध्यान देता है।
अविदधाति	बोलता है।
पद-गतौ—	
पद्यते	जाता है।
प्रपद्यते	प्राप्त करता है या भजता है।
उत्पद्यते	पैदा होता है।
विपद्यते	दुःखी होता है।
उपपद्यते	योग्य होता है।
मन ज्ञाने—	
मन्यते	मानता है।
अवमन्यते	अनादर करता है।
अनुमन्यते	सलाह देता है।
सम्मन्यते	सम्मान करता है।
चिञ् चयने	
चिनोति	चुनता है।
उपचिनोति	बढ़ाता है।
सञ्चिनोति	इकट्ठा करता है।
अपचिनोति	घटता है।

धातुरूपम्	भाषार्थः
आप्लृ-व्याप्तौ—	
आप्नोति	प्राप्त करता है।
व्याप्नोति	फैलता है।
समाप्नोति	समाप्त करता है।
क्षिप-प्रेरणे—	
क्षिपति	फेंकता है।
संक्षिपति	छोटा करता है।
उत्क्षिपति	ऊँचा फेंकता है।
आक्षिपति	दोष देता है।
अवक्षिपति	नीचे फेंकता है।
दिश-अतिसर्जने (दाने)	
दिशति	देता है।
उपदिशति	उपदेश देता है।
संदिशति	सन्देश कहता है।
रुधिर-आवरणे—	
रुणद्धि	रोकता है।
अनुरुणद्धि	अनुरोध (सिफारिश) करता है।
विरुणद्धि	विरोध करता है।
डुकृञ्-करणे—	
करोति	करता है।
आविष्करोति	प्रकट करता है।
अनुकरोति	नकल करता है।
अलंकरोति	भूषण पहनता है।
प्रतिकरोति	प्रतीकार करता है।
अधिकरोति	अधिकार करता है।
उपकरोति	उपकार करता है।
निराकरोति	हटाता है।

१—विपूर्वो धा करोत्यर्थे ह्यभिपूर्वस्तु भाषणे।
मेलने चापि संपूर्वो निपूर्वः स्थापने मतः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातुरूपम्	भावार्थः
अपकरोति	अपकार (बुराई) करता है ।
परिष्करोति	शोधता है ।

ग्रह–उपादाने–

ग्रह्णाति–लेता है ।

अनुगृह्णाति–कृपा करता है ।

प्रतिगृह्णाति–दान लेता है ।

विगृह्णाति–लड़ता है ।

निगृह्णाति–दण्ड देता है ।

बन्ध–बन्धने

बध्नाति–बाँधता है ।

सम्बध्नाति–

धातुरूपम्	भावार्थः
उद्बध्नाति	फांसी देता है ।
निर्बध्नाति	आग्रह करता है ।

मन्त्रि–गुप्तभाषणे–

मन्त्रयते–सलाह करता है ।

निमन्त्रयते–न्यौता देता है ।

आमन्त्रयते–बुलाता है ।

अभिमन्त्रयते–संस्कार करता है ।

अर्थ–उपयाच्ञायाम्–

अर्थयते–माँगता है ।

अभ्यर्थयते–प्रार्थना करता है ।

प्रार्थयते–प्रार्थना करता है ।

लघुकौमुदीस्थ-प्रयोगसंग्रहो भावार्थसहितः, तत्राच्सन्धिप्रकरणम्

प्रयोगाः — भावार्थः

सूत्राङ्कः २१

सुद्ध्युपास्यः–विद्वानों के उपासनीयभगवान्

मध्वरिः–'मधु' दैत्य के शत्रु-भगवान् ।

धात्त्रंशः–ब्रह्मा का अंश ।

लाकृतिः–'ऌ' का स्वरूप । अथवा 'ऌ' के समान टेढ़ी आकृतिवाले बाँके बिहारी भगवान् श्रीकृष्ण ।

(एवं वितृतौ)

गौर्यागच्छति–गौरी आती है ।

कुर्विदम्–यह करो ।

मात्राज्ञा–माताकी आज्ञा ।

लाकारः–'ऌ' का आकार ।

सूत्राङ्कः २३

हरये (नमः)–पापहारी (हरि) भगवान् के प्रति (नमस्कार) ।

विष्णवे–व्यापक भगवान् के प्रति (नमः)

प्रयोगाः — भावार्थः

नायकः–नेता–प्रधान ।

पावकः–पवित्रकर्ता–अग्नि ।

(एवं वितृतौ)

नयति–ले जाता है ।

भवति–होता है ।

वटवृक्षः–वटो ! हे ब्रह्मचारिन् !

ऋक्षः–रीछ है ।

ग्लायति–दुःखी होता है ।

नाविकः–केवट–मल्लाह ।

भावुकः–भावनावान्–सहृदय ।

गव्यम्–गोविकार–गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, गोमूत्र, गोबर आदि ।

सूत्राङ्कः २४

नाव्यम्–नौकासे तरने योग्य जल ।

गव्यूतिः–दो कोस ।

उपेन्द्रः–इन्द्रके छोटे भाई-वामन भगवान्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

गङ्गोदकम् = गङ्गा का जल ।

(एवं विवृतौ)

गजेन्द्रः—यूथपति गज—हस्तिराज ।

रमेशः—लक्ष्मीपति भगवान् ।

सूर्योदयः—सूर्य का उदय ।

परीक्षोत्सुकः—परीक्षार्थ उत्कण्ठित ।

सूत्राङ्का २९

कृष्णर्द्धिः—भगवान् श्रीकृष्ण की समृद्धि ।

तवल्कारः—तेरा लृकार ।

(एवं विवृतौ)

वसन्तर्तुः—वसन्त ऋतु ।

राजर्षिः—राजऋषिः हरिश्चन्द्र जनक आदि

ममल्कारः—मेरा लकार ।

सूत्राङ्काः ३१

हर इह—हे हरि! यहाँ (आओ) ।

विष्ण इह—हे विष्णु ! यहाँ (आओ) ।

(एवं विवृतौ)

शौर इह—हे शौरि ! यहाँ (आओ) ।

प्रभो इदानीम्—हे प्रभु ! अब (सुख है) ।

श्रिया उत्कण्ठितः—शोभा के लिये उत्सुक ।

भाना उत्सुकः—सूर्य में उत्कण्ठित ।

गुरा आयाते—गुरुजी के आने पर ।

सूत्राङ्काः ३२

कृष्णैकत्वम्—भगवान् श्रीकृष्ण की एकता

गङ्गौघः—गङ्गा का प्रवाह ।

देवैश्वर्यम्—देवताओं का ऐश्वर्य ।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

कृष्णौत्कण्ठ्यम्—भगवान् श्रीकृष्ण में उत्कण्ठा ।

(एवं विवृतौ)

पञ्चैते—पाँच ।

तण्डुलौदनम्—चावलों का भात ।

माधवैधनम्-माधव की वृद्धि ।

रामौत्सुक्यम्-श्रीराम में उत्कण्ठा ।

सूत्राङ्काः ३४

उपैति—समीप पहुँचता है ।

उपैधते--समीप बढ़ता है ।

प्रष्ठौहः—उद्दण्डता दूर करने के लिये जिसके गले में काष्ठ बाँध देते है ऐसे बछड़े को प्रष्ठवाट् कहते हैं (तस्य प्रष्ठौहः) प्रष्ठवाट् का ।

(एवं विवृतौ)

अपैति—पृथक् होता है ।

अवैधसे—तुम बढ़ते हो ।

उपेतः—समीप पहुँचा ।

माभवान् प्रेदिधत्—आप अधिक न बढ़ायें ।

[1]अक्षौहिणी—सेनाविशेष ।

प्रौहः—उत्तम तर्क ।

प्रौढः—बढ़ा हुआ ।

प्रौढिः—प्रौढ़ता ।

प्रैषः—प्रेरणा ।

प्रैष्यः सेवक—प्रेरणीय ।

सुखार्तः—प्राप्तसुख—सुखी ।

१—२१८७० हाथी । २१८७० रथ । ६५६१० घोड़े । १०९३५० पैदल जिस सेना में हों वह सेना अक्षौहिणी कहलाती है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रयोगाः **भाषार्थः**

परमर्तः–परमगत अर्थात् मुक्त ।

प्रार्णम्–अधिक ऋण (कर्जा) ।

वत्सतरार्णम्–बछड़े के निमित्त ऋण ।

कम्बलार्णम्–कम्बल का ऋण ।

वसनार्णम्–वस्त्र का ऋण ।

ऋणार्णम्–एक ऋण को उतारने के लिये उठाया गया दूसरा ऋण ।

दशार्णः–दश ऋण=किले जिस देश में हों ऐसा देश ।

सूत्राङ्काः ३७

प्रार्च्छति–अधिक चलता है ।

(एवं विवृतौ)

प्रार्च्छत्–अधिक चला ।

सूत्राङ्काः ३८

प्रेजते–अधिक काँपता है ।

उपोषति–समीप जाता है ।

(एवं विवृतौ)

उपेजते–पास काँपता है ।

प्रेष्यति–भेजता है ।

अवोषति–नीचे जाता है ।

सूत्राङ्काः ३९

शकन्धुः–शक देश का कूप=कुआँ ।

कर्कन्धुः–बदरीफल–बेर ।

मनीषा–बुद्धि ।

मार्तण्डः–सूर्य ।

सीमन्तः–केशवेश ।

हलीषा–हलदण्ड ।

लाङ्गलीषा–,,

पतञ्जलिः–पतञ्जलि ऋषि ।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सारङ्गः–मृग ।

कुलटा–व्यभिचारिणी स्त्री ।

सूत्राङ्काः ४०

शिवायोन्नमः = ओं नमः शिवाय–शिव के प्रति नमस्कार हो ।

शिवेहि–हे शिव ! आइये ।

(एवं विवृतौ)

कृष्णेहि–हे श्रीकृष्ण ! आइये ।

अवेहि–समझ ले ।

सूत्राङ्काः ४२

दैत्यारिः–दैत्यों का शत्रु (विष्णु) ।

श्रीशः–लक्ष्मीपति भगवान् ।

विष्णूदयः–भगवान् विष्णु का उदय ।

होतृकारः–(ऋग्वेदी) का ऋकार ।

(एवं विवृतौ)

खरारिः–खर दैत्य के शत्रु श्रीराम ।

भानूदयः–सूर्य का उदय ।

लक्ष्मीशः–कमलापति भगवान् ।

सूत्राङ्काः ४३

हरेऽव–हे हरि ! रक्षा करो ।

विष्णोऽव–हे विष्णु, रक्षा करो ।

(एवं विवृतौ)

स्थलेऽत्र–इस स्थान में ।

कृष्णोऽहम्–भगवान् श्रीकृष्ण मैं हूँ ।

सूत्राङ्काः ४४

गो (ऽ) अग्रम्–गौ के आगे वा गौ का अग्रभाग ।

चित्रग्वग्रम्–विचित्र गौओंवाले के आगे ।

गोः–गौ का (दूध आदि) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ४७

गवाग्रम्–गौ का अग्रभाग।

(एवं विवृतौ)

गवाक्षः–वातायन खिड़की या रोशनदान।

गवि–गौ में।

सू० ४८

गवेन्द्रः–गोस्वामी–भगवान् श्रीकृष्ण अथवा वृषभ।

सू० ५१

अागच्छ कृष्ण! अत्र गौश्चरति–आइये श्रीकृष्ण! यहाँ गौ चर रही है।

सू० ५१

हरी एतौ–ये दोनों हरि=सिंह हैं।

विष्णू इमौ–ये दोनों विष्णु=व्यापक हैं।

गंगे अमू–ये दोनों गंगायें हैं।

(एवं विवृतौ)

धनुषी एते–ये दोनों धनुष हैं।

भानू उदयेते–दो सूर्य उदय होते हैं।

द्वे कुले उत्कृष्टे एते स्तः–ये दोनों कुल उत्कृष्ट हैं।

सू० ५२

अमी ईशाः–ये अधिपति हैं।

रामकृष्णावमू आसाते–बलराम श्रीकृष्ण बैठे हैं।

अमुकेऽत्र- ये यहाँ हैं।

सू० ५५

इ इन्द्रः–ओह यह इन्द्र हैं।

उ उमेशः–जान पड़ता है यह महादेव है।

प्रयोगाः	भाषार्थः

आ एवं नु मन्यसे–तुम अवश्य ऐसा मानते हो।

आ एवं किल तत्–हाँ वह वस्तु ऐसी ही थी।

ओष्णम्–कुछ गर्म।

सू० ५६

अहो ईशाः–ओह ये अधिपति हैं।

(एवं विवृतौ)

मिथो आगच्छतः–दोनों परस्पर (मिलकर) आते हैं।

अहो अद्य–ओह आज।

अथो अपि--अनन्तर भी।

सू० ५७

विष्णो इति–हे विष्णु! यह।

(एवं विवृतौ)

भानो इति–हे सूर्य! यह।

सू० ५८

किम्वुक्तम्–क्या कहा?

सू० ५९

चक्रि अत्र–चक्रधारी यहाँ (है)।

(एवं विवृतौ)

धनि आगच्छति–धनी पुरुष आता है।

सू० ६०

गौर्य्यौ–दो गौरियें हैं।

वाप्यश्वः–वापी पर घोड़ा (है)।

सू० ६१

ब्रह्मर्षिः–ब्रह्म ऋषि, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि।

आर्च्छत्–चला गया। इत्यच्सन्धिः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ हल्सन्धिप्रकरणम्

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सूत्राङ्काः ६२

रामश्शेते—श्री राम सो जाते हैं।

रामश्चिनोति—श्री राम (फूल) चुनते हैं।

सच्चित्—सत् स्वरूप और ज्ञानस्वरूप (ब्रह्म)।

शार्ङ्गिञ्जय—हे शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् आपकी जय हो।

(एवं विवृतौ)

कृष्णश्चपलः—श्रीकृष्ण चञ्चल हैं।

नारदश्शशाप—नारद ने शाप दिया।

ग्रामाच्चलितः—ग्राम से चला।

सू० ६३

विश्नः—गति, अथवा प्रवेश।

प्रश्नः—पूछना।

सू० ६४

रामष्षष्ठः—श्री राम छठा है।

रामष्टीकते—श्री राम जाते हैं।

पेष्टा—पीसने वाला।

तट्टीका—वह टीका।

चक्रिण्ढौकसे—हे चक्रधारी! आप जाते हैं।

षट् सन्तः—छः सत्पुरुष।

सू० ६५

षट् ते—वे छः।

ईट्टे—स्तुति करता है।

सर्पिष्टमम्—अतिशय घृत या अत्युत्कृष्ट घृत

षण्णाम्—छः (पुरुषों) का घर।

षण्णवतिः—छियानबे (९६)।

षण्णगर्यः—छः नगरियें।

सू० ६६

सन् षष्ठः—छठा श्रेष्ठ (है)।

सू० ६७

वागीशः—बृहस्पति।

सू० ६८

एतन्मुरारिः—ये भगवान् मुरारि हैं।

तन्मात्रम्—तत्स्वरूप।

चिन्मयम्=ज्ञानस्वरूप (चेतनस्वरूप)।

(एवं विवृतौ)

वाङ्—मधुवाणी की मिठास।

सम्मनोहरम्—सत्पुरुषों के मन को हरने वाला।

उन्मानम्—तोलना।

ऋङ्मन्त्रः—ऋग्वेद का मन्त्र।

दधिमुणमाद्यति—दही का चोर प्रसन्न होता है।

विपन्मयम्—विपत्तिमय।

अम्मात्रम्—केवल जल।

अम्मयम्—जलमय।

सू० ६९

तल्लयः—उसमें लय-लीन होना।

विद्वांल्लिखति—पण्डित लिखता है।

(एवं विवृतौ)

विपल्लीनः—विपत्ति में लीन।

कुशाँल्लाति—कुशा ग्रहण करता है।

सू० ७४

उत्थानम्—उठना (उन्नति)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

उत्तम्भनम्–उभारना।

(एवं विवृतौ)

उत्थापयति–उठाता है।

सू० ७५

वाग्घरिः–वाक् सिंह (बोलने में शेर)।

(एवं विवृतौ)

तद्धानम्–वह हानि।

सम्पद्धानि–सम्पत्ति की हानि।

ककुब्भासः–दिशा का खिलना–प्रकाश होना।

सू० ७६

तच्छिवः–वह शिव (है)।

तच्छ्लोकेन–उसकी कीर्ति से।

(एवं विवृतौ)

एतच्छान्तम्–यह (आश्रमपद) शान्त है।

सू० ७७

हरिं वंदे–भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

सू० ७८

यशांसि–(बहुत से) यश।

आक्रंस्यते–आक्रमण किया जायगा।

मन्यसे–तुम मानते हो।

(एवं विवृतौ)

वासांसि–वस्त्र (बहुत से)।

प्रणंस्यते–प्रणाम किया जायेगा।

सू० ७९

शान्तः–शान्त (पुरुष)।

(एवं विवृतौ)

अङ्कितः–चिह्नित।

अञ्चितः–पूजित।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

कुण्ठितः—कुण्ठित (रुका हुआ)।

ग्रन्थः—पुस्तक।

दान्तः—जितेन्द्रिय।

गुम्फितः—गुँथा हुआ।

सू० ८०

त्वङ्करोषि—तुम करते हो।

(एवं विवृतौ)

त्वम्पचसि—तुम पकाते हो।

मृत्युञ्जय—मृत्यु को जीतो।

दानँय्यच्छति—दान देता है।

सँव्वत्सरः—वर्ष (संवत्)।

सुन्दरँल्लिखामि—मैं सुन्दर लिखता हूँ।

अहँल्लिखामि—मैं लिखता हूँ।

सू० ८१

सम्राट्—चक्रवर्ती।

सू० ८२

किँ ह्मलयति—क्या (हाथी) जाता है?

किँ ह्यः—कल क्या (होगा)।

किं ह्वलयति—क्या (हाथी) जाता है।

किं ह्लादयति—कौन (वस्तु) प्रसन्न करती है?

सू० ८३

किं ह्नुते—क्या छिपाता है?

सू० ८४

षट् सन्तः—छः सत्पुरुष।

सू० ८५

प्राङ् षष्ठः—छठा सुप्रतिष्ठित है।

सुगण्षष्ठः—छठा अच्छा गणित जानता है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ८७

सन्त्सः—वह सत्पुरुष है ।

(एवं विवृतौ)

विद्यार्थिन्त्सहस्व—हे विद्यार्थि ! सहनकर

छात्रान्त्स्वापय—विद्यार्थियों को सुला दो

सू० ८८

सञ्छम्भुः—शम्भु भगवान् सत्स्वरूप हैं ।

(एवं विवृतौ)

बालाञ्छास्ति—बालकों को शिक्षा देता है ।

सू० ८९

प्रत्यङ्ङात्मा—अन्तरात्मा, जीवात्मा ।

सुगण्णीशः—गणितज्ञों का अधिपति ।

सन्नच्युतः—अच्युतभगवान् सत्स्वरूप हैं ।

(एवं विवृतौ)

तिङ्ङतिङः—अतिङ से परे तिङ् ।

तस्मिन्निति—'तस्मिन्' ऐसा ।

पठन्नेति—पढ़ता हुआ जा रहा है ।

सू० ९३

संस्कर्त्ता—संस्कार करने वाला ।

(एवं विवृतौ)

संस्कारः—संस्कार ।

संस्कृतम्—परिशोधित ।

संस्करोति—संस्कार करता है ।

सू० ९४

पुंस्कोकिलः—नर कोयल ।

(एवं विवृतौ)

पुंस्पुत्रः—पुरुष का पुत्र ।

पुंश्चरित्रम्—पुरुष का चरित्र ।

प्रयोगाः भाषार्थः

पुंस्तिलकम्—पुरुष का तिलक ।

पुंष्टीका—पुरुष की टीका ।

सू० ९६

चक्रिंस्त्रायस्व—हे चक्रधारी भगवान् ! रक्षा करो ।

प्रशान्तनोति—शान्तपुरुष (शान्ति) फैलाता है ।

हन्ति-मारता है ।

(एवं विवृतौ)

कस्मिंश्चित्—किसी (स्थान) में ।

भक्ताँस्तारय—भक्तों को तारिये ।

विद्वाँश्छात्रः—विद्वान् विद्यार्थी ।

वेदाँष्टीकस्व—वेदों की टीका करो ।

सू० ९८

नॄं ≍ पाहि (इन) मनुष्यों की रक्षा करो ।

(एवं विवृतौ)

नॄँ ≍ पालयस्व—लोगों की रक्षा करो ।

सू० १००

काँस्कान्—किन किन को (पढ़ाऊं) ।

सू० १०१

शिवच्छाया—शिव की छाया ।

(एवं विवृतौ)

वृक्षच्छाया—वृक्ष की छाया ।

स्वच्छात्रः—अपना विद्यार्थी ।

सू० १०२

लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मी की छाया ।

(एवं विवृतौ)

नदीच्छन्ना—नदी में छुपी हुई (वस्तु) ।

इति हलसन्धिः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ विसर्गसन्धिः

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १०३

विष्णुस्त्राता–श्रीविष्णु, भगवान् रक्षक हैं
(एवं विवृतौ)
छात्रस्तिष्ठति–विद्यार्थी ठहरता है।
गौश्चरति–गौ चरती है।
कृष्णश्छिनत्ति–भगवान् श्रीकृष्ण (जन्म-बन्ध) काट देते हैं।

सू० १०४

हरिश्शेते–भगवान् श्रीहरि सो रहे हैं।
(एवं विवृतौ)
छात्रास्सन्ति–विद्यार्थी (उपस्थित) हैं।
रसाष्षट्–छः रस हैं।

सू० १०६

शिवोऽर्च्यः–भगवान् शिव पूजनीय हैं।
(एवं विवृतौ)
शुद्धोऽहम्–मैं शुद्ध स्वरूप हूँ।
बुद्धोऽस्मि–मैं बुद्ध स्वरूप हूँ।
छात्रोऽयम्–यह विद्यार्थी (है)।

सू० १०७

शिवो वन्द्यः–भगवान् शिव वन्दनीय हैं।
(एवं विवृतौ)
रामो वदति–भगवान् श्रीराम कहते हैं।
छात्रो गच्छति–विद्यार्थी जाता है।
कृष्णो जयति–भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की जय।
काको डीयते–कौआ उड़ता है।
कर्णो ददाति–राजा कर्ण दान देते हैं।

प्रयोगाः भाषार्थः

व्यासो ब्रूते–भगवान् वेदव्यास कथा कहते हैं।

सू० १०८

देवा इह–देवता यहाँ (आवें)।
(एवं विवृतौ)
छात्रा आगच्छन्ति–विद्यार्थी आते हैं।
वीरा उत्सहन्ते–वीर पुरुष उत्साह करते हैं
देवा एते–ये देवता हैं।
धार्मिका वर्धन्ते–धार्मिक लोग बढ़ रहे हैं।
भक्ता भजन्ति–भक्त (भगवान्) को भजते हैं।
हया हेषन्ति–घोड़े हिनहिनाते हैं।
याज्ञिका यान्ति–याज्ञिक लोग जाते हैं।
बाला रमन्ते–बालक खेलते हैं।
विप्रा दयन्ते–ब्राह्मण दया करते हैं।

सू० १०९

भो देवाः–हे देवताओं!
भगो नमस्ते–हे भगवान्! आपके प्रति नमस्कार है।
अघो याहि–अरे (पापी!) दूर हट।

सू० ११०

अहरहः–प्रतिदिन।
अहर्गणः–दिनसमूह अर्थात् संवत्सर।
(एवं विवृतौ)
अहर्भाति–दिन सुहाता है।
प्रातरत्र–प्रातःकाल यहाँ (आना)
भ्रातर्देहि–भ्राता जी (यह मुझे) दो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ११२

पुना रमते–फिर खेलता है।

हरी रम्यः–भगवान् हरि (परम) रमणीय हैं।

शम्भू राजते–भगवान् शम्भु प्रकाशमान् हैं।

एवं (विवृतौ)

नीरसः–रसरहित (शुष्क) असहृदय।

लीढे–चाटता है।

अजर्घाः—तुमने बार बार ग्रहण किया।

प्राता रमते–प्रातः काल खेलता है।

तृढः–हिंसित।

वृढः–उद्यत, तैय्यार हुआ।

सू० ११३

मनोरथः–इच्छा।

सू० ११४

एष विष्णुः–ये भगवान् विष्णु हैं।

स शम्भुः–वे भगवान् शम्भु हैं।

(एवं विवृतौ)

एष शोभते–यह शोभायमान है!

एष ददाति–यह पुरुष देता है।

स चलति– वह चलता है।

प्रयोगाः भाषार्थः

स च–और वह।

एषको रुद्रः–ये भगवान् रुद्र हैं।

असः शिवः (यह) शिव वह नहीं अर्थात्-और ही हैं।

एषोऽत्र–यह (घट) यहाँ (है)।

(एवं विवृतौ)

एषोऽहम्–मैं यह हूँ।

सोऽहम्–मैं वह हूँ।

सू० ११४

सेमामविड्ढि प्रभृतिम्–(जो आप इसको देने में समर्थ हैं) वह आप हमें यह (प्रभृतिम्) प्रकृष्ट धारणा प्राप्त करावें।

सैष दाशरथी रामः–वे ये भगवान् दशरथनन्दन श्रीराम हैं।

(एवं विवृतौ)

सैष राजा युधिष्ठिरः—ये वे राजा युधिष्ठिर हैं।

सैष कर्णो महादानी–ये वे महादानी कर्ण हैं।

सैष भीमो महाबलः–ये वे महाबली भीम हैं।

इति विसर्गसन्धिः।

अथाजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १२४

रामः–भगवान्-श्रीराम।

सू० १५०

कृष्णः–भगवान्-श्रीकृष्ण।

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १५१

सर्वः–सब।

सू० १५५

विश्वः सब, तुल्य, संसार।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः — भावार्थः

उभौ—दोनों।
उभये—दोनों (समुदाय)।
अन्यः—दूसरा।
अन्यतरः—दो में से एक।
इतरः—इतर (भिन्न)।
त्वत्—अन्य।
त्वः—"
नेमः—आधा।
समः—सब।
सिमः—"
पूर्वः—पहला।
अपरः—दूसरा।
अवरः—अधम।
दक्षिणा—दक्षिण दिशा।
उत्तरा—उत्तर दिशा।
अधरः—नीचे।
स्वः—आप और अपना।
अन्तरम्—बाहर या परिधानीय।
एकः—एक।

सू० १६०

प्रथमः—पहला।
चरमः—अन्तिम।
कतिपये—कई एक।
द्वितयः—दूसरा।
अल्पः—थोड़ा।
अर्धः—आधा।

सू० १६१

निर्जरः—देवता।

प्रयोगाः — भावार्थः

सू० १६२

विश्वपाः—विश्वम्भर भगवान्।

सू० १६७

शङ्खध्माः—शङ्ख धमने वाला।
हाहाः—देव गन्धर्व।
हरिः—पापहर्ता भगवान्।

सू० १७०

कविः—कवि।

सू० १८४

सखा—मित्र।

सू० १८५

पतिः—पति।
भूपतिः—राजा।

सू० १९१

कति—कितने।

सू० १९२

त्रयः—तीन।
प्रियत्रिः—जिसको तीन प्यारे हैं।

सू० १९३

द्वौ—दो।
पपीः—सूर्य।
वातप्रमीः—मृग।
बहुश्रेयसीः—बहुत कल्याणवाली स्त्रियों वाला।

सू० १९०

अतिलक्ष्मीः—लक्ष्मी को अतिक्रमण करने वाला।

सू० २००

प्रधीः—[illegible] बुद्धि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः
ग्रामणीः—मुखिया (नम्बरदार)।	
नीः—ले जानेवाला।	
सुश्रीः—सुन्दर श्रीवाला।	
यवक्रीः—जौ खरीदनेवाला।	

सू० २०१

शुद्धधीः—पवित्र बुद्धि।

सू० २०२

सुधीः—पण्डित।

सुखीः—सुख चाहनेवाला।

सुतीः—पुत्र चाहनेवाला।

शम्भुः—महादेव।

भानुः—सूर्य।

सू० २०३

क्रोष्टा—गीदड़।

सू० २०९

हूहूः—देवगन्धर्व।

अतिचमूः—सेना को अतिक्रमण करनेवाला।

प्रयोगाः	भाषार्थः
खलपूः—मार्जनकारी।	
सुलूः—अच्छा काटनेवाला।	
स्वभूः—स्वयम्भू।	
वर्षाभूः—;मेढक।	

सू० २११

दृन्भूः—सर्प, वज्र, कपि और सूर्य।

करभूः—हाथ से पैदा हुआ (नख)।

धाता—ब्रह्मा।

नप्ता—दौहित्र या पौत्र।

पिता—पिता।

जामाता—जमाई।

ना—मनुष्य।

सू० २१३

गौः—गौ।

सू० २१५

राः—धन।

ग्लौः—चन्द्रमा।

इति अजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

अथाजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० २१६

रमा—लक्ष्मी।

सू० २१९

दुर्गा—दुर्गा।

अम्बिका—दुर्गा।

सू० २२०

सर्वा—सब (औषधि)।

विश्वा—,,

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० २२१

उत्तर-पूर्वा—ईशान कोण।

द्वितीया—दूसरी।

तृतीया—तीसरी।

अम्बा—माता या दुर्गा।

अल्ला—,,

अक्का—,,

जरा—बुढ़ापा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः — भाषार्थः

गोपाः–गौ पालनेवाली स्त्री ।

मतिः–बुद्धिः ।

सू० २२३

बुद्धिः–बुद्धि ।

सू० २२५

तिस्रः–तीन स्त्रियाँ ।

चतस्रः–चार स्त्रियाँ ।

सू० २२६

द्वे–दो स्त्रियाँ ।

गौरी–पार्वती ।

नदी–नदी ।

लक्ष्मीः–लक्ष्मी ।

तरीः–नौका ।

तन्त्रीः–वीणा का तार ।

स्त्री–स्त्री ।

प्रयोगाः — भाषार्थः

सू० २२८

श्रीः–श्री (शोभा) ।

सू० २३०

धेनुः–गौ ।

सू० २३२

भ्रूः–भ्रुकुटि ।

स्वयम्भूः–ब्रह्मा ।

सू० २३३

स्वसा–बहिन ।

दुहिता–पुत्री ।

याता–जेठानी, देवराणी ।

माता–माता ।

द्यौः–आकाश ।

राः–धनः ।

नौः–नौका ।

इति अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गाः

प्रयोगाः — भाषार्थः

सू० २३४

ज्ञानम्–ज्ञान ।

सू० २४०

धनम्–धन ।

वनम्–वन ।

फलम्–फल ।

सू० २४२

कतरत्–दो में से कौन सा (कुल) ।

कतमत्–बहुतों में से कौन सा ।

प्रयोगाः — भाषार्थः

इतरत्–इतर ।

अन्यत्–और ।

अन्यतरत्–दो में से एक ।

अन्यतमम्–इन सब में से एक ।

श्रीपम्–धनरक्षक (कुल) ।

सू० २४४

वारि–जल ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः
	सू० २४६
दधि–दही ।	
	सू० २४८
अस्थि–हड्डी ।	
सक्थि–ऊरु ।	
अक्षि–आँख ।	
सुधि–बुद्धिमान् कुल ।	

प्रयोगाः	भाषार्थः
	सू० २४९
मधु–शहद ।	
सुलु–अच्छा काटनेवाला (शस्त्र) ।	
धातृ–धारण या पोषण करने वाला (शस्त्र) ।	
ज्ञातृ–ज्ञानी कुल ।	
	सू० २५०
प्रद्यु–सुन्दर आकाशयुक्त दिन ।	
प्ररि–धनिक कुल ।	
सुनु–सुन्दर नौकावाला कुल ।	

इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

अथ हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

प्रयोगाः	भाषार्थः
	सू० २५१
लिट्–चाटनेवाला ।	
	सू० २५२
धुक्–दोहनेवाला ।	
	सू० २५४
ध्रुक्–द्रोह करनेवाला ।	
मुक्–मुग्ध ।	
	सू० २५५
स्नुक्–वमनकारी ।	
स्निक्–स्नेही ।	
	सू० २५८
विश्ववाट्–विश्ववाहक-परमात्मा ।	
	सू० २६०
अनड्वान्–बैल ।	

प्रयोगाः	भाषार्थः
	सू० २६१
(स्रस्तम्)–गिरा हुआ ।	
(ध्वस्तम्)–नष्ट हुआ ।	
तुराषाट्–इन्द्र ।	
	सू० २६३
सुद्यौः–सुन्दर आकाश ।	
	सू० २६५
चत्वारः–चार ।	
	सू० २७०
(प्रशान्)–शान्त ।	
	सू० २७१
कः–कौन ।	
	सू० २७३
[1]अयम्–यह ।	

१—इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्तिनि चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः
सू० २८०	
राजा	राजा ।
सू० २८१	
(ब्रह्मनिष्ठः)	ब्रह्मनिष्ठ ।
सू० २८२	
यज्वा	यज्ञ करनेवाला ।
सू० २८३	
ब्रह्मा	ब्रह्मा ।
सू० २८५	
वृत्रहा	इन्द्र ।
सू० २८७	
शार्ङ्गी	धनुषधारी भगवान् विष्णु ।
यशस्वी	यशवाला ।
अर्यमा	देवविशेष ।
पूषा	सूर्य या देवविशेष ।
सू० २८९	
मघवान्	इन्द्र ।
सू० २९०	
श्वा	कुत्ता ।
युवा	युवक ।
सू० २९१	
अर्वा	घोड़ा ।
सू० २९५	
पन्थाः	मार्ग ।
सू० २९६	
मन्थाः	मथनी ।
ऋभुक्षाः	इन्द्र ।
सू० २९७	
पञ्च	पाँच ।

प्रयोगाः	भाषार्थः
सू० ३००	
अष्टौ	आठ ।
सू० ३०४	
ऋत्विक्	ऋत्विज ।
सू० ३०५	
युङ्	योगी ।
सू० ३०६	
सुयुक्	सुयोगी ।
खन्	लंगड़ा ।
सू० ३०७	
राट्	राजा ।
विभ्राट्	विशेष शोभा युक्त ।
देवेट्	देवपूजक ।
विश्वसृट्	ब्रह्मा ।
परिव्राट्	संन्यासी ।
सू० ३०८	
विश्वाराट्	विश्वेश्वर भगवान् ।
सू० ३०९	
भुट्	भठियारा ।
सू० ३१०	
स्यः	वह ।
सः	वह ।
यः	जो ।
एषः	यह ।
सू० ३१३	
त्वम्	तू
अहम्	मैं ।
सू० ३३३	
सुपात्	सुन्दर पाओं वाला ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

अग्निमत्–अग्निमन्थक।

सू० ३३४

प्राङ्–सुगति या सुपूजक।

सू० ३३६

प्रत्यङ्–प्रतीचीन, पश्चिम दिशा।

उदङ्–उत्तरदिशा या तद्भव।

सू० ३३८

सम्यङ्–ठीक चलनेवाला।

सू० ३३९

सध्र्यङ्–साथी।

सू० ३४०

तिर्यङ्–टेढा चलनेवाला पशु-पक्षी।

सू० ३४१

क्रुङ्–क्रौञ्चपक्षी !

पयोमुक्–बादल।

सू० ३४२

महान्–बड़ा।

सू० ३४३

धीमान्–बुद्धिमान्।

भगवान्–आप।

भवन्–होता हुआ।

सू० ३४५

ददत्–देता हुआ।

सू० ३४६

जक्षत्–खाता हुआ।

जाग्रत्–जागता हुआ।

प्रयोगाः	भाषार्थः

दरिद्रत्–दरिद्र होता हुआ।

शासत्–शासन करता हुआ।

चकासत्–दीप्त होता हुआ।

गुप्–रक्षक।

सू० ३४८

तादृक्–वैसा।

विट्–बनिया, प्रजा।

सू० ३४९

नक्–नष्ट होनेवाला।

सू० ३५०

घृतस्पृक्–घी छूनेवाला।

दधृक्–तिरस्कर्ता।

रत्नमुट्–रत्नों का चोर।

षट्–छे। सू० ३५१

पिपठीः–पठनेच्छुक।

सू० ३५२

चिकीः–करणेच्छुक।

विद्वान्–पण्डित।

सू० ३५४

पुमान्–पुरुष।

उशना–शुक्राचार्य।

अनेहा–समय।

वेधाः–ब्रह्मा।

सू० ३५४

असौ–वह (पुरुष)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति हलन्तपुल्लिङ्गप्रकरणम्

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

प्रयोगाः	भाषार्थः
सू० ३६०	
उपानत्	जूता ।
उष्णिक्	पगड़ी; या छन्द ।
द्यौः	आकाश ।
गीः	वाणी ।
पूः	पुरी, नगरी ।
चतस्रः	चार (स्त्रियाँ) ।
का	कौन । (स्त्री)
सू० ३६१	
इयम्	यह (स्त्री)
स्या	वह (स्त्री) ।
सा	वह (स्त्री) ।
एषा	यह ।
वाक्	वाणी ।
आपः	जल ।
दिक्	दिशा ।
दृक्	आँख ।
त्विट्	कान्ति ।
सजूः	मित्र ।
आशीः	आशीर्वाद ।
असौ	वह (स्त्री) ।

इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

प्रयोगाः	भाषार्थः
स्वनडुत्	अच्छे बैलोंवाला (कुल)
वाः	जल ।
चत्वारि	चार (फल) ।
किम्	क्या ।
इदम्	यह ।
एनत्	यह ।
सू० ३६३	
अहः	दिन ।
दण्डि	दण्डवाला कुल ।
सुपथि	सुमार्गवाला वन ।
ऊर्क्	तेज और बल ।
तत्	वह ।
यत्	जो ।
एतत्	यह ।
गवाक्	गोपूजक, गौ रखनेवाला ।
शकृत्	मल (टट्टी) ।
ददत्	दानी (कुल) ।
सू० ३६४	
तुदत्	दुःखदायी (कुल)
सू० ३६६	
पचत्	पकाता हुआ (कुल) ।
दीव्यत्	खेलता हुआ ।
धनुः	धनुष ।
चक्षुः	आँख ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हविः--हवि, चरु ।
पयः--दूध वा जल ।
सुपुम्--सुपुरुषवाला कुल ।
अदः--यह (वस्तु) ।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

अथ —अव्ययसंग्रहः

अव्ययानि	भाषार्थः
सू० ३६७	
स्वर्--स्वर्ग ।	
अन्तर्--बीच में ।	
प्रातर्--प्रातः काल ।	
पुनर्--फिर ।	
सनुतर्--अन्तर्धान ।	
उच्चैस्--ऊँचा ।	
नीचैस्--नीचा ।	
शनैस्--धीरे ।	
ऋधक्--सचमुच ।	
ऋते--बिना ।	
युगपत्--एक दम ।	
आरात्--दूर या समीप ।	
पृथक्--भिन्न (अलहदा) !	
ह्यस्--बीता हुआ दिन (कल) ।	
श्वस्--आगामी दिन ।	
दिवा-दिन ।	
रात्रौ--रात ।	
सायम्--सायंकाल ।	
चिरम्--देर ।	
मनाक्--किञ्चित्, कुछ ।	
ईषत्-- ,, ,,	
जोषम्--चुप होना ।	
तूष्णीम्--चुप होना	

अव्ययानि,	भाषार्थः
वहिस्--बाहर ।	
अवस्-- ,,	
अधस्--नीचे ।	
समया--समीप ।	
निकषा - ,,	
स्वयम्--अपने आप ।	
वृथा--व्यर्थ ।	
नक्तम्--रात ।	
न--नहीं ।	
नञ्--नहीं ।	
हेतौ--निमित्त ।	
इद्धा--प्रकाश (जाहिर) ।	
अद्धा--स्फुट या निश्चय ।	
सामि--आधा ।	
वत्--समान ।	
ब्राह्मणवत्--ब्राह्मण के समान ।	
क्षत्रियवत्--क्षत्रिय के समान ।	
सना--नित्य (सदा रहनेवाला) ।	
सनत्-- ,, ,, ,,	
सनात्-- ,, ,, ,,	
उपधा--भेद ।	
तिरस्--टेढा या तिरस्कार ।	
अन्तरा--मध्य या बिना ।	
अन्तरेण--बिना	

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अव्ययानि	भाषार्थः
ज्योक्--शीघ्र ।	
कम्--जल सिर, सुख ।	
शम्--कल्याण ।	
सहसा-एकदम (अकस्मात्) ।	
विना-बिना ।	
नाना--अनेक ।	
स्वस्ति--कल्याण ।	
स्वधा--पितृदान ।	
अलम्--बस, समर्थ ।	
वषट्--देवदान ।	
श्रौषट्-- ,,	
वौषट्-- ,,	
अन्यत्--और ।	
अस्ति--है ।	
उपांशु--अप्रकाश ।	
क्षमा--क्षमा (माफ) ।	
विहायसा--आकाश ।	
दोषा--रात्रि ।	
मृषा--झूठ ।	
मिथ्या--झूठ ।	
मुधा--व्यर्थ ।	
पुरा--पहिले समय में ।	
मिथो--एकान्त में, आपस में ।	
मिथस् ,, ,,	
प्रायस्--प्रायः (अक्सर) ।	
मुहुस्--बार बार ।	
प्रवाहुकम्--समानकाल ।	
(प्रवाहिका)--"	
आर्य्यहलम्--बलात्कार (जबरदस्ती)	

अव्ययानि	भाषार्थः
अभीक्ष्णम्--बार बार ।	
साकम्--साथ ।	
सार्धम् --,,	
नमस्--नमस्कार ।	
हिरुक्- बिना ।	
धिक्--निन्दा, (झिड़कना) ।	
अथ--अनन्तर ।	
अम्--शीघ्र ।	
आम--स्वीकार ।	
प्रताम्--ग्लानि ।	
प्रशान्--समान ।	
मा--नहीं ।	
माङ्--,,	
च--और ।	
वा--विकल्प ।	
ह--प्रसिद्ध ।	
अह--स्पष्ट ।	
एव--निश्चय । (ही) ।	
एवम्--निश्चय ।	
शश्वत्--सदा ।	
युगपत् -सहसा, साथ साथ ।	
भूयस्--फिर और बहुत ।	
कूपत्--प्रश्न, प्रशंसा	
सूपत्--,, ,,	
कुवित्--बहुत ।	
नेत्--शङ्का ।	
चेत्--यदि ।	
चण--,,	

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अव्ययानि	भाषार्थ
यत्र	जिसमें, जहाँ ।
कच्चित्	अनुकूल प्रश्न ।
नह	प्रत्यारम्भ ।
हन्त	हर्ष, विषाद ।
माकिः	वर्जन ।
माकिम	,,
नकि	,,
नकिम्	,,
नञ्	नहीं ।
यावत्	जितना ।
तावत्	उतना ।
त्वै	वितर्क ।
(न्वै)	,,
द्वै	वितर्क ।
रै	दान ।
स्वाहा	देवहविर्दान ।
स्वधा	पितृदान ।
वषट्	देवदान ।
तुम्	तू ।
तथाहि	जैसे कि ।
खलु	निश्चय ।
किल	ऐतिह्य ।
अथो	अनन्तर ।
अथ	,, ।
सुष्ठु	शोभन ।
स्म	अतीत काल ।
आदह	निन्दा ।
अवदत्तम्	दत्त-दिया ।
अहयु	अहंकारी ।

अव्ययानि,	भाषार्थः
अस्तिक्षीरा	विद्यमानदुग्धा ।
आ	सम्बोधन ।
आ	स्मरण ।
इ	सम्बोधन ।
ई	,,
उ	सम्बोधन ।
ऊ	,,
ए	,,
ऐ	,,
ओ	,,
पशु	सम्यक् ।
शुकम्	शीघ्र ।
यथाकथाच	अनादर ।
पाट्	सम्बोधन ।
प्याट्	,,
अङ्ग	,,
हे	सम्बोधन ।
है	,,
भोः	,,
अये	,,
द्य	हिंसा ।
विषु	नाना, (अनेक) ।
एकपदे	अकस्मात् ।
अतः	इससे भी ।

सूत्राङ्काः ३६८

अतः	इस कारण ।

सू० ३६९

स्मारं स्मारम्	बार बार स्मरण करके ।
जीवसे	जीने के लिए ।
पिबध्यै	पीने के लिए ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अव्ययानि	भाषार्थः
सू० ३७०	
कृत्वा	करके ।
उदेतोः	उदय होकर ।
विसृपः	जाकर ।
सू० ३७१	
अधिहरि	हरि में ।
वाचा	वाणी ।
निशा	रात्रो ।
दिशा	दिशा ।
वगाहः	स्नान ।
[1]पत्रा नम्	ढकना ।

इति अव्ययप्रकरणम् ।

अथ धातुपाठः

भ्वादिगणस्थधातुपाठः

धातवः	भाषार्थः
सूत्राङ्काः ३७४	
भू-(सत्तायाम्)	होना ।
सू० ४४२	
अत-(सातत्यगमने)	निरन्तरगमन ।
सू० ४४७	
षिध-(गत्याम्)	जाना ।
सू० ४५३	
चिती-(संज्ञाने)	चेतना ।
शुच-(शोके)	शोक करना ।
गद-(व्यक्तायां वाचि)	स्पष्ट बोलना ।
सू० ४५७	
णद (अव्यक्ते शब्दे)	नाद करना । (अस्पष्ट बोलना)
सू० ४६१	
टुनदि (समृद्धौ)	समृद्ध होना ।
सू० ४६३	
अर्च-(पूजायाम्	पूजा करना ।
सू० ४६४	
व्रज-(गतौ)	जाना ।
सू० ४६५	
कटे-([1]वर्षावरणयोः)	बरसना और ढकना
सू० ४६६	
गुपू-(रक्षणे)	पालन करना ।
सू० ४७८	
क्षि-(क्षये)	नाश होना ।
सू० ४८४	
तप-(सन्तापे)	तपना ।
क्रमु-(पादविक्षेपे)	पाँव धरना, जाना ।
सू० ४८६	
पा- (पाने)	पीना ।
सू० ४९२	
ग्लै-(हर्षक्षये)	अप्रसन्नता ।
सू० ४९५	
ह्वृ-(कौटिल्ये)	कुटिलता !

[1]वर्ष-खण्ड (हिस्सा) जैसे-भारतवर्ष ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः	भाषार्थः

सू० ४९८

श्रु–(श्रवणे)–सुनना।

सू० ५०३

गम्लृ–(गतौ)—(गमन)।

इति परस्मैपदिनः।

सू० ५०७

ऋध-(वृद्धौ)–वृद्धि-बढ़ना।

सू० ५२४

कमु-कान्तौ–इच्छा करना (चाहना)

सू० ५३४

अय-(गतौ) चलना।

सू० ५३६

द्युत–(दीप्तौ)–प्रकाश होना चमकना।

सू० ५३८

श्विता-(वर्णे)-(श्वेत) रंग देना।
ञिमिदा–(स्नेहने)-चिकना होना।
ञिष्विदा-(स्नेहनमोचनयोः)–पसीना।
आना और छोड़ना।
ञिक्ष्विदा—(स्नेहनमोचनयोः)—पसीना
आना और छोड़ना।

रुच–(दीप्तौ अभिप्रीतौ च)–चमकना,
अच्छा लगना (रुचना)।

घुट– परिवर्तने) घोटना।

शुभ–(दीप्तौ)–शोभित होना।

धातवः	भाषार्थः

क्षुभ–(सञ्चलने)–विचलित होना।

णभ–तुभ–(हिंसायाम्)–हिंसा।

स्रंसु-भ्रंसु-ध्वंसु-(अवस्रंसने)–गिर जाना।

ध्वंसु–(गतौ) च–चलना।

स्रम्भु–(विश्वासे)–विश्वास करना।

वृतु–(वर्तने)–वर्तन (होना)।

सू० ५४०

दद–दाने–देना (दान करना)।

सू० ५४१

त्रपूष-(लज्जायाम्)–लजाना (शरमाना)
इत्यात्मनेपदिनः।

सू० ५४२

श्रिञ्–(सेवायाम्)–सेवा करना।

भृञ्–(भरणे पालन करना।

सू० ५४५

हृञ्–(हरणे)–हरना।

धृञ–(धारणे)–धारण करना।

णीञ्–(प्रापणे)–ले जाना।

डुपचष्–(पाके)–पकाना।

भज–(सेवायाम्)–भजना-(सेवाकरना)

यज-(देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु)–पूजा
करना, संग करना, दान करना।

सू० ५४८

वह–(प्रापणे)–ले जाना (उठाकर)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति भ्वादयः ॥१॥

अदादिगणस्थ धातुपाठः

धातवः	भाषार्थः
सूत्राङ्काः ५५२	
अद (भक्षणे)	खाना ।
सूत्राङ्काः ५५८	
हन (हिंसागत्योः)	मारना, चलना ।
सू० ५६५	
यु (मिश्रणामिश्रणयोः)	मिलना अलग होना ।
सू० ५६६	
या (प्रापणे)	पहुँचना, जाना ।
सू० ५६७	
वा (गतिगन्धनयोः)	ज़ाना, हिंसा करना
भा (दीप्तौ)	चमकना ।
ष्णा (शौचे)	स्नान करना, पवित्र होना
श्रा (पाके)	पकाना ।
द्रा (कुत्सायां गतौ)	निन्दित गमन ।
प्सा (भक्षणे)	खाना ।
रा (दाने)	देना ।
ला (आदाने)	लेना ।
दाप् (लवने)	काटना ।
पा (रक्षणे)	रक्षा करना ।
ख्या (प्रकथने)	कहना ।
विद (ज्ञाने)	जानना ।
सू० ५७३	
अस (भुवि)	होना (सत्ता) ।
सू० ५७७	
इण् (गतौ)	जाना ।
सू० ५८२	
शीङ् (स्वप्ने)	सोना ।
सू० ५८४	
इङ् (अध्ययने)	पढ़ना ।
सू० ५८८	
दुह (प्रपूरणे)	दोहना ।
सू० ५९०	
दिह (उपचये)	बढ़ना--लीपना ।
सू० ५९२	
लिह (आस्वादने)	चाटना ।
ब्रूञ् (व्यक्तायां वाचि)	स्फुट बोलना ।
सू० ५९८	
ऊर्णुञ् (आच्छादने)	ढकना ।

इत्यदादयः ॥ २ ॥

जुहोत्यादिगणस्थ-धातुपाठः

धातवः	भाषार्थः
सू० ६०४	
हु (दानाऽदनयोः)	होम करना, खाना ।
सू० ६०८	
ञिभी (भये)	डरना ।
सू० ६०९	
ह्री (लज्जायाम्)	लज्जित होना (शरमाना)
पॄ (पालनपूरणयोः)	पालन, पूरा करना ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः भाषार्थः

सू० ६१६

ओहाक् (त्यागे)—छोड़ना।

सू० ६२१

माङ् (माने शब्दे च)—नापना, मिमयाना।

सू० ६२२

ओहाङ्—(गतौ) जाना।

डुभृञ्—(धारणपोषणयोः)—धारण करना, पालना।

डुदाञ् (दाने)—देना।

सू० ६२४

डुधाञ् (धारणपोषणयोः)—धारण करना, पोषण करना।

सू० ६२५

णिजिर् (शौचपोषणयोः)—शुद्ध करना पोषण करना।

इति जुहोत्यादयः ॥ ३।

—०—

दिवादिगणस्थ-धातुपाठः

धातवः भाषार्थः

सू० ६२६

दिवु (क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु)—खेलना, जय की इच्छा, व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द उन्मत्त होना, सोना इच्छा करना, जाना।

षिवु (तन्तुसन्ताने)—सोना।

नृती (गात्रविक्षेपे)—नाचना।

सू० ६३०

त्रसी (उद्वेगे)—घबराना।

सू० ६३१

शो (तनूकरणे) पतला करना (शस्त्र का तीक्ष्ण करना।

सू० ३३

छो (छेदने)—काटना।

षो (अन्तकर्मणि)—नाश करना। (समाप्त करना)।

दो (अवखण्डने)-काटना।

व्यध्-(ताड़ने) मारना, (बींधना)।

सू० ६३४

पुष (पुष्टौ)—पुष्ट करना।

शुष-(शोषणे)-सूखना।

णश—(अदर्शने)—नष्ट होना।

सू० ६३६

षूङ् (प्राणिप्रसवने)—उत्पन्न करना।

दूङ्-(परितापे)—दुःखी होना।

दीङ्—(क्षये)—क्षीण होना।

सू० ६३८

डीङ्—(विहायसा गतौ) उड़ना।

पीङ्—(पाने) पीना।

माङ्—(माने) मापना।

जनी (प्रदुर्भावे) पैदा होना।

सू० ६४२

दीपी—(दीप्तौ)-चमकना।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः	भाषार्थः
पद (गतौ)	चलना ।
विद- (सत्तायाम्)	होना ।
बुध- (अवगमने)	जानना ।
युध- (सम्प्रहारे)	लड़ना ।
सृज- (विसर्गे)	त्यागना (पैदा करना)
सू० ६४४	
मृष (तितिक्षायाम्)	सहन करना ।
णह (बन्धने)	बाँधना ।

इति दिवादयः ॥ ४ ॥

स्वादिगणस्थधातुपाठः

धातवः	भाषार्थः
सू० ६४५	
षुञ् (अभिषवे)	स्नान करना, सोम कूटना, मद्य बनाना ।
सू० ६४६	
चिञ् (चयने)	संग्रह करना (चुनना) ।
सू० ६४७	
स्तृञ् (आच्छादने)	ढकना ।
सू० ६४६	
धूञ् (कँम्पने)	कंपाना ।

इति स्वादयः ॥ ५ ॥

तुदादिगणस्थधातुपाठः

धातवः	भाषार्थः
सू० ६५१	
तुद (व्यथने)	कष्ट देना ।
णुद (प्रेरणे)	प्रेरणा करना ।
भ्रस्ज (पाके)	भूनना ।
सू० ६५२	
कृष (विलेखने)	(हल) जोतना ।
सू० ६५३	
मिल (सङ्गमे)	मिलना ।
मुच्लृ (मोचने)	छोड़ना ।
सू० ६५४	
लुप्लृ (छेदने)	काटना—लोप करना ।
विद्लृ (लाभे)	प्राप्त करना ।
षिच (क्षरणे)	सींचना ।
सू० ६५६	
लिप (उपदेहे)	लीपना ।
कृती (छेदने)	काटना ।
खिद (परिघाते)	खिन्न करना ।
पिश (अवयवे)	पीसना ।
ओव्रश्चू (छेदने)	काटना ।
व्यच (व्याजीकरणे)	ठगना ।
उछि (उञ्छे)	बीनना । (दाना २ इकट्ठा करना)
ऋच्छ (गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु)	जाना, इन्द्रियों से शिथिल होना, कठिन होना ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः	भाषार्थः

उज्झ (उत्सर्गे)--त्यागना ।
लुभ (विमोहने)--लुभाना ।

सू० ६५७

तृप तृम्फ (तृप्तौ)--तृप्त होना ।
मृड पृड (सुखने)--सुखी करना ।
शुन (गतौ) —जाना ।
इषु (इच्छायाम् --चाहना ।
कुट (कौटिल्ये)--कुटिलता करना ।
पुट (संश्लेषणे)--जोड़ना ।
स्फुट (विकसने)-खिलना ।
स्फुर स्फुल (सञ्चलने)—फरकना (नेत्र आदि का) ।

सू० ६५८

णू (स्तवने)--स्तुति करना ।
टुमस्जो (शुद्धौ)--शुद्ध होना, डूबना ।
रुजो (भङ्गे)--तोड़ना ।
भुजो (कौटिल्ये)--टेढ़ा होना ।

धातवः	भाषार्थः

विश (प्रवेशने)--प्रवेश होना ।
मृश (आमर्शने)—स्पर्श करना ।
षद्लृ (विशरणगत्यवसादनेषु)–पृथक् होना, जाना, दुःखी होना ।
शद्लृ (शातने)–छीलना ।

सू० ६५६

कॄ (विक्षेपे)–फेंकना ।

सू० ६६२

गॄ (निगरणे)–निगलना ।

सू० ६६३

प्रच्छ (ज्ञीप्सायाम्)–पूछना ।
मृङ् (प्राणत्यागे)–मरना ।

सू० ६६४

पृङ् (व्यायामे)--उद्योग करना ।
जुषी (प्रीतिसेवनयोः)–प्रीति तथा सेवा करना ।
ओविजी (भयचलनयोः)–डरना, कांपना ।

इति तुदादयः ॥ ६ ॥

रुधादिगणस्थधातुपाठः

सू० ६६६

रुधिर् (आवरणे)--रोकना ।
भिदिर् (विदारणे)--फाड़ना ।
छिदिर् (द्वैधीकरणे)--तोड़ना ।
युजिर् (योगे)--जोड़ना ।
रिचिर् (विरेचने)--रिक्त (दस्त) होना ।
विचिर् (पृथग्भावे)--पृथक होना ।
क्षुदिर् (सम्पेषणे)--पीसना ।
उच्छृदिर् (दीप्तिदेवनयोः)–चमकना, खेलना ।
उत्तृदिर् (हिंसाऽनादरयोः)–हिंसा तथा अनादर करना ।
कृती (वेष्टने)--कातना ।
हिसि (हिंसायाम्)–हिंसा करना ।
उन्दी (क्लेदने)–भिगोना ।

सू० ६७६

अञ्जू (व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु)–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः भाषार्थः

प्रकाश करना, मलना, सुन्दर होना, जाना ।

तञ्चू (संकोचने)--संकुचित होना ।

सू० ६७१

ओविजी (भयचलनयोः)--भय करना, काँपना ।

शिष्लृ (विशेषणे)--विशेषित करना ।

पिष्लृ (संचूर्णने)--पीसना ।

भञ्जो (आमर्दने)--तोड़ना ।

भुज (पालनाभ्यवहारयोः) --पालना ।

ञिइन्धी (दीप्तौ)--चमकना ।

विद (विचारणे) विचार करना ।

इति रुधादिगणः ॥ ७ ॥

तनादिगणस्थधातुपाठः

सू० ६७३

तनु (विस्तारे)--विस्तार करना ।

सू० ६७४

षणु (दाने)--दान देना ।

सू० ६७६

क्षणु क्षिणु (हिंसायाम्)--मारना ।

तृणु (अदने)--खाना ।

डुकृञ् (करणे)--करना ।

सू० ६८६

वनु (याचने)--माँगना ।

मनु (अवबोधने)--जानना, मानना ।

इति तनादिगणः । ८ ।

क्र्यादिगणस्थधातुपाठः

सू० ६७८

डुक्रीञ् (द्रव्यविनिमये)--खरीदना, बेचना ।

प्रीञ् (तर्पणे कान्तौ च)--तृप्त करना, शोभा पाना ।

श्रीञ् (पाके)--पकाना ।

मीञ् (हिंसायाम्)--मारना ।

षिञ् (बन्धने)--बाँधना ।

सू० ६८५

स्कुञ् (आप्लवने)--उछलना, उद्धारकरना

सू० ६८७

स्तन्भु (सौत्राश्चत्वारः)--रोकना ।

सू० ६८९

युञ् (बन्धने)--बाँधना ।

क्नुञ् (शब्दे) शब्द करना ।

द्रूञ् (हिंसायाम्)--मारना ।

द्रूञ् (हिंसायाम्)-- ,,

पूञ् (पावने)--पवित्र करना ।

सू० ६९०

लूञ् (छेदने)—काटना ।

स्तॄञ् (आच्छादने) ढकना ।

सू० ६९२

कॄञ् (हिंसायाम्)--मारना ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धातवः भाषार्थः
वृञ् (वरणे)–स्वीकार करना ।
धूञ् (कम्पने)–कँपाना ।
ग्रह (उपादाने)–लेना ।

सू० ६९३

कुष (निष्कर्षे)–निकालना ।

धातवः भाषार्थः
अश (भोजने)–खाना ।
मुष (स्तेये)–चुराना ।
ज्ञा (अवबोधने) जानना ।
वृङ् (सम्भक्तौ)–सेवा करना ।

इति क्र्यादयः ॥ ९ ॥

चुरादिगणस्थधातुपाठः

सू० ६९४

चुर (स्तेये)–चुराना ।

सू० ६९५

कथ (वाक्यप्रबन्धे)–कहना ।

सू० ६९७

गण (सङ्ख्याने)–गिनना ।

इति चुरादयः ॥ १० ॥

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

सू० ७००

भावयति–होने के लिये प्रेरणा करता है ।

सू० ७०२

स्थापयति–ठहराता है, रखता है ।

सू० ७०३

घटयति–चेष्टा करवाता है ।
ज्ञपयति–जताता है ।

इति ण्यन्तप्रक्रिया ।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

सू० ७०६

पिपठिषति–पढ़ना चाहता है ।

सू० ७०७

जिघत्सति–खाना चाहता है ।

सू० ७०९

चिकीर्षति–करना चाहता है ।

सू० ७१०

बुभूषति–होना चाहता है ।

अथ यङन्तप्रक्रिया

सू० ७१२

बोभूयते–बार बार या अधिक होता है ।

सू० ७१४

वाव्रज्यते–टेढ़ा चलता है ।

सू० ७१६

वरीवृत्यते–बार बार वा अधिक विद्यमान होता है ।

सू० ७१७

नरीनृत्यते–बार बार वा अधिक नाचता है ।
जरीगृह्यते–बार बार व अधिक ग्रहण करता है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया

धातवः — भाषार्थः

सू० ७१६

बोभवीति–बार बार व अधिक होता है।

अथ नामधातुप्रकरणम्

सू० ७२२

पुत्रीयति–अपना पुत्र चाहता है।

सू० ७२३

राजीयति–अपना राजा चाहता है।

वाच्यति–अपनी वाणी चाहता है।

गीर्यति–अपनी वाणी चाहता है।

पूर्यति–अपनी नगरी चाहता है।

दिव्यति–अपने लिये स्वर्ग चाहता है।

सू० ७२४

समिध्यति–अपने लिये समिधायें चाहता है।

सू० ७२५

पुत्रकाम्यति–अपने लिये पुत्र चाहता है।

सू० ७२६

विष्णूयति–(ब्राह्मण को) विष्णु के समान मानता है।

स्वति–अपने समान मानता है।

सू० ७२७

राजानति–राजा के समान मानता है।

पथीनति–मार्ग के समान मानता है।

सू० ७२८

कष्टायते–पाप पर उतारू होता है।

सू० ७२९

शब्दायते–शब्द करता है।

घटयति–घड़ा बनाता है या घट को कहता है।

इति नामधावतवः।

अथ कण्ड्वादयः

सू० ७३०

कण्डूयति–खुजलाता है।

अथाऽऽत्मनेपदप्रक्रिया

सू० ७३१

व्यतिलुनीते–अन्य के योग्य काटता है।

सू० ७३२

व्यतिगच्छन्ति–अन्य के योग्य गमन करते हैं।

व्यतिघ्नन्ति–अन्य के योग्य हनन करते हैं।

सू० ७३३

निविशते–प्रवश होता है।

सू० ७३४

परिक्रीणीते–खरीदता है।

विक्रीणीते–बेचता है।

अवक्रीणीते–खरादता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सू० ७३५

विजयते–विजय पाता है !

पराजयते–हारता है ।

सू० ७३२

सन्तिष्ठते–रहता है (सम्यक् स्थिति) ।

अवतिष्ठते–ठहरता है ।

प्रतिष्ठते–जाता है ।

वितिष्ठते–ठहरता है ।

सू० ७३७

शतमपजानीते–सौ रुपया छिपाता है ।

सू० ७३८

सर्पिषो जानीते-घीके बहाने प्रवृत्त होता है

सू० ७३९

धर्ममुच्चरते–धर्मका उल्लंघन करता है ।

सू० ७४०

रथेन सञ्चरते–रथ से भ्रमण करता है ।

सू० ७४१

दास्या संयच्छते–नीच अभिप्राय से दासी को देता है ।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सू० ७४२

एदिधिषते–बढ़ाना चाहता है ।

सू० ७४३

निविविक्षते–प्रवेश होना चाहता है ।

सू० ७४४

श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते–बाज बत्तख को तिरस्कार करता है ।

उत्कुरुते–चुगली करता है ।

हरिमुपकुरुते–भगवान् की सेवा करता है ।

परदारान् प्रकुरुते–परस्त्री में सहसा प्रवृत्त होता है ।

एधो दकस्योपस्कुरुते–काष्ठ जल का गुण ग्रहण करता है ।

कथाः प्रकुरुते–कथाएँ कहता है ।

शतं प्रकुरुते–सौ रुपया धर्मार्थ लगाता है ।

कटं करोति–चटाई बनाता है ।

ओदनं भुङ्क्ते–भात खाता है ।

महीं भुनक्ति–पृथ्वी की रक्षा करता है ।

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

सू० ७४५

अनुकरोति–नकल करता है ।

पराकरोति–दूर करता है ।

सू० ७४६

अभिक्षिपति–फेंकता है ।

सू० ७४७

प्रवहति–बहता है ।

सू० ७४८

परिमृष्यति–सहन करता है ।

सू० ७४९

विरमति–हटता है ।

सू० ७५०

यज्ञदत्तमुपरमति–यज्ञदत्त को हटाता है ।

0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ भावकर्मप्रक्रिया

धातवः — भावार्थः

सू० ७५२

भूयते—होना (उससे हुआ जाता है) ।

सू० ७५४

अनुभूयते—अनुभव किया जाता है ।

भाव्यते—भावित किया जाता है ।

बुभूष्यते—होने के लिये इच्छा की जाती है ।

बोभूय्यते—बार २ हुआ जाता है ।

बोभूयते-बार २ हुआ जाता है ।

स्तूयते—स्तुति किया जाता है ।

अर्यते—प्राप्त किया जाता है ।

स्मर्यते-स्मरण किया जाता है ।

स्रस्यते—गिरा जाता है ।

धातवः — भावार्थः

नन्द्यते—प्रसन्न हुआ जाता है ।

इज्यते—यज्ञ किया जाता है ।

सू० ७५५

तायते—विस्तार किया जाता है ।

सू० ७५६

अनुतप्यते—पश्चात्ताप किया जाता है ।

दीयते—दिया जाता है ।

धीयते—धारण किया जाता है ।

सू० ७५७

भज्यते—सेवा किया जाता है ।

सू० ७५८

लभ्यते—प्राप्त किया जाता है ।

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

सू० ७६०

पच्यते—पकता है ।

भिद्यते—फटता है ।

अथ लकारार्थप्रक्रिया

सू० ७६१

स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः—हे कृष्ण ! स्मरण है ? कि (हम) गोकुल में रहा करते थे ।

सू० ७६२

अभिजानासि—कृष्ण ! यद्वनेऽभुञ्ज्महि—हे कृष्ण ! याद है ? कि (हम) वन में खाया करते थे ।

सू० ७६३

यजति स्म युधिष्ठिरः—युधिष्ठिर ने यज्ञ किया ।

सू० ७६४

कदाऽऽगतोऽसि ?—कब आये हो ?

अयमागच्छामि-अयमागमं वा—अभी आया था ।

कदा गमिष्यसि ?—कब जाओगे ?

एष गच्छामि गमिष्यामि वा—अभी जाऊँगा ।

सू० ७६५

कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायाद्—यदि श्रीकृष्ण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

को नमस्कार करेगा तो सुखको प्राप्त होगा।

कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति–यदि श्रीकृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख को प्राप्त होगा।

हन्तीति पलायते–(वह) मारता है इसलिये भागता है।

यजेत–(देवदत्त) यज्ञ करे।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

इह भुञ्जीत—यहाँ खावे।

इहाऽऽसीत-(इच्छा हो तो) वहाँ बैठिये।

पुत्रमध्यापयेद्भवान्–आप मेरे पुत्र को पढ़ाइये।

किं भो! वेदमधीयीय, उत तर्कम्–क्यों जी मैं वेद पढ़ूँ या तर्क?

भो! भोजनं लभेय–अजी! (क्या) भोजन मिलेगा?

इति।

अथ कृत्यप्रक्रियाप्रयोगसंग्रहः

सू० ७७१

एधितव्यम्--बढ़ने योग्य है।

एधनीयम्--बढ़ना चाहिए।

चेतव्यः--सञ्चय करना चाहिए।

चयनीयः-- ,,

पचेलिमाः-- पकाने योग्य।

भिदेलिमाः-- भेदन करने योग्य।

सू० ७७२

स्नानीयम्--उबटन।

दानीयः-- दान देने योग्य ब्राह्मण।

सू० ७७३

चेयम्--चुनने योग्य।

सू० ७७४

देयम्--दान देने योग्य।

ग्लेयम्--ग्लानि होनी चाहिए।

सू० ७७५

शप्यम्--शाप देने योग्य।

लभ्यम्--लाभ करने योग्य।

सू० ७७७

इत्यः--प्राप्त करने योग्य।

स्तुत्यः--स्तुति करने योग्य।

सू० ७७८

शिष्यः--शिक्षा देने योग्य।

वृत्यः--वर्तने योग्य।

आदृत्यः--आदरणीय।

जुष्यः--सेवनीय।

सू० ७७९

मृज्यः--शोधनीय।

सू० ७८०

कार्यम्--कर्त्तव्य।

हार्यम्--हरणीय।

धार्यम्--धारणीय।

सू० ७८२

मार्ग्यः--शोधनीय।

सू० ७८३

भोज्यम्--भक्षणीय पदार्थ।

भोग्यम्--भोगने योग्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ पूर्वकृदन्तप्रयोगसंग्रहः

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ७८५

कारकः–करनेवाला ।

कर्त्ता– ,,

सू० ७८६

नन्दनः–आनन्द करनेवाला ।

ग्राही–ग्रहण करनेवाला ।

स्थायी–स्थायी ।

मन्त्री–मन्त्री ।

सू० ७८७

बुधः–पण्डित ।

कृशः–कृश ।

ज्ञः–प्राज्ञ ।

प्रियः–प्रिय ।

किरः–फेंकनेवाला ।

सू० ७८८

प्राज्ञः–पण्डित ।

सुग्लः–घृणी ।

सू० ७८९

गृहम्–घर ।

सू० ७९०

कुम्भकारः–कुम्हार ।

सू० ७९१

गोदः–गोदानी ।

धनदः–धनदानी ।

कम्बलदः–कम्बलदानी ।

गोसन्दायः–गोदानी ।

मूलविभुजः–रथ ।

प्रयोगाः भाषार्थः

महीध्रः–पर्वत ।

कुध्रः– ,,

सू० ७९२

कुरुचरः–कुरुचर ।

सू० ७९३

भिक्षाचरः–भिक्षु ।

सेनाचरः–सैनिक ।

आदायचरः–लेकर घूमनेवाला ।

सू० ७९५

यशस्करी–(यश को सम्पन्न करनेवाली) विद्या ।

श्राद्धकरः–श्राद्ध करनेवाला ।

वचनकरः–आज्ञापालक ।

सू० ७९७

जनमेजयः–राजा जनमेजय ।

सू० ७९८

प्रियंवदः–मीठा बोलनेवाला ।

वशंवदः–अधीनभाषी ।

सू० ८००

सुशर्मा–सुन्दर काटनेवाला ।

प्रातरित्वा–प्रातर्यायी ।

सू० ८०१

विजावा–अनेक रूप में होनेवाली ।

अवावा–पाप से हटने वाली (ब्राह्मणी)

रीट्–हिंसक ।

रेट्–हिंसक ।

सुगण्–गणितज्ञ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ८०२

उखास्रत्–हाण्डी से गिरा हुआ।
पर्णध्वत्–पत्ते से गिरा हुआ।
वाहभ्रट्–घोड़े पर से गिरनेवाला।

सू० ८०३

उष्णभोजी–गर्म खानेवाला।

सू० ८०४

दर्शनीयमानी–अपने को दर्शनीय माननेवाला।

सू० ८०५

पण्डितम्मन्यः–अपने को पण्डित माननेवाला।
पण्डितमानी– ,,

सू० ८०६

कालिम्मन्या–अपने को काली माननेवाली।

सू० ८०७

सोमयाजी–सोमयज्ञ करनेवाला।
अग्निष्टोमयाजी–अग्निष्टोमयज्ञ करनेवाला।

सू० ८०८

पारदृश्वा–मर्मज्ञ।

सू० ८०९

राजयुध्वा–राजा को युद्ध करानेवाला।
राजकृत्वा–राजा बनानेवाला।

सू० ८११

सहयुध्वा–साथ युद्ध करनेवाला।
सहकृत्वा–साथ करनेवाला।

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ८१२

सरसिजम्–कमल।
सरोजम्– ,,

सू० ८१३

प्रजा–सन्तान या प्रजा।

सू० ८१५

स्नातम्–स्नान किया।
स्तुतः–स्तुति किया।
कृतवान्–किया।

सू० ८१६

शीर्णः–हिंसित।
भिन्नः–भिन्न।
छिन्नः–कटा हुआ।

सू० ८१७

द्राणः–बुरी तरह से भाग गया।
ग्लानः–ग्लानि को प्राप्त।

सू० ८१८

लूनः–कटा हुआ।

सू० ८१९

जीनः–वृद्ध।

सू० ८२०

भुग्नः–टेढ़ा।
उच्छूनः–फूला हुआ।

सू० ८२१

शुष्कः–सूखा हुआ।

सू० ८२२

पक्वः–पका हुआ।

सू० ८२३

क्षामः–कृश।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगः	भाषार्थः

सू० ८२४

भावितः—भावित ।

भावितवान्—भावना किया ।

सू० ८२५

दृढः—दृढ़ ।

सू० ८२६

हितम्—हित ।

सू० ८२७

दत्तः—दिया ।

सू० ८२९

चक्राणः—करनेवाला ।

सू० ८३०

जगन्वान्—जानेवाला ।

सू० ८३१

पचन्तं (चैत्रं पश्य)—पकाते हुये चैत्र को देख ।

सू० ८३२

पचमानम्—पकाते हुये चैत्र को देख ।

सन् द्विजः—श्रेष्ठ ब्राह्मण ।

सू० ८३३

विदन्— } विद्वान्
विद्वान्— }

सू० ८३५

करिष्यन्तम् } भविष्य में करनेवाले
करिष्यमाणम् } को (देख) ।

सू० ८३७

कर्त्ता—करनेवाला ।

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ८३९

जल्पाकः—अधिक भाषी ।

भिक्षाकः—भिक्षु ।

कुट्टाकः—कूटने वाला ।

लुण्टाकः—लुटेरा ।

वराकः—दीन ।

वराकी—दीन (स्त्री)

सू० ८४०

चिकीर्षुः—करने की इच्छावाला ।

आशंसुः—आशा रखनेवाला ।

भिक्षुः—याचक ।

सू० ८४१

विभ्राट्—अधिक शोभावान् ।

भाः—कान्ति ?

सू० ८४२

धूः—भार (धुरा) ।

विद्युत्—बिजली ।

ऊर्क्—बल वा तेज ।

पूः—पुरी नगरी ।

जूः—रोगी ।

ग्रावस्तुत्—पत्थर के गुण वर्णन करनेवाला ।

वाक्—वाणी ।

सू० ८४३

प्राट्—प्रश्नकारी ।

आयतस्तूः—आयत की स्तुति करनेवाला

कटप्रूः—लक्ष्मी ।

सू० ८४४

दात्रम्—दात्री ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

नत्रम्—नेती ।

सू० ८४५

शस्त्रम्—शस्त्र ।

योत्रम्— } बन्धनरज्जु ।
योक्त्रम्— } (जोत)

स्तोत्रम्—स्तुति ।

तोत्त्रम्—चाबुक ।

सेत्रम्—बन्धन ।

सेक्त्रम्—सेचनार्थ पात्र ।

मेढ्रम्—लिङ्ग ।

पत्त्रम्—वाहन, पत्ता, पक्ष और बाण ।

दंष्ट्रा—दाड़ ।

नद्ध्री—चर्मरज्जु ।

सू० ८४६

अरित्रम्—नौका चालन दण्ड ।

लवित्रम्—चाकू ।

धवित्रम्—मृगचर्मनिर्मित पंखा ।

सवित्रम्—प्रसवसाधन यन्त्रविशेष ।

खनित्रम्—खननसाधन (कुद्दाल) ।

सहित्रम्—सहन करने का साधन छाता आदि ।

चरित्रम्—चरित्र (वृत्तान्त) ।

सू० ८४७

पवित्रम्—पवित्र (कुशनिर्मित) ।

इति पूर्वकृदन्तम् ।

अथोणादयः

कारुः—कारीगर ।

वायुः—वायु ।

पायुः—गुदा ।

जायुः—औषध ।

मायुः—पित्त ।

स्वादुः—स्वाद ।

आशु—शीघ्र ।

अथोत्तरकृदन्तप्रकरणम्

सू० ८४९

द्रष्टुम्—देखने के लिए ।

दर्शकः—देखनेवाला ।

सू० ८५०

भोक्तुम्—खाने के लिए ।

सू० ८५१

पाकः—पकाना ।

सू० ८५३

रागः—रङ्ग या आसक्ति ।

(रङ्गः)—रङ्गभूमि—नाट्यशाला ।

सू० ८५४

निकायः—निवास ।

कायः—शरीर ।

गोमयनिकायः—गोमयसंघात ।

सू० ८५५

जयः—विजय ।

चयः—समूह या चुनना ।

सू० ८५६

करः—करना, हाथ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

गरः—निगलना ।

यवः—मिश्रण या यवधान्य ।

लवः—काटना ।

स्तवः—स्तुति ।

पवः—पवित्रता ।

प्रस्थः—सेर भर ।

विघ्नः—विघ्न ।

सूत्राङ्काः ८५८

पक्त्रिमम्—पका हुआ ।

उप्त्रिमम्—बोया हुआ ।

सू० ८५९

वेपथुः—कम्प ।

सू० ८६०

यज्ञः—यज्ञ ।

याच्ञा—माँगना ।

यत्नः—प्रयत्न ।

विश्नः—गति या बोलना ।

प्रश्नः—प्रश्न-पूछना ।

रक्ष्णः—रक्षा ।

सू० ८६१

स्वप्नः—स्वप्न ।

सू० ८६२

प्रधिः—नेमि ।

उपधिः—दम्भ ।

सू० ८६३

कृतिः—क्रिया ।

स्तुतिः—स्तुति ।

कीर्णिः—विक्षेप-फेंकना ।

लूनिः—काटना ।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

धूनिः—काँपना ।

पूनिः—विनाश ।

सम्पत्—सम्पत्ति ।

विपत्—विपत्ति ।

आपत्—आपत्ति ।

सम्पत्तिः—सम्पत्ति ।

विपत्तिः—विपत्ति ।

सूत्राङ्काः ८६५

जूः—रोगी ।

तूः—शीघ्रकारी ।

सूः—चलनेवाला ।

ऊः—रक्षक ।

मूः—बाँधनेवाला ।

सू० ८६६

इच्छा—इच्छा ।

सू० ८६७

चिकीर्षा—करने की इच्छा ।

पुत्रकाम्या—अपने लिये पुत्र चाहना ।

सू० ८६८

ईहा—चेष्टा ।

सू० ८६९

कारणा—यातना ।

हारणा—हारना ।

सू० ८७१

हसितम्—हँसना ।

हसनम्—हँसना ।

सू० ८७३

दन्तच्छदः—ओठ ।

आकरः—खानि (खान) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ८७४

अवतारः–उतरना।

अवस्तारः–जवनिका (पर्दा)।

सू० ८७५

रामः–श्रीराम।

अपामार्गः–पुठकण्डा (ऊँगा)।

सू० ८७६

दुष्करः–कठिन।

ईषत्करः–सुखाला, आसान।

सुकरः–सुखाला।

सू० ८७६

ईषत्पानः–सुपान।

दुष्पानः–दुष्पान।

सुपानः–सुपान।

सू० ८७८

अलं दत्त्वा–मत दो।

पीत्वा खलु–मत पीओ।

मा कार्षीत्–नहीं किया (मत करो)।

अलङ्कारः–भूषण।

मुक्त्वा–छोड़कर।

सू० ८७९

भुक्त्वा–खाकर।

पीत्वा–पीकर।

सू० ८८०

शयित्वा–सोकर।

कृत्वा–करके।

सू० ८८१

द्युतित्वा–प्रकाशित होकर।

द्योतित्वा–

लिखित्वा–लिखकर।

वर्तित्वा–होकर।

सेवित्वा–सेवा करके।

एषित्वा–इच्छा करके।

भुक्त्वा–खाकर।

सू० ८८२

शमित्वा–शान्त होकर।

शान्त्वा– ,,

देवित्वा–खेलकर।

द्यूत्वा– ,,

हित्वा–धारण करके।

सू० ८८३

हित्वा–छोड़कर!

हात्वा–जाकर।

सू० ८८४

प्रकृत्य–आरम्भ करके।

अकृत्वा–न करके।

सूत्राङ्काः ८८६

स्मारं स्मारन्–याद कर कर के।

स्मृत्वा स्मृत्वा– ,,

पायम्पायम्–पी पी कर।

भोजम्भोजम्–खा खा कर।

श्रावं श्रावम्–सुन सुन कर।

सू० ८८७

अन्यथाकारम्–अन्यथा।

एवङ्कारम्–इस प्रकार।

कथङ्कारम्–किस प्रकार।

इत्थङ्कारम्–इस प्रकार।

शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते–शिर को टेढ़ा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

मेढ़ा करके भोजन करता है।

अथ विभक्त्यर्थाः

सू० ८८८

उच्चैः–ऊँचा।

नीचैः–नीचा।

कृष्णः–भगवान् श्री कृष्ण।

श्रीः–लक्ष्मी।

ज्ञानम्–ज्ञान।

तटः–तट।

तटी–तट।

तटम्–,,

द्रोणो व्रीहिः–द्रोण भर धान।

एकः–एक।

द्वौ–दो।

बहवः–बहुत से।

सू० ८८९

राम !–हे राम।

सू० ८९१

हरिं भजति–श्रीहरि को भजता है।

हरिः सेव्यते– ,,

लक्ष्म्या सेवितः–लक्ष्मी से सेवित।

सूत्राङ्काः ८९२

गां दोग्धि पयः–गौ से दूध दुहता है।

बलिं याचते वसुधाम्–बलि से पृथ्वी मांगता है।

तण्डुलानोदनं पचति–चावलों से भात बनता है।

गर्गान् शतं दण्डयति–गर्गों से सौ रुपया दण्ड लेता है।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

व्रजमवरुणद्धि गाम्–व्रज में गौ को रोकता है।

माणवकं पन्थानं पृच्छति–बालक से रास्ता पूछता है।

वृक्षमवचिनोति फलानि–वृक्ष पर से फल चुनता है।

माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा–बालक को धर्मोपदेश देता है।

शतं जयति देवदत्तम्–देवदत्त से सौ रुपया जीतता है।

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति–अमृत के लिये समुद्र को मथता है।

देवदत्तं शतं मुष्णाति–देवदत्त के यहाँ से सौ रुपया चुराता है।

ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा–बकरी को ग्राम में ले जाता है।

बलिं भिक्षते वसुधाम्–बलि से पृथ्वी (भिक्षा) माँगता है।

माणवकं धर्मं भाषते–बालक को धर्मोपदेश करता है।

सू० ८९५

रामेण बाणेन हतो वाली–राम ने बाण से बाली को मारा।

सू० ८९७

विप्राय गां ददाति–ब्राह्मण को गौ देता है।

सूत्राङ्काः ८९८

हरये नमः–श्री हरि के प्रति नमस्कार।

प्रजाभ्यः स्वस्ति–प्रजाओं के प्रति स्वस्ति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रयोगाः **भाषार्थः**

अग्नये स्वाहा–अग्नि के प्रति यह हवि (दिया जाता है) ।

पितृभ्यः स्वधा–पितरों के प्रति यह कव्य (दिया जाता है)

दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थो वा–दैत्यों के लिये श्रीहरि प्रर्याप्त हैं (समर्थ हैं)

सू० ९००

ग्रामादायति–ग्राम से आता है ।

धावतोऽश्वात्पतति–दौड़ते हुए घोड़े पर से गिरता है ।

सू० ६०१

राज्ञः पुरुषः–राजा का पुरुष (सिपाही आदि ।)

सतां गतम्–सत्पुरुषों की गति ।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सर्पिषो जानीते–घी के उपाय से प्रवृत्त होता है ।

मातुःस्मरति–माता को स्मरण करता है ।

एधो दकस्योपस्कुरुते–लकड़ी जल के गुणों को धारण करती है ।

भजे शम्भोश्चरणयोः—शम्भु के चरणों को भजता हूँ ।

सू० ६१३

कटे आस्ते–चटाई पर बैठा है ।

स्थाल्यां पचति–हांडी में पकाता है ।

मोक्षे इच्छास्ति–मोक्षके विषय में इच्छा है ।

सर्वस्मिन्नात्मास्ति–सबमें आत्मा व्यापक है ।

वनस्य दूरे अन्तिके वा–वनके दूर या समीप ।

इति कारकप्रकरणम् (विभक्त्यर्थाः)

अथ समासाः

सूत्रांकाः ९०६

भूतपूर्वः–पहिले हो चुका ।

वागर्थाविव–शब्द और अर्थ के समान ।

इति केवलसमासः ।

अथाव्ययीभावः

सूत्र ९१०

अधिहरि-श्री हरि में ।

सू० ०११

अधिगोपम्–गोप में ।

सू० ६१३

उपकृष्णम्–भगवान् श्रीकृष्ण के पास ।

सुमद्रम्–मद्र देश की समृद्धि ।

दुर्यवनम्–यवनों पर विपत्ति ।

निर्मक्षिकम्–मक्षिकाओं का अभाव । (एकान्त) ।

अतिहिमम्–हिम का नाश ।

अतिनिद्रम्–अब नहीं सोना चाहिए ।

इतिहरि–हरि शब्द का प्रकाश ।

अनुविष्णु–विष्णु के पीछे ।

अनुरूप–योग्य ।

प्रत्यर्थम्–प्रत्येक अर्थ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

यथाशक्ति–शक्त्यनुसार।

सू० ९१४

सहरि-हरि की समानता।
अनुज्येष्ठम्–ज्येष्ठ के पीछे।
सचक्रम्–चक्र के साथ ही।
ससखि–मित्र के सदृश।
सक्षत्रम्–क्षत्रों की सम्पत्ति।
सतृणम्–तृण मात्र भी न छोड़कर (खाता है)

सू० ९१५

साग्नि–अग्निग्रंथपर्यन्त पढ़ता है।

सू० ९१६

पञ्चगङ्गम्–पाँच गङ्गाओं का समाहार (देश विशेष)।

प्रयोगाः **भाषार्थः**

द्वियमुनम्–दो यमुनाओं का समाहार (देश विशेष)।

सू० ९१७

उपशरदम्–शरद ऋतु के समीप।
प्रतिविपाशम्–विपाशा नदी पर।
उपजरसम्–बुढ़ापे के समीप।

सू० ९१९

उपराजम्–राजा के समीप।
अध्यात्मम्–आत्मा के विषय में।

सू० ९२०

उपचर्मम्–चर्म के समीप।

सू० ९२१

उपसमिधम्–समिधा के समीप।

अथ तत्पुरुषः

सू० ९२४

कृष्णश्रितः–श्रीकृष्ण के आश्रित।

सू० ९२५

शङ्कुलाखण्डः–शंकुला (सरौता) से किया हुआ टुकड़ा।
धान्यार्थः–प्रयोजन।
अक्ष्णा काणः–आँख से काना।

सू० ९२६

हरित्रातः–श्री हरि से रक्षितः।
नखनिर्भिन्नः–नखों से कटा हुआ।
यूपदारु–यज्ञस्तम्भ के लिए लकड़ी।
रन्धनाय स्थाली–रांधने के लिये हाँडी।
द्विजार्थः (सूपः)–ब्राह्मण के लिए दाल।
द्विजार्था (यवागूः)–ब्राह्मण के लिए लप्सी
द्विजार्थं (पयः)–ब्राह्मण के लिए दूध।
भूतबलिः–भूतों के लिए बलि।
गोहितम्–गौ के लिए हित।
गोसुखम्– ,, सुख।
गोरक्षितम्–,, रक्षा।

सू० ९२७

चोरभयम्–चोर से भय।

सू० ९२९

स्तोकान्मुक्तः–थोड़े से मुक्त।
अन्तिकादागतः–समीप से आया।
अभ्याशादागतः– ,, ।
दूरादागतः–दूर से आया।
कृच्छ्रादागतः–कष्ट से आया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ९३१

राजपुरुषः–राजा का पुरुष।

सू० ९३२

पूर्वकायः–शरीर का अग्रभाग।

अपरकायः–शरीरका पिछला भाग।

पूर्वश्छात्राणाम्–छात्रों में प्रथम।

सू० ९३३

अर्धपिप्पली–पिप्पली का आधा भाग।

सू० ९३४

अक्षशौण्डः–पासे खेलने में चतुर।

सू० ९३५

पूर्वेषुकामशमी–पूर्व दिशा में होनेवाला इषुकामशमी ग्राम।

सप्तर्षयः–सात ऋषि।

उत्तरा वृक्षाः–उत्तर की ओर स्थित वृक्ष।

पञ्च ब्राह्मणाः–पाँच ब्राह्मण।

सू० ९३८

पौर्वशालः–पूर्वदिशा की शाला में होनेवाला।

सू० ९३९

पञ्चगवधनः–पाँच गौएँ जिसका धन है।

सू० ९४३

पञ्चगवम्–पाँच गौएँ।

सू० ९४४

नीलोत्पलम्–नीला कमल।

कृष्णसर्पः–काला साँप।

रामो जामदग्न्यः–जमदग्निके पुत्र परशुराम

सू० ९४५

घनश्यामः–मेघ के समान श्याम।

प्रयोगाः	भाषार्थः

शाकपार्थिवः—शाकप्रिय राजा।

देवब्राह्मणः–देवपूजक ब्राह्मण।

सू० ९४७

अब्राह्मणः–ब्राह्मणेतर।

सू० ९४८

अनश्वः–अश्वेतर।

नैकधा–अनेक प्रकार से।

सू० ९४९

कुपुरुषः–निन्दित मनुष्य।

सू० ९५०

उरीकृत्य–स्वीकार करके।

शुक्लीकृत्य–सफेद करके।

पटपटाकृत्य–पट पट ऐसा शब्द करके।

सुपुरुषः–भला पुरुष।

प्राचार्य्यः–प्रधान आचार्य।

सू० ९५२

अतिमालः–माला को अतिक्रमण करने वाला।

अवकोकिलः–कोकिलाओं से कूजित (देश)

पर्यध्ययनः–पढ़ने से उदास।

निष्कौशाम्बिः–कौशाम्बी से निकला हुआ

सू० ९५४

कुम्भकारः–कुम्हार।

व्याघ्री–व्याघ्री।

अश्वक्रीती–घोड़ा देकर खरीदी हुई घोड़ी

कच्छपी–कछवी।

सू० ९५५

द्व्यङ्गुलम्–दो अँगुली भर।

निरङ्गुलम्–अँगुलियों से निकाला हुआ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ९५७

अहोरात्रः—दिन रात।

सर्वरात्रः—दिन रात।

संख्यातरात्रः—गिनी हुई रात।

द्विरात्रम्—दो रातें।

त्रिरात्रम्—तीन रातें।

सू० ९५८

परमराजः—महाराज।

सू० ९५९

महाराजः—महाराज।

महाजातीयः—महान्।

सू० ९६०

द्वादश—बारह (१२)।

अष्टाविंशतिः—अठाईस (२८)।

प्रयोगाः भाषार्थ

सू० ९६१

कुक्कुटमयूर्यौ—कुक्कुट और मयूरी।

पञ्चकपालः—पाँच कपालों में संस्कार किया हुआ।

सू० ९६२

प्राप्तजीविकः—प्राप्तजीविक।

आपन्नजीविकः—प्राप्तजीविक।

अलङ्कुमारिः—कुमारी के योग्य।

सू० ९६३

अर्धर्चम्—ऋचा का अर्धभाग।

मृदुपचति—सुन्दर पकाता है।

प्रातः कमनीयम्—सुन्दर प्रातःकाल।

इति तत्पुरुषः।

—०—

अथ बहुव्रीहिः

सू० ९६७

कण्ठेकालः—नीलकंठ।

प्राप्तोदकः—जल जिसे प्राप्त है ऐसा ग्राम।

ऊढरथः—रथ में जुड़ा हुआ बैल।

उपहृतपशुः—पशु जिसको भेंट किया गया है

उद्धृतौदना—भात जिसमें से निकाल लिया गया है।

पीताम्बरः—पीले वस्त्रोंवाला।

वीरपुरुषकः—जिसमें वीर पुरुष रहते हैं।

प्रपर्णः—गिरा हुआ पत्ता।

अपुत्रः—पुत्रहीन।

सू० ९६८

चित्रगुः—चित्रित गौओंवाला (भगवान्)।

रूपवद्भार्यः—जिसकी भार्या रूपवती है।

वामोरूभार्यः—जिसकी भार्या सुन्दरोरू है।

सू० ९६९

कल्याणीपञ्चमाः—जिनमें पाँचवीं कल्याणकारिणी है।

स्त्रीप्रमाणः—जिसकी प्यारी कल्याणकारिणी है।

सू० ९७०

दीर्घसक्थः—लम्बे ऊरुवाला।

जलजाक्षी—कमलनयना।

दीर्घसक्थिः—लम्बे धुरे वाला (छकड़ा)।

स्थूलाक्षा—मोटी आँखोंवाली (लाठी)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ९७१

द्विमूर्धः–दो सिरा।

त्रिमूर्धः–तीन सिरा।

सू० ९७२

अन्तर्लोमः–भीतर बालों वाला।

बहिर्लोमः–बाहर बालो वाला।

सू० ९७३

व्याघ्रपात्–व्याघ्र के समान पाओंवाला।

हस्तिपादः–हाथी के समान पाओंवाला।

कुसूलपादः–कुसूल के समान पाओंवाला।

सू० ९७४

द्विपात्–दुपाया।

सुपात्–सुन्दर पाओंवाला।

सू० ९७५

उत्काकुत्–जिसका तालु या ओंठ ऊपर को उठा हुआ है।

विकाकुत्–जिसका ओंठ विकृत हुआ है।

सू० ९७६

पूर्णकाकुत्–जिसके ओंट पूर्ण हैं।

सू० ९७७

सुहृत्–मित्र।

दुर्हृत्–शत्रु।

सू० ९७९

व्यूढोरस्कः–विशाल वक्षःस्थलवाला।

प्रियसर्पिष्कः–घृतप्रिय।

सू० ९८०

युक्तयोगः–योगी।

सू० ९८१

महायशस्कः–महाकीर्ति।

इति बहुव्रीहिः।

अथ द्वन्द्वः

सू० ९८२

ईश्वरं गुरुं च भजस्व–ईश्वर और गुरु को भजो।

भिक्षामट गां चानय–भिक्षा लाओ साथ गौ को भी लेते आना।

धवखदिरौ छिन्धि–एक ही साथ धव और खदिर (खैर) को काट दो।

संज्ञापरिभाषम्–संज्ञा और परिभाषा का समूह

सू० ९८३

राजदन्तः–प्रधान दाँत।

अर्थधर्मौ–अर्थ और धर्म।

सू० ९८४

हरिहरौ–भगवान् विष्णु और महादेव।

सू० ९८५

ईशकृष्णौ–महादेव और श्रीकृष्ण।

शिवकेशवौ–महादेव और केशव।

सू० ९८७

पितरौ–माता और पिता।

सू० ९८८

पाणिपादम्–हाथ पाँव।

मार्दङ्गिकवैणविकम्–मृदङ्ग बजाने वालों और वंशी बजानेवालों का समूह।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रयोगाः	भाषार्थः
रथिकाश्वारोहम्	रथिक और घुड़सवारों का समूह ।

सू० ९८९

वाक्त्वचम्–वाणी और त्वचा ।

त्वक्स्रजम्–त्वचा और माला

प्रयोगाः	भाषार्थः
शमीदृषदम्	शमी और पाषाण ।
वाक्त्विषम्	वाणी और कान्ति ।
छत्रोपानहम्	छाता जूता ।
प्रावृट्शरदौ	वर्षा और शरद् ऋतु ।

इति द्वन्द्वः ।

अथ समासान्ताः

सू० ९९०

अर्धर्चः–ऋचा का आधा भाग

विष्णुपुरम्–विष्णु का पुर, वैकुण्ठ ।

विमलापम्–निर्मल जलवाला (तालाब) ।

राजधुरा–राजभार ।

अक्षधूः–चक्र का अग्रभाग ।

दृढधूः–दृढ़ नाभि (छिंद्र) वाला (चक्र)

सखिपथः–मित्रमार्ग ।

रम्यपथः–रमणीय मार्गवाला (देश) ।

सू० ९९१

गवाक्षः–खिड़की ।

सू० ९९२

प्राध्वः–रास्ते से निकला हुआ था ।

सू० ९९३

सुराजा–शोभन राजा ।

अतिराजा–बड़ा राजा ।

अथ तद्धिताः, तत्रादौ साधारणाः

सू० ९९५

आश्वपतम्–अश्वपति का अपत्य—सन्तान आदि ।

गाणपतम्–गणपति का अपत्य आदि ।

सू० ९९६

दैत्यः–दिति की सन्तान, असुर ।

सू० ९९७

आदित्यः–अदिति का अपत्य सूर्य, या आदित्य का अपत्य ।

प्राजापत्यः–प्रजापति का पुत्र ।

दैव्यम्–देवता का अपत्य आदि ।

दैवम्–देवता का अपत्य आदि ।

बाह्यः–बहिर्भवः–बाहर आनेवाला ।

सू० ९९८

बाहीकः–बाहर होनेवाला (गँवार) !

गव्यम्–गौ का अपत्य आदि ।

सू० ९९९

औत्सः–उत्स का पुत्र ।

सू० १०००

स्त्रैणः–स्त्री का अपत्यादि ।

पौंस्नः–पुरुष का अपत्य आदि ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सूत्राङ्काः १००१

औपगवः—उपगु का पुत्र (उद्धव)।

सू० १००५

गार्ग्यः—गर्ग का गोत्रापत्य।

वात्स्यः—वत्स का गोत्रापत्य।

सू० १००६

गर्गाः—गर्ग गोत्रवाले।

वत्साः—वत्स गोत्रवाले।

सू० १०१०

गार्ग्यायणः—गर्ग का युवापत्य।

दाक्षायणः—दक्ष का युवापत्य।

इतिसाधारणतद्धिताः।

अथापत्याधिकारः

सू० १०११

दाक्षिः—दक्ष का अपत्य।

सू० १०१२

बाहविः—बाहु का अपत्य।

औडुलोमिः—उडुलोमा का अपत्य।

उडुलोमाः—उडुलोमा के बहुत से अपत्य।

सू० १०१३

बैदः—विद का गोत्रापत्य।

पौत्रः—पुत्र का अपत्य।

सू० १०१४

शैवः—शिवपुत्र।

गाङ्गः—गङ्गापुत्र (भीष्म)।

सू० १०१५

वासिष्ठः—वशिष्ठ का पुत्र।

वैश्वामित्रः—विश्वामित्र का पुत्र।

श्वाफल्कः—श्वफल्क का पुत्र (अक्रूर)

वासुदेवः—वसुदेव के पुत्र (श्रीकृष्ण)।

नाकुलः—नकुल का पुत्र।

साहदेवः—सहदेव का पुत्र।

सू० १०१६

द्वैमातुरः—दो माताओं का पुत्र (गणेश)

षाण्मातुरः—छः माताओं का पुत्र (कार्तिकेय)

सम्मातुरः—सती का पुत्र।

भाद्रमातुरः—,,

सू० १०१७

वैनतेयः— विनता का पुत्र (गरुड़)।

सू० १०१८

कानीनः—कन्या का पुत्र।

सू० १०२०

राजन्यः—क्षत्रिय।

श्वशुर्यः—श्वशुर का पुत्र (शाला)।

सू० १०२१

राजन्यः—राजा का पुत्र।

सू० १०२२

क्षत्रियः—क्षत्रिय जाति।

सूत्राङ्का १०२४

रैवतकः—रेवती का पुत्र।

सूत्राङ्का १०२५

पाञ्चालः—पाञ्चाल राजकुमार।

पौरवः—पुरु का पुत्र।

पाण्ड्यः—पाड्य राजपुत्र।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भावार्थः

सू० १०२६

कौरव्यः–कुरु की सन्तति ।

नैषध्यः–निषध राजा की सन्तति ।

सू० १०२८

इक्ष्वाकवः–इक्ष्वाकुगोत्रोत्पन्न ।

पञ्चालाः–पञ्चालगोत्रोत्पन्न ।

सू० १०२१

कम्बोजः–कम्बोज गोत्रोत्पन्न या कम्बोज देश का राजा ।

चोलः–चोल देश का राजा ।

शकः–शक देश का राजा ।

इति अपत्याधिकारः ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

सू० १०३०

काषायम्–गेरुआ वस्त्र ।

सू० १०३१

पौष्यम्–पुष्य नक्षत्र का दिन ।

सू० १०३२

अद्य पुष्यः–आज का पुष्य नक्षत्र है ।

सू० १०३३

वासिष्ठम्–वशिष्ठ से देखा गया ।

सू० १०३४

वामदेव्यम्–वामदेव से देखा गया ।

सू० १०३५

वास्त्रः–वस्त्र से परिवृत ।

सू० १०३६

शारावः–प्याले में निकला हुआ !

सू० १०३७

भ्राष्ट्रः–भाँड़ में भुना हुआ ।

सू० १०३८

ऐन्द्रम्–इन्द्रदेवता सम्बन्धी ।

पाशुपतम्–पशुपतिदेवता सम्बन्धी ।

बार्हस्पत्यम्–बृहस्पतिदेवताक ।

केरलः–केरल देश का राजा ।

यवनः–यवन देश का राजा ।

सू० १०३९

शुक्रियम्–शुक्रदेवताक ।

सू० १०४०

सौम्यम्–सोमदेवताक ।

सू० १०४१

वायव्यम्–वायुदेवताक ।

सू० १०४२

ऋतव्यम्–ऋतुदेवताक ।

सू० १०४३

पितृव्यः–चाचा, ताऊ ।

मातुलः–मामा ।

मातामहः–दादा ।

सू० १०४४

काकम्–कौओं का समूह ।

सू० १०४५

भैक्षम्–भिक्षासमूह ।

गार्भिणम्–गार्भिणीसमूह ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० १०४६

यौवनम्–युवतिसमूह।

सू० १०४७

ग्रामता–ग्रामसमूह।

जनता–जनसमूह।

बन्धुता–बन्धुसमूह।

गजता–हाथीसमूह।

सहायता–सहायसमूह।

अहीनः–कई दिनों में होने वाला यज्ञ (सुत्याक)।

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० १०४९

साक्तुकम्–सत्तुओं का समूह।

हास्तिकम्–हस्तिसमूह।

धैनुकम्–गोसमूह।

सू० १०५१

वैयाकरणः–व्याकरणवेत्ता या व्याकरण-पाठी।

सू० १०५२

क्रमकः–क्रमपाठी।

पदकः–पदपाठी।

मीमांसकः–मीमांसापाठी।

अथ चातुरर्थिकाः

सू० १०५३

औदुम्बरः–जिस देश में गूलर के पेड़ हों।

सू० १०५४

कौशाम्बी–कुशाम्ब की बसाई नगरी।

सू० १०५५

शैवः–शिबियों का निवास।

सू० १०५६

वैदिशम्–विदिशानगरी के समीप।

सू० १०५८

पञ्चालाः–पाञ्चाल जाति का निवास देश

कुरवः–कुरुओं का निवासदेश।

अङ्गाः–अङ्गों का ,, ,,

वङ्गाः–वङ्गों का ,, ,,

कलिङ्गाः–कलिङ्गों का निवास देश।

सू० १०५९

वरणाः–वरणा नदी के समीप होने वाला

सू० १०६१

कुमुद्वान्–कुमुद जिस देश में हों।

नड्वान्–नड़े जिस देश में हों।

सू० १०६२

वेतस्वान्–वेतस (बैंत)—प्रधान देश।

सू० १०६३

नड्वलः–नडप्राय देश।

शाद्वलः–घास बहुल देश।

सू० १०६४

शिखावलः–शिखावान्—मयूर।

अथ शैषिकाः

सू० १०६५

चाक्षुषम्–चक्षुर्ग्राह्य।

श्रावणः–श्रोत्रग्राह्य।

औपनिषदः–उपनिषद् वर्णित (आत्मा)।

दार्षदाः–पत्थर पर पीसे हुए।

चातुरम्–चार बैलों के ले जाने योग्य।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

चातुर्दशम्–चतुर्दशी को दीखनेवाला ।

सू० १०६३

राष्ट्रियः–राष्ट्र में होनेवाला ।

अवारपारीणः–पारंगत, (तत्त्वज्ञ) ।

अवारीणः–पारंगत, तत्त्वज्ञ ।

पारीणः–पारंगत, (तत्त्वज्ञ) ।

पारावारीणः–पारंगत, तत्त्वज्ञ ।

सू० १०६७

ग्राम्यः–ग्राम में होनेवाला ।

ग्रामीणः–ग्रामीण ।

सू० १०६८

नादेयम्–नदी में होनेवाला ।

माहेयम्–पृथ्वी में होनेवाला ।

वाराणसेयम्–वाराणसी में होनेवाला ।

सू० १०६९

दाक्षिणात्यः–दक्षिणी ।

पाश्चात्यः–पश्चिमी ।

पौरस्त्यः–पूर्वी ।

सू० १०७०

दिव्यम्–स्वर्ग में पैदा हुआ ।

प्राच्यम्–पूर्व में पैदा हुआ ।

अवाच्यम्–दक्षिण में ,, ।

उदीच्यम्–उत्तर में ,, ।

प्रतीच्यम्–पश्चिम में ,, ।

सू० १०७१

अमात्यः–मन्त्री ।

इहत्यः–यहाँ का ।

क्वत्यः–कहाँ का ।

ततस्त्यः–वहाँ का ।

प्रयोगाः भाषार्थः

तत्रत्यः–वहाँ का ।

नित्यः–नित्य ।

सू० १०७४

शालीयः–शाला में पैदा हुआ ।

मालीयः–माला में ,, ,, ।

तदीयः–उसका ।

देवदत्तीयः–देवदत्त का ।

दैवदत्तः–देवदत्त का ।

सू० १०७५

गहीयः–गह देश में पैदा हुआ ।

सू० १०७६

युष्मदीयः–आपका ।

अस्मदीयः–हमारा ।

यौष्माकीणः–आपका ।

सू० १०७७

आस्माकीनः–हमारा ।

यौष्माकः–आपका ।

आस्माकः–हमारा ।

सू० १०७८

तावकीनः–तेरा ।

तावकः– ,,

मामकीनः–मेरा ।

मामकः– ,, ।

सू० १०७९

त्वदीयः–तेरा ।

मदीयः–मेरा ।

त्वत्पुत्रः–तेरा पुत्र ।

मत्पुत्रः–मेरा पुत्र ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १०८०

मध्यमः–मध्य में होनेवाला ।

सू० १०८१

कालिकम्–समय पर होनेवाला ।

मासिकम्–मास में होनेवाला ।

सांवत्सरिकम्–वर्ष में होनेवाला ।

सायम्प्रातिकः–सायं प्रातः होनेवाला ।

पौनःपुनिकम्–बार बार होनेवाला ।

सू० १०८२

प्रावृषेण्यः–वर्षा ऋतु में होनेवाला ।

सू० १०८३

सायन्तनम्–शाम को होनेवाला ।

चिरन्तनम्–पुराना ।

प्राह्णेतनम्–पूर्वाह्णकालिक ।

प्रगेतनम्–प्रातःकालिक ।

दोषातनम्–रात में होनेवाला ।

सू० १०८४

स्रौघ्नः–स्रुघ्न देश में होनेवाला ।

औत्सः–निर्झर में पैदा हुआ ।

राष्ट्रियः–राष्ट्र में ,, ,, ।

सू० १०८५

प्रावृषिकः–वर्षा काल में होनेवाला ।

सू० १०८६

स्रौघ्नः–स्रुघ्न में प्रायोभव ।

सू० १०८८

कौशेयम्–रेशमी वस्त्र ।

सू० १०९०

दिश्यम्–दिशा में होनेवाला ।

वर्ग्यम्–वर्ग में ,, ।

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १०९१

दन्त्यम्–दाँतों में होनेवाला ।

कण्ठ्यम्–कण्ठ में होनेवाला ।

आध्यात्मिकम्–आत्मा में होनेवाला ।

सू० १०९२

आधिदैविकम्–देवों में होनेवाला ।

आधिभौतिकम्–भूतों में ,, ।

ऐहलौकिकम्–इस लोक में ,, ।

पारलौकिकम्–परलोक में ,, ।

सू० १०९३

जिह्वामूलीयम्–जिह्वामूल में होनेवाला ।

अंगुलीयम्–अंगूठी ।

सू० १०९४

कवर्गीयम्–कवर्ग में होनेवाला ।

सू० १०९५

स्रौघ्नः–स्रुघ्न से आया ।

सू० १०९६

शौल्कशालिकः–चुङ्गीखाने से प्राप्त ।

सू० १०९७

औपाध्यायकः –उपाध्याय से प्राप्त ।

पैतामहकः–पितामह से प्राप्तः ।

सू० १०९८

समरूप्यम्–सम से आगत ।

समीयम्–सम से ,, ।

विषमीयम्–विषम से आगत ।

देवदत्तरूप्यम्–देवदत्त से आगत ।

दैवदत्तम्–देवदत्त से आगत ।

सू० १०९९

सममयम्–सम से आगत ।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भावार्थः

देवदत्तमयम्—देवदत्त से आगत ।

सू० ११००

हैमवती—हिमालय से प्रकाशित होने-वाली (गङ्गा) ।

सू० ११०१

स्रौघ्नः—स्रुघ्न को जानेवाला मार्ग या मनुष्य, स्रुघ्न की तरह निकलने वाला द्वार ।

प्रयोगाः भावार्थः

सू० ११०३

शारीरकीयः—शारीरसम्बन्धी या आत्मा-सम्बन्धी वर्णन करनेवाला ग्रन्थ ।

सू० ११०४

स्रौघ्नः—स्रुघ्न देशवासी ।

सू० ११०५

पाणिनीयम्—पाणिनि से प्रोक्त व्याकरण ।

सू० ११०६

औपगवम्—उपगु का (धनादि) ।

अथ विकारार्थकाः

सू० ११०७

आश्मः—पत्थर का बना हुआ ।

भास्मनः—भस्मविकार ।

मार्तिकः—मिट्टी का विकार ।

सू० ११०८

मायूरः—मोर का अङ्ग या विकार ।

मौर्वम्—मूर्वा का नाल या भस्म ।

पैप्पलम्—पिप्पली—विकार ।

सू० ११०९

अश्ममयम्—पत्थर का अवयव या विकार

आश्मम्— ,, ,, ,,

मौद्गः—मूंग की दाल ।

सू० १११०

आम्रमयम्—आमका अवयव या विकार ।

शरमयम्—शरविकार ।

कार्पासम्—कपास का विकार ।

सू० ११११

गोमयम्—गोबर ।

सू० १११२

गव्यम्—गोविकार ।

पयस्यम्—पयोविकार, दूध से बना खोया खीर आदि ।

अथ ठगधिकारः

सू० १११४

आक्षिकः—पासों से खेलनेवाला ।

दाधिकम्—दही से संस्कार किया हुआ ।

सू० १११५

मारीचिकम्—मिरचों से संस्कृत किया हुआ ।

सू० १११६

औडुपिकः— उडुप से तैरनेवाला ।

सू० १११७

हास्तिकः—हाथी सवार ।

सू० १११८

दाधिकः—दही से खानेवाला ।

दाधिकम्—दही से मिला हुआ ।

सू० १११९

बादरिकः—बेर चुननेवाला ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ११२०

सामाजिकः—समाजरक्षक।

सू० ११२१

शाब्दिकः—शब्द करनेवाला।

दार्दुरिकः—कुम्हार।

सू० ११२२

धार्मिकः—धार्मिक।

अधार्मिकः—अधर्मी।

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ११२३

मार्दङ्गिकः—मृदङ्ग बजानेवाला।

सू० ११२४

आसिकः—तलवार से लड़नेवाला।

धानुष्कः—धनुर्धारी।

सू० ११२५

आपूपिकः—पूड़ी खानेवाला।

सू० ११२६

नैकटिकः—ग्राम का समीप वासी (भिक्षु)

अथ यदधिकारः

सू० ११२८

रथ्यः—रथ का घोड़ा।

युग्यः—जुए को उठानेवाला बैल।

सू० ११३०

धुर्यः—जुए को उठानेवाला।

धौरेयः— ,, (अग्रगामी)

सू० ११३१

नाव्यम्—नौका से तरने योग्य।

वयस्यः—मित्र।

धर्म्यम्—धर्म से प्राप्त करने योग्य।

विष्यः—विष से मारने योग्य।

मूल्यम्—मूल्य।

मूल्यः—मूलभाग के समान।

सीत्यम्—जोता हुआ खेत।

तुल्यम्—तोला हुआ (सामान)

अग्र्यम्—अग्रणी।

सू० ११३२

सामन्यः—सामवेदज्ञ।

कर्मण्यः—कर्मठ।

शरण्यः—शरणागत रक्षक।

सू० ११३३

सभ्यः—सभासद।

अथ छयतोरधिकारः

सू० ११३५

शङ्कव्यम्—कीलक बनाने योग्य लकड़ी।

गव्यम्—घासादिक गौ के लिए।

नभ्यः—चक्रनाभिछिद्र।

नाभ्यम्—नाभि छिद्र वा अञ्जन।

सू० ११३६

वत्सीयः—बछड़ों का हितकारी।

सू० ११३७

दन्त्यम्—दन्तमञ्जन।

कण्ठ्यम्—हारादि।

नस्यम्—नसवार।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः **भाषार्थः**

सू० ११३९

आत्मनीनम्—अपने अनुकूल ।

विश्वजनीनम्—सब के अनुकूल ।

मातृभोगीणः—माता के अनुकूल ।

अथ ठञधिकारः

सू० ११४१

साप्ततिकम्—सत्तर रुपयों से खरीदा हुआ ।

प्रास्थिकम्—सेर भर से खरीदा हुआ ।

सू० ११४३

सार्वभौमः—चक्रवर्ती ।

पार्थिवः—राजा ।

सू० ११४५

श्वैतच्छत्रिकः—सफेद छत्रधारी ।

सू० ११४६

दण्ड्यः—दण्डनीय ।

अर्घ्यः—पूजनीय ।

वध्यः—वध के योग्य ।

सू० ११४७

आह्निकम्—एक दिन में बनाया हुआ ।

अथ त्वतलधिकारः

सू० ११४८

ब्राह्मणवत्—ब्राह्मण के समान ।

पुत्रेण तुल्यः—पुत्र के समान मोटा ।

सू० ११४९

मथुरावत्—मथुरा के समान ।

चैत्रवत्—चैत्र के समान ।

सू० ११५०

गोत्वम्—गोत्वजाति ।

गोता—गोत्व ।

सू० ११५१

स्त्रैणम्—स्त्रीत्वजाति ।

स्त्रीता— ,,

स्त्रीत्वम्— ,,

पौंस्नम्
पुंस्त्वम्
पुंस्ता } पुंस्त्वजाति ।

सू० ११५४

प्रथिमा—मोटापन ।

पार्थवम्— ,,

म्रदिमा—
मार्दवम्— } मृदुत्वम् (कोमलता)

सू० ११५५

शौक्ल्यम्—
शुक्लिमा— } सफेदी ।

दार्ढ्यम्—दृढ़ता ।

द्रढिमा— ,, ।

सू० ११५६

जाड्यम्—जड़ता ।

मौढ्यम्—मूढ़ता ।

ब्राह्मण्यम्—ब्राह्मणता ।

सू० ११५७

सख्यम्—मित्रता ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ११५८

कापेयम्–कपिता।

ज्ञातेयम्–ज्ञातिकर्म।

सू० ११५९

सैनापत्यम्–सेनापतित्व।

पौरोहित्यम्–पुरोहिताई।

अथ भवनाद्यर्थकाः

सू० ११६०

मौद्गीनम्–मूँग का खेत।

सू० ११६१

व्रैहेयम्–धानों का खेत।

शालेयम्–शाली–(धानविशेषों) का खेत।

सू० ११६२

हैयङ्गवीनम्–मक्खन।

सू० ११६३

तारकितम्–तारों से सुशोभित।

पण्डितः–बुद्धिमान्।

सू० ११६४

ऊरुद्वयसम्–
ऊरुदघ्नम्
ऊरुमात्रम्
} ऊरु प्रमाणवाला।

सू० ११६५

यावान्–जितना।

तावान्–उतना।

एतावान्–इतना।

सू० ११६७

कियान्–कितना।

इयान्–इतना।

सू० ११६८

पञ्चतयम्–पाँचों का समुदाय।

सू० ११६९

द्वयम्–दो।

द्वितयम्–दो।

त्रयम्–तीन।

त्रितयम्–तीन।

सू० ११७०

उभयम्–दो।

सू० ११७१

एकादश–ग्यारहवाँ।

सू० ११७२

पञ्चम–पाँचवाँ।

सू० ११७३

विंशः–बीसवाँ।

सू० ११७४

षष्ठः–छठा।

कतिथः–कितनवाँ।

कतिपयथः– ,, ।

चतुर्थः–चौथा।

सू० ११७५

द्वितीयः–दूसरा।

सू० ११७६

तृतीयः–तीसरा।

सू० ११७७

श्रोत्रियः–वेदपाठी।

सू० ११७८

पूर्वी–पहिले करनेवाला।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ११७९

कृतपूर्वी—जिसने पहले किया हो।

प्रयोगाः	भाषार्थः

सू० ११८०

इष्टी—इसने यज्ञ किया।

अधीती—इसने पढ़ा।

अथ मत्वर्थीयाः

सू० ११८१

गोमान्—गौओंवाला।

सू० ११८२

गरुत्मान्—गरुड़।

विदुष्मान्—विद्वानोंवाला ग्राम।

शुक्लः—सफेद (वस्त्र)।

कृष्णः—काला (वस्त्र)।

सू० ११८३

चूडालः—केश या मुकुटवाला।

चूडावान्— ,, ,, ,, ।

शिखावान्—कलिकावाला दीपक।

मेधावान्—बुद्धिमान्।

सू० ११८४

लोमशः—अधिक बालोंवाला।

रोमशः— ,, ,, ।

लोमवान्— ,, ,, ।

रोमवान्— ,, ,, ।

पामनः—पामा रोगी।

अङ्गना—शोभन अङ्गोंवाली (स्त्री)।

लक्ष्मणः—लक्ष्मीवान्।

पिच्छिलः—पङ्कयुक्त और केयूर।

पिच्छवान्— ,, ,, ।

सू० ११८५

दन्तुरः—ऊँचे दाँतोंवाला।

सू० ११८६

केशवः—केशों वाला।

केशी—केशोंवाला।

कैशिकः—,, ,, ।

केशवान्—,, ,, ।

मणिवः—नागविशेष।

अर्णवः—समुद्र।

सू० ११८७

दण्डी—दण्डवान्।

दण्डिकः— ,, ।

सू० ११८८

व्रीही—धान्यों वाला।

व्रीहिकः— ,,

सू० ११८९

यशस्वी—कीर्तिमान्।

यशस्वान्— ,, ।

मायावी—मायावी।

मेधावी—बुद्धिमान्।

स्रग्वी—मालाधारी।

सू० ११९०

वाग्मी—अच्छा बोलनेवाला।

सू० ११९१

अर्शसः—बवासीर का बीमार।

सू० ११९२

अहंयुः—अहङ्कारवान्, अहङ्कारी।

शुभंयुः—शुभ पुरुष।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ प्राग्दिशीयाः

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० ११९६

कुतः—कहाँ से ।

सू० ११९७

इतः—यहाँ से ।

सू० ११९८

अतः—इससे ।

यतः—जिससे, वहाँ से ।

ततः—उससे, वहाँ से ।

बहुतः—बहुतों से ।

सू० ११९९

परितः—चारों ओर से ।

अभितः—दोनों ओर से ।

सू० १२००

कुत्र—कहाँ ।

यत्र—जहाँ ।

तत्र—तहाँ ।

बहुत्र—बहुत जगह ।

सू० १२०१

इह—यहाँ ।

सू० १२०३

क्व—कहाँ ।

सू० १२०४

ततो भवान्—पूज्य ।

स भवान्—,, ।

तत्र भवान्—,, ।

प्रयोगाः भाषार्थः

ततो भवन्तम्—पूज्य के प्रति ।

तत्रभवन्तम्—,,

दीर्घायुः—दीर्घायु ।

देवानाम्प्रियः—मूर्ख ।

आयुष्मान्—चिरञ्जीवी ।

सू० १२०६

सदा—नित्य ।

सर्वदा—सदा ।

अन्यदा—और समय ।

कदा—कब ।

यदा—जब ।

तदा—तब ।

सू० १२०८

एतर्हि—अब ।

सू० १२०९

कर्हि—कब ।

यर्हि—जब ।

तर्हि—तब ।

सू० १२११

तथा—उस प्रकार, वैसे ।

यथा—जिस प्रकार, जैसे ।

सू० १२१२

इत्थम्—इस प्रकार ।

सू० १२१३

कथम्—किस प्रकार ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ प्रागिवीयाः

प्रयोगाः — भाषार्थः

आढ्यतमः—महाधनी ।

लघुतमः } बहुत छोटा
लघिष्ठः }

सू० १२१७

किन्तमाम्—अतिशय प्रश्न ।
प्राह्णेतमाम्—अतिशय पूर्वाह्ण ।
पचतितमाम्—अतिशय पाक ।
उच्चैस्तमाम्—अति ऊँचा (वृक्ष) ।

सू० १२१८

लघुतरः लघीयान्—बहुत छोटा ।
पटुतराः—पटीयांसः—बहुत चतुर ।

सू० १२२०

श्रेष्ठः } अतिप्रशंसनीय ।
श्रेयान् }

सू० १२२१

ज्येष्ठः—ज्येष्ठ बड़ा ।

सू० १२२२

ज्यायान्—ज्येष्ठ ।

सू० १२२३

भूमा—बहुत्व ।
भूयान्—बहुत ।

सू० १२२४

भूयिष्ठः—बहुत ।
त्वचिष्ठः—अधिक त्वचा वाला ।
त्वचीयान्—
अश्वकः—न जाने किस का घोड़ा है ।

सू० १२२५

स्रजीयान्—बहुत मालाधारी ।

प्रयोगाः — भाषार्थः

स्रजिष्ठः—बहुत मालधारी ।

सू० १२२६

विद्वत्कल्पः—विद्वान् के समान ।
विद्वद्देश्यः— ,, ,, ।
विद्वद्देशीयः— ,, ,, ।
पचतिकल्पम्—असमाप्त पाक ।

सू० १२२७

बहुपटुः—थोड़ा चतुर ।
जयतिकल्पम्—असमाप्त विजय ।

सू० १२३०

उच्चकैः—अज्ञात ऊँचा ।
नीचकैः अज्ञात नीचा ।
सर्वकैः—अज्ञात सब ने ।
युष्मकाभिः—तुम सब ने ।
युवकयोः—तुम दोनों का ।
त्वयका—तू ने ।

सू० १२३१

अश्वकः—निन्दित घोड़ा ।

सू० १२३२

कतरः—कौन सा ।
यतरः—जौन सा ।
ततरः—तौन-सा (इन दोनों में से वह)

सू० १२३३

कतमः—कौन सा ।
यतमः—जौन-सा ।
ततमः—तौन-सा । (इन सबमें से वह)
यकः—जो ।
सकः—वह ।

इति प्रागिवीयाः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथ स्वार्थिकाः

प्रयोगाः — **भाषार्थः**

सू० १२३४

अश्वकः—घोड़े की मूर्ति ।

अश्वकः—घोड़ा ।

सू० १२३५

अन्नमयम्—तैयार किया अन्न ।

अपूपमयम्—तैयार किये पूए ।

अन्नमयः—अन्नप्रचुर (यज्ञ) ।

अपूपमयम्—अपूपप्रचुर (पर्व) ।

सू० १२३६

प्राज्ञः—बुद्धिमान् ।

प्राज्ञी—बुद्धिमती ।

दैवतः—देवता ।

बान्धवः—बन्धु ।

सू० १२३७

बहुशः—बहुत ।

अल्पशः—थोड़ा ।

आदितः—आदि में ।

मध्यतः—मध्य में ।

अन्ततः—अन्त में ।

पृष्ठतः—पीछे में ।

प्रयोगाः — **भाषार्थः**

पार्श्वतः—एक ओर से ।

स्वरतः—स्वर से ।

वर्णतः—वर्ण से ।

सू० १२३९

कृष्णीकरोति-काला करता है ।

ब्रह्मीभवति—ब्रह्मा बनता है ।

गंगीस्यात्—गंगा बन जाये ।

दोषाभूतम्—रात बना हुआ (दिन) ।

दिवाभूता—दिन बनी हुई (रात) ।

अग्निसाद्भवति—जलता है ।

सू० १२४१

दधिसिञ्चति—दही सींचता है ।

सू० १२४२

अग्नीभवति—अग्नि हो रहा है ।

सू० १२४३

पटपटाकरोति—पट पट करता है ।

ईषत्करोति—थोड़ा करता है ।

श्रत्करोति—श्रत् ऐसा शब्द करता है ।

खरटखरटाकरोति—खरट खरट करता है ।

पटत्करोति—पटत् ऐसा शब्द करता है ।

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

सू० १२४५

अजा—बकरी या प्रकृति ।

एड़का—भेड़ ।

अश्वा—घोड़ी ।

चटका=चिड़ी ।

मूषिका—चूही ।

बाला—लड़की ।

वत्सा—बछड़ी या प्यारी ।

होड़ा—बाला, भिल्ल स्त्री ।

मन्दा—अप्रौढा स्त्री ।

विलाता—नवयौवना स्त्री ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः भाषार्थः

गंगा—गंगा ।

सर्वा—सब (स्त्री)

सू० १२४६

भवती—आप (श्रीमती जी) ।

भवन्ती—होती हुई ।

पचन्ती—पकाती हुई ।

दीव्यन्ती—खेलती हुई ।

सू० १२४७

कुरुचरी—कुरु देश में घूमनेवाली ।

नदी—नदी । देवी—देवी ।

सौपर्णेयी—सुपर्णी की कन्या गरुड़ की बहन ।

ऐन्द्री—पूर्वदिशा ।

औत्सी—उत्सगोत्रोत्पन्ना ।

ऊरुद्वयसी—तलाई (ऊरुप्रमाणजलवाली)

ऊरुदघ्नी— ,, ,,

ऊरुमात्री— ,, ,,

पञ्चतयी—पाँच वाली ,,

आक्षिकी—पासों से खेलनेवाली ।

लावणिकी-नमक बेचनेवाली ।

यादृशी—जैसी ।

इत्वरी—गमनशीला (कुलटा) ।

स्त्रैणी—स्त्रीसन्तति ।

पौंस्नी—पुरुषसन्तति ।

शाक्तीकी—शक्तिशस्त्रवाली ।

आढ्यङ्करणी—धनी बनाने की रीति ।

तरुणी-युवती ।

तलुनी— ,,

प्रयोगाः भाषार्थः

सू० १२४९

गार्गी—गर्ग गोत्र में पैदा हुई ।

सू० १२५१

गार्ग्यायणी—गर्ग गोत्र में पैदा हुई ।

नर्तकी—नटी ।

गौरी—पार्वती ।

अनडुही—गौ ।

अनड्वाही-गौ ।

सू० १२५२

कुमारी-कन्या ।

सू० १२५३

त्रिलोकी—तीन लोक ।

त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला ।

अनीका—सेना ।

सू० १२५४

एता, एनी—चितकबरी ।

रोहिता—लाल रंग की-(धोती) ।

रोहिणी—नक्षत्र विशेष ।

सू० १२५५

मृद्वी, मृदुः—कोमल (लता आदि) ।

सू० १२५६

बहु, बह्वी—बहुत (चपलता आदि) ।

रात्रिः, रात्री—रात ।

शकटी, शकटिः—गाड़ी ।

गोपी—गोपी ।

गोपालिका—गोपी ।

अश्वपालिका—घोड़े पालनेवाले की स्त्री ।

सू० १२५८

सर्विका-सब ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः   भाषार्थः

कारिका–कारिका ।

सूर्या–सूर्यस्त्री ।

सू० १२५९

इन्द्राणी-इन्द्र की स्त्री ।

वरुणानी–वरुण की स्त्री ।

भवानी–पार्वती ।

शर्वाणी– ,, ।

रुद्राणी– ,, ।

मृडानी– ,, ।

हिमानी–हिमसमुदाय ।

अरण्यानी–बहुत बड़ा जंगल ।

नौका–नाव ।

शका–समर्था ।

बहुपरिव्राजका–अधिक संन्यासी जिसमें रहते हैं ऐसी नगरी ।

सूरी–कुन्ती ।

यवानी–दुष्ट जौ ।

यवनानी–यूनानी लिपि ।

मातुलानी, मातुली–मामी ।

उपाध्यायानी, उपाध्यायी–गुरुस्त्री ।

आचार्यानी–आचार्य की स्त्री ।

अर्याणी, अर्या–वैश्यस्त्री ।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया–क्षत्रियस्त्री ।

सू० १२६०

वस्त्रक्रीती–वस्त्रों से खरीदी हुई कोई चीज ।

धनक्रीता–धन से खरीदी (घोड़ी) ।

सू० १२६१

अतिकेशी, अतिकेशा–बहुत केशोंवाली ।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा–विधुवदना ।

प्रयोगाः   भाषार्थः

सुगुल्फा–सुन्दरगुल्फा (घुटिका) 'गिट्टा' इति पञ्जाबी ।

शिखा–चोटी ।

सू० १२६२

कल्याणक्रोडा–ऐसी घोड़ी जिसके उरः-स्थल पर कल्याण चिह्न है ।

सुजघना–सुन्दर जघनवाली ।

सू० १२६४

शूर्पणखा–रावण की बहन ।

गौरमुखा–यह किसी की स्त्री का नाम है ।

ताम्रमुखी–लाल मुखवाली लड़की ।

सू० १२६५

तटी–तट ।

वृषली–शूद्री ।

कठी–कठगोत्रोत्पन्ना स्त्री ।

बह्वृची–बहुत ऋचायें पढ़नेवाली ।

मुण्डा–मुण्डित स्त्री ।

बलाका–बकपङ्क्ति ।

क्षत्रिया–क्षत्रियाणी ।

हयी–घोड़ी ।

गावयी–स्त्री गवय ।

मुकयी–पशुविशेष (खच्चरी) ।

मत्सरी–मछली ।

सू० १२६६

दाक्षी–दक्षगोत्रोत्पन्ना स्त्री ।

सू० १२६७

कुरूः–कुरुकुलस्त्री ।

अध्वर्युः–ब्राह्मणी ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोगाः	भाषार्थः
सू० १२६८	
पङ्गूः	पङ्गु स्त्री ।
श्वश्रूः	सास ।
सू० १२६९	
करभोरूः	करभ समान ऊरुवाली ।
सू० १२७०	
संहितोरूः	मिले हुए ऊरुवाली ।
शफोरूः	,,
लक्षणोरूः	सुन्दर ऊरुवाली स्त्री ।
वामोरूः	सुन्दर ऊरुवाली स्त्री ।
सू० १२७१	
शार्ङ्गरवी	शृङ्गरु की लड़की ।
बैदी	बिदगोत्रोत्पन्न ।
ब्राह्मी	ब्राह्मणी ।
नारी	स्त्री ।
सू० १२७२	
युवतिः, युवती	युवा स्त्री ।

इति स्त्रीप्रत्ययाः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रश्नपत्रसंग्रहः प्रश्नोत्तरनिदर्शनसहितः

तत्रादौ परीक्षा-शिक्षा-सूत्राणि

"शृण्वन्तु प्रियशिशवः! श्रुत्वा चैवोपधार्यतां हृदये।
कथनैरलं गुणानां "स्तुतिवाङ् न रोचते सद्भ्यः" ॥ १ ॥
श्रीगुरुमुखतो ग्रन्थाः साद्योपान्तं पुरैव पठनीयाः।
नो जाने किं पृच्छेद् "भिन्ना रुचिर्हि मनुष्याणाम्" ॥ २ ॥
अपरिचितदेशकालः सुविदितशास्त्रोऽपि पण्डितो लोके।
पूर्णं फलं न लभते "चेष्टेताऽतो यथाकालम्" ॥ ३ ॥
नेयाऽयोलेखनिका परिचितपूर्वा परीक्षिता सम्यक्।
सा चैव भवति साधुः "सुपरिचितो नैव वञ्चयते" ॥ ४ ॥
आदाय प्रश्नदलं भूयोऽभिदृश्यतां सर्वम्।
सञ्चिन्तितं हि सुचिरं "स्मृतिमधिरोहति पुरा दृष्टम्" ॥ ५ ॥

परीक्षा-शिक्षासूत्र-तात्पर्य्यव्याख्या (हिन्दी में)

१—प्रिय छात्रवर्ग! ध्यान से सुनो और सुनकर हृदय में निश्चय कर लो। हम अपने मुँह से शिक्षा-सूत्रों के गुणों की क्या प्रशंसा करें। सज्जनों को आत्मश्लाघा रुचिकर नहीं हुआ करती। २—परीक्षार्थी के लिए आवश्यक है कि परीक्षा—समय से पहिले समस्त पाठ्य-ग्रन्थों को श्रीगुरु—मुख से आदि से अन्त तक पढ़ ले। कोई प्रकरण पढ़ लिया, कोई छोड़ दिया यह उचित नहीं। न जाने परीक्षक कहां से पूछ मारे। सबकी रुचि भिन्न-भिन्न होनी स्वाभाविक है। ३—परीक्षार्थी को देश-काल का पूरा ध्यान रखना चाहिये, देश काल से अपरिचित शास्त्रज्ञ विद्वान् भी पूरा फल नहीं प्राप्त कर सकता। ४—परीक्षाभवन में लेखनी अपनी तो ले जानी ही होती है, किन्तु लेखनी—(कलम या होल्डर) वही साथ रहनी चाहिये जिससे आप पहिले प्रायः लिखा करते हैं और जिसके ठीक चलनेमें कोई सन्देह नहीं है, पूर्व परिचित से प्रायः वञ्चना का भय नहीं हुआ करता।

५—प्रश्नपत्र मिल जाने पर उसे ध्यानपूर्वक आदि से अन्त तक पढ़ो, फिर पढ़ो, कुछ देर तक सब पर्यालोचन कर डालो, ऐसा करने से समस्त पढ़ा हुआ विषय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आद्यं चान्त्यं वा यत् सुगमं संविदितमुत्तरं पूर्वम् ।
सम्यग् लेख्यं तद् यन् "मुखमेव निरीक्ष्यते प्रथमम्" ॥ ६ ॥
अङ्कान् पूर्वं पश्येत् तदुत्तरं स्वर्णकारवत् पश्चात् ।
सन्तोल्यैव च लेख्यं "यन् मान-वधारिणी बुद्धिः" ॥ ७ ॥
जातु न समयात्पूर्वं पत्रं संलिख्य चान्यथाप्येवम् ।
बहिरागच्छेत् केन्द्रात् "कालापेक्षी विपन्नः स्यात्" ॥ ८ ॥
संलेख्यापि समस्तं पौनःपुन्येन दृश्यतां सम्यक् ।
आत्मस्खलनं शोध्यं "स्खलनं प्रकृतिर्हि लोकानाम्" ॥ ९ ॥
उपदिष्टो यः पूर्वं सुलेखनियमो विरामादिः ।
सोऽप्यत्र पालनीयः "सौन्दर्यमवयवसंस्थानम्" ॥ १० ॥
असुपठवर्णो लेखः स्फुटपाण्डित्योऽपि सारगर्भोऽपि ।
सन्देहास्पदमखिलो "वर्णसङ्करविधिं नैव कुर्य्यात्" ॥ ११ ॥

स्मरण आ जाया करता है। ६—सारे प्रश्नपत्र में जो भी प्रश्न पहिला अन्तिम या और ही कोई ठीक-ठीक बढ़िया आता हो, उसी को सब से पहिले अच्छी तरह से लिखो, सब की दृष्टि पहिले मुख पर ही पड़ती है। ७—किसी भी प्रश्न का उत्तर लिखने से पहिले उसके नम्बर देख लो, तब उसका उत्तर नम्बरों के अनुसार सुनार के समान पूरा-पूरा तोलकर संक्षिप्त या विस्तृत लिखो, बुद्धि का यही फल है कि यथोचित परिणाम की जांच करले ('मान-वधारणी' यहाँ 'अव' के अकार का लोप हुआ है) ८--सभी प्रश्नों का उत्तर लिख चुकने पर भी समय पूरा होने से पहिले परीक्षा-भवन से बाहर मत आओ, कीमती समय की उपेक्षा करनेवाले पुरुष को विपत्ति का सामना करना पड़ता है। ९—सभी प्रश्नों का उत्तर लिख चुकने पर भी समय बाकी हो तो लिखे हुए उत्तरों को बार-बार ध्यानपूर्वक देखना आरम्भ कर दो, जहाँ भी कोई अशुद्धि रह गई हो उसे ठीक कर लो। अशुद्धि हो जाना मनुष्य का स्वभाव सुलभ है। १०—परिशिष्ट के २६८ पृष्ठ में लेखनियम बतायें गये हैं, उनका अपने लेख में अभ्यास कर लो, परीक्षा के समय भी उन नियमों का पूर्ण पालन करो। उचित अवयव-विन्यास ही सौन्यर्य का कारण हुआ करता है।

११—लेख में वर्ण अक्षर ऐसे मत लिखो जो ठीक-ठीक पढ़े न जा सकें, या सन्देह पैदा कर देनेवाले हों। पाण्डित्यपूर्ण सारगर्भित लेख भी इस दोष के कारण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अयमपि समपादि जनः प्रथमः पञ्चनदीयपरीक्षासु ।
अमुनैव पथा नूनं "मार्गो हि सतां समालम्ब्यः" ॥ १२ ॥
न मया लिखितं दृप्त्यै शिक्षायै किन्तु बालानाम् ।
विदुषाञ्च विनोदार्थं "सकलजनहितैषिणः सन्तः" ॥ १३ ॥
रत्नाकरेऽप्यलभ्यं रत्नं चेन्नात्र वाच्यतां यामः ।
बहुपुण्यैस्तल्लभ्यं "चिन्तया पुण्याल्पताऽऽत्मीया" ॥ १४ ॥
सन्नप्यत्र गुणश्चेद् दृष्टचरः स्यान्न कस्यचिज्जन्तोः ।
नाहमुपालम्भपदं "स्व-दृष्टि-दोषोऽपहर्त्तव्यः" ॥ १५ ॥
व्याकरणरूपसिद्धौ यद्यपि शक्नोमि भूरि निर्वक्तुम् ।
लिखितं तथापि किञ्चित् "भजेत् कालोचितीं वृत्तिम्" ॥ १६ ॥
मम यदि स्खलनं किञ्चित् सम्भाव्येत विबुधैस्तदा कृपया ।
संसूच्योऽहं **'निगमः'** "सर्वः सर्वं न जानीते" ॥ १७ ॥

सन्देहास्पद हो जाता है। अतः वर्णसङ्कर दोष से सदा बचो। १२—लेखक को भी इन्हीं नियमों के पालन करने से पञ्जाब विश्वविद्यालयीय परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उचित मार्ग सभी के लिए आश्रयणीय होता है। १३—मैंने यह किसी अभिमानवश नहीं लिखा, किन्तु बालकों की शिक्षा के लिए लिखा है, और इससे विद्वानों का विनोद भी हो सकेगा। सज्जन का काम सभी का हित करना है। १४—रत्नाकर में पहुँचकर भी यदि कोई रत्नप्राप्ति से वञ्चित रह जाय तो इसमें किसी का क्या दोष है, रत्नप्राप्ति भारी पुण्यों का फल है। इससे तो यही कहना होगा कि अपने ही पुण्यों की कमी है। १५—यदि कोई यहाँ रहते हुए गुणों से भी वञ्चित रह जाय तो इसमें मुझे क्या उपालम्भ है। अपनी दृष्टि के दोष को दूर करना उचित होगा। १६—विशेषतः—व्याकरण की रूपसिद्धि के विषय में विस्तार से भी लिखा जा सकता है। परन्तु परीक्षा-समय के औचित्य को ध्यान में रखते हुए परिमित लिखना उचित समझा गया। १७—सबको सर्वज्ञान होना सम्भव नहीं है, इसलिए यदि हमसे कोई अशुद्धि हो गई तो विद्वान् लोग हमें सूचित कर देने की कृपा करेंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्चाम्बुविश्वविद्यालयप्राज्ञव्याकरणप्रश्नाः

सन् १९४३

१—(क) तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, आमि सर्वनाम्नः सुट्, अर्वणस्त्रसावनञः, अदसोसेर्दादुदोमः, अव्ययादाप्सुपः, एषां सूत्राणां पदच्छेदमर्थं च लिखत। २०

(ख) ह्यस्, श्वस्, तूष्णीम्, साकम्, नूनम् एतेषामव्ययानां के केऽर्थाः सन्ति। ५

२—सन्नच्युतः, एषोऽत्र, सर्वस्मै, क्रोष्टून्, तिसृणाम्, सुधिना, राज्ञः, पुमान्, आपः, धनूंषि, एते प्रयोगाः साधु साध्यन्ताम् २५

३—वर्तमाने लट्, परोक्षे लिट्, टित आत्मनेपदानां टेरे, एषां सूत्राणामर्थं प्रदर्श्य कति लकारा भवन्तीति प्रदर्शनीयम् १०

४—आतीत्, अदुग्ध, अतौत्सीत्, अग्रहीत्, अजीगणत्, एतान् प्रयोगान् साधयत। २०

५—पिपठिषति, कुम्भकारः, हरये नमः, राजपुरुषः, त्रिलोकी, एतान् प्रयोगान् साधयित्वा लघुकौमुदीकारस्य नाम प्रदर्शनीयम्। २०

सन् १९४४

१—वागीशः, प्रत्यङ्ङात्मा, पुनारमते, लक्ष्मीच्छाया, मघोनः, अस्य, चतुरः, अस्माकम्, राज्ञः, अद्व्यः—एतान् प्रयोगान् साधयत। २५

२—गो, मातृ, वारि, अस्मद्, अप्—एतेषां द्वितीयाबहुवचने रूपाणि लिखत। ५

३—ग्रहीता, प्रभवाणि, जहि, असिचत्, क्रीणीमः—एते प्रयोगाः साध्यन्ताम्। २०

४—अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, ते प्राग्धातोः, संयोगान्तस्य लोपः, अनद्यतने लङ्—एतेषां सूत्राणामर्थं सोदाहरणं स्पष्टीकुरुत। १०

५—(क) कृष्णश्रितः, पीताम्बरो हरिः, पितरौ-एषु विग्रहं कृत्वा समासानां नामानि च लिखित्वा 'कुमारी' 'युवतिः' इत्यत्र सूत्रोल्लेखपूर्वकं स्त्रीप्रत्ययौ निर्दिशत। २०

(ख) **विप्राय** गां ददाति, रामेण **बाणेन** हतो **वाली**, मातुः स्मरति—इत्यत्र रेखाङ्कितेषु पदेषु तत्तत्सूत्रनिर्देशपूर्वकं कारकविभक्तीः स्फुटीकृत्य निम्नलिखिते रूपे साधनीये:—

पाशुपतम्, ग्रामीणः।

सन् १९४५

१—विश्वौहः, फला[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]लिहति, चक्रित्रायस्व, दधनि, श्रियाम्, वारिणी—एते प्रयोगाः साध्यन्ताम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२—विद्वस्, राजन्, मुनि, पितृ, धनिन्—एतेषां षष्ठीबहुवचने रूपाणि लिखत। ५

३—अगमत्, अपुः, अद्धि, वेद, विंध्यति—एतान् साधयत। २०

४—पा (पाने,) रुध्, कृ, (करणे), ग्रह, पा (रक्षणे) नश्, विद (ज्ञाने), घा, हन्, हा (त्यागे)—एतेषां परस्मैपदे लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपाणि दत्त (न तु सिद्धिः कार्या)। १०

५—निम्नलिखितान्यशुद्धानि वाक्यानि कारकरीत्या तत्र कारणं प्रदर्श्य शुद्धानि कुरुतः—

(क) माणवकात् पन्थानं पृच्छति।

(ख) दैत्येषु हरिरलम् (शक्त इत्यर्थः)।

(ग) कृष्णेन खड्गात् कंसस्य शिरः छिन्नम्।

(घ) प्रीतो राजा सैनिकं ग्राममर्पयति।

६—निर्मक्षिकम्, पितरौ, घनश्यामः, वीरपुरुषको ग्रामः—इत्यत्र विग्रहं कृत्वा समासानां नाम निर्दिशत।

७—त्रिलोकी, मृद्वी, गोपी, सूर्या—अत्र सूत्रोल्लेखपुरस्सरं स्त्रीप्रत्ययान् लिखत।

८—यशस्वी, पटीयान्—इति तद्धितरूपे साधनीये।

सन् १९४६

१—निम्नलिखितानि रूपाणि साधयतः—

सर्वेषाम्, राभ्याम्, सख्युः, भूपतये, यूनः, पञ्चानाम्, शिवो वन्द्यः, तच्छिवः तट्टीका, हरिश्शेते। २५

२—इदम् (स्त्रीलिङ्ग), उपानह्, महत्, अस्मद्, वृत्रहन्—एतेषां प्रथमैकवचने रूपाणि लिखत (न तु सिद्धिः कार्या)। ५

३—ब्रूहि, पच्यते, गृहाण, क्राम्यति, पपौ—एते प्रयोगाः साध्यन्ताम्। २०

४—'ते प्राग्धातोः', 'अनद्यतने लङ्'—इत्येतयोः सूत्रयोः सोदाहरणम् अर्थं स्फुटीकुरुत।

५—गम्, ग्रह, घा, जि, ज्ञा—एतेषां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपाणि लिखत (न तु सिद्धिः कार्या)।

६—निम्नलिखितानि वाक्यानि कारकरीत्या कारणप्रदर्शनपूर्वकं शुद्धानि कुरुत—

(क) निर्धनं वस्त्रं देहि।

(ख) वृक्षात् फलान्यवचिनोति।

(ग) श्रीहरि नमः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(घ) रामः बाणाद् रावणं हतवान्।

७—स्त्रीप्रमाणः, ईशकृष्णौ, द्व्यङ्गुलम्, अतिनिद्रम्—इत्यत्र विग्रहं कृत्वा समासानां नाम निर्दिशत।

८—तत्र तत्र सूत्रस्य प्रत्ययस्य च निर्देशं कृत्वा निम्नलिखितानां पुंलिङ्गरूपाणां स्त्रीलिङ्ग-रूपाणि दत्त—

सूर्य, युवन्, आचार्य, श्वशुर। १०

९—निम्नलिखितेषु तद्धितप्रत्ययान् सूत्रोल्लेखपूर्वकं निर्दिशत—

वासिष्ठम्, काकम्, गार्ग्यः, पौत्रः। १०

सन् १९४८

१—थ, म, इ, क, ड के स्थान प्रयत्न लिख कर झय्, यर्, इच् प्रत्याहार लिखो।

२—खरवसानयोर्विसर्जनीयः, हशि च, ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः, ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य, तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य—

इनमें से तीन के अर्थ उदाहरण दो।

३—शिवोऽर्च्यः, सन्नच्युतः, कृष्णर्द्धिः, वाग्घरिः, हरेऽव।

इनमें से तीन की सिद्धि करके—

हरीणाम्, सर्वस्मिन्, रमायाम्, ज्ञानानि, लिट्त्सु, इमे, पन्थानौ, प्राचः, एषः, इनमें से तीन की सिद्धि दो केवल विशेष सूत्रों से।

४—श्रिञ्, एध, गद, हन्, दुह, ञिभी, ओहाक्, शो, चिञ्, चुर, इनमें से किन्हीं पाँच के लुङ् व लिट् के प्रथम पुरुष के एकवचन में रूप लिखो।

५—बभूविथ, ऐधिद्ध्वम्, अतथाः, क्रीणीवः, अरुणः, अभैत्स्व, अतुत्त, अभुत, अपुषत्, इनमें से किन्हीं पाँच की सिद्धि दो विशेष सूत्रों से। १५

६—अधिहरि, राजपुरुषः, पीताम्बरो हरिः, हरिहरौ।

इनके विग्रह तथा समासों के नाम दो। १०

७—कुमार, अज, कुरुचर, इन्द्र की स्त्री, गोप की स्त्री।

इनके स्त्रीप्रत्यय के रूप दो। १०

८—आश्वपतम्, दाधिकम्, अग्रयः, स्रौघ्नः, जनता।

विग्रह तथा प्रकृति-प्रत्यय लिखो।

९—'अकथितं च' इस सूत्र का अर्थ लिखकर रम्यपथो देशः, कुतः, इनकी सिद्धि करो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१—अ, च्, य्, श् इनके प्रयत्न लिखकर स्वरित, अनुनासिक, सवर्ण, संहिता और पद की परिभाषाएँ लिखो । ८

२—अदसो मात् । एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि । औतोऽम्शसोः । वाम्शसोः । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् । इनमें से केवल चार सूत्रों के अर्थ लिखकर उदाहरण दो । ८

३—निम्नलिखित प्रयोगों में से अन्यतम तीन प्रयोगों की सिद्धि केवल विशेष सूत्रों से करो :—पूर्वस्मिन् । सख्यौ । एभिः । अहोभ्याम् ।

४—निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या करो :—

सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः ॥

५—इनमें से केवल पाँच धातुओं के लट् और लङ् में केवल मध्यम पुरुष में रूप लिखो :—

गद्, अर्च, गुप्, श्रु, डुदाञ्, डुक्रीञ् ।

६—'ऋतो भारद्वाजस्य' इस सूत्र का अर्थ लिखकर निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या करो :— १०

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

७—निम्नलिखित प्रयोगों में से केवल पाँच को विशेष सूत्रों से सिद्ध करो :— १०

शृणु, वर्त्स्यति, विदांकरोतु, आह, जायते, किरति ।

८—इनको शुद्ध करो :—

पितरं नमः । रामो देवं अलम् । अश्वेन पतति । मोक्षाय इच्छास्ति । पुत्रं पुस्तकं ददाति ।

(ख) इनसे स्त्रींवाचक शब्द बनाओ :— ११

अज, गौर, गोप, गोपालक, मनुष्य, अरण्य, यवन, मातुल, क्षत्रिय, हय ।

९—सन्धि और समास में क्या भेद होता है ? निम्नलिखित समस्त शब्दों में कौन-कौन से समास हैं ? विग्रह भी लिखो :—

सचक्रम्, पूर्वकायः, दूरादागतः, देवब्राह्मणः, अपुत्रः, पाणिपादम् ।

१०–निम्नलिखित शब्दों में कौन-कौन से प्रत्यय किस-किस शब्द से कौन-कौन से अर्थ में आए हैं ?

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाशुपतम्, राष्ट्रियः, सामाजिकः, सभ्यः, ब्रह्मीभवति।

सन् १९५०

१—शिवेहि, षण्णाम्, उत्थानम्, षट्त्सन्तः, देवा इह, इनमें सन्धिच्छेद कर विशेष सूत्रों से सिद्ध करो।

२—पूर्वत्रासिद्धम्। यचि भम्। ख्यत्यात्परस्य। ऋन्नेभ्यो ङीप्। त्यदादीनामः, इन सूत्रों के अर्थ लिखकर उदाहरण दो।

३—सख्यै, क्रोष्टुः, अस्थनां, तव, विदुषा, इन प्रयोगों की सिद्धि विशेष सूत्रों से करो। १०

४—पा, एध्, व्यथ्, भृज्, रुध्, लूञ्, चुर,
इन धातुओं के लिट् और लुङ् में केवल उत्तम पुरुष के रूप लिखो। १५

५—आतीत्, अधुक्षत्, एधि, कुरु, लुनीहि, बुभूषति, राजीयति, इन प्रयोगों की विशेष सूत्रों से सिद्धि करो।

६—कारक का क्या अर्थ है? वे कितने हैं? उनमें से कर्म, करण, सम्प्रदान, अधिकरण के स्वरूप अपनी भाषा में लिखकर उदाहरण दो। १०

७—समास का क्या अर्थ है? वे कितने हैं? उनके नाम लिखकर अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व का लक्षण अपनी भाषा में लिखकर उदाहरण दो। १०

८—वाहीकः, दाक्षिः, पाण्ड्यः, इहत्यः, तुल्यम्, सूत्रनिर्देश करके किस अर्थ में क्या तद्धित प्रत्यय हुआ है लिखो। १०

९—त्रिलोकी, मृद्वी, सूर्या, युवतिः, हिमानी, सूत्रनिर्देशपूर्वक इन प्रयोगों में स्त्रीप्रत्यय लिखो।

काशीस्थराजकीय सं० पाठशालीयप्रथमपरीक्षाव्याकरणप्रश्नाः

१९५३

१—सवर्णसंज्ञासूत्रं विसंज्ञासूत्रञ्च सार्थमुल्लिख्य, य, म, श, अ, वर्णेषु कयोरपि द्वयोः स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नञ्च लिखत।

२—गङ्गौघः, प्राच्छंति, गवाग्रम्, एतन्मुरारिः, उत्थानम्, सन्नच्युतः, शिवो वन्द्यः, स हरिः, हरी रम्यः एतेषु पञ्चानां साधुत्वं विधाय, कवी+आगतौ इत्यत्र सन्धौ किं रूपम् इति सप्रमाणं लिखत।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३—(क)—रामाणाम्, हरेः, विश्वपः, क्रोष्टरि, दध्ना, प्रचूनि, विश्वौहः, युष्माकम्, उदीचः, एतेषु चतुर्णां साधुत्वं विधेयम्।

(ख)—ल्यपत्यात्परस्य, ङेराम्नद्याम्नीभ्यः तदोः सः सावनन्त्ययोः, अदसोऽसेर्दादु-दोमः, एषु कस्याप्येकसूत्रस्य पदच्छेदमुदाहरणञ्च प्रदर्श्य, पितृशब्दस्य अथवा पथिन् शब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु रूपाणि लिखत।

४—भवितास्य, आतीत्, ह्वयात्, वर्त्स्यति, उवाह, अघसत्, अदास्त, प्रष्टा, कुर्यात्, गृहाण, अजीगणत्, एतेषु पञ्चानां साधुत्वं विधाय, गुप् अथवा कमु अथवा उर्णञ् धातोः लुङि रूपाणि लिखत।

५—स्थापयति, जरीगृह्यते, राजानति, विजयते, भिद्यते काष्ठेन, कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्, अत्र चतुर्णां सिद्धिः विधीयताम्।

६—दयनीयः, कुरुचरः, छिन्नः, जयः, सुपानः, माणवकं धर्मं भाषते, अधिहरि, दिनरात्रम्, औपगवः, अस्मदीयः, औपूपिकः, वस्त्रक्रीती, एतेषु षण्णां सिद्धिः कार्या।

१९५४

१—अ, य, स वर्णानां बाह्यप्रयत्नाः अथवा प्रत्याहारविधायकसूत्रस्य पदच्छेदाः हिन्दी भाषायामर्थश्च सोदाहरणं लेख्याः।

२—धात्रंशः, कृष्णर्द्धिः, वाप्यश्वः, उत्थानम्, संस्कर्ता, एषको रुद्रः, एषु यथेच्छं चतुर्णां प्रयोगाणां सिद्धिं प्रदर्श्य, हर इह, देवा इह, रामकृष्णावमू आसाते इत्यत्र सन्धिः कथन्न इति लिखत।

३—निर्जरसौ, कति, क्रोष्टूनाम्, चतसृणाम्, सर्वस्याम्, दध्नि, एषु केऽपि चत्वारः साधु साधनीयाः।

४—चतुर्षु, आभ्याम्, यूनः, अस्माकम्, तादृक्, समीचः, अमुना, अमुष्याम्, धनूंषि, एषु चतुर्णां सिद्धिं विधाय, पति, पपी, शब्दयोः ङौ, नेम शब्दस्य जसि तथा वारि, विद्वस् शब्दयोः सम्बुद्धौ रूपाणि लेख्यानि।

५—अन्तरेण, निकषा, नक्तम्, विना, एषु द्वयोः अव्यययोः प्रयोगो वाक्ये कर्त्तव्यः।

६—बभूविथ, चिक्षेथ, आनर्चुः, श्रृण्मः, अगौप्ताम्, आतीत्, एषु त्रयाणां एव सिद्धिः कार्या।

७—एधाञ्चक्रुषे, असरसत्, अवर्त्स्यत्, भ्रियात्, ऊहुः, हृषीष्ट, अभार्षीत्, एषु केषामपि चतुर्णां सिद्धिं विधाय, गुपू, यज, हृ, श्रु धातूनां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपाणि लेखनीयानि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९५५

१—रप्रत्याहारम्प्रसाध्य सवर्ण-संयोगसंज्ञा-सूत्रयोरर्थौ हिन्दीभाषायां वर्णनीयौ ।

२—कृष्णर्द्धिः, प्रष्ठौहः, प्रार्च्छति, वाग्घरिः, प्राङ्क्षष्ठः, नॄँःपाहि, मनोरथः, एषु पञ्च प्रयोगाः साधु साधनीयाः ।

अथवा

सम्बुद्धिसर्वनामापृक्तसर्वनामस्थानपदसंज्ञासूत्रार्थान् विलिख्योदाहरणानि प्रदर्शनीयानि ।

३—हाहा, पपी शब्दयोः सर्वासु विभक्तिषु रूपाणि लेख्यानि ।

४—सर्वे, सख्युः, उत्तरपूर्वस्यै, हे श्रीः, कतरत्, वारीणाम्, एषु कानपि पञ्चप्रयोगान् साधयत ।

५—लिट्त्सु, चतुर्षु, प्राङ्क्षु, पिपठीष्षु, उपानत्सु एषां सिद्धिः वर्णनीया ।

अथवा

भूयात्, सिषिचतुः, क्षीयात्, जहार, एधाञ्चकृढ्वे, त्रेपे, जघनिथ, विदाङ्करोतु, एषु स्वेच्छया पञ्चैव समाधेयाः ।

६—वह प्रापणे, दुह प्रपूरणे धातोर्लुङि रूपाणि प्रदर्शनीयानि ।

१९५६

१—ऋ, औ, भ, ल, वर्णानां स्थानानि प्रयत्नांश्च विलिख्य, अल् प्रत्याहारं सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत ।

२—प्रार्च्छति, इन्द्रः, चिन्मयम्, संस्कर्ता, देवा इह, शम्भू राजते, एषु चत्वारः प्रयोगाः अर्थनिर्देशपुरस्सरं संसाध्य अतो रोरप्लुतादप्लुते, इति सूत्रस्यार्थो लेख्यः ।

३—सर्वेषाम्, सख्यौ, स्वसारः, राज्ञः, सुपदः, अमी, अद्भिः, धनूंषि, अमीषु, पञ्चैव समाधेयाः ।

४—भवेत्, गोपायाञ्चकार, शृणु, अद्युतत्, अयुः, एधि, नेनिजानि, लोभिता, स्तरिषीष्ट, एतेषु केवलं चतुरः प्रयोगान् तत्तद्विशेषसूत्रोल्लेखपूर्वकं साधयत ।

५—अतिष्ठिपत्, जिघत्सति, समिधिता, धर्ममुच्चरते, दायिता, यजति स्म युधिष्ठिरः, स्तुत्यः, जगन्वान्, धृतिः, हित्वा, एषु पञ्च प्रयोगान् साधयन्तामु ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६—सर्पिषो जानीते, पञ्चगवधनः, कल्याणीपञ्चमा रात्रयः, त्वक्स्रजम्, रैवतिक, अस्मदीयः, श्रेयान्, एनी, वृषली, एतेषां पञ्चानामेव साधु साधनं लिखत ।

१९५७

१—क, प, ऋ, वर्णानां स्थानानि प्रयत्नांश्च विलिख्य, 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' इति सूत्रस्य अर्थ उदाहरणञ्च लिखत ।

२—सुखार्तः, विष्णो इति, उत्थानम्, शिवच्छाया, शिवो वन्द्यः, इमान् संसाध्य-ङमो ह्रस्वादचि ङमुड् नित्यम्' इति सूत्रस्योदाहरणं अर्थं च प्रदर्शयत ।

३—रामान्, निर्जरसौ, बहुश्रेयस्याम्, स्त्रीः, श्रीपम्, मघोनः, युष्मत्, पिपठीः, इयम्, तुदन्तौ, अमीषु, पंच प्रयोगाः ससूत्रं साधनीयाः ।

४—अभूवन्, अकटीत्, हरिष्यति, एधिषत, वर्तिष्यते, जहि, अहित, नेशिथ, अशिचत्, कुर्यात्, ग्रहीता, अजीगणत्, एषु चतुरः प्रयोगान् साधयत ।

५—अर्वीभवत्, चिकीर्षति, राजानति, सर्पिष्षो जानीते, विरमति, जायते, इह भुञ्जीत, विशेषसूत्रनिर्देशसहितं चतुरः प्रयोगान् साधयत ।

६—सुशर्मा, सह कृत्वा, क्षामः, सुपानः, हरये नमः, उपराजम्, घनश्यामः, महाराजः, त्रिमूर्धः, गवाक्षः, एतेषु पञ्च प्रयोगान् तत्तद्विशेषसूत्रनिर्देशपुरस्सरं साधयत ।

७—वैनतेयः, पित्र्यम्, तावकीनः, औपगवः, दन्त्यम्, भूयिष्ठः, औत्सी, रुद्राणी, दाक्षी, एषु पञ्चैव साध्याः ।

१९५८

१—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, परः संनिकर्षः संहिता, इति सूत्रद्वयस्य अर्थौ विलिख्य आभ्यन्तरप्रयत्नस्य भेदान् लिखत ।

२—प्रष्ठौहः, अमी ईशाः, सन्तसः, इमान् सूत्रनिर्देशपूर्वकं संसाध्य 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इति सूत्रस्य अर्थं प्रदर्शयत ।

३—सर्वेषाम्, सख्युः, गाः, मत्यै, दध्ना, अनड्वान्, विश्वाराट्, अमी, अद्भिः, धनूंषि, एषु पञ्चानां साधुत्वं विधाय युष्मद् शब्दस्य द्वितीयायां रूपाणि लिखत ।

४—भवतात्, अगादीत्, अपुः, अचीकमत्, अभृत, इयाय, और्णावीत् नेनिजानि, चिकाय, शीयते, आज्ञात, रतमान, कथयति, एतेषु पञ्चैव समाधेयाः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—जिघत्सति, वाव्रज्यते, पुत्रीयति छात्रम् , विजयते, प्रवदति, अभाजि, यजति स्म युधिष्ठिरः, सप्तसु चतुरः एव प्रयोगान् लिखत।

६—शिष्यः, विज्ञाया, भिक्षुः, स्वप्नः, हित्वा, गर्गान् शतं दण्डयति, ग्रामादायाति, पञ्चगङ्गम् , अतिमालः, आपन्नजीविकः, चित्रगुः, सुहृत् , महायशस्कः, वाक्त्वचम् विग्रहप्रदर्शनपूर्वकं पंचैव प्रयोगाः साध्याः।

७—दाक्षिः, कौरव्यः, हास्तिकम् , स्रौघ्नः, धार्मिकः, कृतपूर्वी, ज्यायान् , गार्गी, दाक्षी, वैदी एषु पञ्च प्रयोगान् साधयत।

१९५९

१—अच् प्रत्याहारं संसाध्य, 'ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः' इति सूत्रस्य सोदाहरणं अर्थम् लिखत।

२—धात्रंशः, शिवेहि, किम्वुक्तम् , तच्छिवः, नॅंः, ः पाहि, पुना रमते, सैष दाशरथी रामः, एषु केऽपि पञ्च प्रयोगाः साधयत।

३—रामाणाम् , विश्वपः, नृणाम् , तिसृणाम् , वारिणे, विश्वौहः, अष्टौ, पुमान् , ददन्ति एषु पञ्चानां सिद्धिः कार्या।

४—आतीत् , अकटीत् , जहार, ऐधिषत, उवोढ, आयुः, अदुग्धः, अदित, अजनि, लोभिता, कुर्यात् , ग्रहीत् , अजीगणत् , एषु पञ्चैव समाधेयाः।

५—अतिष्ठिपत् , बुभूषति, नरीनृत्यते, इदामति, रथेन संचरते, दायिता, कृष्णं नमस्यति, चेत् सुखं यास्यति, सप्तसु पञ्चैव समाधेयाः।

६—मृज्यः, पारदृश्वा, वराकः, भुक्त्वा व्रजति, अग्नये स्वाहा, उपराजम् , पञ्चगवम् , महाराजः, उत्काकुत् , ईशकृष्णौ, प्राध्वो रथः, सविग्रहंससूत्रञ्च पञ्चैव समाधेयाः।

७—नैषध्यः, वेतस्वान् , म्रदिमा, मेधावी, पटपटाकरोति, नदी, मृडानी, गौरमुखा एषु पंच प्रयोगान् साधयत।

१९६०

१—'आदिरन्त्येन सहेता' ईति सूत्रं सोदाहरणम् व्याख्याय, र, श, ह, वर्णेषु कयोरपि द्वयोः पृथक्-पृथक् बाह्यप्रयत्नान् लिखत।

२—मद्ध्वरिः, कृष्णर्द्धिः, शकन्धुः, गवाग्रम् , चक्रि अत्र, वाग्घरिः, चक्रिंस्त्रायस्व, मनोरथः, एषु पञ्चैव साधनीयाः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

३—सर्वेषाम्, सख्युः, क्रोष्टूनाम्, मत्याम्, दध्ना, चतुर्णाम्, युष्मान्, अमी, एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः ।

४—भविता, अगादीत्, पपौ, दिद्युते, आदत्, अध्यगीष्ट, तृणेढि, गृहाण एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः ।

५—अजीगणत्, बुभूषति, वाव्रज्यते, राजानाति, दायिता, एषु प्रयोगत्रयं सविग्रहं संसाध्य 'वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा' इति सूत्रस्यार्थं सोदाहरणं लिखत ।

६—शिष्यः, राजयुध्वा, चिकीर्षुः, ईषत्कारः, गां दोग्धि पयः, पंचगङ्गम्, गोहितम्, प्राप्तजीविकः, द्विमूर्धः, सुराजा, एषु पंचैव समाधेयाः ।

७—वैनतेयः, जनता, त्वदीयः, पौरोहित्यम्, अग्नी भवति, अजा, कुमारी, वामोरूः, एषु पंच प्रयोगाः साधनीयाः ।

१९६१

१—अ, ट, ल, ष, वर्णानां द्वयोः स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नं च लिखित्वा, ऋकारस्य त्रिंशद् भेदान् प्रदर्शयत ।

२—धात्रंशः, तवल्कारः प्रार्च्छति, किम्वुक्तम्, तच्छिवः, प्रत्यङ्ङात्मा, शिवोऽर्च्यः, स शम्भुः, एषु पंचैव समाधेयाः ।

३—रामान्, विश्वपः, सखा, बहुश्रेयस्याम्, ज्ञानानि, मघवान्, पुमान्, अहोभ्याम्, एषु षञ्च प्रयोगाः साधयत ।

४—बभूव, जगाद, शृण्वन्ति, एधेरन्, जक्षतुः, देहि, बभर्ज, कुर्वन्ति एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः ।

५—भावयति, अतिष्ठिपत्, पिपठिषति, पुत्रीयति, पच्यते फलम्, एषु प्रयोगद्वयं संसाध्य 'विधिनिमंत्रणा' इत्यादि सूत्रे निमंत्रणामन्त्रणाधीष्टपदानामर्था विलेख्या ।

६—कार्यम्, भिक्षाचरः, सरसिजम्, लवित्रम्, अधिगोपम्, कृष्णश्रितः, द्विपादः, गवाक्षः, एषु पंचैव समाधीयताम् ।

७—गार्ग्यः, गार्भिणम्, पञ्चमः, यशस्वीः, कुरुचरी, कुमारी, शूर्पणखा, युवतिः, एषु पञ्च प्रयोगान् सविग्रहप्रदर्शनपूर्वकं साधयत ।

१९६२

१—सवर्ण, संहिता, संयोगसंज्ञाविधायकसूत्राणि विलिख्य, इ–घ–ज–ष वर्णानां द्वयोः स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नञ्च प्रदर्शनीये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२—गङ्गोदकम्, प्रौढः, मनीषा, अहो ईशाः, उत्थानम्, षट्त्सन्तः, भो देवाः, शम्भू राजते, एषु स्वेच्छया पंच प्रयोगाः साधनीयाः। ...२०
३—रामाः, सर्वे, हरौ, बहुश्रेयस्यै, सर्वस्याः, तिस्रः, ज्ञाने, दध्ना, एषु पञ्चानां सिद्धिः प्रदर्शनीया। ...२०

अथवा

धुक्, अनेन, पंच, त्वया, धीमान्, अद्भिः, अहोभ्याम्, एषु पंचानां सिद्धिः प्रदर्शनीया।
४—भवामि, भवेत्, आत, पपौ, अयाञ्चक्रे, शेरते, जहाति, उपस्किरति, कुर्वन्ति, स्तभान, एषु धात्वर्थनिर्देशपूर्वकं पञ्च प्रयोगाः साधु साधनीयाः। ...२०
५—स्थापयति, पिपटिषति, बोभूयते, पुत्रीयति, विजयते, विरमति, दायिता, यजति स्म युधिष्ठिरः, एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः। १०

अथवा

चेयम्, पारदृश्वा, चिकीर्षुः, विप्राय गां ददाति, पंचगवम्, पीताम्बरो-हरिः, पितरौ, एषु चतुर्णां सिद्धिः प्रदर्शनीया।
६—वैनतेयः, वैयाकरणः, तावकीनः, अग्नीभवति, गार्गी, गोपी, चन्द्रमुखी, नारी, एषु पञ्च प्रयोगान् सविग्रहप्रदर्शनं संसाधयत। ...२०

१९६३

१—स्थान-प्रयत्न-भेदान् प्रदर्श्य, गव्यूतिः, होतृकारः, वाग्घरिः मनोरथः, एषां सिद्धिः प्रदर्शनीया। २०
२—निर्जरसौ, सख्युः, हे श्रीः, वारिणे; धुक्षु, युष्मान्, धीमान्, एतानि, पिधानम्—एषु स्वेच्छया पंच प्रयोगाः साधनीयाः। ...२०
३—टि—भ—घि—घु—संज्ञासूत्राणामर्थान् विलिख्य, एतेषामुदाहरणानि साधनीयानि।
४—नेदुः, एधांचक्रे, ईजतुः, आत्थ, पिपूर्तः, अशात्, दुधुविव, शीयते, सायात्, स्तरिषीष्ट—एषु पंचानां सिद्धिः प्रदर्शनीया। ...२०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—अतिष्ठिपत् , वरीवृत्यते, राजानति, सर्पिषो जानीते, अभावि, शिष्यः, विजावा, चिकीर्षुः, हारणा, हित्वा—एषु धात्वर्थनिर्देशपूर्वकं पंच प्रयोगान् साधयत। ... २०

अथवा

औपगवः, पौषमहः, अहीनः, वेतस्वान् , तावकीनः, देवी, सर्विका, शूर्पणखा, वामोरूः, एषु पंचानां सिद्धिः प्रदर्शनीया।

६—समासः कतिविधः—कानि च तेषां नामानि, कानि च तेषां लक्षणोदाहरणानीति व्याख्याय, सखिशब्दस्य सर्वासु विभक्तिसु रूपाणि लेख्यानि। ... १५

१९६४

१—इ-ठ-व-स-वर्णानां द्वयोः स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नं च पृथक् पृथग् विलिख्य नाव्यम् , उपोषति, तच्छिवः, शिवो वन्द्यः, एषां सिद्धिः प्रदर्शनीया। १०

२—रामान् , गाम् , तिसृणाम् , दध्ना, इमे, त्वया, विद्वद्भ्याम् , अद्भिः, पचन्ती, एषु स्वेच्छया पंचप्रयोगाः साधनीयाः। २२

३—संयोग-नदी-षट्-अभ्यास-संज्ञासूत्राणामर्थान् विलिख्य एतेषामुदाहरणानि साधनीयानि। २०

४—जगाद, अद्युतत् , उवाह, जहि, धत्तः, नर्तिष्यति, असावीत् , गिलति, अतत, क्रीणन्ति—एषु पंचानां सिद्धिः प्रदर्शनीया। २०

५—घटयति—, जिघत्सति, पुत्रकाम्यति, निविशते, विरमति, लभ्यम् , गोदः, सरसिजम् , चिकीर्षा, शयित्वा, एषु धात्वर्थनिर्देशपूर्वकं पंचप्रयोगान् साधयत। २०

अथवा

विप्राय गां ददाति, द्वियमुनम् , अनश्वः, पाणिपादम् , आदित्यः, ऐन्द्रंहविः, सांवत्सरिकम् , भवन्ती, अतिकेशी, दाक्षी, एषु पंचानां सिद्धिः प्रदर्शनीया।

६—अव्ययलक्षणं विलिख्य अस्मद् शब्दस्य सर्वासु विभक्तिसु रूपाणि लेख्यानि। १०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विहारोत्कलसंस्कृतसमितिप्रथमपरीक्षाव्याकरणप्रश्नाः

सन् १९३४

अधस्तनेषु षट्सु यथारुचि पञ्चैव प्रश्नाः समाधेयाः—

१—गो+अग्रम्, पुम्+कोकिलः, स्व+छत्रम्, पुनर्+राजते, कः+शेते, तद्+शिवः, तद्+नित्यम् स्वपठितसूत्रैः केषुचित् पञ्चसु सन्धिं कुरु। २०

२—सर्वेषाम्, क्रोष्टुः, गाः, तिसृणाम्, दध्नि, अनेन, सुनूनि, स्वाधीतसूत्रैः कानिचित्पञ्चैव पदानि साधय।

३—प्रतीचः, अमुष्याम्, त्रिलोकी, कुरुचरी, मित्राय द्रुह्यति, यथाशक्ति, पूर्वकायः। एतेषु पञ्चानां साधुत्वं स्वपठितसूत्रैः प्रदर्शय।

४—चतुर्थः, ज्येष्ठः, विशः, अचीकमत, एधि, बभर्ष्ठ, अवोचन्, एषां पञ्चैव पदानि ससूत्रनिर्देशं साधय। २०

५—अतिष्ठिपत्, कुर्य्यात्, भविता, चिकीर्षा, वेपथुः, राजानति, शुश्रूषते, एषु पञ्चैव पदानि ससूत्रनिर्देशपूर्वकं साधय।

६—लघुकौमुद्याम्—(हलः श्नः शानज्झौ) (सृजिदृशोर्झल्यमकिति) (हलः) (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) उपरिनिर्दिष्टानां केषाञ्चिच्चतुर्णां सूत्राणां स्फुटार्थं सोदाहरणं प्रदर्शय।

सन् १९३५

१—मनस्+ईषा, एषस्+हसति, प्र+ऊढः, चित्+मयम्, भोस्+अच्युतः, प्रशान्+तनोति, कस्+धावति, प्र+ऋच्छति, एषु केषुचित् पञ्चसु ससूत्रोपन्यासं सन्धिं कुरु।

२—असौ, अहम्, सर्वे, स्वसारौ, जरसा, यूनः, राजा, विदुषाम्। एषु चतुरः प्रयोगान् ससूत्रं साधय।

३—सर्वरात्रः, त्रिभुवनम्, पारेगङ्गम्, उद्गन्धिः, वामोरूभार्य्यः, चक्रपाणिः, भूतपूर्वः, एषु चतुर्णां साधुत्वं केवलं प्रधानसूत्रोपन्यासपुरस्सरं प्रदर्शय। २०

४—बभूव, अचीकमत, जहि, अबिभयुः, श्यति, कुर्म्मः, बोभूयते, जानाति, एषु कानपि पञ्चप्रयोगान् ससूत्रं साधय। २०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—जिघत्सति, जिघांसति, वाव्रज्यते, नरीनृत्यते, पुत्रकाम्यति
एषु पञ्चानां केवलं विग्रहवाक्यं लिख।

६—पाचकः, क्रिया, विहङ्गः, कृत्, षाण्मातुरः, अत्रत्यः, तृत
प्रयोगाणां प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययविधायकसूत्रोपन्यासपूर्वकं प्रदर्श

७—अधोलिखितेषु केषाञ्चिच्चतुर्णां सूत्राणां स्फुटार्थं सोदाहर
घत्यूठ्सु, यचि भम्, वोतो गुणवचनात्, अकथितं च, सु
आतोऽनुपसर्गे कः, नस्तद्धिते।

सन् १९३६

१—तद्+नित्यम्, गो+अम्, प्रष्ठ+ऊहः, अमू+आर
सूत्रैः सिद्धरूपाणि लिख।

२—हे राम, विश्वपः, बहुश्रेयस्यै, प्रराणाम्, त्वयि, सस्
साधय।

३—अभूत्, अगोपायीत्, विदाङ्करोतु, असिचत्, कुर्म्मः एतानि स

४—एदिधिषते, माव्यते, मार्ग्यः, पारदृश्वा, पञ्चगवधनः, जिह्
रुद्राणी, एषु यथेच्छं पञ्चैव साधय।

५—अतिष्ठिपत्, जिघत्सति, नरीनृत्यते, शब्दायते, यजति स्म युधिष्ठिरः।
एते सूत्रैः साध्यन्ताम्।

सन् १९३७

१—प्रेजते, शिवेहि, विष्ण इति, तच्छिवः, कांस्कान्, शम्भू राजते, एषोऽत्र
षट् सूत्रोपन्यासपूर्वकं साध्याः।

२—सखा, बहुश्रेयस्याम्, दध्नि, धुक्षु, विश्वौहः, हे अनड्वन्, यज्वनः, वृत्रघ्नः, ए
चत्वारः साध्याः।

३—युष्मद्, विद्वस्, पुंस्, एषां षष्ठीबहुवचने रूपाणि लिखित्वा—आतीत्, अभूत्, अ
टीत्, क्षायात्, अपात्, शृण्वः, कामयते, अत्रस, एषु चत्वारः साध्यन्ताम्। ९+१

४—हृञ्, एध, शीङ्, दुह, हन्, हु, दा, एषु चतुर्णां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने
रूपाणि लिखत।

५—परिक्रीणीते, प्रतिष्ठते, आत्मनेपदविधायके सूत्रे लिखित्वा शिष्यः, मार्ग्यः,
यशस्करी, जनमेजयः, नन्दनः, धाक्, पक्वः एषु पञ्चानां कृत्प्रत्ययान्
लिखत। ४+

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बिहारोत्कलः, अत्र समासकार्य्याणि लिखित्वा धर्म्यम्, इन्द्राणी,
ष्त्रीप्रत्ययसूत्राणि लिखत। ४+१०
ने च तानि इति विविच्य लिखत।

अधस्तनेषु षट्सु यथा
सन् १९३८
१—गो+अग्रम्, पुम्-ण्डाग्रम्, प्रेजते, उपैति, तवैश्वर्य्यम्, चिन्मयम्, वाग्घरिः, भवाँ-शिवः, तद्+नित्यम् यति, एषु केचन षट् ससूत्रोपन्यासं साध्यन्ताम्। २०
२—सर्वेषाम्, क्रोष्टुः, ग सखा, त्रयाणाम्, नृणाम्, सर्वस्यै, नद्याम्, अनड्वान्, कानिचित्पञ्चैव पदानि ससूत्रनिर्देशं साध्याः। १२
३—प्रतीचः, अमुष्याम्, त्रिलं पुरुषव्याघ्रः, उपशरदम्, द्विपात्, पाणिपादम्, एतेषु पञ्चानां साधुत्वं स्वविधायकसूत्रोल्लेखपूर्वकं साध्यन्ताम्।
४—चतुर्थः, ज्येष्ठः, विशः, अगौप्सीत्, अपात्, अगमत्, अभक्त, अघसत्, एधि, एषु ससूत्रनिर्देशं साधय
५—अतिष्ठिपत्, कुर्य्यात्
अथवा
पदानि ससूत्रनिर्देशपृ घ् धातूनां लुङि लिटि च रूपाणि लिख्यन्ताम्।
६—लघुकौमुद्याम्—(भवैः, अलिप्त, अतत, अक्रोष्ट, अजीगणत्, एषु चतुरः प्रयोगान् (लिङ्सिचावा ठितुमिच्छति, पुनः पुनर्भवति, पुत्रमात्मन इच्छति, शब्दं करोति प्रदर्शय। वाचरति विग्रहे कीदृशानि रूपाणि भवन्तीति स्पष्टं लिखत। १८
, नन्दनः, प्रियंवदः, पक्वः, आदित्यः, पारावारीणः युवतिः एषु न षट् प्रयोगाः साध्यन्ताम्।
मासाः कतिविधाः कानि च तेषामुदाहरणानि इति लिख्यन्ताम्। ११
१—मन
प्रश
स
२—
३—
४

इति श्रीश्रौतमुनि-महामण्डल-शिरोमणि भगवत्पाद-श्री १०८ स्वामिस्वयम्प्रकाशानन्ददीक्षितशिष्येण विद्वन्मूर्धन्यश्रीविश्वनाथप्रभाकराऽन्तेवासिना च विद्यालङ्कारेण कविकान्तेन श्रीनिगमानन्दशास्त्रिणा परमहंसेन सम्पादितं "परिशिष्टं" सम्पूर्णम् ॥ ॐ तत्सत् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection